संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास

(भाग-1)

संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास

भाग-१

HISTORY OF SANSKRIT POETICS,

(Part-I)

विश्वविद्यालय-स्तरीय ग्रंथ-निर्माण-योजना के अंतर्गत भारत-सरकार (शिक्षा और समाज-कल्याण मंत्रालय) के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित यह ग्रंथ श्री सुशील कुमार डे लिखित तथा Firma K. L. Mukhopadhyay, Calcutta-12 द्वारा प्रकाशित History of Sanskrit Poetics का हिंदी अनुवाद है।

प्रकाशित ग्रंथ-संख्या ८१

प्रथम संस्करण : नवम्बर, १९७३ : २,०००

मूल्य : रु० १३.५० (तेरह रुपए, पचास पैसे) मात्र

प्रकाशक :

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

सम्मेलन-भवन, पटना-८००००३

मुद्रक

बिहार प्रिंटिंग प्रेस

दरियापुर, पटना-४

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपलान के रूप में विश्वविद्यालयों में उच्चतम स्तरों तक भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य-सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत-सरकार ने इन भाषाओं में विभिन्न विषयों के मानक ग्रंथों के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजन के अंतर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के प्रामाणिक ग्रंथों का अनुवाद किया ज रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे हैं। यह कार्य भारत-सरकार विभिन्न राज्य-सरकारों के माध्यम से तथा अंशतः केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। हिंदीभाषी राज्यों में इस योजना के परिचालन के लिए भारत-सरकार के शत-प्रतिशत अनुदान से राज्य-सरकार द्वारा स्वायत्तशासी निकायों की स्थापना हुई है। बिहार में इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान में हो रहा है।

योजना के अंतर्गत प्रकाश्य ग्रंथों में भारत-सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओं में समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

प्रस्तुत ग्रंथ डॉ० सुशील कुमार डे-लिखित History of Sanskrit Poetics का हिंदी अनुवाद है, जो भारत-सरकार के शिक्षा और समाज-कल्याण मंत्रालय के शत-प्रतिशत अनुदान से बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। इसका अनुवाद-कार्य वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नई दिल्ली के श्री मायाराम शर्मा ने किया है। डॉ० दशरथ ओझा, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ने इसका पुनरीक्षण किया है। यह ग्रंथ विश्व-विद्यालय-स्तर के लिए महत्त्वपूर्ण होगा।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशन-संबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रों में स्वागत किया जाएगा।

अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

पटना
दिनांक २०.११.'७३

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रंथ, संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुशील कुमार डे-लिखित था Firma K. L. Mukhopadhyay, Calcutta-12 द्वारा प्रकाशित listory of Sanskrit Poetics का हिंदी अनुवाद है। यह अनुवाद वैज्ञानिक था तकनीकी शब्दावली आयोग के अनुसंधान-सहायक श्री मायाराम शर्मा ने किया है। इसका पुनरीक्षण दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्रोफेसर ॉ० दशरथ ओझा ने किया है। भाषा-संपादन का कार्य हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ वद्वान श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' ने किया हैं। यह ग्रंथ विश्वविद्यालय-स्तर के त्रों के लिए अत्यंत लाभदायक होगा, ऐसा विश्वास है।

ग्रंथ के भाग-१ का मुद्रण-कार्य बिहार प्रिंटिंग प्रेस, पटना-४ ने किया है। फ-संशोधन का कार्य श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' ने किया है। इसके आवरण-शल्पी हैं श्री बी० के० सेन। ये सभी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

शिवचन्द्र प्रसाद

पटना
दिनांक २०.११.'७३

निदेशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

भूमिका

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण (अंग्रेजी) १९२३ और १९२५ में दो अलग-अलग खंडों में प्रकाशित हुआ था। लगभग उसी समय (१९२३) में, महामहोपाध्याय डॉ० पी० वी० काणे के 'साहित्यदर्पण' का दूसरा संस्करण भी प्रकाशित हुआ था। पुस्तक के आरंभ में १७७ पृष्ठों की भूमिका थी, जिसमें अलंकार-साहित्य की चर्चा की गई थी। बाद में, तीसरे संस्करण (१९५१) में वही भूमिका ४२३ पृष्ठों में विस्तार के साथ दी गई। इस संदर्भ में डॉ० काणे लिखते हैं—"इस प्रकार हम दोनों इस क्षेत्र में वस्तुतः अग्रणी थे। हमारे ग्रंथों ने अनेक विद्वानों को अलंकार-विषयक अनेक ग्रंथों का अध्ययन करने, दोषों और त्रुटियों को बताने, अलंकारशास्त्र के अनेक पक्षों पर लेख लिखने और कई महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को [illegible] करने की प्रेरणा दी।" इससे प्रस्तुत ग्रंथ का पुनरीक्षण करने की [illegible]ता स्पष्ट हो जाती है, क्योंकि इसे स्वतंत्र रूप से लिखा और प्रकाशित किया गया था। अभी तक इससे उत्तम पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है, यद्यपि यह तीस वर्ष से भी अधिक समय से अप्राप्य रही है।

प्रस्तुत ग्रंथ के विषय-क्षेत्र के बारे में प्रथम संस्करण की भूमिका (आमुख) में विस्तारपूर्वक बता दिया गया था। इसमें केवल अलंकार-ग्रंथों और उनके रचयिताओं का विवरण देने अथवा अलंकारशास्त्र से संबद्ध विभिन्न विषयों का सारांश देने की अपेक्षा विषय का ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन करने का प्रयत्न किया गया है। यह मानकर कि पाठक को विषय का सामान्य ज्ञान है, प्रतिनिधि लेखकों (तथा आवश्यकतानुसार, अपेक्षित टीकाकारों और तथाकथित छोटे लेखकों) सहित संस्कृत काव्यशास्त्र के दीर्घकालीन और बहुमुखी विकास का निरूपण किया गया है, जिससे एक हज़ार वर्ष के विस्तृत साहित्य पर प्रकाश पड़ता है। अतएव, इस पुस्तक के प्रथम खंड में कालक्रम और मूल स्रोतों के आदि, किंतु महत्त्वपूर्ण, प्रश्न पर विचार किया गया है और उसी के आधार पर दूसरे खंड में विभिन्न पद्धतियों और सिद्धांतों के माध्यम से काव्यशास्त्र के इतिहास का निरूपण किया गया है। यह स्पष्ट हो जाएगा कि अध्यायों की नवीन व्यवस्था और विभाजन करने के अतिरिक्त

प्रथम संस्करण की सामान्य रूपरेखा में परिवर्तन नहीं किया गया है; केवल सुविधा की दृष्टि से एक ही ग्रंथ के दोनों खंडों को दो भागों में प्रकाशित किया जा रहा है।[1]

संस्कृत काव्यशास्त्र के विकास पर विचार करते हुए उसकी विषयवस्तु को अछूता छोड़ देना निस्संदेह संभव नहीं था, तथापि, यह अधिक उपयुक्त समझा गया कि सिद्धांतों के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर अधिक बल दिया जाय और अनुपादेय विषयों को छोड़ दिया जाय, क्योंकि इस ग्रंथ का उद्देश्य व्याख्यात्मक की अपेक्षा ऐतिहासिक अधिक है। उदाहरण के लिए, पृथक्-पृथक् अलंकारों का सविस्तर शास्त्रीय विश्लेषण करना संभव नहीं था ; यह कार्य परंपरा से ही अलंकार-संबंधी ग्रंथों में होता रहा है और सर्वविदित है ; किंतु उन अलंकारों के सामान्य काव्यशास्त्रीय सिद्धांत का विवेचन अवश्य किया गया है, जो नाममात्र अलंकार ही नहीं हैं, अपितु कलात्मक सौंदर्य के संवर्धन में सक्रिय रूप से सहायक भी होते हैं। अलंकारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन औपचारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी एक प्रकार से केवल पांडित्य-प्रदर्शन एवं निरर्थक कहा जायगा। किंतु, अलंकार नाम से अभिहित होने पर भी संस्कृत अलंकारशास्त्र में केवल अलंकार-विषयक विचार-विमर्श के अतिरिक्त इसमें उन विषयों का भी विवेचन है, जिन्हें आलोचना अथवा सौंदर्य-शास्त्र कहा जाता है। केवल रूप और विधि का निरूपण अभिप्रेत होने पर भी आलंकारिकों के लिए साहित्य के सामान्य तत्त्वों तथा सामान्य सिद्धांतों के नियमों से सर्वथा निरपेक्ष रहना संभव नहीं था।

इसी प्रकार, ऐतिहासिक और सामान्य निरूपण को समक्ष रखकर इस शास्त्र के रचनात्मक काल से संबंधित पूर्ववर्ती लेखकों पर अधिक ध्यान दिया गया है ; परवर्ती लेखक अधिकांशतः अपने पूर्ववर्ती आचार्यों पर अधिक आश्रित दिखाई पड़ते हैं, इसलिए उनके ऐतिहासिक और वास्तविक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रतिनिधि लेखकों के ही नाम दिए गए हैं। लेखक ने अपने आपको संस्कृत-काव्यशास्त्र तक ही सीमित रखा है और इस विषय पर देशीय भाषाओं में लिखे गए अनेकानेक ग्रंथों तथा इसी से संबद्ध, किंतु पृथक् विषयवस्तुवाले, नाट्यशास्त्र पर भी विचार नहीं किया है ; उनके सविस्तर वर्णन एवं पृथक निरूपण के लिए अतिरिक्त बृहत्काय ग्रंथ अपेक्षित होगा। ग्रंथ-सूचियाँ और संदर्भों के निर्देश

१. यह वक्तव्य अंग्रेजी संस्करण के संबंध में है। हिंदी अनुवाद दो अलग-अलग खंडों में प्रकाशित किया जा रहा है।

—प्रकाशक।

कदाचित पूर्ण नहीं हैं ; उनका प्रयोजन ऐसी आवश्यक सूचना देने के लिए है, जिनके आधार पर इस विषय पर विशेष अध्ययन किया जा सके।

अलंकार-शास्त्र के नाम से पुकारे जानेवाले इस अर्धसैद्धांतिक और अर्ध-व्यावहारिक विद्या को इस पुस्तक में काव्यशास्त्र (पोएटिक्स) नाम से अभिहित किए जाने के विषय में स्पष्टीकरण के तौर पर दो-एक शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। एच० जैकोबी द्वारा इसके विषय-क्षेत्र का पर्याप्त विवेचन किया जा चुका है और संभवतः उन्होंने सबसे पहले Zeitchrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft, lvi, 1902, पृ० 393, पाद-टप्पणी 1 में इस शब्द (पोएटिक्स) का व्यवहार किया है। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि सामान्यतः प्रयुक्त किया जानेवाला अलंकार शब्द उस अध्ययन को पर्याप्त रूप में प्रस्तुत नहीं कर सकता, जिसका विषय-क्षेत्र विभिन्न अलंकारों के व्याख्यात्मक विवेचन से कहीं अधिक व्यापक है ; साथ ही इस संदर्भ में सौंदर्यशास्त्र (एस्थेटिक्स) शब्द का प्रयोग भ्रामक है, क्योंकि अलंकार-साहित्य का सिद्धांत-पक्ष वैसा नहीं है, जैसा आधुनिक दर्शनशास्त्र में सौंदर्यशास्त्र का है। पश्चिमी सौंदर्य-शास्त्र (वेस्टर्न एस्थेटिक्स) अथवा यूरोपीय आलोचनात्मक साहित्य से तुलनात्मक अध्ययन का सामान्यतः परिहार ही किया गया है। क्योंकि, ऐसा करने से न केवल प्रस्तुत ग्रंथ के सीमित क्षेत्र का अतिक्रमण होता, अपितु इससे अनर्गल एवं भ्रामक साधारणीकरण की भी संभावना हो सकती थी। इस विषय में रुचि रखनेवाले आधु-निक सौंदर्यशास्त्र के संदर्भ में संस्कृत काव्यशास्त्र की संक्षिप्त आलोचनात्मक रूपरेखा इसी लेखक के दो निबंधों "ढाका यूनिवर्सिटी स्टडीज़" खंड i, (१९३६), पृष्ठ १—४६ और "न्यू इंडियन एंटिक्वेरी" ix, संख्या १-३ (लेखक के "सम प्रोब्लम्ज़ ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स", कलकत्ता, १९५९, पृ० १-५३ में पुनर्मुद्रित) में इन्हें देख सकते हैं।

यह कहना आवश्यक होगा, जैसाकि संदर्भों से सूचित होता है, कि पूर्ववर्ती लेखकों के संचित किंतु यत्रतत्र प्रकीर्ण श्रम अर्थात् उनके ग्रंथों का सावधानी से उपयोग किया गया है, किंतु इसे लेखक ने अपने अध्ययन से पूर्ण किया है। यथा-संभव व्यर्थ के वाद-विवाद और परिचर्चा का परिहार करते हुए लेखक ने अपने को स्वयं के विचारों की अभिव्यक्ति तक ही सीमित रखा है। वह इस बात से भली भाँति अवगत है कि किसी भी विषय पर कोई भी व्यक्ति अंतिम बात कहने का दावा नहीं कर सकता।

प्रथम संस्करण की भूमिका में लेखक ने इस पुस्तक को लिखने में विभिन्न दिशाओं से प्राप्त हुई सहायता और प्रोत्साहन के लिए आभार प्रकट किया है। इस संदर्भ में एच० जैकोबी, एल० डी० बार्नेट और एफ० डब्ल्यू० टामस जैसे 'कल्याण-मित्रों' का निधन दुःखद घटना है ! वह अब यही कहना चाहता है कि इस संस्करण में उसने प्रोफेसर डा० वी० राघवन के सुझावों से लाभ उठाया है। उन्होंने अपना अनेक व्यस्तताओं के बीच कई ग्रंथों और ग्रंथकारों के विषय में ग्रंथ-सूचियों से संबंधित उपादेय सामग्री भेजने का कष्ट किया।

—सुशील कुमार डे

विषय-सूची

खंड I

खंड I

काल क्रम श्रौर स्रोत

अध्याय एक

आरंभ

१

काव्य-मीमांसा के एक रोचक प्रसंग में काव्यशास्त्र की दैवी उत्पत्ति का काल्पनिक-सा विवरण देने के साथ राजशेखर ने इस शास्त्र के परंपरागत आदि-प्रवर्तकों का नाम-निर्देश भी किया है। इसमें कहा गया है कि स्वयंभू ने सरस्वती से उत्पन्न काव्य-पुरुष को तीनों लोकों में काव्य-शास्त्र का प्रचार करने के लिए नियुक्त किया और उसने इस शास्त्र का उपदेश अठारह अधिकरणों में अपने सत्रह संकल्पजात शिष्यों को दिया। इन दिव्य ऋषियों के बारे में कहा गया है कि तदनंतर इन ऋषियों ने क्रमशः अपने द्वारा अधीत अंशों पर पृथक्-पृथक् ग्रंथों की रचना की। इस प्रकार सहस्राक्ष ने कवि रहस्य, उक्तिगर्भ ने औक्तिक, सुवर्णनाभ ने रीति, प्रचेतायन ने अनुप्रास, चित्रांगद ने यमक और चित्र, शेष ने शब्दश्लेष, पुलस्त्य ने वास्तव, औपकायन ने उपमा, पाराशर ने अतिशय, उतथ्य ने अर्थ-श्लेष, कुबेर ने उभयालंकार, कामदेव ने वैनोदिक, भरत ने रूपक, नंदिकेश्वर ने रस, धिषण ने दोष, उपमन्यु ने गुण और कुचमार ने औपनिषदिक पर ग्रंथ लिखे। अपनी विद्या की महिमा का गुण-गान करने के द्वारा उसमें अपरिवर्तनीय प्रामाणिकता आरोपित करने की संस्कृत ग्रंथकारों की प्रवृत्ति अनोखी नहीं है और इस प्रकार की पौराणिक गाथाएं प्रायः तब गढ़ ली जाती हैं, जब वास्तविक उत्पत्ति विस्मृत हो चुकी होती है। तथापि यह आश्चर्य की बात है कि अलंकार शास्त्र में अन्यत्र वे गाथाएँ नहीं मिलतीं, जब कि उनसे संबंद्ध शास्त्रों—क्रमशः नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र—में उनकी उत्पत्ति के विषय में भरत और वात्स्यायन ने वे गाथाएँ दी हैं। राजशेखर के इस संदर्भ का ऐतिहासिक मूल्य वस्तुतः पर्याप्त संदेहास्पद हो सकता है, किंतु यह संभव है कि इस अपूर्व विवरण में, सुस्पष्ट पौराणिक परिवेश के अतिरिक्त, एक प्रचलित परंपरा अंतर्निहित है, जिसमें विस्मृत अतीत के काव्य-शास्त्रीय सिद्धांतों के प्रवर्तकों की वास्तविक सत्ता उपलक्षित होती है। उनमें से कुछ-एक के नाम तो अब भी सुपरिचित हैं, किंतु उनकी अधिकतर कृतियां स्पष्टतः लुप्त हो गई हैं। उदाहरणार्थ कामसूत्र के रचयिता ने (i. 1.13,17.) में सुवर्णनाभ और कुचमार (अथवा कुचुमार) का आदर के साथ उल्लेख किया है। ये दोनों ही कामशास्त्र के प्रामाणिक आचार्य थे, किंतु कुचुमार औपनिषदिक के विशेषज्ञ थे। इस

प्रकार यह विषय कामशास्त्र और काव्यशास्त्र दोनों में समाविष्ट है[1]। नाट्यशास्त्र के वर्तमान पाठ में, जिसे भरत-कृत माना जाता है, विभिन्न विषयों पर विश्वकोष-शैली में विवेचन किया गया है, किंतु राजशेखर के वर्णनानुसार भरत केवल रूपक के प्रामाणिक विशेषज्ञ थे। अभी तक रस पर नंदिकेश्वर की कोई कृति प्राप्त नहीं हुई है, किंतु उनका नाम कामशास्त्र, संगीत, नाट्यकला, व्याकरण और तंत्र के प्रायः अनेक उत्तरकालीन संकलन-ग्रंथों के साथ जोड़ा जाता है।[2]

यह परंपरागत वर्णन किसी को अति प्राचीन काल में होनेवाले शास्त्रीय समस्याओं के नियमित अनुसंधान संबंधी रोचक मत को व्यक्त करने की प्रेरणा दे सकता है, लेकिन ऐसा मानने में कठिनाई यह है कि प्राचीन साहित्य में भी ऐसी कोई सामग्री नहीं है, जो हमें अति प्राचीन काल में अलंकारशास्त्र की उत्पत्ति खोजने में सहायता दे सके। वेदांग के नाम से अभिहित किए जानेवाले परंपरावादी शास्त्रों में अलंकारशास्त्र का कहीं भी उल्लेख नहीं है और न वैदिक संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रंथों अथवा पूर्ववर्ती उपनिषदों में ही ऐसा कोई अंश उपलब्ध है, जिसे अलंकार-शास्त्र का वास्तविक आधार माना जा सके। उदाहरण के लिए, उपमा शब्द का प्राचीनतम प्रयोग ऋग्वेद (v. 34. 9; i. 31, 15) में मिलता है, जिसका अर्थ सायण ने उपमान (यथा पाणिनि ने भी ii. 3. 72 में) अथवा दृष्टांत किया है। लेकिन औपम्य के सामान्य अर्थ में किए जानेवाले इस प्रयोग में कोई असाधारणता नहीं है, जिसका व्याख्यान एक विशेष काल्पनिक महत्तावाले अर्थ में किया जाय। यास्क और पाणिनि के साक्ष्य या प्रमाण पर यह माना जा सकता है कि उपमा अथवा औपम्य की संकल्पना ने वैदिक भाषा तथा इसके स्वराघात को भी काफी प्रभावित किया था, किंतु व्याकरणविषयक अथवा भाषा-मीमांसा की अभिरुचि के अतिरिक्त वैदिक काल में काव्यशास्त्र संबंधी किसी सिद्धांत की बात तो दूर, उस काल में किसी मत या वाद का भी संकेत नहीं मिलता। वैदिक साहित्य में अलंकारों के प्रयोग पर आवश्यकता से अधिक बल भी नहीं दिया जाना चाहिए, क्योंकि अलंकारों के स्वाभाविक और अनायास प्रयोग तथा विचार-पूर्वक तैयार की गई एक सुनिश्चित नियमबद्ध पद्धति के बीच में अवश्य लंबी अवधि बीती होगी।[3]

---

1. जर्नल आफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स. IV. पृ० 95, कलकत्ता युनिवर्सिटी
2. नंदिकेश्वर के लिए दूसरे अध्याय के नीचे देखिए।
3. पी० वी० काणे (हिस्टरी ऑफ संस्कृत पोएटिक्स, तृतीय सं०, बंबई 1951, पृ० 315-19; और इंडियन एंटिक्वेरी, xli;, 1912, पृ० 120 इत्यादि) ने कुछ विस्तार से यह तर्क दिया है, कि ऋग्वेदकालीन कवियों को काव्यशास्त्र तथा रूपक और नाट्य-

२

अलंकारों के शास्त्रीय निरूपण की दिशा में निश्चित, किंतु कुछ स्थूल क्रिया-कलापों का प्रमाण निघंटु और निरुक्त में मिलता है। भाषा के सामान्य रूप की विशेषताओं के अनुसंधान से---जिसका प्रारंभ प्राचीनकाल में ही हो चुका था—स्पष्ट ही लोगों का ध्यान अलंकारों के विश्लेषण की ओर आकृष्ट हुआ, किंतु फिर भी यह प्रश्न केवल भाषा-संबंधी दृष्टिकोण से संबद्ध रहा था। निरुक्त में पारिभाषिक अर्थ में अलंकार शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, किंतु यास्क ने 'अलंकरिष्णु' शब्द को 'अलंकृत करने के स्वभाववाला' के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त किया है। पाणिनि ने iii. 2. 136 में इसकी व्याख्या की है और स्पष्टतः शतपथ ब्राह्मण (xiii, 8. 4. 7; iii. 5. 1. 36) और छांदोग्य उपनिषद (viii. 8. 5) में यह शब्द इसी अर्थ में आया है। निघंटु (iii. 13) में वैदिक 'उपमा' के बारह भेदों को द्योतित करनेवाले शब्दों की एक सूची सन्निविष्ट है, जिनके उदाहरण निरुक्त i. 4; iii. 13-18 और ix. 6) में दिए गए हैं। इनमें से 'इव', 'यथा', 'न', 'चित्', 'नु' और 'आ' निपातों से उद्दिष्ट छह भेदों की चर्चा यास्क ने 'उपमार्थे निपातः' का विवेचन करते समय की है (1. 4) और अंशतः इन्हें 'कर्मोपमा' के अंतर्गत भी सम्मिलित किया है (iii. 15)। तत्पश्चात् यास्क ने भूतोपमा और रूपोपमा का उल्लेख किया है। भूतोपमा में 'उपमित' आचरण या व्यवहार से 'उपमान' तुल्य हो जाता है और 'रूपोपमा' में 'उपमित' का रूप 'उपमान' के समान हो जाता है। उपमा के चतुर्थ प्रकार में 'यथा' निपात का प्रयोग वाचक शब्द के रूप में होता है। अनंतर सिद्धोपमा का वर्णन है, जिसमें तुलना का मान सुसिद्ध (सम्यक् सिद्ध) है और यह (मान) 'वत्' प्रत्यय के प्रयोग द्वारा विशिष्ट गुण और क्रिया में अन्य सबसे बढ़कर है। उपमा का अंतिम भेद 'लुप्तोपमा' अथवा अर्थोपमा है (जिसे परवर्ती सैद्धांतिकों ने 'रूपक' कहा है)। इसका उदाहरण iii. 18 (और ix. 6) में मिलता है, जहाँ प्रशंसावाचक 'सिंह' और 'व्याघ्र' तथा निंदावाचक 'श्वन्' और 'काक' शब्दों के लोकप्रिय प्रयोग का उदाहरण दिया गया है। यास्क ने केवल तुलनार्थक निपातों का निर्देश करने के लिए 'उपमान' शब्द का प्रयोग किया है (vii. 31)। तुलना का महत्व सामान्यतः i. 19; ii. 6; iii. 5; iv. 11; v. 22 और vii. 13 में भी निर्दिष्ट है।

तत्व की कुछ जानकारी अवश्य थी। जर्नल आफ दि डिपार्टमेंट आफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, ix, 1923, पृ० 100 में बी० एन० भट्टाचार्य के लेख का भी अवलोकन करें।

प्रसंगवश यास्क ने (iii.13) में वैयाकरण गार्ग्य-कृत 'उपमा'[1] की परिभाषा का उल्लेख किया है, जो हमारे दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। दुर्गाचार्य के व्याख्यानुसार यह कहा गया है कि उपमा वहां होती है, जहां कोई असमान वस्तु सादृश्य के कारण तादृश विशेषतावाली किसी दूसरी वस्तु के समान मान ली जाती है।[2] सामान्य नियम के रूप में यह भी कहा गया है कि उपमेय की अपेक्षा उपमान के गुण अधिक अच्छे और प्रसिद्ध होने चाहिए, किंतु (iii. 14-15) में इसका प्रतिलोम भी मान्य है और इसके दो उदाहरण ऋग्वेद (x. 40. 2, x. 4. 6) से उद्धृत किए गए हैं। यह परिभाषा अतिविस्तृत (अतिव्याप्त) होते हुए भी मम्मट की इसी प्रकार की अभ्युक्ति का स्मरण कराती है। और निस्संदेह प्राचीन शास्त्रीय उपमा की संकलपना की लगभग निश्चित रूप में स्थापना करती है।

पाणिनि के समय तक 'उपमा' की यह संकलपना अव्यक्त रूप से मानी जा चुकी थी और हम उन्हें एतत्संबंधी पारिभाषिक शब्दों 'उपमान'[3], 'उपमित'[4] और 'सामान्य'[5] तथा सामान्य शब्दों यथा, 'उपमा'[6] (जो अलंकारशास्त्रियों के उपमान अर्थ में प्रयुक्त हुआ है) 'औपम्य'[7] 'उपमार्थ'[8] और 'सुदृश्य'[9] का प्रयोग करते हुए पाते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी में यत्र-तत्र विकीर्ण लगभग ५० सूत्रों में यथाप्रसंग वैयाकरण के दृष्टिकोण से प्रत्ययों के क्षेत्र में, जिसमें अनुबंध, कारक और स्त्री-प्रत्यय, कृत, तद्धित और समासांत प्रत्यय[10] यौगिक[11] के निर्माण एवं स्वराघात[12] आदि भी सम्मिलित हैं,

1. अथात उपमा यद् अतत् तत्सदृशं इति गार्ग्यः, तद् आसां कर्म ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांसं वा प्रख्यातं वोपमिमीतेऽथापि कनीयसा ज्यायांसम्।
2. एवमेतत् तत्स्वरूपेण गुणेन गुणसामान्यादुपमीयते इत्येवं गार्ग्याचार्यो मन्यते।
3. ii. 1. 55; iii. 1. 10, 2. 79, 4. 45; v. 4. 97, 137; vi. 1. 204, 2. 2, 72, 80, 127, 145, 169.
4. ii. 1. 56.
5. ii. 1. 55, 56 ; viii. 1. 74.
6. ii. 3. 72.
7. i. 4. 79; iv. 1. 69; vi. 2. 113.
8. viii. 2. 101.
9. ii. 1. 6–7; vi. 2. 11.
10. i. 4. 79; ii. 3. 72; iii. 1. 10, 2. 79, 4. 45; iv. 1. 69, 4. 9; v. 1. 115–16, 2. 39, 3. 96, 106, 4. 97, 137.
11. ii. 1. 7, 31, 55–6; vi. 2. 11.
12. v. 1. 18; vi. 1. 204, 2. 2, 11, 72, 80, 113, 127, 145, 169, इत्यादि।

भाषा पर पड़नेवाले उपमा का संकल्पना के प्रभाव पर विचार किया है। इसी प्रकार का प्रभाव 'अतिदेश' शब्द की विचारधारा में भी परिलक्षित होता है, जिसका प्रयोग पाणिनि ने स्वयं तो नहीं किया, किंतु उनके भाष्यकारों ने इसे स्पष्ट कर दिया। इसकी व्याख्या सादृश्य अथवा समरूपता द्वारा विस्तृत प्रयोग के रूप में हो सकती है। कात्यायन ने कई 'वार्तिकों'[1] में अनुरूपता की संकल्पना का वैसा ही प्रभाव दर्शाते हुए पाणिनि का अनुसरण किया है। शांतनव ने अपने 'फिट्सूत्र' में स्वरसंधान[2] के संबंध में इस पर चर्चा की है। पतंजलि ने ii.1.55 पर महाभाष्य में पाणिनि द्वारा प्रयुक्त 'उपमान' शब्द की परिभाषा उदाहरण के साथ दी है। उनके कथनानुसार 'मान' या माप वह है, जिसका प्रयोग किसी अज्ञात वस्तु का निर्धारण करने में किया जाता है। 'उपमान' 'मान' का समीपवर्ती होने से पूर्णतः तो नहीं, फिर भी सन्निकटतः किसी वस्तु को निर्धारित करता है; जैसे, हम कहते हैं, 'गवय'[3] गो के समान है। वस्तुतः कोई भी काव्यशास्त्री पतंजलि द्वारा दिए गए इस उदाहरण को काव्यगत 'उपमा'[4] का उदाहरण नहीं मानेगा, क्योंकि इस साधारण भावाभिव्यक्ति में काव्य-संबंधी अलंकार के लिए अपेक्षित विशिष्ट सौंदर्य का अभाव है; तथापि व्याकरण की दृष्टि से उपमा की सामान्य संकल्पना का ऐसा विश्लेषण प्राचीन है और काव्यशास्त्र की तकनीकी कल्पना के समीपतर है।[5]

३

पाणिनि के ये नियम और प्राचीन वैयाकरणों की उक्तियां—जहां तक वे उपमा के श्रौती और आर्थी भेदों के तथा 'कृत' और 'तद्धित' प्रत्ययों पर आश्रित भेदों के आधार हैं—विशेष महत्वपूर्ण हैं। उपमालंकार का यह उपविभाजन, जिसे हम व्याकरणमूलक कह सकते हैं, उद्भट के प्राक्तन समय तक स्वीकृत हो चुका था। इस प्रकार श्रौती उपमा के प्रमाण का आधार पाणिनि के दो सूत्र (v.1. 115-16) हैं। इस उपमा में तुलना का भाव 'यथा', 'इव' और 'वा' निपातों अथवा

1. i. 3. 21; ii. 1. 55, 2. 24, 4. 71; iii. 1.10 इत्यादि पर।

2. यथा ii. 16, iv. 18.

3. मानं हि नामानिर्ज्ञातज्ञानार्थमुपादीयतेऽनिर्ज्ञातमर्थं ज्ञास्यामीति तत्समीपे यन्नात्यंताय मिमीते तदुपमानं गौरिव गवय इति, सं० कीलहार्न i, पृ. 397.

4. गो-सदृशो गवय इति नोपमा, चित्र. मी. पृ. 6.

5. उपमा की संकल्पना भर्तृहरि के वाक्यपदीय में पूर्ण रूप से सिद्ध प्रतीत होती है, यथा i. 63.

'इव' के अर्थ में प्रयुक्त 'वत्' प्रत्यय द्वारा व्यक्त किया जाता है। उपर्युक्त सूत्रों में यह निर्धारित किया गया है कि 'वत्' प्रत्यय का प्रयोग सप्तमी या षष्ठी विभक्ति में प्रयुक्त तुलना के मान (उपमान) के साथ विभक्त्यंत प्रत्यय और 'इव' के स्थान पर तृतीयांत संज्ञावाचक शब्द के साथ किया जाय। ऐसी अवस्था में अर्थ 'तेन तुल्यं' (उसकी तरह या उसके सदृश) होगा और यह सादृश्य गुणवाचक न होकर क्रियावाचक होगा। इस प्रकार हमें मथुरावत् (=मथुरा-याम् इव) पाटलिपुत्रे प्राकारः, चैत्रवत् (=चैत्रस्य इव), 'मैत्रस्य गावः' और 'ब्राह्मणवद्' (=ब्राह्मणेन तुल्यम्) अधीते आदि रूप मिलते है, किंतु 'चैत्रवत् कृशः' नहीं। इसी प्रकार पाणिनि के सूत्र ii. 4. 71 पर वार्तिक (इवेन समासो विभक्त्यलोपः) के अनुसार 'कुंभाविव स्तनौ' सामासिक उपमा की सिद्धि होती है, जो 'समासगा श्रौती उपमा' का उदाहरण है। इसी प्रकार पाणिनि के सूत्र iii. 1. 10 के अनुसार क्यच् प्रत्यय का प्रयोग कर्मभूत उपमान सुबंत के साथ भी आचार-द्योतन के लिए होता है और इससे 'पौरं जनं सुतीयसि' जैसे वाक्यांशों में उपमा के उदाहरण मिलते हैं। पाणिनि के अगले नियम के अनुसार 'क्यण्' प्रत्यय का प्रयोग कर्ता कारक में प्रयुक्त उपमानवाची से कर्तृ सुबंत के साथ आचार-द्योतन के लिए होता है। और यह नियम 'तव सदा रमणीयते:श्री' जैसे वाक्यों में अभिव्यक्त उपमा का आधार है। अधिक उदाहरण देना अनावश्यक है, क्योंकि इन्हीं उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्यशास्त्र संबंधी कतिपय विचारों को प्राचीन काल में इसी प्रकार के व्याकरणमूलक विश्लेषण में खोजा जा सकता है। ये इस तथ्य का संकेत देते हैं कि पाणिनि के समय में भी इनमें से कुछ विचार भली-भांति स्थापित हो चुके थे और उन्होंने उसके अन्वेषण को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित भी किया था। यह मानना पड़ेगा कि वैयाकरणों की ये कल्पनाएं इतनी सुनिश्चित नहीं हैं कि किसी पद्धति के अस्तित्व को सिद्ध कर सकें। इस प्रकार काव्यशास्त्र से परोक्ष रूप से संबद्ध वैयाकरणों के उपर्युक्त विचार परवर्ती काव्यशास्त्रीय भाषा और चिंतन के स्रोत पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

यदि इस शास्त्र के अलंकार (अभिधेयार्थ आभूषण[1]) नाम से अथवा इस विषय पर अत्यंत प्राचीन काल से विद्यमान ग्रंथों की विषय सामग्री से कोई

---

1 वी. राघवन के इस सिद्धांत का (जर्नल आफ ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास, ix पृ० 264-67; और 'सम कन्सेप्ट्स आफ दि अलंकार शास्त्र', अड्यार 1942, पृ० 258-67) कि मूल नाम क्रियाकल्प था, निश्चित प्रमाण नहीं मिलता (देखिए, हिस्टरी आफ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० 329-31 में काणे की आलोचना)। साहित्य नाम निस्संदेह नया है। (काणे, वही, पृ० 528-29)।

निष्कर्ष निकाला जा सकता है तो ऐसा प्रतीत होगा कि अलंकारशास्त्र का उद्‌भव भाषा के काव्यात्मक सौंदर्य की विश्लेषणात्मक व्याख्या के परिणामस्वरूप हुआ। यह कार्य काव्य-रचना के नियम-निर्धारण के क्रियात्मक उद्देश्य से किया गया था।

लेकिन यह बात भी निस्संदेह है कि वैयाकरणों द्वारा भाषा के स्वरूप के विषय में किए गए उदात्त विवेचन से भी इस शास्त्र को प्रेरणा मिली। अंत:साक्ष्य और काव्यशास्त्र के कुछ निर्भ्रांत प्राचीन विद्वानों के वचनों के प्रमाण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक सीमा तक इस शास्त्र की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि भाषाशास्त्रीय दार्शनिक परिकल्पनाओं पर आधारित थी। अतएव भारत के प्राचीनतम और पुष्टतम विज्ञानों में से एक विज्ञान, व्याकरणशास्त्र, इस अलंकारशास्त्र का जनक था और इसे लोकग्राह्य बनाने में सहायक सिद्ध हुआ। आनंदवर्धन ने अपने सिद्धांत को वैयाकरणों के प्रामाण्य पर आधारित बताते हुए अग्रणी और मूर्धन्य विद्वानों के रूप में उनकी प्रशंसा की :

प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणा:।
व्याकरण-मूलत्वात् सर्वविद्यानाम्।। (पृ० 47)

काव्य-सिद्धांत के एक अद्यावधि ज्ञात प्राचीनतम आचार्य भामह ने व्याकरण-संबंधी शुद्धता के प्रश्न पर एक पूरा अध्याय लिखने के अतिरिक्त व्यक्त रूप से vi. 63 में पाणिनि के विचारों की जयघोषणा की है। वामन ने भी इसी क्रियाविधि का अनुकरण किया है। तुलना के उपर्युक्त भाषा विषयक विश्लेषण के अतिरिक्त यह आसानी से प्रमाणित किया जा सकता है कि सामान्यत: भाषा से संबंधित काव्य-सिद्धांत के कतिपय मौलिक संप्रत्यय वैयाकरणों के विचारों पर आधारित हैं, किसी अन्य मतमतांतर पर नहीं। उदाहरणार्थ, जिस 'संकेत' द्वारा शब्द के 'अभिधा' अर्थ का बोध होता है, उसका विषय-निर्णय वैयाकरणों के मत के आधार पर ही किया गया है। नैयायिकों, सौगतों और मीमांसकों के विपरीत वैयाकरण यह मानते हैं कि शब्द का अर्थ 'जाति', 'द्रव्य, 'क्रिया' अथवा 'गुण'-परक होता है। मुकुलभट्ट (पृ० 4) और मम्मटभट्ट के महाभाष्य[1] का उद्धरण देते हुए (शब्द-व्या० पृ० 2) स्पष्ट लिखा है :—

'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्ति:।'

वास्तव में शब्द और अर्थ की दो शक्तियों—अभिधा और लक्षणा[2]—का

1. महाभाष्य, सं. कीलहार्न, पृ० 19, 1.20; कुमारसंभव ii. 17 से भी तुलना करें, जहां इसी मत का उल्लेख है, यद्यपि मल्लिनाथ ने चतुष्टयी प्रवृत्ति की वाच० के चार विवर्तों के संदर्भ में व्याख्या की है।

2. तुलना कीजिए—viii. 1. 12 पर महाभाष्य।

पूर्ण विश्लेषण वैयाकरणों द्वारा पहले ही परिष्कृत व्याकरण संबंधी दार्शनिक विचारधारा पर आधारित है। आनंदवर्धन के नवीन रस-शास्त्र ने भी, शब्द की तीसरी शक्ति 'व्यंजना' की स्थापना की पुष्टि में प्राक्-पाणिनीय वैयाकरण स्फोटायन के 'स्फोट' सिद्धांत का आश्रय लिया है। स्फोटायन के स्फोट सिद्धांत का 'वाक्यपदीय' में पूर्णतया विकास-पल्लवन हुआ है।

४

इनमें से कुछ संप्रत्ययों का विवेचन उन विविध दार्शनिक वादों में भी मिलेगा, जिनमें श्रुतियों और उनके भाष्यों के प्रसंग में 'शब्द' का सामान्य निरूपण किया गया है। काव्यशास्त्र से दूर का संबंध रखनेवाले स्फोट-सिद्धांत का कुछ दर्शन-शास्त्रों में अत्यंत महत्व है। 'व्यंजना वृत्ति' में निहित अभिव्यक्ति किसी नए गुण को अभिव्यक्त न करके विद्यमान गुण को ही व्यक्त करती है। भारतीय चिंतन-धारा में व्यंजना की इस प्रकार की कल्पना कोई नई वस्तु नहीं है।

सांख्य (i. 117-18) के सत्कार्यवाद में इसी प्रकार की विचार-शृंखला मिलती है। उसके अनुसार कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। वह पहले से ही अव्यक्त रूप से कारण में निहित होता है और इसीलिए उसकी व्यक्ति संभव हो जाती है। वेदांती की मोक्ष की सामान्य कल्पना में भी ऐसा ही सादृश्य है। इसमें मोक्ष ऐसी अवस्था है, जिसकी उत्पत्ति नहीं होती, किंतु माया का आवरण[1] दूर होने से केवल उसकी अनुभूति होती है। काव्यशास्त्र की दो महत्वपूर्ण शब्द-शक्तियों, (अभिधा और लक्षणा), से संबंधित सिद्धांत का वैयाकरणों ने ही नहीं, बल्कि दार्शनिकों ने, विशेषतः नैयायिकों और मीमांसकों ने, भी अध्ययन किया। उदाहरणतया, नैयायिकों का मत है कि शब्द की 'अभिधा' से व्यक्ति का ही नहीं, अपितु 'जाति' और 'गुण'[2] का भी बोध होता है। मीमांसकों का कथन है कि यह मुख्य रूप से 'जाति' को निर्दिष्ट करता है और 'जाति'[3] से अवियुज्य संबंध होने के कारण 'व्यक्ति' का बोध आक्षेप से ही होता है। 'न्याय-सूत्र' में उन शब्दार्थ संबंधों की पूर्ण सूची दी गई है, जिनके माध्यम से शब्द का अमुख्य अर्थ में प्रयोग किया जा सकता है। अमुख्य अर्थ को विभिन्न नाम

1 यह द्रष्टव्य है कि वेदांतसूत्र में रूपक शब्द प्रत्यक्ष रूप से शास्त्रीय अर्थ में प्रयुक्त किया गया है (i.4.1.) और इसी संदर्भ में अप्पय दीक्षित ने यह कहा है—भगवता बादरायणेन 'नानुमानिकमपि एकेषामिति चेन्न, शरीर-रूपक-विन्यस्त-गृहीतेर्दर्शयति च' इति शारीरक सूत्रे रूपकमंगीकृतम् (चित्र. मी. पृ. 54, सं. काव्यमाला 1907)। वेदांतसूत्र iii. 2. 18 से भी तुलना करें।

2. न्यायसूत्र ii. 2. 68.

3. पूर्वमीमांसा i. 3. 33 इत्यादि।

दिए गए हैं, यथा, 'गौण', 'भाक्त', 'लाक्षणिक' अथवा 'औपचारिक अर्थ' आदि ।[1] इस मुख्येतर अर्थ का विवेचन लगभग सभी दर्शनों में किया गया है। वास्तव में, इन विषयों पर काव्यशास्त्र के सिद्धांत, न्याय और मीमांसा के सिद्धांतों से काफी घुल-मिल गए हैं, यहां तक कि भामह की काव्यशास्त्र विषयक प्राचीन रचना में काव्य की तर्कान्वयता और शब्दों की अर्थाभिव्यक्ति विषयक शक्तियों की विस्तृत चर्चा है।

रस के काव्य-सिद्धांत पर न्याय, सांख्य और वेदांत के प्रभाव का उल्लेख यथास्थान किया जायगा। किंतु यह उल्लेख करना उचित होगा कि 'उपमा' की कल्पना का, (जिसे दर्शनशास्त्र में उपमान कहा गया है), जिससे सादृश्य अथवा तुलना की सामान्य धारणा का बोध होता है, विभिन्न दर्शनशास्त्रों में प्रमा, प्रमेय और प्रमाण विषयक चर्चा में बड़ा महत्त्व है। उदाहरणार्थ, 'मैत्री उपनिषद्' में तीन प्रमाणों (v,10,14), अर्थात् 'दृष्ट' (अथवा 'प्रत्यक्ष'), 'लिंग' (अथवा 'अनुमान') और 'उपमा' (अथवा 'उपमान') की चर्चा की गई है। निस्संदेह, कणाद और कपिल ने उपमा को स्वतंत्र और पुष्ट प्रमाण नहीं माना है, किंतु नैयायिक उसे प्रमाण मानते हैं। उनके मतानुसार, उपमा द्वारा वस्तु में पहले से अज्ञात वस्तु का ज्ञात वस्तु के सादृश्य के आधार पर ज्ञान होता है। वात्स्यायन ने i .1.3 पर टीका करते हुए उपमा की जो परिभाषा की है— 'सामीप्यमानं उपमानम्' वह ऊपर उद्धृत महाभाष्य[2] के अंश से मिलती-जुलती है। अतएव, नैयायिकों के अनुसार, अभिधान और अभिधेय के संबंध की स्थापना में ही 'उपमा' अथवा 'उपमान' की सार्थकता है और इस प्रकार वही अभिव्यक्ति का आधार है। 'अतिदेश-वाक्य' भी, सादृश्यमूलक अभिज्ञान का साधन प्रतीत होता है। अर्थात् वह गौ आदि लोक-प्रसिद्ध पदार्थ और गवय आदि प्रथम बार दृष्ट नवीन वस्तु के मध्य समानता के आधार पर गवय आदि की पहचान के सहायक के रूप में द्रष्टव्य है। पंचावयव वाक्य में भी 'उपमान' का सहयोग आवश्यक माना गया है। वहां यह उपनय नामक अवयव के रूप में प्रकट होता है, (i.1.32.)। काव्यशास्त्र में उपमान के इस विचार का अवशेष भोज-कृत 'सरस्वती कंठाकरण' (3.50) में मिलता है। उन्होंने 'उपमा' को 'उपमान' से भिन्न अलंकार माना है, यद्यपि अप्पय दीक्षित के अतिरिक्त किसी ने भी इसका समर्थन करके 'उपमान' को काव्य का एक पृथक्

---

1. वेदांतसूत्र ii. 3.16, iii. 1.7; न्यायसूत्र ii.2.64 और i.2.11,14,15; सांख्यसूत्र v. 67 इत्यादि।

2. पृष्ठ 5 पर पादटिप्पणी 3.

अलंकार नहीं माना ।[1] इस विषय पर अधिक चर्चा अनावश्यक है, किंतु मीमांसकों ने 'उपमान' के साथ-साथ 'अतिदेश' के विचार का भी इसी प्रकार विवेचन किया है। पर उनका कथन है कि 'उपमान' ऐसी ज्ञात वस्तु को लक्षित करता है, जो प्रथम बार दिखाई देनेवाली अन्य वस्तु के सदृश होती है, अथवा शबरस्वामी द्वारा उद्धृत उपवर्ष के शब्दों में, 'उपमान' वह सादृश्य है, जो असन्निकृष्ट वस्तु को स्मृति-पथ पर ले आता है, जैसे गवय का दर्शन सामने अविद्यमान परंतु गवय के सदृश गौ का स्मरण करा देता है।[2]

५

यद्यपि इस प्रकार के चिंतन का काव्यशास्त्र से अप्रत्यक्ष संबंध है और संभव है कि यह काव्यशास्त्र के कुछ मौलिक सिद्धांतों के विकास में सहायक रहा हो, किंतु इन विवेचनों के आधार पर हम यह निर्णय नहीं कर सकते कि काव्यशास्त्र वास्तव में कितना प्राचीन है। विचित्र बात यह है कि प्राचीन ग्रंथों में काव्यशास्त्र का एक शास्त्र के रूप में, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से भी, कहीं उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि नवीं शती क अंत में राजशेखर ने इसे (वेद का) सप्तम 'अंग' मानने की परंपरा का उल्लेख किया है। छांदोग्य उपनिषद् (vii.1.2.4 बोहटलिंग संस्करण), के त्रिविध विद्या परिगणना विषयक सुप्रसिद्ध प्रकरण में काव्यशास्त्र का उल्लेख नहीं है। आपस्तंब (ii.4.11) ने तो सामान्यतः प्रसिद्ध छह अंगों का ही उल्लेख किया है, किंतु याज्ञवल्क्य (i 3) ने कुल चौदह शास्त्रों का उल्लेख किया है और 'विष्णुपुराण' में इन चौदह के अतिरिक्त चार और विद्याओं का उल्लेख है, यद्यपि इनमें काव्यशास्त्र का नाम कहीं नहीं है। 'ललित-विस्तर'[3] में भी ऐसी ही एक सूची है, जिसमें 'काव्य-करण-ग्रंथ' और 'नाट्य' सम्मिलित हैं, जिनसे क्रमशः काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र अभिप्रेत माने जा सकते हैं, किंतु 'अलंकार' नाम सर्वप्रथम शुक्रनीति में मिलता है। अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और शिल्पशास्त्र इत्यादि बत्तीस शास्त्रों में उसकी गणना की गई है। राइस डेविड्स[4] के कथनानु-

---

1 . कुवलय सं. निर्णय सागर प्रेस, 1913, पृ. 174. नागेशभट्ट ने इसे उपमा में ही समाविष्ट माना है और वामन ने इसके एक भेद (अर्थात् अननुभूत-विषय) पर विचार करते हुए इसे तत्त्वाख्यानोपमा का उदाहरण बताया है (iv. 2. 7) ।

2. उपमानमपि सादृश्यं असन्निकृष्टेऽर्थे बुद्धि उत्पादयति, यथा गवय-दर्शनं गोस्मरणम्, i. 1. 15 पर ।

3. सं० लेफमान, पृ० .156.

4. लेखक को ता. 24.2.1921 के पत्र में। तुलना कीजिए— इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली—xvii पृ. 196 इत्यादि में बिजयशेखर का लेख ।

सार 'अंगुत्तर' (i.72, iii. 107) और 'संयुक्त निकाय' (i.38, ii.267) नामक प्राचीन पालि ग्रंथों में ऐसे ही एक शास्त्र का उल्लेख है। ये उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनमें इस शास्त्र की निंदा की गई है, परंतु वह उल्लेख 'अलंकार शास्त्र'[1] का ही है, यह बात न तो उस प्रकरण के अभिधार्थ से ही व्यक्त होती है और न व्यंग्यार्थ से।

अतएव, यह संभव है कि शास्त्र के रूप में काव्यशास्त्र का उद्‌भव बाद में ही हुआ हो और कदाचित् ईसा की प्रारंभिक शतियों[2] में इसका विकासारंभ हुआ हो। गुप्त सम्राटों की छत्रछाया में चौथी और पाँचवी शती में संस्कृत साहित्य में बड़ी वृद्धि हुई, कदाचित् उसके साथ संस्कृत में इस शास्त्र की भी प्रगति हुई। उक्त अवधि में सस्कृत काव्य-शैली के जिस विकास का उल्लेख लासेन ने किया था, उसकी पुष्टि बूहलर के पुरालेखीय (epigraphical) अनुसंधानों[3] से हो गई है। पुरालेखीय साहित्य को उस काव्य-भवन का शिलान्यास कहा जा सकता है, जिसका विशद निर्माण आठवीं और नवीं शती में हुए काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के सम्यक् प्रतिपादन के रूप में हुआ। प्राचीन शिलालेखों के बूहलरकृत परीक्षण से यह तो प्रमाणित हो गया है कि ईसा की पहली पाँच शतियों के दौरान उत्तम काव्य-रीति में सुंदर पद्यमय और गद्यमय रचनाएँ उपलब्ध थीं। साथ ही इस अनुमान की भी पुष्टि होती है कि इनमें अधिकतर प्रशस्ति-लेखक 'भारतीय काव्यशास्त्र[4] के नियमों से परिचित थे।' बूहलर ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि अलंकारशास्त्रीय नियमों के अनुसार वस्तुतः भामह और दंडी के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथों में इन

---

1. कौटिल्य के अर्थशास्त्र के एक अध्याय में, 'शासन' लिखने की विधि बताई गई है और अर्थक्रम, परिपूर्णता, माधुर्य, औदार्य और स्पष्टता नामक वांछनीय गुणों का उल्लेख किया गया है। ये गुण पूर्ववर्ती अलंकार-ग्रंथों में बताए गए गुणों के समान प्रतीत होते हैं, किंतु वे इस विषय के सामान्य मत को परिलक्षित करते हैं।

2. पतंजलि ने काव्यशास्त्र से संबंधित अनेक ग्रंथों का उल्लेख किया है (सं० कीलहार्न, i, 283, 340, 426, 444; ii. 34, 102, 119, 167, 313, 315; iii. 143, 338 इत्यादि), जिससे यह सूचित होता है कि उनके समय में काव्यशास्त्रीय अध्ययन का विशेष प्रचलन था। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उस समय काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का व्यवस्थित निरूपण किया जा रहा था; किंतु पतंजलि के समय अलंकार से संबंधित साहित्य का कहीं उल्लेख नहीं है।

3. Die Indischen Inschriften, अनुवाद—इंडियन एंटिक्वेरी, xiii, 1913, पृ० 29 इत्यादि।

4 वही, पृ० 146.

लेखकों का प्रौढ़ता प्राप्त करना शास्त्रीय नियमों का ही अनुसरण था। इससे सिद्ध होता है कि उस समय अलंकार-शास्त्र अथवा काव्यकला[1] के कतिपय सिद्धांत विद्यमान थे।

इस समय से काव्य-साहित्य में भी काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के अस्तित्व का, न्यूनाधिक निश्चय के साथ, संकेत मिलता है। निस्संदेह, रामायण और महाभारत में अलंकार के कुछ अधिक सामान्य शब्दों (जैसे, 'उपमा', 'काव्य', 'नाटक', 'कथा' और 'आख्यायिका') का प्रयोग विद्यमान है, किंतु इस आधार पर इन शास्त्रीय विषयों के प्राचीन प्रयोग के प्रसंग में निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि उनके उपलब्ध पाठों में सर्वग्राहिता का प्रयास है। किंतु अश्वघोष रचित 'बुद्ध-चरित' में, जैसा कि कावेल ने कहा है, 'उपमा', 'उत्प्रेक्षा' और 'रूपक' जैसे सामान्य अलंकारों के अतिरिक्त 'यथासंख्य' और 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' जैसे विशद अलंकारों का भी ऐसा अनूठा प्रयोग मिलता है, जो अनुमानतः लेखक के काव्यशास्त्र के अध्ययन का परिचायक है।[2] प्रथम श्लोक में ही 'उपमा' शब्द का कुछ-कुछ पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग किया गया है, और iii-51 में, 'रसांतर' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ ऐसे नए भाव का समावेश है, जो वर्तमान रस की निष्पत्ति में बाधक हो। अश्वघोष ने नाट्य-शास्त्र के रस प्रकरण में दिए गए अर्थों में 'हाव' और 'भाव' शब्दों का प्रयोग किया है (4.12), अतएव कावेल का यह कहना उचित है, कि इन कविताओं का विशेष महत्व है, क्योंकि इनसे प्रोफेसर बूहलर के इस विचार की पुष्टि होती है कि उत्तर-भारत में काव्य और अलंकार-शास्त्रों का सफल विकास ईसा की प्रारंभिक शतियों में हुआ था। यह बात कालिदास की रचनाओं पर और भी अधिक लागू होती है। उनमें एक सिद्धहस्त और कुशल कलाकार की परिष्कृत तथा प्रकृष्ट कला दृष्टिगोचर होती है। परवर्ती सैद्धांतिकों ने काव्य के विभिन्न अलंकारों, उक्तियों और सिद्धांतों (नियमों) के उदाहरणार्थ उन

---

1. वही, पृ० 243. यह निष्कर्ष, गिरनार शिलालेख (ईसा की द्वितीय शती) के ही एक अंश से एक सीमा तक पुष्ट होता है—(स्फुट लघु-मधुर-चित्र-कांत-शब्द-समयोदारालंकृत गद्य-पद्य), एपिग्राफिका इंडिका, viii, पृ० 44. स्फुट, मधुर, कांत और चित्रगुण संभवतः प्रसाद, माधुर्य, कांति इत्यादि वे गुण हैं, जिनकी चर्चा दंडी ने की है। यह शिलालेख गद्य शैली में है, जिसमें दीर्घ समस्त पदों और शास्त्र-सम्मत अनुप्रास इत्यादि शब्दालंकारों का बाहुल्य है।

2. ई. एच. जांस्टन, अपने ग्रंथ के संशोधित सं० (पंजाब विश्वविद्यालय प्रकाशन, कलकत्ता, १९३६) में इस मत से सहमत प्रतीत होता है। (भाग ii, प्रस्तावना, पृ० lxxxix).

ग्रंथों से उद्धरणों की अनंत राशि प्राप्त की है। इन प्राचीन काव्यकारों ने काव्यालंकारों का परिष्कृत और सुविचारित रीति से प्रचुर प्रयोग किया है और काव्य के नियमों का सामान्य रूप से पालन किया है। यह बहुत महत्वपूर्ण तथ्य है, और ऐसे तथ्य से यह अनुमान लगाना युक्तियुक्त होगा कि इस काल में काव्यशास्त्र के ज्ञान का सामान्य रूप से विस्तार हो चुका था।

सुबंधु और बाण की मधुर आख्यायिकाओं में भी प्रयत्न-प्रसूत सज्जा की यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। सुबंधु ने अपनी रचना, वासवदत्ता को प्रत्यक्षर श्लेषमय विन्यास-वैदग्ध्य-निधि होने के कारण अपने को गौरवान्वित माना है।[1] इस गर्वोक्ति की पुष्टि वासवदत्ता में प्राप्त शब्द-चमत्कार से सर्वत्र होती है। अपनी रचना में ही उन्होंने उत्तम श्लेष तथा वक्त्र-प्रयोग में पटु दीर्घोच्छ्वासमय[2] सत्काव्य प्रबंधों के विषय में कहा है। उन्होंने 'उत्प्रेक्षा' और 'आक्षेप'[3] नामक दो महत्वपूर्ण अलंकारों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। बाण ने भी कादंबरी के एक आरंभिक श्लोक में 'उपमा', 'जाति' ('स्वभावोक्ति'), 'दीपक' और 'श्लेष' नामक काव्यालंकारों, काव्य-रस और 'शय्या' का उल्लेख करते हुए निस्संदेह अलंकारशास्त्र का परिचय व्यक्त किया है। इसके अतिरिक्त बाण ने शब्द पहेलियों, यथा, 'अक्षर-च्युत', 'बिंदुमती', 'गूढ़-चतुर्थपाद' और 'प्रहेलिका'[4] का भी उल्लेख किया है। यही नहीं, उन्हें 'कथा' और 'आख्यायिका'[5] के अलंकारशास्त्रीय भेद का भी ज्ञान प्रतीत होता है।

---

1. प्रत्यक्षर-श्लेषमय-प्रपंच विन्यास-वैदग्ध्यनिधि प्रबंधम्। सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबंधुः सुजनैकबंधुः ॥ सं० श्रीरंगम्, 1906, पृष्ठ 357—8

2. तुलना कीजिए भामह i.25-26; दंडी, i.26.27

3. सत्कवि-काव्य-रचनामिवालंकारप्रसाधिताम्, पृ० 303; दीर्घोच्छ्वासरचनाकुलं सुश्लेववक्त्रघटना-पटु सत्यकाव्यविरचनामिव, पृ० 238-39; उत्प्रेक्षाक्षेपी काव्यालंकारेषु, पृ० 146. कलकत्ता संस्करण में इनमें से प्रथम पाठ 'बौद्धसंगति-मिवालंकारभूषिताम्' है और शिवराम की टीका (18 वीं शती) में इसकी व्याख्या इस प्रकार है—'अलंकारो नाम धर्मकीर्तिकृतो ग्रंथविशेषः।' अभी तक धर्मकीर्त्ति का बौद्धसंगत्यलंकार नामक कोई ग्रंथ प्राप्त नहीं हुआ है। एक अत्यंत अर्वाचीन टीकाकार के अप्रमाणित कथन को अनावश्यक रूप से विश्वसनीय नहीं मान लेना चाहिए। लेवी का यह कथन संभवतः सही है कि सुबंधु ने धर्मकीर्त्ति की किसी साहित्यिक रचना का उल्लेख नहीं किया है। (Bulletin de l' E'cole d' Extreme Orient 1903, पृ० 18).

4. सं० पीटर्सन, पृ० 7 सुबंधु ने (पृ० 146) श्रृंखलाबंध का उल्लेख किया है।

5. वही, पृ० 7 और हर्षचरित पृ० 7 — अलंकार शब्द के अर्थ के विषय में एफ. डब्ल्यू. टामस को प्रदत्त (बंबई 1939) जे० गोंडा के ग्रंथ वाल्यूम आफ ईस्टर्न ऐंड इंडियन स्टडीज' पृ० 97-114 का अवलोकन करें; किंतु संस्कृत के अलकार साहित्य में अलंकार शब्द का जैसा अर्थ है, उससे इसका कोई प्रत्यक्ष संबध नहीं है। ए० बी० कीथ ने के० बी० पाठक को प्रदत्त (पूना BORS, 1934) कमेमोरेटिव एसेज़, पृ० 311-14 में ऐसा ही प्रयत्न किया है।

बाण ने हर्षचरित iii, अनु-5 में 'भरत-मार्ग-भजन-गीतम्' का और (ii.4) में आरभटी वृत्ति (भरत द्वारा xx, 54 में विवेचित) में अभिनय करते हुए नटों का उल्लेख किया है।

६

इन तथ्यों से यह अनुमान किया जा सकता है कि परिष्कृत गद्य और पद्य साहित्य की वृद्धि के साथ-साथ, छठी शती के अंत तक, काव्य-शास्त्र के क्षेत्र में, कम से कम अलंकार विषयक नियमों के क्षेत्र में, काफी प्रगति हो चुकी थी। काव्यशास्त्र के प्राचीनतम ज्ञात आचार्यों ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख किया है। भामह ने मेधावी और अन्य विद्वानों का उल्लेख किया है और उनकी रचनाओं का निश्चित रूप से उपयोग भी किया है। इसी प्रकार दंडी ने भी प्राचीन ग्रंथों का उल्लेख किया है। उनके एक टीकाकार ने इस संबंध में दंडी के पूर्ववर्ती दो आचार्यों—कश्यप और वररुचि—का उल्लेख किया है। अलंकारशास्त्र विषयक आचार्यत्व के बारे में, जिसकी अन्यत्र कहीं जानकारी नहीं मिलती, प्राचीन आचार्यों के मतों के उद्धरणों से तो यह सिद्ध होता ही है कि भामह, दंडी आदि से पूर्ववर्ती आचार्य हुए हैं, पर इस बात की पुष्टि प्राप्य ग्रंथों की विवेचन-शैली की प्रौढ़ता से भी होती है, क्योंकि जैसी प्रतिपादन-शैली मिलती है, वह एकाएक विकसित नहीं हो सकती। उस रूप में विकसित होने से पूर्व अनेक ग्रंथ अवश्य रचे जा चुके होंगे। इस कल्पना की पुष्टि इस बात से भी होती है कि प्राप्य ग्रंथों के आचार्यों ने अनेक पारिभाषिक शब्दों और सूत्रों (वक्रोक्ति, रीति, गुण) का प्रयोग बिना किसी व्याख्या के ही किया है, जिसका तात्पर्य है कि इनके अर्थ पहले से ही सुविदित थे और पूर्ववर्ती ग्रंथों में प्रतिपादित हो चुके थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि काव्यशास्त्र के ही समानधर्मा नाट्यशास्त्र का उद्भव कुछ पहले हो चुका था और उसी शास्त्र से काव्यशास्त्र को एक आदर्श स्वरूप तथा अलंकारशास्त्र के महत्वपूर्ण रस-सिद्धांत की प्राप्ति हुई। अपेक्षाकृत प्राचीन ब्राह्मण ग्रंथों और बौद्ध ग्रंथों में भी अभिनय का उल्लेख मिलता है। पाणिनि-जैसे प्राचीन आचार्य ने भी कृशाश्व और शिलाली नामक 'नट-सूत्र'-रचयिताओं का उल्लेख (iv, 3, 110-11)[1] किया है। नाट्य-शास्त्र विषयक प्राचीन ग्रंथों का अस्तित्व इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि काव्यशास्त्र के सभी प्राचीन लेखकों — भामह, दंडी और वामन आदि—ने इस

1. यह द्रष्टव्य है कि अमर और शाश्वत ने अपने-अपने कोश में अलंकार विषयक शास्त्रीय शब्दों की व्याख्या नहीं की है, यद्यपि उन्होंने नाट्यशास्त्रीय शब्दों का और रस का स्पष्ट उल्लेख किया है।

विषय का विवेचन स्वयं नहीं किया और पाठकों को तत्संबंधी ग्रंथों का अध्ययन करने का परामर्श दे दिया है। संभवतः इन रचनाओं के प्राचीनतर स्वरूप लुप्त हो चुके हैं। किंतु 'भरत' के 'नाट्यशास्त्र', जिसे प्राप्य ग्रंथों में प्राचीनतम और प्रामाणिकतम माना जाता है, के वर्तमान पाठ को भी संभवतः छठी शती का परवर्ती नहीं कहा जा सकता। स्वयं भरत ने नाटकीय भाषा के आलंकारिक साधनों अर्थात् काव्य-गुणों और अलंकारों की चर्चा पूरे एक अध्याय में की है। इससे प्रतीत होता है कि अलंकार का शास्त्रीय रूप भरत से भी प्राचीन है और भामह और दंडी ने जिस मत-परंपरा का अनुसरण किया है, वह काल की दृष्टि से चाहे भरत से परवर्ती हो, किंतु वर्ण्य विषय की दृष्टि से संभवतः भरत से पूर्ववर्त्ती ही है। वास्तव में, 'अलंकार', 'रीति' और 'ध्वनि' के सिद्धांतों पर आधारित विभिन्न मत, भामह, दंडी और ध्वनिकार के वर्तमान ग्रंथों में प्रतिष्ठित होने से कुछ पहले ही विकसित हो चुके थे। इन लेखकों में कोई भी अपने सिद्धांत का एकमात्र प्रवर्तक नहीं माना जा सकता। सिद्धांत रूप से प्रतिष्ठित होने से पूर्व अवश्य ही एक प्रयोगात्मक स्थिति रही होगी और यदि उस काल की रचनाएँ आज उपलब्ध होतीं तो उनसे सिद्ध हो पाता कि भामह, दंडी और ध्वनिकार के सिद्धांतों का विकास किस प्रकार हुआ। अतएव, इन लेखकों के ग्रंथों को हम इस शास्त्र का श्रीगणेश तो नहीं मान सकते, किंतु उन्हें इस शास्त्र के ऐतिहासिक और रचनात्मक युग का आदि प्रवर्तक मान सकते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखकर बिना किसी पूर्वाग्रह के यह माना जा सकता है कि अलंकारशास्त्र का जन्म एक पृथक् शास्त्र के रूप में, ईसवी सन् के आरंभ में हुआ और ईसा की पाँचवीं और छठी शतियों में अपेक्षाकृत विकसित रूप में उसकी प्रगति हुई। भरत के नाट्य-शास्त्र और भामह के काव्यालंकार के कुछ अध्यायों में प्रकट होने से पूर्व का इसका सारा विकास-क्रम दुर्भाग्यवश अंधकाराच्छन्न है।

———

अध्याय दो

भरत

१

यद्यपि भारतीय परंपरा 'नाट्यशास्त्र' के प्रसिद्ध रचयिता भरत को 'मुनि' की पदवी से विभूषित करती है और उन्हें पौराणिकयुगीन मानती है, किंतु फिर भी उनके वास्तविक स्थितिकाल के संबंध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद पाया जाता है तथा उनकी तिथि ईसापूर्व दूसरी शती से लेकर दूसरी शती ईसवी तक की अवधि में भिन्न-भिन्न समयों में ठहराई गई है ।[1] यह सामान्यत: एक स्वीकृत तथ्य है कि नाट्यशास्त्र, संगीत और तत्संबंधी विषयों के लेखकों में वे ही एक ऐसे प्राचीनतम लेखक हैं, जिनकी रचनाएं आज भी विद्यमान हैं, किंतु इसके साथ ही यह प्रश्न उठता है कि उनकी रचना का उपलब्ध रूप कहां तक उनकी रचना के मौलिक रूप का प्रतिनिधित्व करता है । अभिनव-गुप्त नाट्यशास्त्र की टीका की प्रस्तावना के दूसरे श्लोक में कहते हैं कि जिस रूप में भरत का ग्रंथ उन्हें ज्ञात था, उसमें छत्तीस अध्याय (षट्-त्रिशकं भरतसूत्रमिदम्) थे । अभिनवगुप्त को कुछ अध्यायों के दो पाठांतरों का भी पता था (द्विविधःपाठो दृश्यते—अध्याय 15) । इस अध्याय के अंत में दी हुई ग्रंथ-सूची में उल्लिखित विभिन्न प्रकाशित संस्करणों की तुलना से तथा उपलब्ध पांडुलिपियों से भी प्रतीत होता है कि इनमें अध्यायों की संख्या, अध्याय-क्रम, तथा प्रत्येक अध्याय के श्लोकों की संख्या में एकरूपता नहीं है । इस प्रकार उसका पाठ अनिश्चित और असंतोषजनक है ।[2] इन सब बातों

---

1. देखिए, रेनो – Annales du Mus. Guimet, ii. पृ० 66, और ग्रोसे के संस्करण की प्रस्तावना; पिशेल GgA, 1885, पृ० 763; भंडारकर का IA, xli पृ० 157; हरप्रसाद शास्त्री—जर्नल आफ एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल पृ० 352; Cat. Sarsk. Mss एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल vi. 1931 पृ० Clxxviii; सिल्वां लेवी; इंडियन एंटीक्वेरी xxxiii. पृ० 63; स्टेन कोनो Ind. Drama पृ० 2; पी० वी० काणे—इंडियन एंटीक्वेरी, xlvi (1917), पृ० 171-83 और हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स पृ० 39 और मनमोहन घोष JDL xxv. 1934, पृ० 59 ।

2. उदाहरणार्थ, डेकन कॉलेज की एम० एस० संख्या 68 (अथवा 69) 1873-74 में 3 अध्याय हैं । इस प्रकार की कुछ असंगतियों के लिए देखिए पी० वी० काणे की हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० 10-14. यह ध्यान रहे कि 'अभिनव टीका' का संपूर्ण पाठ न तो किसी प्रकाशित प्रति में और न ही किसी हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध है । अभिनव ने अनेक स्थलों पर दूसरों के मतों का 'केचित्' अथवा 'अन्ये' कहकर उल्लेख किया है तथा कई पाठों पर विचार-विमर्श किया है (पृ० 50, 93, 96, 226, 241 269, 340 इत्यादि ।)

से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान रूप प्राप्त करने से पूर्व, भरतोत्तर काल में यह पाठ अनेक हाथों में पड़ चुका था। इस तथ्य का, तथाकथित रचयिता की तिथि से गहरा संबंध है।

विद्यमान पाठ में कई ऐसे स्थल हैं, जो समय-समय पर इसमें किए गए प्रक्षेपों तथा इसके स्वरूप पर संभवतः कुछ प्रकाश डालते हैं। नाट्यशास्त्र के काव्यमाला संस्करण के पुष्पिका लेख में ग्रंथ के उत्तरार्ध का नाम 'नंदिभरत'[1] दिया गया है, जिसने संभवतः उसके संपादक को द्विविधा में डाल दिया था। राइस (Rice) ने 'नंदि-भरत' नामक संगीत-विषयक ग्रंथ का उल्लेख किया है।[2] मद्रास केटलॉग xii संख्या 13009 के अंतर्गत संगीत और अभिनय-संबंधी ग्रंथों की एक हस्तलिपि में नाट्य-मुद्रा विषयक ग्रंथ के एक अध्याय का नंदिभरतोक्त संकरहस्ताध्याय नाम से उल्लेख किया गया है। ये ग्रंथ, जो शायद बाद में संकलित किए गए और जिनका नाम नंदि अथवा नंदिकेश्वर पर पड़ा, जो परंपरा के अनुसार संगीत, कामशास्त्र और नाट्यकला के आचार्य थे। वात्स्यायन (i-1-8) ने नंदी का एक पाठ उद्धृत किया है। ओफ्रेक्ट के विचार में यह नंदी वही हैं, जिनका उल्लेख 'पंच सायक' (i-13) और 'रति-रहस्य' (i-5)[3] में कामशास्त्र के लेखक नंदिकेश्वर के रूप में किया गया है। नान्यदेव ने उन्हें नंदी कहा है।

नाट्य-कला पर अभिनय-दर्पण[4] नामक ग्रंथ नंदिकेश्वर-रचित माना गया है। इस ग्रंथ में अनेक बार भरत और उनके विचारों का उल्लेख मिलता है (उदाहरणार्थ श्लोक 12, 128, 149, 159, 162), इसलिए इस ग्रंथ का संकलन बाद में ही हुआ होगा। जैसा कि पहले कहा गया है, राजशेखर ने भी रस-शास्त्र के आचार्य के रूप में नंदिकेश्वर का उल्लेख किया है, किंतु नंदिकेश्वर संगीत के आचार्य के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं और शार्ङ्गदेव (13वीं शती) ने अपने ग्रंथ 'संगीत-रत्नाकर' (i-1-17) में, और उनके टीकाकार कल्लिनाथ (पृ० 47) ने उन्हें अपने ग्रंथ का आधार-स्रोत माना है। इनके अतिरिक्त संगीत के ये ग्रंथ भी नंदिकेश्वर-लिखित माने गए हैं :

1. समाप्तश्चायं [ग्रंथः] नंदिभरत-संगीत-पुस्तकम्।
2. मैसूर एंड कुर्ग कैटेलॉग. पृ० 292,
3. पंच-सायक, सदानंद शास्त्री घिलाडिया, लाहौर, 1921; रति-रहस्य, सं०वही, तिथि नहीं। देखिए, शमिट (Schmidt), इंडियन इरोटिक, 1911, पृ० 46, 59.
4. सं०-मनमोहन घोष, कलकत्ता, 1934 (लगभग 330 पद्य), अनुवादकः ए० कुमारस्वामी तथा जी० के० डुगीराला, कैंब्रिज मैस० 1917।

'नंदिकेश्वर-मते तालाध्याय' (वेबर 1729), और 'भरतार्णव,[1] जो नंदिकेश्वर के ग्रंथ का सुमति-कृत संक्षिप्त रूप माना जाता है और जिसमें नाट्यमुद्राओं और ताल-विषय का विवेचन है। अल्लराज-रचित रस-रत्न-प्रदीपिका में भी नंदिकेश्वर के ग्रंथ 'नाट्यार्णव' का उल्लेख मिलता है। अभिनव गुप्त का कथन है (भरत पर टीका, गायकवाड संस्करण, अध्याय, 29) कि 'मैंने नंदिकेश्वर के ग्रंथ को स्वयं तो नहीं देखा (साक्षान्न दृष्टं) किंतु कीर्तिधर ने जो कुछ लिखा है, उसी का विश्वास करते हुए (यत्-तु कीर्तिधरेण दर्शितं —— तत् प्रत्ययात्) मैं संक्षेप में नंदिकेश्वर के मत का निरूपण करूंगा', किंतु वे 'नंदि-मत' नामक पुस्तक से परिचित (पृ० 171) थे। उसमें 'रेचित' अथवा 'रेचक' नामक अंगहार-विषयक एक श्लोक उद्धृत किया गया है। अन्यत्र, उनका कथन है कि नंदिमत का अर्थ है तंडु-मत, क्योंकि उनके विचार में नंदि और तंडु एक ही व्यक्ति के दो नाम हैं। भरत के ग्रंथ के उत्तर भाग का, जिसके एक अंश में अन्य विषयों के साथ संगीत का विषय भी है, यह नामकरण देखने से यह संभव प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ का नंदिकेश्वर के विचारों के अनुरूप पश्चवर्ती काल में पुनः संकलन किया गया होगा या उसे नए रूप में व्यक्त किया गया होगा।

इसी प्रकार लक्ष्मण भास्कर रचित 'मतंग-भरत'[2] (समय अनिश्चित) का पता चला है, जिसमें प्रत्यक्षतः मतंग-मत की चर्चा प्रतीत होती है। मतंग एक प्राचीन आचार्य थे। अभिनवगुप्त ने (मतंग-मुनि के रूप में) उनका उल्लेख किया है और उनके दो अनुष्टुप् श्लोक (अध्याय XXX में) उद्धृत किए हैं, तथा शार्ङ्गदेव और उसके टीकाकार (i. 3. 24-25. i. 4.9; i. 8. 19 इत्यादि पर) ने, शिंगभूपाल (i. 51) ने, और अरुणाचलनाथ ने रघुवंश की टीका में (पृ० 100) 'तथा च मातंगे' कहकर, मतंग का उल्लेख किया है। बृहत्-देशी नामक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है, जिसे मतंग लिखित बताया जाता है।[3]

---

1. हस्तलिपि-केटलाग, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, xii 460-63, मद्रास केटलॉग xxii, 13006.08

2. ऐसा प्रतीत होता है कि समय पाकर 'भरत' शब्द सामान्यतः नाट्यकला और अभिनय-कला का द्योतक हो गया और नट का भी। राघवभट्ट ने स्पष्ट रूप से 'शकुंतला' में आदि-भरत का उल्लेख किया है, जो शायद इन परवर्ती भरतों से भिन्न, और नाट्यशास्त्र के लेखक हो सकते हैं। इस प्रश्न पर श्री एस०के० दे लिखित 'दि प्रॉब्लम ऑफ भरत ऐंड आदि-भरत' शीर्षक लेख 'आवर हरिटेज' मे पृ० 193-207, सम प्रॉब्लम्स ऑफ संस्कृत पोएटिक्स, कलकत्ता 1959, पृ० 156-76 में पुनः प्रकाशित।

3. त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज, 1928.

नाट्य-शास्त्र के अंतिम अध्याय के उपर्युक्त पुष्पिका-लेख में एक भविष्य-वाणी है कि अवशेष विषय पर कोहल[1] (जो उसी मत के अनुयायी थे)[2] के द्वारा विस्तार से चर्चा की जाएगी। इस बात से यह प्रमाणित होता है कि इस विषय पर कोहल और नंदिकेश्वर के विचार प्राप्त हो जाने के कुछ काल पश्चात् इस को दुबारा लिखा गया था। नंदिकेश्वर की तिथि ज्ञात नहीं है, किंतु भरत के साथ कोहल को भी आठवीं शती समाप्त होते-होते दामोदर-गुप्त की पुस्तक 'कुट्टनी-मत' (श्लोक 81) में भरत के साथ एक प्राचीन आचार्य मान लिया गया था।

इस संबंध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय के दसवें श्लोक की टीका में अभिनवगुप्त ने कहा है कि यद्यपि नाट्य के, साधारण तौर से, पांच अंग माने जाते हैं, किंतु प्रस्तुत श्लोक में ग्यारह अंगों की परिगणना कोहल और अन्य[3] विद्वानों के मतानुसार है। टीकाकार ने नाट्य ;और गेय[4] विषयों पर इन विद्वानों के मतों का और भी अनेक बार उल्लेख किया है। और शिंगभूपाल (i. 51) ने उन्हें नाटक और तत्संबंधी कलाओं का आचार्य माना है। रूपक के भेदों का उल्लेख करते हुए हेमचंद्र ने कहा है (पृ० 329, और पृ० 325)—प्रपंचस्तु भरत-कोहलादि-शास्त्रेभ्योऽवगंतव्यः। नाट्य-विद्या के अधिकांश लेखकों ने कोहल को उपरूपक का प्रवर्तक माना है। कुमार-संभव के सातवें अध्याय के श्लोकों की टीका में मल्लिनाथ ने ताल की व्यवस्था करते हुए कोहल की परिभाषा उद्धृत की है। उन्हेंताललक्षण नामक संगीत-विषयक ग्रंथ का प्रणेता माना जाता है, जो कदाचित् परवर्ती काल का संग्रह ग्रंथ है।[5] उनका कोहलीय-अभिनय-शास्त्र[6] नामक ग्रंथ भी प्राप्त है, जिसमें कोहल के सिद्धांतों का निरूपण माना जाता है।

---

1. शेषं प्रस्तार-तंत्रेण कोहलः कथयिष्यति, xxxvii. 18.

2. देखिए xxxvii, 24.

3. अभिनय-त्रयं गीतातोद्यं चेति पंचांगं नाट्यम्—अनेन तु श्लोकेन कोहलादि मतेनैकादशांगत्वं उच्यते। (vi.10 की टीका)।

4. उल्लेखों के लिए देखिए. पी० वी० काणे, हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० 24, 54-55; और देखिए उनकी रचना फ्रेग्मेंटस् आफ कोहल इन प्रोसीडिंग्स आफ आल इंडिया ओरिएंटल कान्फ्रेंस, (पटना), 1930, पृ० 577-80. अभिनवगुप्त के अनुसार नाट्यशास्त्र का उन्हें ज्ञात संपूर्ण पाठ, स्वयं भरत-रचित था।

5. इंडिया आफिस कैटलाग 3025, 3089; तेलुगु टीका-सहित, 12992.

6. मद्रास कैटलाग, 12989, तेलुगु टीका सहित।

राग-विषयक 'कोहल-रहस्य'[1] नामक ग्रंथ भी कोहल ऋषि रचित माना गया है। इसमें कम-से-कम तेरह अध्याय हैं। इसमें कोहल को भरत-पुत्र कहा गया है। इस ग्रंथ में कोहल ने मतंग की प्रार्थना पर राग-शास्त्र का उपदेश किया है।[2] कोहल के भरत का पुत्र होने के उल्लेख का आधार कदाचित् नाट्य-शास्त्र i.26 (सं० चौखंबा 1929; सं० गायकवाड़ संस्कृत सीरीज, बड़ौदा 1956; यह श्लोक निर्णयसागर प्रेस सं० 1894 में नहीं मिलता) में मिलता है, जिसके अनुसार कोहल, शांडिल्य, धूर्तिल इत्यादि भरत-पुत्र हैं।

अभिनवगुप्त के कथनानुसार (अभि० भा० पृ० 25) कोहल ने 'रत्नावली' (i. 5) के श्लोक 'जितं उडुपतिना—।' को भरत के नियमानुसार नांदी का उदाहरण बताया है। इस आधार पर पी० वी० काणे का विचार है कि कोहल 'रत्नावली' की रचना के अर्थात् 650 ईसवी के पश्चात् हुए हैं, किंतु यह निष्कर्ष संगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि भरत और कोहल आठवीं शती में ही प्राचीन आचार्यों के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। अभिनवगुप्त के उल्लेखों और उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि कोहल का अधुना लुप्त ग्रंथ अधिकांशतः श्लोकबद्ध था।

बर्नेल (पृ० 606) ने संगीत-विषयक दत्तिल-कोहलीय नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है, जो प्रत्यक्ष रूप से कोहल और दत्तिल के मतों का संग्रह-ग्रंथ है। दत्तिल का नाम कहीं दंतिल और कहीं धूर्तिल भी मिलता है। दामोदर गुप्त (श्लोक 123) ने दत्तिल का उल्लेख किया है। अभिनवगुप्त ने दत्तिलाचार्य नाम से उनका स्मरण किया है और उनको मुख्यतः संगीत का एक प्राचीन आचार्य कहा है तथा (नाट्यशास्त्र के अठाईसवें अध्याय की टीका में तथा पृ० 23 पर) उनके एक अनुष्टुप् श्लोक को उद्धृत किया है। शार्ङ्गदेव (i. 1. 16) और उनके टीकाकार कल्लिनाथ (पृ० 49), शिंगभूपाल (i. 51) तथा संगीत के अन्य अनेक ग्रंथकारों ने भी दत्तिल का प्राचीन आचार्य के रूप में उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न संगीत ग्रंथों में दत्तिल का उल्लेख है। संगीत विषय पर 'दत्तिल' नामक एक ग्रंथ भी प्रकाशित हो चुका है।[3]

---

1. मद्रास Trm I. C. 787 (केवल तेरहवां अध्याय)

2. एम० आर० कवि के संस्करण (गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज) और चौखंबा संस्कृत सीरीज में यह श्लोक (i.26) मिलता है, किंतु उनमें यह कहा गया है कि निरीक्षित हस्तलिपि में यह श्लोक नहीं है। अभिनवगुप्त ने इसकी टीका लिखी है (पृ० 18), उन्होंने कोहल के विचारों का पृ० 25, 103, 173, 182, 266 इत्यादि पर उल्लेख किया है।

3. त्रिवेंद्रम संस्कृत सीरीज, 1930.

इसी प्रकार शिंगभूपाल (i. 51) ने नाट्यशास्त्रकार के रूप में शांडिल्य का उल्लेख किया है। भरत के एक पूर्ववर्ती आचार्य काश्यप अथवा कश्यप मुनि तथा उनके राग विषयक मत का उल्लेख अभिनवगुप्त (अध्याय 29, पृ० 394 पर) और नान्यदेव[1] ने किया है।

सागरनंदी ने (सूत्रधार, 1.1101) पर नाट्यविद्या के एक लेखक शातकर्णी का उल्लेख किया है। वामन ने (i. 3.7) कलाशास्त्र के आचार्य विशाखिल का उल्लेख किया है, अभिनवगुप्त (अध्याय 28,29, पृ० 31-33 पर) और नान्यदेव ने उन्हें संगीतशास्त्र का आचार्य कहा है। राजशेखर ने जिन पराशर अथवा पाराशर नामक आचार्य का नामोल्लेख किया है, उनकी गणना नाट्यशास्त्र (i-32) में भी भरत-पुत्र के रूप में की गई है। नांदी और तोटक के विषय में उनके मत को सागरनंदी (11.1091, 2770, 3202-3) ने उद्धृत किया है। इसी प्रकार नखकुट्ट एक अन्य भरत-पुत्र हैं। सागरनंदी (11. 2668, 2994) ने इनका उल्लेख किया है। पौराणिक नारद को भी गांधर्व-वेद का प्रवर्तक माना गया है और 'भाव-प्रकाशन' में कहा गया है कि नारद ने ब्रह्मा से स्वयं रस विषयक ज्ञान प्राप्त किया और बाद में भरत को उसका उपदेश दिया।

इन संकेतों से यह बात संभव हो सकती है कि भरत की मौलिक रचना और उनके नाट्यशास्त्र के उपलब्ध रूप में पहुँचने के बीच की अवधि में कोहल और अन्य लोग उत्पन्न हुए और इसलिए उनके विचार नाट्शास्त्र के उस रूप में समाविष्ट हो गए, जिसे अब भरतकृत कहते हैं और भावी पीढ़ियों के लोगों ने निस्संशय और निर्विवाद रूप से उन्हें असली मान लिया। नाट्यशास्त्र की पाठ-समस्या, कोहल और अन्य प्राचीन लेखकों द्वारा लिखित ऐसे ग्रंथों की पुनः प्राप्ति से ही हल हो सकती है। संभवतः अभिनवगुप्त को ऐसे कुछ ग्रंथ उपलब्ध थे।

समावेशन की प्रक्रिया बहुत प्राचीन काल में हुई होगी और प्रत्यक्ष रूप से आठवीं शती के अंत तक समाप्त हो चुकी होगी, जबकि इस ग्रंथ को न्यूनाधिक वर्तमान आकार प्राप्त हो गया होगा। उद्भट ने इसी समय वास्तव में' नाट्य-शास्त्र' के श्लोक vi. 15 के पूर्वार्द्ध अध्याय 4, श्लोक 4 को यथावत् ग्रहण कर लिया और उसके उत्तरार्द्ध में केवल इतना परिवर्तन किया कि भरत द्वारा माने गए आठ

1. कश्यप के बारे में आगे दंडी के संदर्भ में देखिए। पृ० 239 पर अभिनवगुप्त द्वारा काश्यपाचार्य का उल्लेख प्रमाणित करता है कि उनकी रचना के कुछ अंश पद्यमय थे।

रसों के अतिरिक्त शांत नामक नवें रस का भी समावेश हो जाए ।[1] अभिनवगुप्त ने दसवीं शती के अंत में विद्यमान पाठ पर टीका की है । उन्होंने स्वयं कई पूर्ववर्ती टीकाकारों के नाम गिनाए हैं । शायद उनमें से लोल्लट और शंकुक आठवीं और नवीं शती में हुए । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाट्यशास्त्र वर्तमान आकार में, और पहले नहीं तो भी, आठवीं शती में अवश्य विद्यमान था ।

२

इसके विपरीत, एक जनश्रुति तथा भवभूति के कथनानुसार पौराणिक भरत 'तौर्यत्रिक सूत्रकार'[2] थे तथा उनका मूल ग्रंथ सूत्रबद्ध था । इसकी सत्यता की संभावना पाणिनि की अष्टाध्यायी में 'नट-सूत्र' के उल्लेख से बढ़ जाती है, क्योंकि उससे प्रकट होता है कि पाणिनि के समय में नटसूत्र विद्यमान थे, रस और भावों का निरूपण करनेवाले नाट्य-शास्त्र के अध्याय vi और vii में, सूत्र-पद्धति के कुछ अवशेषांश का अनुमान किया जा सकता है; क्योंकि छठे अध्याय में रसोत्पत्ति की प्रतिपादक उक्ति[3] संक्षिप्त सूत्र रूप में ही है । अध्याय का अवशिष्ट भाग उस सूत्र का भाष्य अथवा वृत्ति है, जो गद्य-रूप में विवेचन और श्लोकों से परिपूर्ण है । एक और बात ध्यान देने योग्य है कि अध्याय के आरंभ में ही पूर्व-व्याख्या जोड़ दी गई है, ताकि पाठ का यह विचित्र अंश शेष ग्रंथ से बेमेल न लगे । ऐसा कहा गया है कि भरत ने, ऋषियों के निवेदन पर, 'संग्रह', 'कारिका' और 'निरुक्त' के लक्षणों की व्याख्या की और प्रसंगवश, पाठ के एक अंश को सूत्र रूप में देकर 'सूत्रग्रंथ' का यह उदाहरण दिया । 'संग्रह', 'कारिका', 'निरुक्त' और 'सूत्र' के लक्षणों की

---

1. यह बात ध्यान देने योग्य है कि उल्लिखित स्थल (देखिए पृ० 21 पा०टि०) के ठीक बाद ही अभिनवगुप्त ने लिखा है कि 'अनेन तु श्लोकेन कोहलादि मतेनैकादशांगत्वं उच्यते, न तु भरते, तत्संगृहीतस्यापि पुनरत्नोद्देशात्, निर्देशे चैतत् क्रमव्यत्यासनादित्युद्भटः नेति भट्ट लोल्लटः—वयं त्वत्र तत्वं अग्रे वितनिष्याम इत्यास्तां तावत् (भरत,अध्या०vi, श्लोक 10) । उद्भट और लोल्लट में प्रसंग-विशेष की पाठ व्याख्या के संबंध में जो मतभेद है, उससे इस निष्कर्ष को बल मिलता है कि उद्भट भी, संभवतः उसी पाठ से परिचित थे, जिससे अभिनवगुप्त थे और जो संप्रति विद्यमान है ।

2. उत्तर-चरित, अंक iv, श्लोक 22 (निर्णय सागर प्रेस संस्करण 1906, पृ० 120) अभिनव गुप्त ने अपनी टीका में भरत के ग्रंथ को सूत्रबद्ध ग्रंथ कहा है ।

3. 'तत्र विभावानुभाव-व्यभिचारि-संयोगाद् रस-निष्पत्तिः' ग्रौसेट संस्करण, पृ० 87, 1.8, काव्यमाला संस्करण पृ० 62, 1 6. इस उक्ति को सभी परवर्ती लेखकों ने 'सूत्र' कहा है । इनमें अभिनवगुप्त के साथ अनुमानतः उनके पूर्ववर्ती लोल्लट इत्यादि आचार्य भी शामिल हैं । सूत्र-भाष्य पद्धति के अन्य उदाहरणों के लिए देखिए पो० वी०काणे की हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स पृ० 15-16 ।इस पुस्तक में नाट्य-शास्त्र के पाठसंबंधी निर्देश सामान्यतः काव्यमाला संस्करण के हैं ।

यह चर्चा अप्रासंगिक है और केवल लीपापोती के लिए की गई है, क्योंकि अन्यथा कारिका-पाठ के बीच में प्राचीन सूत्र-शैली का यह अवशेष अनुचित लगता। अतः इसके प्रयोग के कारण की जो कल्पना की गई, वह सप्रयोजन है। यह आवश्यक नहीं है कि सूत्र-पाठ कारिका-पाठ से पुराना हो, क्योंकि वर्त्तमान सूत्र-पाठ में ही 'अनुबद्ध' अथवा 'अनुवंश्य' श्लोकों[1] की वृत्तियों के उद्धरण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि वैसी सामग्री भी पहले विद्यमान थी। साथ ही साथ इस परंपरागत विश्वास का खंडन भी होता है कि भरत ही नाट्य-वेद के प्राचीनतम आचार्य थे। किंतु यदि इस परंपरागत मान्यता को स्वीकार किया जाए कि भरत की मूल रचना सूत्रबद्ध थी तो विद्यमान पाठ का यह अंश मूल रूप का अवशेष माना जा सकता है। सूत्र-भाष्य पद्धति में इस प्रकार के अंश अध्याय 28 के 'आतोद्य-विधिं इदानीं वक्ष्यामः' से प्रारंभ होकर इकतीसवें अध्याय तक अनेक स्थलों पर मिलते हैं। इसी प्रकार अध्याय xxxiii, 212 में 'वाद्य-विधानं वक्ष्यामि' तथा अध्याय xxiv, श्लोक 93 में 'अत्र सूत्रधार-गुणान् वक्ष्यामः' इत्यादि उदाहरण मिलते हैं।

यदि भरत के ग्रंथ के काल की अंतिम सीमा आठवीं शती को मान लिया जाय तो उसकी दूसरी सीमा का निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है। विशेषतः ऐसी अवस्था में, जब प्रत्यक्षतः उसके बारे में दो तरह की बातें प्रचलित हैं, जो या तो परस्पर स्वतंत्र हैं अथवा एक दूसरे पर आधारित हैं। भवभूति का कथन कितना प्रामाणिक है, यह स्पष्ट नहीं है; क्योंकि यदि आठवीं शती के प्रथम चरण में भवभूति को भरत एक सूत्रकार के ही रूप में ज्ञात थे तो यह समझ में नहीं आता कि उसी शती के अंत में उद्भट ने कैसे भरत की कारिका का प्रयोग कर लिया और उसी का एकदम अनुकरण करते हुए लोल्लट और अन्य विद्वानों ने उसी पाठ पर टीकाएं भी लिख डालीं। यह नहीं हो सकता कि आधी शती से कम की अवधि में पुराने रूप के सभी चिह्न मिट जायं और एक सर्वथा नवीन कारिका-पाठ उनका जगह ले ले, जो बाद में एकमात्र प्रामाणिक पाठ माना जाय और सबसे विचित्र बात यह है कि हमें उसमें प्राचीन सूत्र-पाठ के अवशिष्ट अंश भी मिलते हैं। भवभूति के उल्लेख का एकमात्र संभव स्पष्टीकरण यह है कि ऐतिहासिक भरत, जो नृत्य, संगीत और वाद्य की तीनों कलाओं के सूत्रकार थे, भवभूति के समय में पौराणिक

---

1. प्रत्यक्ष रूप से पूर्ववर्ती लेखकों द्वारा लिखित अनुबद्ध श्लोक प्रस्तुत विषय से संबंधित हैं। अनुवंश्य श्लोक (ऐसे श्लोक महाभारत में भी उपलब्ध हैं) अभिनवगुप्त के अनुसार वे हैं, जो गुरु-शिष्य-परंपरा से प्राप्त हुए हैं (अनुवंश-भवं शिष्याचार्य-परंपरासु वर्त्तमानम्) अध्याय vi, पृ० 25-26

भरत से अभिन्न माने जा चुके थे, इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि 'उत्तर-चरित' के एक स्थल पर स्पष्ट रूप से लव-मुख से यह पौराणिक आख्यान कहलाया जाता है कि भगवान् वाल्मीकि ने राम-कथा की रचना के पश्चात् उसे भगवान् भरत को, जो तीनों कलाओं के सूत्र-कर्ता और देवताओं के नाट्याचार्य थे, दे दिया और भरत ने उसमें यथेष्ट हेर-फेर करके दिव्य अप्सराओं द्वारा उसे अभिनीत करवाया।

किंतु पाठ-संबंधी कठिनाइयां यहीं समाप्त नहीं हो जातीं। अध्याय 17, 28, 29, 31 तथा 34 में कारिकाओं के बीच में स्वतंत्र गद्य-खंड भी हैं। वे पाठ के अभिन्न अंग हैं और इसलिए उन्हें केवल वृत्ति नहीं माना जा सकता। वे कई बातों में गद्यात्मक स्मृति के अंशों से मिलते-जुलते हैं। साथ ही 'भेल-संहिता' से भी, जिसके लेखक संदिग्ध हैं, उपर्युक्त अनुबंध और अनुवंश्य श्लोक परवर्ती ग्रंथों में प्राप्य 'परिकर' अथवा संग्रह-श्लोकों के सदृश हैं और निश्चित रूप से उनसे यह संकेत मिलता है कि उस विषय पर प्राचीन साहित्य रहा होगा। ये श्लोक सामान्यत: दो पृथक् स्रोतों से लिए गए प्रतीत होते हैं, क्योंकि इनमें से कुछ आर्या छंद में हैं और कुछ अनुष्टुप् में। अभिनव ने आर्या-श्लोकों के संबंध में कहा है—vi. 85. पृ० 328 'ता एता ह्यार्या एकप्रघट्टकतया पूर्वाचार्यलक्षणत्वेन पठिताः, मुनिना तु सुख-संग्रहाय यथास्थानं विनिवेशिताः।' उनका मत है कि कुछ पूर्ववर्ती आचार्यों ने इन आर्या-श्लोकों को रचा था और भरत ने यथास्थान उनका विनिवेश कर लिया।

उपर्युक्त तथ्यों के कारण चर्चाधीन पाठ में प्रत्यक्ष रूप से ऐसी अवशिष्ट सामग्री है, जिसमें (1) स्वतंत्र रूप से विद्यमान गद्य-अंश हैं, (2) आर्या और अनुष्टुप् छंदों में अनुवंश्य श्लोक हैं। (3) सूत्र-भाष्य रीति के स्थल हैं और (4) वर्तमान कारिका रूप भी हैं, अत: इन सब रूपों के पारस्परिक संबंध की समस्या उत्पन्न हो जाती है। स्थानाभाव के कारण यहां इस समस्या पर विस्तार से विवेचन करना तो संभव नहीं, किंतु इन स्थलों की परीक्षा से यह स्पष्ट जो जाएगा कि ये विभिन्न शैलियां संभवत: समकालिक नहीं हैं। हां, 'सामान्य रूप से नाट्यशास्त्रीय रचनाओं के विविध रूपों के विकास के अनेक सोपानों को लक्षित अवश्य करती हैं; इससे लगता है कि विकास के प्रत्येक सोपान में शैली-विशेष के प्रति अधिक प्रेम रहा है। यदि हम विद्यमान कारिका-पाठ को लेकर विवेचन आरंभ करें तो देखेंगे कि उसमें प्राचीन सूत्र-भाष्य की शैली के चिह्न मिलते हैं और अनुमानत: कारिका-पाठ उसी का नया रूप है। उधर सूत्र-भाष्य पाठ में श्लोकबद्ध

शब्द अंश भी विद्यमान हैं, जिससे प्रतीत होता है कि उससे प्राचीनतर भी कोई कारिका-स्थिति थी और स्वतंत्र गद्य-अंश तो शायद इन शास्त्रीय ग्रंथों के प्राचीनतम रूप को लक्षित करते हैं।

उनके विकास-क्रम में इस प्रकार भेद किया जा सकता है—(1) गद्य ग्रंथों के निर्माण की अवस्था, (2) कारिका-लेखन की प्रयोगात्मक अवस्था, (3) सूत्र-भाष्य पद्धति की अवस्था, और (4) संहिता ग्रंथों के संकलन की अंतिम अवस्था. जिसमें फिर से कारिका-शैली[1] अपना ली गई है। कदाचित् धर्म-शास्त्र, वैद्यक-शास्त्र और संभवतः काम-शास्त्र के क्षेत्रों में भी न्यूनाधिक इसी प्रकार की अवस्थाएँ देखने से इस निष्कर्ष की पुष्टि होती है। प्राचीन ग्रंथों के लुप्त हो जाने के कारण किसी सिद्धांत की दृढ़ स्थापना करना तो कठिन है, किंतु यदि यह निष्कर्ष सामान्यतः ठीक हो तो ऐसा माना जा सकता है कि नाट्यशास्त्र के विद्यमान पाठ में इन सभी शैलियों और रूपों के अवशेष सम्मिलित हैं। यहां हमारा प्रतिपाद्य यह नहीं है कि स्वयं भरत की रचना भी इन सभी अवस्थाओं और रूपों अर्थात् गद्य के प्रारंभिक रूप से सुव्यवस्थित श्लोकबद्ध रूप तक में से गुजरी[2] है; हां, वर्तमान पाठ में इतनी सामग्री अवश्य विद्यमान है, जिससे पता चलता है कि गद्य और पद्य में पर्याप्त चिंतन हो चुका था और यह भी लक्षित होता है कि शायद यह ग्रंथ कभी सूत्र-भाष्य रूप में लिखा गया होगा और बाद में दूसरे स्रोतों से पर्याप्त सामग्री लेकर उसे सरल श्लोकबद्ध संहिता का नया रूप दे दिया गया होगा।

३

विविध पाठांतरों की समस्या को यदि एक बार छोड़ दें और नाट्यशास्त्र के विषय-सार पर विचार करें तो, अंतःसाक्ष्य के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रमुखतः उसके संगीत विषयक अंश का संकलन[1] चौथी शती ईस्वी

---

1. यह निष्कर्ष दसवीं शती से परवर्ती काल के ग्रंथों पर (वे ग्रंथ केवल नाट्यशास्त्र की शैली के अनुकरणमात्र थे) लागू नहीं होता। कारिका और सूत्र, दोनों ही शैलियां साथ-साथ विद्यमान थीं।

2. काणे के कथनानुसार (HSP-पृ० 16) नाट्यशास्त्र का मूल बीज रूप गद्य और पद्य-मिश्रित था। उनका यह भी मत है कि पहले के पांच अध्याय कुछ बाद में जोड़े गए थे। अभिनवगुप्त के अनुसार भरत के ग्रंथ में 36 अध्याय हैं, यद्यपि उन्होंने सैंतीसवें अध्याय पर टीका लिखी है। उस अध्याय को एम० आर० कवि ने उत्तर भारतीय पाठांतर कहा है। श्री कवि के अनुसार दक्षिणी पाठ प्राचीनतर है और उसमें केवल 36 अध्याय हैं।

3. इंडियन एंटीक्वेरी, xii पृ० 158 इत्यादि।

के लगभग ही हुआ होगा। यह भी संभव प्रतीत होता है कि ग्रंथ के शेष अंश भी उसी समय अपना वर्तमान स्वरूप धारण कर चुके हों। इस प्रकार के मिश्रित ग्रंथ में शकों, यवनों, पह्लवों और बाह्लीकों (यथा अध्याय xxxii, 103 चौ० सं० के उल्लेख के आधार पर ग्रंथ-तिथि के विषय में पिशेल ने जो तर्क उपस्थित किए हैं, उनका मूल्य तो संदिग्ध है और उससे इस तिथि का निर्णय अंतिम रूप से नहीं हो सकता, किंतु उससे इस बात की संभावना तो बढ़ ही जाती है कि उसकी तिथि अधिक प्राचीन नहीं मानी जा सकती।

फिर भी, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भरत के ग्रंथ का सार रूप शायद भामह[1] से बहुत पुराना है, जिन्हें सातवीं शती के अंतिम चरण में हुआ मान सकते हैं। काव्यालंकारों पर चर्चा करते हुए भामह ने उनका विचित्र किंतु सार्थक भेद निरूपण किया है, जिससे यह संकेत मिलता है कि इन अलंकारों[2] का विकास और इनकी संख्या में वृद्धि होते-होते काफी समय बीता होगा। आरंभ में उन्होंने केवल पांच काव्यालंकारों के (अध्या० ii, 4) नाम और लक्षण दिए हैं, जिन्हें उनके कथनानुसार अन्य लेखकों ने भी मान्यता दी है। वे हैं—अनुप्रास, यमक, रूपक, दीपक और उपमा। इनसे अलंकार-विकास की अवस्था लक्षित होती है। लगता है कि उसके बाद की अवस्था में छह अन्य अलंकार भी अस्तित्व में आए। भामह ने उनका उल्लेख अध्याय ii, श्लोक 66 में किया है। तत्पश्चात् उन्होंने दो अथवा, स्वभावोक्ति के साथ तीन, अलंकारों की गणना की है, जिन्हें मेधावी (अध्याय ii, श्लोक 88) जैसे लेखकों ने मान्यता दी थी। इन्हीं मेधावी ने (अध्याय ii, श्लोक 40) उपमा इत्यादि अलंकारों की भी गणना की है। अंत में भामह ने एक अलग (अध्याय iii 1-4) में तेईस और अलंकारों के लक्षण और उदाहरण दिए हैं।

अलंकार-साहित्य में यह एक सुविदित तथ्य है कि चिंतन की प्रगति के साथ-साथ काव्यालंकारों के भेद-निरूपण की भी प्रगति हुई और जिस प्रकार भामह ने इन अलंकारों का जिस क्रम से नामोल्लेख और वर्गीकरण किया है, उससे यह प्रतीत होता है कि प्रारंभ में उल्लिखित पांच अलंकारों में ही क्रमशः वृद्धि हुई और शास्त्र

1. दंडी ने रस-सिद्धांत से अपना परिचय जताने के अतिरिक्त (ii. 281, 283 इत्यादि) संधि, अंग, वृत्ति और लक्षण इत्यादि नाट्यसंबंधी शास्त्रीय शब्दों का उल्लेख किया है और उनके विवेचन के लिए 'आगमांतर' का (ii. 366) उल्लेख किया है।

2. तुलना कीजिए, जैकबी Sb. der preuss, Akad. xxiv, 1922, पृ० 22 इत्यादि।

की उन्नति के साथ-साथ यथासमय अन्य अलंकार मिलते चल गए। भरत के अलंकार-विवेचन से विदित होता है कि उन्हें चार अलंकारों के नाम ज्ञात थे—(xvi, 41) वे हैं यमक, रूपक, दीपक और उपमा। वास्तव में ये चार अलंकार भामह द्वारा वर्णित पांच अलंकारों के सदृश ही हैं; क्योंकि अनुप्रास वर्णाभ्यास है और यमक पदाभ्यास; अतः अनुप्रास को भी यमक में ही समाविष्ट माना जा सकता है। अनुप्रास और यमक में इस प्रकार के भेदनिरूपण से यह भी प्रकट होता है कि भामह के समय तक इन काव्यालंकारों के प्रसंग में कितना सूक्ष्म विवेचन हो चुका था। अतएव यह स्पष्ट है कि भरत के ग्रंथ की रचना उस काल में हुई, जब अलंकारों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई थी। भरत के नाट्यशास्त्र तथा भामह के काव्यालंकार के बीच अधिक नहीं तो कम से कम एक पूरा युग अवश्य बीता होगा, जिसमें काव्यालंकारों की संख्या में इतनी वृद्धि हुई कि चालीस तक पहुंच गई।[1] इसी मध्यवर्ती अवस्था में मेधावी और अन्य लेखक हुए होंगे, जिनका उल्लेख भामह ने किया है। उनकी रचनाओं के लुप्त हो जाने के कारण भामह द्वारा इंगित विकास का अन्वेषण करना कठिन है।

ऐसा प्रतीत होता है कि भरत का उपदेश कदाचित् कालिदास से पुराना है, क्योंकि कालिदास ने सामान्यतः भरत के नाट्यशास्त्रीय विधान[2] का पालन किया है। उन्होंने विक्रमोर्वशीय (ii. 18) में भरत का उल्लेख पौराणिक नाट्याचार्य के रूप में किया है।

रघुवंश (xix, 36) में कालिदास ने अंग-सत्व-वचनाश्रय नृत्य का उल्लेख किया है, जो मल्लिनाथ के कथनानुसार भरत की इस उक्ति[3] से मेल खाता है 'सामान्याभिनयो नाम ज्ञेयो वागंग-सत्वजः।' इसी प्रकार कुमारसंभव (vii, 91) में भी नाट्यशास्त्रोक्त xx-17 (चौखंबा सं० xxii.17) संधियों और ललितांगहार का उल्लेख है।

1. भट्टि काव्य छठी शती के अंत और सातवीं शती के आरंभ के मध्यवर्ती काल की रचना है। इसमें विभिन्न अड़तीस काव्यालंकारों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जिनसे पता चलता है कि उनके समय तक अलंकारों के सूक्ष्म भेद-निरूपण की प्रक्रिया का वास्तव में बहुत विकास हो चुका था।

2. जिन नाटकों को भास-रचित माना जाता है, उनकी उपलब्धि से भी इस तर्क का निराकरण नहीं होता, क्योंकि यह संभव है कि उन नाटकों में किसी ऐसी परंपरा का अनुकरण किया गया हो, जिसके चिह्न अब लुप्त हो चुके हैं। वैसे भास की तिथि भी अनिश्चित है।

3. अमरकोश में केवल आंगिक और सात्विक अभिनय का उल्लेख है। इस कोश में, जो 561-66 ईसवी के लगभग चीनी भाषा में अनूदित कहा जाता है (देखिए मेघदूत, 1894,

अतएव, भरत के ग्रंथ की प्राचीनता कम-से-कम, अस्थायी रूप से ही सही, चौथी अथवा पाँचवीं शती ईसवी तक तो मानी ही जा सकती है और यह भी लगभग निश्चित ही है कि यह ग्रंथ अपने वर्तमान रूप में कम से कम आठवीं शती ईसवी[1] में विद्यमान था। प्राचीनता की अधिकतम सीमा बहुत प्राचीन काल में नहीं ठहराई जा सकती। नाट्यशास्त्र में शकों, यवनों, पह्लवों तथा अन्य जातियों का उल्लेख है; अतः यह सीमा संभवतः ईसवी सन् के आरंभ से पूर्व नहीं हो सकती। किंतु हम पहले ही बता चुके हैं कि वर्त्तमान संकलनात्मक पाठ में उक्त जातियों के उल्लेख मात्र से समय के विषय में निर्णय संभव नहीं। सूत्र-पाठ तथा कारिका-पाठ की सापेक्ष तिथि निर्धारित करना कठिन है; किंतु यदि यह मान लिया जाय कि ईसा से ठीक पहले की कुछ शतियों में सूत्र-भाष्य शैली का प्रचलन था, तो वह सूत्र-पाठ, जिसका लेखक भरत को मान लिया गया है प्रकट रूप से इसी काल में रचा गया होगा।[2] वर्त्तमान कारिका-पाठ से यह निश्चित रूप से बहुत प्राचीन है, क्योंकि इसमें भरत को नाट्य-वेद के प्रवर्तक के रूप में पौराणिक ऋषि माना गया है।

पृ० 73 पर नंदरगीकर की प्रस्तावना) आठ रसों की गणना करते हुए और नाट्यशास्त्र के कुछ पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करते हुए भी नाट्यशास्त्र का ही अनुसरण किया गया है। साथ ही नट के तीन पर्याय बताए गए हैं, जो नाट्य के तीन विख्यात आचार्यों के नाम हैं (शैलाली, कृशाश्वी और भरत)। पाणिनि ने पहले दो शब्दों की व्युत्पत्ति का उल्लेख किया है, तीसरे का नहीं, किंतु उनके उल्लेख न करने से कोई अनुमान सिद्ध नहीं होता। जैन ग्रंथ अणुओगदार सुत्त (N.S.P. 1915, fol.134-145; वेबर ने भी ii.2, पृ० 701-02 पर उल्लेख किया है) में, जो विंटरनित्ज़ के अनुसार शायद पांचवी शती में संकलित किया गया था, नौ रसों का उल्लेख है'। प्रशांत का (जिसका उल्लेख भरत ने नहीं किया) समावेश होने के कारण यह परिगणना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि स्पष्टतः धार्मिक उद्देश्य से इसका समावेश हुआ था।

1. इस मत से श्री काणे भी सामान्यतः सहमत हैं (हि० स० पो० 19-22)

2. यह आगे सिद्ध किया जायगा कि यह अनुश्रुति भ्रांतिपूर्ण है कि भरत ने 'काव्यलक्षण' नामक एक ग्रंथ लिखा था, जो वस्तुतः काव्यप्रकाश की कारिकाओं का सारांश-रूप था। लेवि (Lavi) का यह कथन भी उतना ही भ्रांत है कि ये कारिकाएँ संक्षिप्त रूप में अग्निपुराण से ली गई हैं। हां, सोमदेव ने अपने ग्रंथ यशस्तिलक (959-60 ई०) में भरत-प्रणीत एक काव्याध्याय (पीटर्सन ii. पृ० 45) का उल्लेख किया है, किंतु सोमदेव की तिथि को ध्यान में रखते हुए यह नहीं माना जा सकता कि उससे मम्मट की कारिकाओं के प्रणीत होने की अनुश्रुति की पुष्टि होती है। सोमदेव का संकेत तो संभवतः नाट्यशास्त्र के सोलहवें अध्याय की ओर है, जिसमें काव्य-लक्षण, काव्यालंकार, काव्यगुण और काव्यदोष आदि नाटकीय विषयों का विवेचन है।

भरत के टीकाकार

अभिनवगुप्त की टीका के अतिरिक्त भरत के नाट्य-शास्त्र पर कोई और टीका संप्रति विद्यमान नहीं है, किंतु अभिनवगुप्त[1], शार्ङ्गदेव[2] और अन्य लेखकों ने भरत के कुछ तथाकथित और कुछ वास्तविक टीकाकारों का उल्लेख किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

मातृगुप्ताचार्य, उद्भट, लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक, हर्ष, कीर्तिधर, अभिनव गुप्त, नान्यदेव।

इनके अतिरिक्त अभिनवगुप्त[3] ने कई अन्य लेखकों के मतों का उल्लेख किया है। वे हैं— भट्ट यंत्र (नाट्य और नृत्त पर पृ० 208), प्रियातिथि (लास्यांग पर), भट्टवृद्धि (ताल पर), भट्ट सुमनास (ताल पर), भट्ट गोपाल (ताल पर), भट्ट शंकर (वृत्त प्रकरण पर) और घंटक (नाटिका-भेद पर)। राहुल अथवा राहल (पृ० 115, 172, 197 इत्यादि) के, जिसका नामोल्लेख शार्ङ्गदेव (i. 1. 17) ने भी किया है, कई उद्धरण मिलते हैं, क्योंकि उन्होंने अपने कुछ श्लोकों में भरत का नाम लिया है (भरतेनोदितं, अभिनव भारती i, पृ० 72), अतः वे अवश्य ही, उपर्युक्त अधिकतर लेखकों के समान, भरत के पश्चात् ही हुए होंगे। उनके नाम से और हेमचंद्र (पृ० 316) द्वारा दिए हुए उनके शाक्याचार्य अभिधान से, वे एक बौद्ध आचार्य प्रतीत होते हैं। हेमचंद्र ने उनके विचारों की निश्चित रूप से उपेक्षा की है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन सब लेखकों ने भरत के ग्रंथ के केवल कुछ अंश पर टीकाएँ लिखी थीं, अथवा पूर्ण ग्रंथ पर, किंतु उल्लेखों से यह अवश्य प्रतीत होता है कि इनमें से अधिकतर लेखकों ने सामान्यतः संगीत के प्रकरण और कुछ ने विशेष अभिनय संबंधी अंश पर टीकाएं लिखी थीं।

---

1. देखिए काणे का लेख—'ग्लीनिंग्स फ्राम अभिनवभारती—के०वी० पाठक कमेमोरेशन वाल्यूम पूना, 1934, पृ० 385-400. राघवन का लेख 'राइटर्स कोटेड इन अभिनव भारती' के लिए जर्नल आफ ओरिएंटल रिसर्च vi, 1932, पृ० 149 पृ० 199 इत्यादि में।

2. शार्ङ्गदेव ने लिखा है: "व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोद्भटशंकुकः। भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरो परः"। उन्होंने अन्यत्र दो आचार्यों, राहुल और मातृगुप्त, का नाम लिया है, जो संगीत के आचार्य प्रतीत होते हैं।

3. अभिनव-भारती के उल्लेखों के लिए। यहां रामकृष्ण कवि के बड़ौदा, सं० 1926 के खंड और पृष्ठ दिए गए हैं। जहां खंड-संख्या नहीं दी गई है, केवल पृष्ठ संख्या ही दी गई है, वहां प्रथम खंड समझना चाहिए।

अपनी टीका में अभिनव ने अपने गुरु भट्टतौत और परम-गुरु, उत्पलदेव का अनेक बार नामोल्लेख किया है। कहते हैं कि तौत ने काव्य-कौतुक नामक ग्रंथ लिखा था, जो अब उपलब्ध नहीं है। अपनी टीका के प्रारंभ में अभिनवगुप्त ने नाट्य-शास्त्र के उपदेश के लिए तौत के प्रति विनम्र शब्दों में आभार प्रकट किया है। विभिन्न विषयों पर तौत के मतों के उल्लेख[1] से भी इस बात की पुष्टि होती है; किंतु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि तौत ने वास्तव में नाट्य-शास्त्र पर टीका लिखी थी। ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा और अन्य कृतियों के रचयिता के रूप में उत्पलदेव काश्मीरी शैववादियों में विख्यात हैं। संगीत-संबंधी अध्यायों में, मुख्य रूप से उनके मत उद्धृत किए गए हैं। यह स्पष्ट नहीं है कि उन्होंने इन अध्यायों पर टीका लिखी थी अथवा स्वतंत्र रूप से संगीत पर कोई ग्रंथ लिखा था। शकलीगर्भ के बारे में भी यही कथन लागू होता है। उद्भट के साथ एक बार उनका उल्लेख किया गयाहै। नाट्यशास्त्र (iv.17-18) में तंडु[2] का भी उल्लेख है, जिन्होंने भरत को अंगहारों, विभिन्न करणों और रेचकों के अभिनय की शिक्षा दी थी। अभिनव ने अपनी टीका में अज्ञात टीकाकार अथवा टीकाकृत का भी बार-बार उल्लेख किया है।

मातृगुप्ताचार्य

राघव भट्ट ने शकुंतला[3] की टीका में और वासुदेव ने कर्पूरमंजरी[4] की टीका में मातृगुप्त का नाट्यविद्या के आचार्य के रूप में उल्लेख किया है, और सुंदर मिश्र ने अपने ग्रंथ नाट्य-प्रदीप (रचना कालः **1613** ईसवी) में 'नांदी' विषयक भरत के कथन की टीका करते हुए कहा है—अस्य व्याख्याने मातृगुप्ताचार्यैः इयं

1. उल्लिखित पुस्तक के पृ० 388 पर काणे के विचार देखिए, और उनका हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पौएटिक्स, पृ० 209-12 तथा राघवन का पूर्वोक्त ग्रंथ पृ० 153-62. अभिनव ने पृ०291-92 पर तौत के तीन छंदोंबद्ध पदों का उल्लेख किया है।

2. पृ० 90 (खंड 1) पर उल्लिखित तंडु के विषय में यह कहा गया है कि उन्हीं का दूसरा नाम नंदी है। वैसे ही मुनि शब्द भरत का वाचक है (तंडुमुनिशब्दौ नंदि-भरतयोरपरनामानि) अतएव अभिनव के विचार में नंदिमत (पृ० 171 पर उल्लिखित) का अर्थ है तंडु का मत।

3. निर्णय सागर प्रेस सं० 1922, पृ० 5, 6, 7 (रस प्रकरण), 8 (नाटक लक्षण) 13 (वीथ्यंग), 15 (विभिन्न पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषाएं), 20 (भूषण), 57 (संचारिका), 62 (सेनापति), 74 (हसित), 110 (पताकास्थानक), 123 (वही), 126 (नीच पात्रों द्वारा संस्कृत का प्रयोग), 154 (कंचुकी). 156 (प्रतिहारी), 199 (परिचारिका), पृ० 230 (फल-योग) इत्यादि।

4. सं० निर्णय सागर प्रेस, 1900, पृ० 5 (सूत्रधार); तुलना कीजिए, ऑफ्रेक्ट i. 448 a.

उदाहृता ।[1] लेवी ने इससे यह अनुमान लगाया है कि मातृगुप्त ने भरत पर एक व्याख्यान अथवा टीका की रचना की थी, और उसे हर्ष-विक्रमादित्य (राजतरंगिणी, iii. 125,252) का सभा-कवि मानकर हम यह मान सकते हैं कि वह भरत का एक बहुत प्राचीन टीकाकार (सातवीं शती) है। किंतु उपलब्ध साक्ष्य से कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। राघव भट्ट और अन्य लेखकों के ग्रंथों में नाट्यविद्या-विषयक अनेक श्लोकबद्ध उद्धरणों से यह सूचित होता है कि मातृगुप्त ने शायद नाट्यविद्या-विषयक मौलिक, श्लोकबद्ध ग्रंथ लिखा था। संभवतः उस ग्रंथ में उन्होंने सामान्य रूप से भरत के सिद्धांतों की टीका की थी। व्याख्यान शब्द का अर्थ टीका करना आवश्यक नहीं है। कल्हण द्वारा उल्लिखित मातृगुप्त एक राजा तथा कवि थे, अतः इन ग्रंथों में उनका आचार्य रूप में उल्लेख कैसे हुआ, जबकि आचार्य का अर्थ गुरु होता है? अभिनवगुप्त मातृगुप्ताचार्य से परिचित थे, उन्होंने संगीत विषय पर उनके विचारों को उद्धृत किया है (अध्याय xxix)। अपने ग्रंथ 'भाव-प्रकाशन' में शारदातनय ने नाटक-वस्तु विषयक उनके मत का उल्लेख किया है, सागरनंदी ने अपनी पुस्तक नाटक-लक्षण-रत्न-कोश में उनके कई श्लोक उद्धृत किए हैं (पृ० 5, 14, 20, 21, 23, 50) और शार्ङ्गदेव ने भी उन्हें संगीत[2] का प्रमाणभूत आचार्य माना है।

उद्भट

जैसा कि पहले (पृ० 31 पा० टि० 2) कहा जा चुका है, शार्ङ्गदेव ने अपने ग्रंथ संगीत-रत्नाकर (i, 1. 19) में भरत के एक प्राचीन टीकाकार के रूप में उद्भट का उल्लेख किया है। बहुत संभव है, यह सच हो, यद्यपि उद्भट की टीका अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। अभिनव द्वारा उद्भट के अनेक मतोल्लेखों से भी शार्ङ्गदेव का यह कथन पुष्ट होता है। इसमें से एक उल्लेख vi. 10 (पृ० 266, 67 पर) अभिनव की टीका में मिलता है। यह उल्लेख (पृ० 24, पा० टि० 1) पहले भी उद्धृत किया जा चुका है। इसमें कहा गया है कि

---

1. IOC iii में पृ० 347 पर उद्धृत। विक्रमोर्वशीय (ति०1659 ईसवी) की अपनी टीका में रंगनाथ ने भी मातृगुप्त का उल्लेख किया है, सं० NSP, 1914, पृ० 5 (नंदी-पर); अमर (कोश ?) पर सर्वानंद ने; पृ० 145 (अद्भुत रस), 147 (बीभत्स रस),150 (व्यभिचारीभाव), 161 (श्रृंगार में अनुभाव), 16 (ताल)।

2. टी० आर० चिंतामणि ने जर्नल आफ ओरिएंटल रिसर्च ii.1928, पृ० 118-28 पर मातृगुप्त संबंधी उद्धरणों का संग्रह अपने लेख 'फ्रैग्मेंट्स ऑफ मातृगुप्त' में किया है।

भरत के नाट्यशास्त्र के एक अन्य टीकाकार लोल्लट ने पाठ की व्याख्या से संबंधित उद्भट के कुछ विचारों को स्वीकार नहीं किया। अध्याय ix.182 (खंड ii, पृ० 70) और xviii.76 (खंड ii, पृ० 441) पर टीका करते हुए अभिनव ने पाठ के ऐसे उद्धरण दिए हैं, जिनका उद्भट ने भिन्न अर्थ किया है। अन्य दो स्थलों (xxi. 17 और xxi. 42) पर अभिनव ने उद्भट की व्याख्या को लक्ष्य अथवा आगम-विरुद्ध कहकर विरोध प्रकट किया है। वृत्ति विषयक (xviii. 110, खंड ii, पृ० 451-52, टीका) एक और स्थल पर अभिनव का कथन है कि उद्भट ने केवल तीन वृत्तियाँ मानी हैं (भरत के अनुसार चार नहीं), अर्थात् न्याय-चेष्टा, अन्याय-चेष्टा और फल-संवित्ति। इस संबंध में अभिनव ने शकलीगर्भ नामक लेखक का भी उल्लेख किया है, जिसने पांच वृत्तियाँ (अर्थात् भरत की चार और उद्भट की फल-संवित्ति के स्थान पर आत्म-संवित्ति नामक एक अन्य वृत्ति) स्वीकार की हैं, किंतु लोल्लट और अन्य लेखकों ने इन मतों का खंडन किया है। कुतंक (पृ० 113-15) रस के स्व-शब्द-वाच्यता संबंधी उद्भट के मत से असहमत हैं, क्योंकि वह भरत-मत से भिन्न है। अनेक अध्यायों, यथा vi, ix, xviii तथा xxi आदि, में विवेचित विषयों पर उद्भट के विचारों के सविस्तर उल्लेख से यही संभव प्रतीत होता है कि उन्होंने संपूर्ण नाट्यशास्त्र पर टीका लिखी थी। किंतु शकलीगर्भ के विषय में भी ऐसा ही अनुमान ठीक नहीं प्रतीत होता। वे संभवतः उद्भट और लोल्लट के मध्यवर्ती काल में हुए थे और उन्होंने नाट्यविद्या के कुछ प्रकरणों पर लिखा होगा, किंतु भरत पर उन्होंने कोई टीका लिखी या नहीं, यह स्पष्ट नहीं है।

लोल्लट

अभिनवगुप्त ने रस-सूत्र की टीका करते हुए न केवल छठे अध्याय में (रस-सूत्र पर) ही, बल्कि बारहवें, तेरहवें, अठारहवें तथा इक्कीसवें अध्यायों में भी लोल्लट का पर्याप्त उल्लेख किया है। ऐसा कहा गया है कि लोल्लट ने वृत्तियों (ऊपर देखिए) और नाट्य के ग्यारह विषयों पर (vi. 10, की टीका में)[1] उद्भट के मत को स्वीकार नहीं किया। लोल्लट के और भी विशिष्ट मतों का उल्लेख है, यथा, (i) रस अनेक हैं (vi. 45 की टीका में)[2], यद्यपि परंपरा में रंगमंच के लिए आठ अथवा नौ रस ही स्वीकार किए गए हैं, (ii) शंकुक के मत के विरुद्ध, नाटिका अष्टपदा नहीं षट्पदा (xviii. 60

1. खंड i. पृ० 266; 2. खंड i. पृ० 299.

की टीका)[1] है। ध्रुव-ताल (xii. 14)[2], कक्ष्या (xiii. 1)[3] अनुसंधि xxi. 29 (पताका नायक के कृत्यों के विषय में प्रयुक्त उन्हीं के शब्द) के विषय में भी लोल्लट का मत उद्धृत है और लोल्लट कृत टीका में अध्याय xviii के श्लोक 32 के लुप्त होने का[4] भी उल्लेख है। नाट्य-शास्त्र के अनेक अंशों के विषय में लोल्लट के मत के उल्लेख से इस परंपरा की पुष्टि होती है कि उन्होंने भी भरत के संपूर्ण ग्रंथ पर टीका लिखी थी।

लोल्लट की तिथि के निर्धारण में सहायक कोई निश्चित सामग्री प्राप्त नहीं है, किंतु फिर भी परवर्ती उल्लेखों से यह परंपरागत धारणा पुष्ट होती है कि वे शंकुक नामक टीकाकार से पहले हुए। शंकुक का रस-सिद्धांत प्रत्यक्षतः लोल्लट के सिद्धांत के विरुद्ध था। नाम को देखते हुए संभवतः लोल्लट काश्मीरी थे, यदि काश्मीरी विद्वान् अभिनवगुप्त के इस उल्लेख से, कि लोल्लट ने उद्भट के एक मत का विरोध किया था, काल-संबंधी कोई अनुमान लगाया जा सके, तो यह कह सकते हैं कि वे काश्मीरी लेखक उद्भट के परवर्ती अथवा समकालीन थे और उद्भट को 813 ई० से बाद का नहीं माना जा सकता।

लोल्लट द्वारा प्रतिपादित रस-सिद्धांत संभवतः परंपरागत था। लोल्लट ने ही उसे सुव्यवस्थित किया और बाद में वे ही उसके प्रथम पक्षधर के रूप में प्रसिद्ध हुए, क्योंकि अभिनव ने भी (अध्याय vi पर) अपनी टीका में कहा है कि दंडी ने रस संबंधी विचारों में वैसे ही मत का अनुसरण किया है। जब तक लोल्लट को दंडी का पूर्ववर्ती न माना जाय, तब तक तो यही मानना होगा कि लोल्लट द्वारा इस सिद्धांत को प्रकाश में लाने से पूर्व भी दंडी को यह सिद्धांत अथवा इससे मिलता-जुलता कोई मत ज्ञात था।

अभिधा शक्ति के व्यापार से संबंधित विवाद के प्रसंग में लोल्लट को दीर्घ-व्यापार-वादी कहा गया है, क्योंकि उनके अनुसार शब्द के संकेतार्थ के मुख्य व्यापार का प्रभाव इतना दूर-व्यापी होता है कि वह स्वयं ही लक्ष्य अथवा व्यंजित अर्थ को व्यक्त करने में समर्थ होता है। संस्कृत के किसी प्रामाणिक आचार्य ने प्रत्यक्ष रूप से लोल्लट को इस मत का प्रवर्तक कदाचित् ही कहा हो, यद्यपि इसके प्रवर्तक का नाम-निर्देश किए बिना ही मम्मट (पृ० 225), महिमभट्ट (पृ०

1. खंड ii पृ० 436;
2. खंड ii पृ० 134;
3. खंड ii पृ० 196.
4. खंड ii पृ० 423.

27), हेमचंद्र (पृ० 215), विद्यानाथ (पृ० 43) इत्यादि आचार्यों ने इस मत की आलोचना की है। अपने ग्रंथ काव्य-प्रदीप (पृ० 149) में गोविंद ने कहा है कि इस मत को माननेवाले भट्ट मत के अनुयायी हैं। अभिनव ने ऐसे ही मत (लोचन पृ० 188) को भट्ट अथवा प्रभाकर संप्रदाय द्वारा समर्थित कहा है। हो सकता है, गोविंद के कथन का आधार भी यही हो। मीमांसक और वैयाकरण अभिधा के प्रश्न पर चर्चा कर चुके थे, और स्मरण रहे कि स्वयं ध्वनिकार से पहले भी ध्वनि, और विशेषकर रस-ध्वनि, के निरूपण के कई प्रयत्न हो चुके थे। यह संभव है कि लोल्लट ने भी ध्वन्यालोक के प्रथम श्लोक में उल्लिखित प्रश्न के अनेक समाधानों में एक समाधान प्रस्तुत किया हो। लोल्लट दीर्घ-व्यापार-वादी न रहे हों तो भी यह संभव है कि रस के विषय में वे मीमांसक ही थे। हेमचंद्र (पृ० 215) ने लोल्लट के केवल दो श्लोकों को उद्धृत किया है (उनके मत की चर्चा मात्र ही नहीं की)। लोल्लट का वही उद्धरण उपलब्ध है, अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि वे गद्य-टीकाकार थे तो यह श्लोकबद्ध उद्धरण कहाँ से आया ?[1]

शंकुक

अभिनवगुप्त ने नाट्यविद्या के विभिन्न विषयों पर शंकुक के विचारों का बार-बार उल्लेख किया है, जैसे, रंगपीठ (अध्याय iii, श्लोक 21-22)[2]; रस-सूत्र (अध्याय vi)[3]; नाटक (अध्याय xviii, श्लोक 10) पात्र के रूप में राजा (अ० xviii, श्लोक 12)[4]; नाटिकाभेद (अ० xviii, श्लोक 60)[5]; प्रतिमुख और विमर्श संधि (अध्याय xxi, श्लोक 40, 42) इत्यादि । क्यों कि ये उद्धरण तीसरे

---

1. वी० राघवन (सम कान्सेप्ट्स, पृ० 207-8, जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च vi पृ० 169) का विचार है कि लोल्लट का अन्य नाम आपराजिति तथा उनके पिता का नाम अपराजित था, क्यों कि हेमचंद्र (पृ० 215) ने लोल्लट के नाम से एक ऐसा पाठ उद्धृत किया है, जिसे राजशेखर ने (पृ० 45) आपराजितिक वचन कहा है।
2. खंड i, पृ० 75.
3. खंड i, पृ० 239, 298, 318.
4. खंड ii, पृ० 411,
5. खंड ii, पृ० 414,
6. खंड ii, पृ० 436.
7. छह अन्य उदाहरणों (अध्याय xxiv से xxix) के लिए, जहाँ अभिनव गुप्त ने शंकुक का उल्लेख किया है, देखिए पी० वी० काणे, हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० 50-51 पहले दो संग्रह-ग्रंथों में शंकुक को मयूर-पुत्र कहा गया है। कुछ लोगों ने उन्हें सूर्य-शतक का रचयिता मयूर माना है, जो बाण के समकालीन थे।

अध्याय से लेकर उनतीसवें अध्याय तक के विषयों से संबंधित हैं, इसलिए यह संभव है कि शंकुक ने भरत के संपूर्ण पाठ पर ही टीका लिखी हो। अभिनवगुप्त का कथन है (पृ० 275) कि मेरे गुरु भट्टतौत रस-विषयक शंकुक के मत से सहमत नहीं थे।

शार्ङ्गधर, जल्हण और वल्लभदेव [1] के संग्रह-ग्रंथ में शंकुक-रचित कई श्लोक बताए गए हैं, जिनसे पता चलता है कि इस नाम का कोई कवि भी हुआ है। कल्हण ने (iv. 703-5) शंकुक नामक एक कवि और उनके काव्य भुवनाभ्युदय का उल्लेख किया है। इस उल्लेख के अनुसार ये शंकुक अजितापीड़ के समकालिक थे और अजितापीड़ का काल कनिंघम ने 813 ईसवी और एस० पी० पंडित ने 816 ईसवी ठहराया है। हमारे टीकाकार शंकुक और यह कवि शंकुक एक ही व्यक्ति हों तो उनका काल नवीं शती के प्रथम चरण में ठहराया जा सकता है।

भट्टनायक

अभिनवगुप्त (लोचन पृ०27; और अभि०भा० xvi .4)[2] ने भरत के रस-सूत्र (अध्याय vi)[3] के प्रसंग में भट्टनायक के मत का उल्लेख करने के अतिरिक्त उनके नाम से शब्द-प्राधान्यं आश्रित्य[4] इत्यादि एक श्लोक भी उद्धृत किया है। इस श्लोक को हेमचंद्र (पृ० 3-4) ने हृदय-दर्पण[5] नामक ग्रंथ से उद्धृत कहा है और महिमभट्ट तथा उनके टीकाकार ने भी उस श्लोक को उद्धृत किया है, यद्यपि इसके रचयिता का नामोल्लेख नहीं किया। जयरथ ने भी (पृ०12) भट्टनायक को हृदय-दर्पणकार कहा है। संभव है, यह भट्टनायक के किसी लुप्त ग्रंथ का नाम रहा हो, और उल्लेखों से यह भी प्रतीत हो जाता है कि वह उद्धरण किस ग्रंथ का है, जिसका प्रसंगाधीन श्लोक से ठीक पहले अभिनवगुप्त ने भी उल्लेख किया है। फिर भी यह स्पष्ट नहीं है कि यह हृदय-दर्पण भरत पर रचित उनकी संप्रत्ति लुप्त टीका का ही नाम है। महिमभट्ट के अज्ञातनाम

---

1. पहले दो संग्रह-ग्रंथों में शंकुक को मयूर-पुत्र कहा गया है। कुछ लोगों ने उन्हें 'सूर्य-शतक, का रचयिता मयूर माना है, जो बाण के समकालीन थे।
2. खंड ii.पृ०, 298;
3. खंड i, पृ० 278;
4. जयरथ ने भी पृ० 9 पर इस श्लोक का उल्लेख किया है। माणिक्यचंद्र (पृ० 4) ने भी इस श्लोक को भट्टनायक-लिखित कहा है। पृ० 8 पर भट्टनायक को हृदय-दर्पणकार कहा गया है।
5. काणे (हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० 187) का मत है कि वस्तुतः इस ग्रंथ का नाम सहृदयदर्पण था, किंतु इस मत्त की पुष्टि के लिए पर्याप्त प्रमाणों का अभाव है।

टीकाकार का कथन है कि 'व्यक्ति-विवेक' के समान ही 'हृदय-दर्पण' भी आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत[1] के खंडनार्थ रचा गया था। इस कथन से यह भी विदित हो जाता है कि व्यक्ति-सिद्धांत का अनुयायी होने के कारण अभिनवगुप्त ने अपने ग्रंथों 'लोचन'[2] और 'अभिनव-भारती'[3] में भट्टनायक के मत का खंडन करने की उतनी आवश्यकता क्यों समझी है। महिमभट्ट का भी ध्वनि-सिद्धांत के विरोध का समान उद्देश्य था। उनका दावा है कि इस सिद्धांत पर उनके विचार मौलिक हैं और उन्होंने दर्पण को देखा तक नहीं।[4] हृदयदर्पण के उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि इसकी रचना श्लोकबद्ध थी और लगता तो यही है कि इसका टीका-रूप कभी गद्यमय नहीं रहा।

इस ग्रंथ का उल्लेख करनेवाले कुछ श्लोकों के परीक्षण से मालूम होता है कि इसमें ध्वनि तथा उससे घनिष्ठ संबंध रखनेवाले विषय रस के परस्पर संबंधों का विवेचन रहा होगा। उदाहरणार्थ, आनंदवर्धन ने विधिरूप उक्ति में निषेधात्मक व्यंजना का निरूपण करते हुए (पृ०16) 'भम धम्मिअ वीसत्थो' आदि जो उदाहरण प्रस्तुत किया था, उसका विवेचन करते हुए अभिनव ने निषेधात्मक संस्था के प्रसंग में भट्टनायक के मत का खंडन किया है। एक और स्थान पर 'अत्ता एत्थ णिमज्जई' श्लोक के अर्थ में अहं शब्द को भट्टनायक ने जो महत्त्व दिया है, अभिनव ने उसका खंडन (पृ० 21) किया है। आनंदवर्धन ने इस श्लोक को ऐसी ध्वनि के उदाहरण के रूप में रखा है, जिसमें वाच्यार्थ प्रतिषेधरूप होने पर भी विधिरूप होता है। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि महिमभट्ट की तरह भट्ट-नायक का ग्रंथ, ध्वनि के सामान्य सिद्धांत का खंडन करने के लिए ही नहीं, अपितु आनंदवर्धन कृत उसकी स्थापना का विशेष रूप से खंडन करने के लिए लिखा गया था। जैसा कि आनंदवर्धन (और अभिनव) की व्याख्या से स्पष्ट है, ध्वनिकार ने i. 13 में व्यक्तः रूप का द्विवचन में विशेष प्रयोजन से प्रयोग किया है। भट्टनायक

1. 'दर्पणो हृदय-दर्पणाख्यो ध्वनि-ध्वंस-ग्रंथोऽपि' (i. 4) में महिमभट्ट द्वारा प्रयुक्त दर्पण शब्दगत श्लेष की व्याख्या की गई है।

2. लोचन में (पृ० 27, 28, 63 पर) भट्टनायक और उनके ग्रंथ हृदयदर्पण, दोनों का नामोल्लेख है। अन्य उल्लेख पृ० 11, 12, 15, 19, 21, 29, 36, 67, 68 पर हैं। वे ध्वनि-सिद्धांत के पक्ष में की गई अधिकतम प्रत्यक्ष आलोचना के रूप में हैं।

3. उदाहरण के लिए भरत, पृ० 1 'भट्टनायकस्तु ब्रह्मणा परमात्मना यदुदाहृतं 'इति व्याख्यानं हृदयदर्पणे प्रत्यग्रहीत्।'

4. अदृष्ट-दर्पणा मम धीः, i. 4.

ने द्विवचन के प्रयोग पर आक्षेप किया है। इस पर अभिनवगुप्त ने कहा है—(लोचन पृ० 33) 'भट्टनायकेन यद् द्विवचनं दूषितं तद् गजनिमीलिकयैव।'[1]

इससे यह सूचित होता है कि हृदय-दर्पण भरत के नाट्यशास्त्र की टीका नहीं है।[2] यह गद्यमय टीका सहित अनुष्टुप् छंद में रचित एक श्लोकबद्ध ग्रंथ है। इसमें ध्वनि की और प्रसंगतः रस-ध्वनि की चर्चा की गई है। निस्संदेह, नाट्यशास्त्र पर अपनी टीका में अभिनव ने, और उनका अनुकरण करते हुए परवर्ती अन्य अनेक लेखकों ने तथा लोल्लट और शंकुक के साथ भट्टनायक ने भी रस-सिद्धांत की आलोचना की है, विशेषकर छठे अध्याय में भरत के रस-निष्पत्ति विषयक सूत्र के प्रसंग में (लोचन 67-68, पर भी) किंतु उस पाठ के टीकाकार के रूप में भट्टनायक का कहीं स्पष्ट नामोल्लेख नहीं मिलता। अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र के विशेष अंशों पर भट्टनायक की टीका के विषय में वैसा उल्लेख बहुत कम किया है,[3] जैसा उद्भट, लोल्लट या शंकुक की टीकाओं का किया है।

यह संभव है कि भट्टनायक के विशिष्ट रस-सिद्धांत (जो अभिनव के अपने सिद्धांत से बहुत कुछ साम्य रखता है) का खंडन करने की आवश्यकता ध्वनि-सिद्धांत के प्रबल समर्थक अभिनव गुप्त को विशेष रूप से प्रतीत हुई हो, क्योंकि भट्टनायक ने ध्वनि की व्यंजना-शक्ति को अस्वीकार किया था और भोगीकरण की शक्ति के अभ्युपगम से रस की व्याख्या करने का प्रयत्न किया था। ऐसा कोई निश्चित संकेत नहीं मिलता, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि भट्टनायक के व्यंजना-सिद्धांत के उपसिद्धांत के रूप में प्रतिपादित रस का यह सिद्धांत, उसकी मुख्य विचार-सरणि की ही एक प्रासंगिक अभिव्यंजना नहीं था, जिसका उद्देश्य तो ध्वनि की नवीन कल्पना का खंडन करना और उसके स्थान पर किसी अन्य मत की स्थापना कराना था। संभव है, इसी कारण अपने पूर्ववर्ती नाट्यशास्त्र के टीकाकारों की परिगणना में शार्ङ्गदेव ने भट्टनायक का नामोल्लेख न किया हो।[4]

---

1. अभिनव के इन शब्दों का लोचन से उद्धरण देते हुए महिमभट्ट ने भी इस चर्चा का उल्लेख किया है। (पृ० 19)
2. देखिए भंडारकर कमेमोरेशन वाल्यूम, पृ० 390 (विपक्ष के लिए, जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी 1909, पृ० 450-52) पर वी० वी० सोवानी का यही कथन है।
3. टी० आर० चितामणि ने जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च i. 1927 पृ० 267-76, और प्रोसीडिंग्स, आल इंडिया ओरिएंटल कान्फ्रेंस. इलाहाबाद, 1929, ii. पृ० 155, 193 में 'फ्रेग्मेंट्स ऑफ भट्टनायक' में भट्टनायकोक्ति माने जानेवाले वचनों का संग्रह किया है।
4. देखिए पृ० 31 पर 2 संख्यक पाद-टिप्पणी। पी०वी० काणे भी इस विचार से सहमत हैं। (हिस्ट्री आफ़ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० 214)। इसी प्रकार अपने से पूर्ववर्ती विभिन्न मतों की समीक्षा करते हुए रुय्यक ने भी भट्टनायक का टीकाकार के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र लेखक के रूप में नामोल्लेख किया है और कहा है कि उन्होंने भी ध्वनिस्थापक अन्य मतों के साथ-साथ एक नवीन मत का प्रवर्तन किया था (पृ० 9, निर्णयसागर प्रेस सं०)।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भट्टनायक ध्वन्यालोक के मूल पाठ और आनंदवर्धन-कृत उनकी वृत्ति से परिचित थे; अतएव उनका काल-निर्धारण आनंदवर्धन के पश्चात् ही किया जाना चाहिए। यह निष्कर्ष जयरथ (पृ० 12) के इस कथन से पुष्ट होता है कि भट्टनायक ध्वनिकार के परवर्ती हैं। ध्वनिकार से जयरथ और उनके परवर्ती लेखकों का अभिप्राय सदा आनंदवर्धन से होता था—बेशक तथाकथित ध्वनिकार से आनंदवर्धन का भेद किए बिना ही। इसके विपरीत अभिनव गुप्त ही प्राचीनतम लेखक हैं, जिन्होंने भट्टनायक का नामोल्लेख किया है और उनके उद्धरण दिए हैं। यह भी लगता है कि अभिनवगुप्त, भट्टनायक से बहुत बाद में हुए होंगे। अतएव, संभवतः भट्टनायक नवीं शती के अंतिम चरण और दसवीं शती के अंतिम चरण के मध्यवर्ती काल में हुए हैं और इसलिए उनका काल नवीं शती के अंत और दसवीं शती के आरंभ में निर्धारित करना गलत नहीं है। इस तिथि से और पीटर्सन के सुझाव से यह प्रतीत होता है कि वे उन भट्टनायक से अभिन्न हैं, जिनका उल्लेख कल्हण (v.159) ने किया है और जिसे काश्मीर-नरेश अवंतिवर्मा के पुत्र और उत्तराधिकारी शंकरवर्मा के राज्यकाल में हुआ बताया है।

हर्ष

कहा जाता है कि हर्ष अथवा श्रीहर्ष ने नाट्य-शास्त्र पर एक वार्तिक की रचना की थी। अभिनवगुप्त ने कभी तो नाम लेकर उनका उल्लेख किया है (v. 7, 180[1] xxix, 101) और कभी वार्तिक-कृत या वार्तिककार (i·84, ii.97-98, iv. 267-68)[2] के रूप में। इसके अतिरिक्त, लेखक[3] के नाम के बिना केवल वार्तिक या हर्षवार्तिक (iv.331)[4] का भी उल्लेख है। अध्याय v. 8-15 पर उल्लिखित वार्तिक[5] का गद्य उद्धरण मिलता है। पहले छह अध्यायों से लिए गए उद्धरणों की संख्या अधिक है, किंतु उन्नीसवें अध्याय का एक ही उद्धरण है। शारदातनय (पृ०238) ने हर्ष के मत का निर्देश करते हुए कहा है कि तोटक और नाटक में भेद यह है कि तोटक में विदूषक नहीं होता।[6] वार्तिक के अप्राप्य होने के कारण कोई

1. खंड i, पृ० 211 और 251.
2. खंड i, पृ० 31; i, पृ० 67; i, 172, 174 क्रमशः।
3. खंड i, पृ० 174.
4. खंड i, पृ० 207.
5. खंड i, पृ० 212.
6. प्रभाकर भट्ट के ग्रंथ रसप्रदीप (एक गद्य अंश) में उल्लिखित श्रीहर्ष मिश्र शायद यही लेखक हों।

निश्चित निष्कर्ष संभव नहीं है। इन उल्लेखों से यह प्रतीत होता है कि वार्तिक नाम होते हुए भी,[1] यह पूर्णतया टीका-ग्रंथ नहीं था, किंतु नाट्य-शास्त्र के कुछ अंशों पर आर्या छंद में (कहीं-कहीं गद्य में भी) विवेचन मात्र था।

कीर्तिधर

शार्ङ्गदेव का कथन है (पृ०31, पा०टि० 2) कि कीर्तिधर भरत के ग्रंथ के टीकाकार थे। वे अभिनवगुप्त से पहले ही हुए होंगे, क्योंकि अभिनव का कथन है (अध्याय xxix) कि मैंने स्वयं नंदिकेश्वर का ग्रंथ नहीं देखा, इसलिए मैंने उनके संबंध में कीर्तिधर के वर्णन का ही आश्रय लिया है (देखिए पृ० 20)। अभिनव की टीका में कीर्तिधर अथवा कीर्तिधराचार्य के नाट्य और नृत्त (अध्याय iv)[2] और गेयाधिकार खंड के प्रसंग में अनेक उद्धरण[3] हैं। इनसे मालूम होता है कि शार्ङ्गदेव की तरह कीर्तिधर भी अधिकतर संगीत में रुचि रखते थे, किंतु इससे इस बात का पर्याप्त प्रमाण नहीं मिलता कि उन्होंने भरत के संपूर्ण ग्रंथ पर नियमित रूप से टीका लिखी या नहीं।

अभिनवगुप्त

यद्यपि अभिनवगुप्त ने संस्कृत काव्यालंकार-क्षेत्र में ही टीकाएं लिखीं, फिर भी उनके ग्रंथ विद्वत्ता और आलोचनात्मक सूक्ष्मता के कारण स्वतंत्र ग्रंथों के समान मूल्यवान हैं। काव्यालंकार के क्षेत्र में उनकी ख्याति ध्वनि-सिद्धांत की व्याख्या के कारण है, इसलिए ध्वनिकार और आनंदवर्धन के साथ ही उनकी भी चर्चा की जायगी।

छत्तीस अध्यायों के भरत-रचित ग्रंथ पर अभिनव की **अभिनवभारती** नामक टीका का पूर्ण पाठ, मुद्रित संस्करण अथवा पांडुलिपि के रूप में उपलब्ध नहीं है। अध्याय vii (गद्यांश और आरंभ के कुछ पद्यों को छोड़कर), अध्याय viii और अध्याय xxxiii-xxxiv पर उनकी टीका उपलब्ध नहीं है। साथ ही बीच-बीच में कुछ और पाठ भी लुप्त हैं (उदाहरणतः, पांचवें अध्याय के अंतिम श्लोकों की टीका)। क्यों कि अभिनव ने इसमें 'लोचन' का उल्लेख किया है, इसलिए अभिनव-भारती का लेखन-काल 'लोचन' से परवर्ती ही होना चाहिए।

---

1. नान्यदेव के भरत-भाष्य या भरत-वार्तिक की तरह।
2. देखिए खंड i, पृ० 208.
3. देखिए, जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च में वी० राघवन, खंड v, 1932, पृ० 198; पाठक स्मारक ग्रंथ में काणे, पृ० 388।

नान्यदेव

नान्यदेव अथवा नान्यपति लिखित भरत भाष्य (कई जगह इसे भरत-वार्त्तिक भी कहा गया है), भंडारकर प्राच्य शोध-संस्थान के संग्रह[1] में एक अद्वितीय पांडुलिपि (221 पृष्ठ) के रूप में उपलब्ध है। इसके एक श्लोक में लेखक को मिथिलेश्वर (मिथिला का राजा) कहा गया है और ग्रंथ के पुष्पिका लेख में उन्हें महासामंताधिपति कहा गया है। अभिनवगुप्त इनसे पूर्ववर्ती थे। इस ग्रंथ में उनकी रचनाओं का उपयोग तो किया गया है, लेकिन नामतः उनका उल्लेख शायद ही कहीं हुआ है। नान्यदेव मिथिला के कर्णाटक वंश के संस्थापक थे और उन्होंने 1097 से 1147) ईसवी तक राज्य किया था।[2] लेखक ने ग्रंथमहार्णव नामक अपने एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख भी किया है।

यद्यपि इसे भाष्य कहा गया है, फिर भी भरत के ग्रंथ पर यह कोई प्रत्यक्ष टीका नहीं है। लगता है कि अभिनय के चार प्रकारों को ध्यान में रखकर प्रत्येक के लिए एक-एक खंड की रचना करने की विशाल योजना बनाई गई थी; किंतु उपलब्ध खंड में, जो पर्याप्त बृहदाकार है, केवल वाचिक अभिनय की चर्चा है और वह मुख्य रूप से नाट्यशास्त्र के xxviii से लेकर xxxiii तक के अध्यायों से संबंधित है। इनमें संगीत की चर्चा है। 'पांडुलिपि' प्राचीन होने पर भी दोषपूर्ण है। इसमें पांचवें, सोलहवें और सत्रहवें (आयोजित अध्यायों की कुल संख्या सत्रह बतलाई गई है) अध्यायों का अभाव है। भरत का उल्लेख बहुलता से किया गया है। नारद, शातातप, दत्तिल, काश्यप (बृहत्काश्यप और वृद्ध काश्यप भी,), मतंग, (बृहद्देशी) नंदि-मत, यष्टिक (अन्यत्र अज्ञात), कीर्तिधर और विशाखिल सरीखे अन्य प्राचीन लेखकों का भी प्रायः उल्लेख मिलता है। शार्ङ्गदेव ही एकमात्र लेखक हैं, जिन्होंने नान्यदेव का उल्लेख किया है।

ग्रंथ-सूची

नाट्यशास्त्र और अभिनव-भारती

संस्करण और अनुवाद : (1) शिवदत्त और के० पी० परब, निर्णय-सागर प्रेस संस्करण, काव्यमाला 42, 1894 (अध्याय 1-37). (2) Traite de

1. देखिए भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इस्टीट्यूट की पांडुलिपि-सूची, xii, संख्या 111, 1869-70, पृ० 377-83. ग्रंथ का दूसरा नाम सरस्वतीहृदयालंकार है। तारापुर, थाना, बंबई के डा० सी० पी० देसाई, खैरागढ़ संगीत विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश के लिए इस ग्रंथ का संपादन कर रहे हैं।

2. एपिग्राफिका इंडिका, i, 395 पृ० 364; इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली, vii पृ० 679-87.

Bharata Surle Theatre, Texte Sanskrit, edition critique par Jounny Grosset, t. i. pt. i. Paris 1898 (अध्याय i-14 मात्र, अपूर्ण), in Annales de l'universite de Lyon. रोमन अक्षरों में। (3) अध्याय 18,19,20 और 24, एफ० हॉल द्वारा प्रकाशित दशरूपक के संस्करण में, बिब्लियोग्राफिका इंडिका, कलकत्ता, 1865. (4) Le 17me chapitre de Bharatiya Natyashastra, intitule vag-abhinay par P. Regnaud, in Annales Musee Guimet I, 1880. रोमन अक्षरों में। (5) La Metrique de Bharata, Texte Sanscrit de duex chapitres (15-16), suivi dune interpretation francaise, par P. Regnaud, in Annales du Musee Guimet II, 1881. रोमन अक्षरों में। (6) Textes Sanscrits des 6me et 7me chapitres, in *Rhetorique Sanscirt* par P. Regnaud, Paris, 1884. रोमन अक्षरों में। (7) अध्याय 28, (रोमन अक्षरों में) in contribution a l'etude de la musique hindoue by J. Grosset, Paris, 1888, in Bibl. de la faculte de Lettres pe Lyon; also B. Breloer, Grundelemente der altindischen Music nachh dem Bharatiya Natya-Shastra, Text. Uebersetzung und Erklaerung (ch. 28). Diss. Bonn. 1922. दोनों रोमन अक्षरों में। (8) अध्याय 6 का एक भाग (रस-सूत्र पर), एस०के०दे की पुस्तक 'थ्योरी ऑन रस' के परिशिष्ट रूप में आशुतोष मुकर्जी कमेमारेशन वाल्यूम में प्रकाशित, ओरिएंटालिया, भाग iii, 1922, पृष्ठ 240 आदि, अधुना संशोधित तथा उनके 'सम प्रॉब्लम्स ऑफ संस्कृत पोएटिक्स' में पुनर्मुद्रित कलकत्ता, 1959, पृ० 219-35. (9) अध्याय 6 (रसाध्याय) अभिनव की टीका-सहित, अध्याय के मूल पाठ के अंग्रेजी अनुवाद अहित, सं० सुबोध चंद्र मुकर्जी, कलकत्ता, 1926 (शोध-ग्रंथ, पेरिस यूनिवर्सिटी). (10) सं० बटुकनाथ शर्मा और बलदेव उपाध्याय, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1929, इस संस्करण में 36 अध्याय हैं। (11) अभिनव भारती सहित, सं० एम० रामकृष्ण कवि। चार खंडों में। गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज, बड़ौदा, 1926, 1934 आदि। (इस संस्करण के संबंध में देखिए पी०वी० काणे, हरप्रसाद शास्त्री, पृ० 14-16, 'फंडामेंटली अनक्रिटिकल; इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली में एस० के० दे iii, पृ० 859-68). (12) अध्याय xxxii में प्राकृत छंद, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली में मनमोहन घोष द्वारा संपादित, viii, 1932. (13) मनमोहन घोष द्वारा अंग्रेजी अनुवाद, बिब्लिओग्राफिका इंडिका, भाग i (अध्याय i-xxvi), 1959.

अध्याय तीन

भामह से आनंदवर्धन तक

भामह

परवर्ती अलंकार-साहित्य में भामह का प्राचीनतम उल्लेख ध्वन्यालोक (पृ०39,207) में आनंदवर्धन की वृत्ति में दो स्थलों पर मिलता है। इसके अतिरिक्त आनंदवर्धन ने पृ० 236 पर भामह का नाम लिए बिना उनका उद्धरण दिया है (iii. 27). इसके बाद प्रतिहारेंदुराज की टीका में भी एक रोचक उल्लेख है (पृ० 13)। उसके अनुसार उद्भट ने संभवतः भामह के ग्रंथ पर भामह-विवरण नामक टीका लिखी थी। अभिनवगुप्त (लोचन पृ० 10, 40, 159, विवरणकृत) और हेमचंद्र (टीका पृ० 17, 110) ने इस कथन की पुष्टि की है। रुय्यक ने इस टीका का सामान्यतः भामहीय उद्भट-लक्षण (पृ० 183) के नाम से उल्लेख किया है और समुद्रबंध ने इसे काव्यालंकार-विवृति (पृ० 89) कहा है। उद्भट के स्वतंत्र ग्रंथ, काव्यालंकार-संग्रह में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनमें भामह द्वारा दिए गए अलंकारों के कुछ लक्षणों का यथावत् भाव तो ग्रहण किया ही गया है, साथ-ही-साथ उनकी भाषा को भी तद्वत् रूप में अपनाने में संकोच नहीं किया गया।[1]

उद्भट के समकालीन विद्वान्, वामन भी भामह के ग्रंथ से परिचित प्रतीत होते हैं।[2] उदाहरणार्थ भामह ने उपमा अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है

---

1. उदाहरण के लिए रसवत्, अतिशयोक्ति, ससंदेह, सहोक्ति, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, यथासंख्य, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्त, आक्षेप, विभावना, विरोध, और भाविक आदि की परिभाषाएँ। अभिनवगुप्त और अन्य परवर्ती लेखकों ने भामह के पर्याप्त उद्धरण दिए हैं।

2. 'भामहालंकार' (किंतु पहले श्लोक के अनुसार 'काव्यालंकार') नामक भामह के ग्रंथ में छह परिच्छेद अथवा अध्याय और 400 श्लोक हैं। उसमें इन विषयों का निरूपण है—

(क) काव्य-प्रयोजन, काव्य-लक्षण तथा काव्य-भेद के विषय में अनेक मतों का उल्लेख, सर्गबंध, कथा और आख्यायिका, वैदर्भी और गौडी रीतियों का उल्लेख, कुछ सामान्य काव्य-दोष। (ख, ग) तीन गुण (माधुर्य, प्रसाद और ओज) तथा अलंकार-विवेचन, जो अध्याय iii के साथ समाप्त हो जाता है (अलंकारों की सूची के लिए देखिए खंड ii, अध्याय ii (i) (घ) ग्यारह दोषों के नाम, लक्षण और उदाहरण, (ङ) अशुद्ध प्रतिज्ञा, हेतु अथवा दृष्टांत-जन्य ग्यारह दोष, (च) सौशब्द्य अथवा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध प्रयोग (वामन ने अपने ग्रंथ के पाँचवें अधिकरण में इस पर और विस्तार से लिखा है।)

(ii.30)—विरुद्धेनोपमेयेन ···उपमेयस्य यत् साम्यं गुणलेशेन सोपमा; और वामन ने इस लक्षण का केवल अन्वय करके उसे सूत्र-रूप में इस प्रकार व्यक्त किया है—उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशत: साम्यं उपमा (iv. 2. 1.)।[1] उपमा में दृष्ट अर्थातिशय के संबंध में भामह ने इस प्रकार कहा है (ii. 50):—

यस्यातिशयवानर्थः कथं सोऽसंभवो मतः ।
इष्टं चातिशयार्थत्वं उपमोत्प्रेक्षयोर्यथा ।।

वामन के iv.2.20 और 21 (अनुपपत्तिरसंभव: और न विरुद्धोऽतिशय:) को इसके साथ पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि वामन का भी यही मत है। पहले सूत्र पर अपनी वृत्ति में उन्होंने कहा है—उपमायां अतिशयस्येष्टत्वात्' और अगले सूत्र में स्पष्ट कर दिया है कि अतिशय यदि विरोधी हो तो परिहार्य है। वामन ने एक अज्ञातनाम कवि का श्लोक उद्धृत किया है। भामह ने (ii. 46) उसी श्लोक के रचयिता का नाम शाखवर्धन बताया है। किसी शास्त्रीय ग्रंथ में एक-सी प्रतिष्ठित शब्दावली के बारंबार प्रयोग अथवा एक ही प्रकार के संदर्भ में एक ही श्लोक के उदाहरण के उद्धरण के आधार पर कोई अंतिम निर्णय नहीं किया जा सकता। वामन ने v. 2. 38 पर अपनी वृत्ति में वस्तुत:—यद्यपि शुद्ध रूप में नहीं—भामह ii. 27 के श्लोकांश को उद्धृत किया है और उसमें प्रयुक्त शब्द भंगुरम् के विशिष्ट प्रयोग पर टिप्पणी की है।[2]

इस प्रकार भामह की तिथि, उद्भट और वामन से पूर्व निर्धारित करना ही उचित होगा और वे दोनों आठवीं शती के अंतिम चरण में हुए हैं, जैसा कि आगे सिद्ध किया जाएगा। इस प्रकार भामह की तिथि की एक अंतिम सीमा प्राप्त हो जाती है, अर्थात् यह निश्चय हो जाता है कि भामह कम-से-कम कितने प्राचीन हैं।

दूसरी सीमा के विषय में बड़ा मतभेद रहा है। पाठक के अनुसार भामह vi. 36 में न्यासकार का उल्लेख है, जो स्पष्टत: काशिका पर न्यास (वरेंद्र अनुसंधान संस्था, राजशाही, 1913, 1919-25) नामक टीका के रचयिता बौद्ध विद्वान् जिनेंद्रबुद्धि हैं। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि न्यासकार (अर्थात् जिनेंद्र) 700 ईसवी के लगभग हुए हैं, इसलिए भामह की तिथि आठवीं

1. नाट्यशास्त्र, xvi.41. से तुलना कीजिए।

2. भट्टि (x-21) की जयमंगला टीका में यह श्लोक भामह के नाम के साथ उद्धृत है। यह व्यक्ति-जीवित (भामह के अन्य श्लोकों के साथ) और 'लोचन' पृ० 40 में भी है, परंतु रचयिता का नाम नहीं दिया गया है।

शती निर्धारित की जानी चाहिए।[1] इसके विपरीत के॰पी॰ त्रिवेदी ने यह प्रमाणित किया है[2] कि न्यासकार के मत के उल्लेख को निर्दोष रूप से जिनेंद्रबुद्धि के मत का उल्लेख नहीं माना जा सकता। माधव के उद्धरणों से और बाण के हर्षचरित[3] में एक श्लेषमय स्थल से कुछ अन्य न्यासकारों का अस्तित्व भी संभव है। पाठक द्वारा जिनेंद्रबुद्धि की निर्धारित तिथि की शुद्धता पर संदेह प्रकट करके जैकोबी[4] ने पाठक-विरोधी मत को और भी पुष्ट कर दिया है। जैकोबी के आधार कीलहार्न हैं, जिनके अनुसार जिनेंद्रबुद्धि संभवतः हरदत्त (मृत्यु 878 ईसवी) के पश्चात् हुए हैं।

भामह ने i. 42 में कहा है कि साहित्य में मेघादि का दूत के रूप में उल्लेख करना उचित नहीं। इस प्रसंग में मेघदूत की ओर संकेत मानने से[5] भी भामह के काल की समस्या का समाधान नहीं होता। डा॰ पाठक के इस सुझाव से भी कोई सहायता नहीं मिलती कि माघ ने दूसरे सर्ग के श्लोक 86 में भामह का संकेत किया है।[6] और इस विवाद में पड़ने से भी कोई लाभ नहीं कि भामह के ग्रंथ के आदि और अंत के श्लोकों से सार्वभक्त और रक्रिलगोमिन के पुत्र भामह के बौद्ध होने का संकेत मिलता है या नहीं।[7] हां, जैकोबी ने यह अवश्य बताया है[8] कि भामह ने बौद्ध दार्शनिकों की शिक्षा का अपने ग्रंथ के पांचवें अध्याय में पर्याप्त

---

1. इंडियन एंटिक्वेरी, खंड xli पृ॰ 232 इत्यादि; पृ॰ 235 पर जर्नल ऑफ दि बंबई ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, खंड xxiii पृ॰ 25-26 भी देखिए।
2. इंडियन ऐंटिक्वेरी, खंड xlii पृ॰ 204 इत्यादि और पृ॰ 260-1 पर।
3. कृत-गुरु-पदन्यासाः (निर्णयसागर प्रेस सं॰ बंबई, पृ॰ 96) की व्याख्या शंकर ने इस प्रकार की है —कृतोऽभ्यस्तो गुरुपदे दुर्बोधशब्दे न्यासो वृत्तिविवरणो यैः।
4. Sb. der preuss. Akad. xxiv (1922), pp. 210-11
5. Haricand, L' Art poetique de l'Inde. p. 77; J. Nobel in ZDMG lxxiii, p 192-
6. किंतु काव्य के अंग के रूप में शब्द और अर्थ के विषय में दंडी i.10; वामन i.1.1.(वृत्ति); रुद्रट ii. 1 और आनंदवर्धन पृ॰ 5 का एक-जैसा दृष्टिकोण द्रष्टव्य है।
7. इस विवाद पर देखिए, जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी 1905, पृ॰535 इत्यादि; वही, 1908 पृ॰ 543 इत्यादि, प्रतापरुद्र में त्रिवेदी की प्रस्तावना, हरिचंद-उपर्युक्त ग्रंथ में पृ॰ 71; पाठक, इंडियन एंटिक्वेरी, 1912, पृ॰ 235,
8. उपर्युक्त ग्रंथ में पृ॰ 211-12 में जी॰ टुच्ची (इंडियन एंटिक्वेरी, (जून 1930) का मत है कि भामह के तार्किक सिद्धांत 'भामह ऐंड दिङ्नाग' शीर्षक लेख से लिया गया है, धर्मकीर्ति से नहीं, जो भामह के परवर्ती हैं।

प्रयोग किया है और इसलिए भामह की तिथि की ऊपरी सीमा बौद्ध आचार्य धर्मकीर्ति के समय का ध्यान रखकर ही निर्धारित करनी चाहिए, क्यों कि भामह ने उनके दार्शनिक मतों का उपयोग करने में उनकी शब्दावली तक का यथावत् उपयोग कर डाला है। जैकोबी ने धर्मकीर्ति की तिथि युआन च्वांग की भारत-यात्रा (630-643 ईसवी) और यि-त्सिग की यात्रा (673-695 ईसवी) के बीच की अवधि में निर्धारित की है। युआन च्वांग धर्मकीर्ति से परिचित थे, जब कि यित्सिंग ने कुछ ही पूर्ववर्त्ती अन्य विद्वानों के साथ-साथ उनका भी उल्लेख किया है।[1] अतएव भामह की तिथि की ऊपरी सीमा सातवीं शती ईसवी के तीसरे चरण में निर्धारित की जानी चाहिए। शांतरक्षित ने, जिनका समय 705-762 ई॰ के लगभग माना जाता है, अपने ग्रंथ 'तत्वसंग्रह' (गायकवाड़ ओरियंटल सीरिज, सं॰ 1926 पृ॰ 219 श्लोक 912-14) में बौद्ध अपोहवाद की आलोचना करते हुए भामह के तीन श्लोकों (vi.17-19) को उद्धृत किया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि भामह की तिथि सातवीं शती के अधिक पश्चात् निर्धारित नहीं की जा सकती।

अतएव, भामह का काल सन्निकटतः सातवीं शती के अंतिम चरण और आठवीं शती के मध्य की अवधि में निर्धारित किया जा सकता है। हो सकता है कि वे धर्मकीर्ति के कनिष्ठ समकालीन रहे हों और अपने टीकाकार उद्भट से कुछ समय पहले हुए हों। इसलिए उनका काल यदि सातवीं शती के अंतिम और आठवीं शती के प्रारंभिक चरण में निर्धारित किया जाय तो अनुचित नहीं होगा।

२

भरत द्वारा अलंकारों के विवेचन और तत्पश्चात् भामह द्वारा उनके सविस्तर निरूपण के पारस्परिक संबंध पर पहले ही चर्चा हो चुकी है। भरत के ग्रंथ में उस विषय पर विद्यमान प्राचीनतम निरूपण को उस समय तक की उपलब्ध सामग्री मिलती है, (पर स्वयं भामह का कथन है कि उनसे पूर्ववर्ती कई आचार्य थे और संभवतः उन्होंने उनकी रचनाओं का उपयोग किया है।) इन पूर्ववर्ती (अथवा सम-

1. देखिए ताकाकुसु, 'रिकार्ड ऑफ दि बुद्धिस्ट रिलिजन' 1896, पृ॰ 181; तुलना कीजिए lviii. अपने ग्रंथ Geschichte (अनु॰ Schiefner 184-5) में तारानाथ ने उन्हें तिब्बती राजा 'स्यांग वत्तान-गंपो' जिसकी 650 ई॰ के आसपास मृत्यु हुई, का समकालीन माना है; तुलना कीजिए, कर्न-कृत मैन्युअल ऑफ इंडियन बुद्धिज्स पृ॰ 130.

कालीन) आचार्यों को अन्ये,[1]अपरे[2] अथवा केचित्[3] आदि शब्दों से निर्दिष्ट करते हुए भामह ने ii.40, 88 में दो बार मेधाविन का नामोल्लेख किया है। रुद्रट xi. 24 पर अपनी टीका में नमि-साधु ने इनमें से एक स्थल को उद्धृत किया है। वहाँ अन्य दो स्थलों पर भी (अर्थात् i.2, ii. 2 की टीका में) मेधाविरुद्र पूरा नाम दिया गया है। नाम का यही रूप राजशेखर (पृ०12) में भी मिलता है।[4] अतएव यह लेखक भामह से पूर्व और शायद भरत के पश्चात् हुआ है।

भामह का ग्रंथ छह अध्यायों में विभक्त है और उसमें कुल मिलाकर 400 श्लोक (अधिकतर अनुष्टुप्) हैं, (देखिए पृ० 44, पा० टि० 2)। आकार में यह दंडी के ग्रंथ से (जिसमें लगभग 660 श्लोक हैं) छोटा है। भट्टि काव्य की जयमंगला नामक टीका के आधार पर किसी समय यह माना जाता था[5] कि उस काव्य[6] में अलंकार-संबंधी सर्ग, विशेषत: दशम सर्ग, केवल भामह के अलंकारों के उदाहरण देने के लिए लिखा गया था, किंतु भामह की जो तिथि अब निर्धारित की

1. i. 13, 24; ii.4, 57; iii.4; iv.12 इत्यादि।
2. i.14, 31; ii.6, 8; iii.4; iv.6 इत्यादि।
3. ii.2, 37, 93; iii.54 इत्यादि। उन्होने ii.19 में रामशर्मा का भी उल्लेख किया है किंतु ii .58 से यह लेखक कवि प्रतीत होता है। उसके ग्रंथ का नाम अच्युतोत्तर दिया गया है। ii.45 से निर्दिष्ट राजमित्र iii.10 से काव्य का नाम प्रतीत होता है। न्यास (vi. 36) , पाणिनि (vi.62-63) और कणभक्ष (v.17) के अतिरिक्त शाकवर्धन (ii.47) और अश्मकवंश नामक ग्रंथों का भी उल्लेख मिलता है। तैथिक दृष्टि से इन उल्लेखों का अधिक महत्व नहीं है।
4. राजशेखर ने मेधाविरुद्र के नाम के साथ कुमारदास का नाम जोड़ दिया है और कहा है कि वे जन्मांध कवि थे। यह नाम दो भिन्न कवियों के नाम को मिलाने से नहीं बना है, जैसा कि कुछ लेखकों का सुझाव रहा है और न 'त्रिकाव्यशेष' के परवर्ती साक्ष्य के आधार पर उसे कालिदास का दूसरा नाम ही माना जा सकता है। हुल्ट्श (मेघदूत संस्करण, पृ० xi) का कथन है कि वल्लभदेव ने अपनी टीका (xi.6) में मेधाविरुद्र का उल्लेख किया है, किंतु प्रकाशित ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं मिलता।
5. ZDMG lxiv, p. 130 इत्यादि में जैकोबी का लेख।
6. ऐसा माना जाता है कि भट्टि काव्य के प्रसन्न कांड, अर्थात् दशम, एकादश और द्वादश सर्गों की रचना अलंकारशास्त्रीय विषयों के उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए की गई थी। दशम सर्ग (75 श्लोकों) में अलंकारों के उदाहरण हैं, एकादश सर्ग (47 श्लोकों) में माधुर्य गुण के और द्वादश सर्ग (87 श्लोकों) में भाविक नामक प्रबंध-गुण के उदाहरण हैं। भट्टि काव्य में 22 सर्ग हैं, जिनमें मुख्यत: संस्कृत व्याकरण के विषयों के उदाहरण दिए गए हैं।

गई है, उसे देखते हुए भामह और भट्टि के परस्पर संबंध के विषय में धारणा बदलनी अपेक्षित है। भट्टि ने बाईसवें सर्ग के पैंतीसवें श्लोक में कहा है कि उन्होंने अपने काव्य की रचना श्रीधरसेन-शासित वलभी नगरी में की[1]। ऐसा प्रतीत होता है कि 500 और 650 ई० के बीच की अवधि में वलभी में श्रीधरसेन नामके चार राजा हुए हैं। उनमें से अंतिम श्रीधरसेन 651 ई० में विद्यमान थे, जैसा कि उनके उक्त वर्ष के अंतिम दानपत्र से विदित होता है। अतएव, भट्टि को यदि अधिक प्राचीन नहीं, तो भी कम-से-कम सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में तो मानना ही होगा। और यदि उनके ग्रंथ के संपादक के निष्कर्ष[2] का आधार मानकर उनका काल छठी शती के अंत और सातवीं शती के आरंभ में मान लें तो निस्संदेह उन्हें भामह से लगभग एक शती पूर्ववर्ती मानना होगा। शायद भामह उनके ग्रंथ से परिचित थे और इसीलिए उन्होंने प्रहेलिका-जैसी (ii.20) रचनाओं के काव्यत्व को अस्वीकार करते हुए कहा है:—

काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवः सुधियामेव हंत दुर्मेधसो हताः॥

इसमें निस्संदेह भट्टि की निम्नलिखित गर्वोक्ति की ओर संकेत है—

व्याख्यागम्यमिदं काव्यं उत्सवः सुधियामलम्।
हता दुर्मेधसश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतया मया॥

भट्टि के ग्रंथ में अलंकारों के विवेचन को भामह से पूर्ववर्ती अलंकार-निरूपण के इतिहास की शृंखला की एक लुप्त कड़ी माना जा सकता है। यह एक विचित्र संयोग है कि भामह और भट्टि के अलंकार-निरूपण में बहुत साम्य है। उनका क्रम एक-सा है, संख्या लगभग बराबर है। नाम और लक्षण भी एक-से हैं। स्पष्टतः दृष्टिगोचर होनेवाले इस साम्य के कारण ही संभवतः यह मत प्रचलित हो गया कि भट्टि ने भामह का अनुकरण किया है; किंतु सूक्ष्म परीक्षण से प्रमाणित हो गया है कि इन सामान्य समताओं के होते हुए भी इतनी मात्रा में विषमताएं दृष्टिगोचर होती हैं कि इनमें से किसी ने भी जानबूझकर दूसरे का मतानुकरण नहीं

---

1. काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां। श्रीधरसेन नरेंद्रपालितायाम्॥
जयमंगला में दूसरे चरण का पाठांतर श्रीधर-सूनु-नरेंद्र है, किंतु वलभी के राजाओं की उपलब्ध नामावलि में श्रीधर-पुत्र-नरेंद्र का कोई उल्लेख नहीं मिलता, इसलिए इस पाठांतर को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता मल्लिनाथ और भरतमल्लिक ने इस श्लोक की टीका नहीं की है।

2. सं० बंबई संस्कृत सीरीज, भूमिका, पृ xxii.

किया है। समानताओं से केवल यह प्रकट होता है कि ये दोनों लेखक, काल की दृष्टि से, एक-दूसरे से इतने अधिक आगे-पीछे नहीं हुए कि अलंकारों की संख्या, उनके क्रम अथवा लक्षण आदि में अधिक अंतर हो पाता। इसके साथ उनका परस्पर वैषम्य यह लक्षित करता है कि उनकी रचनाओं का स्रोत एक नहीं था।

भट्टि-काव्य के सर्गविशेष में कवि का स्पष्ट उद्देश्य अपने समय के अलंकारों और उनके भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करना है। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वह सर्ग लिखते समय कवि ने अपने युग में विद्यमान अलंकार-शास्त्र के किसी विशिष्ट ग्रंथ का अनुसरण किया होगा। उन्होंने 38 मुख्य अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अलंकारों के उपभेदों के भी उदाहरण हैं। इन उपभेदों की संख्या 39 है। उन्होंने स्वयं इन अलंकारों के नाम नहीं दिए हैं। उनका नामोल्लेख जयमंगला और कुछ पांडुलिपियों में मिलता है, जिनमें परंपरागत अलंकार-नाम सुरक्षित हैं।[1] ये नाम एक नगण्य अपवाद (उदार-उदात्त) को छोड़कर वे ही हैं, जो भामह के ग्रंथ में दिए गए हैं। यदि भामह और भट्टि के अलंकारों की तुलानत्मक सारणी बनाई जाय तो ज्ञात होगा कि भामह के प्रारंभिक 23 अलंकारों का प्रायः वही क्रम है, जो भट्टि में है, अंतर केवल रूपक और दीपक तथा अर्थांतरन्यास और आक्षेप के युग्मों के क्रम में हैं, जो उलटे क्रम में दिए गए हैं। शेष अलंकारों का क्रम कुछ भिन्न है, क्योंकि भामह ने अप्रस्तुत प्रशंसा को स्वीकार किया है (जिसे भट्टि ने छोड़ दिया है) और 'विरोध' अलंकार से पहले के पांच अलंकारों के नाम यद्यपि भट्टि में भी मिलते हैं, परंतु उनका क्रम भिन्न है। विरोध से आगे फिर वही क्रम है, जो भट्टि में है, किंतु भामह ने 'भाविक' का उल्लेख किया है (जिसका उदाहरण भट्टि ने पृथक रूप से एक अन्य सर्ग में दिया है)। इसके अतिरिक्त भट्टि ने एक अज्ञात अलंकार 'निपुण' भी माना है और हेतु तथा वार्ता नामक दो अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें भामह ने स्पष्टतया स्वीकार किया है। 'जयमंगला' की व्याख्या से तो यही प्रमाणित होता है कि जहां अलंकार (और उनके उपभेद) समान हैं,[2] वहां कुछ अपवादों को छोड़कर, भट्टि ने सामान्यतः भामह के लक्षणों का ही अनुसरण किया है।

1. अनेक श्लोकों में आए हुए अलंकारों के नामकरण के विषय में टीकाकारों में मतभेद है। 'जयमंगला' का प्रकाशन निर्णय सागर प्रेस की काव्यमाला (1887) के अंतर्गत हुआ है और मल्लिनाथ की टीका का बंबई संस्कृत सीरीज सं० (दो खंड, 1898) में 'जयमंगला' के साथ भरत मल्लिक की टीका कलकत्ता से (1871-73) दो खंडों में संपादित की गई है।

2. उदाहरण के लिए, आक्षेप अलंकार के दो भेद अर्थात् 'उक्तविषय' और 'वक्ष्यमान-विषय' भामह और भट्टि दोनों में उपलब्ध हैं, जब कि उन्हें न तो वामन की भिन्न व्याख्या

ये अपवाद संख्या में कम होने पर भी महत्त्वपूर्ण हैं, विशेषरूप से इन अलंकारों के प्रसंग में। 'यमक' (भट्टि ने इसके 20 किंतु भामह ने केवल 5 उपभेद बताए हैं), 'उपमा' (जिसके उपभेदों का विवेचन एक-सा नहीं है), 'रूपक' (जिससे भट्टि निर्दिष्ट, चार उपभेद भामह के दो उपभेदों से मेल नहीं खाते), 'अप्रस्तुत-प्रशंसा' जिसे भट्टि ने छोड़ दिया है और 'निपुण' जिसे भामह ने छोड़ दिया है, का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही भामह ने प्रहेलिका, हेतु, सूक्ष्म, लेश और वार्ता अलंकारों का नामोल्लेख तो किया है, किंतु उन्हें स्वीकार नहीं किया। भट्टि ने इनमें से केवल हेतु (शायद पुनर्विचारस्वरूप) और 'वार्ता' को स्वीकार किया है। भट्टि 'स्वभावोक्ति' को अलंकार नहीं मानते। भामह ने इसका नाम तो लिया है, किंतु इसे माना नहीं है। संभव है, भट्टि ने अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करने के प्रसंग की समाप्ति भामह के अनुसार ही आशीः अलंकार के साथ कर दी हो, किंतु अपने समय में प्रचित दो अलंकारों, हेतु और निपुण, को भी परिशिष्ट रूप में सम्मिलित कर लिया हो।[1] भाविक को भामह और दंडी दोनों ने प्रबंध-गुण कहा है और भट्टि ने भाविकत्वप्रदर्शन नामक सर्ग (xii) में पृथक रूप से इसके उदाहरण दिए हैं। किंतु सबसे अधिक असमानता यमक, रूपक और उपमा के प्रसंग में दृष्टिगोचर होती है। यमक के वर्गीकरण और विवेचन में कोई भी दो लेखक सहमत नहीं हैं; और इस विषय पर भट्टि तो भरत, दंडी, रुद्रट, अग्नि-पुराणकार और भोज आदि किसी प्राचीन प्रामाणिक आचार्य से सहमत नहीं हैं। हो सकता है कि भट्टि ने किसी ऐसे लेखक की रचना का अनुसरण किया हो, जिसे हम नहीं

का ही ज्ञान है और न दंडी के सूक्ष्म भेदीकरण का। 'दीपक' और उसके तीन उपभेदों के संबंध में भी यही बात लागू होती है। वे भी भरत, दंडी अथवा वामन द्वारा की गई व्याख्या के अनुरूप नहीं हैं। भट्टि ने श्लेष के तीन उपभेदों, अर्थात्, सहोक्ति श्लेष, उपमा-श्लेष, और हेतु-श्लेष के उदाहरण दिए हैं और भामह ने (iii.17) उनका उल्लेख किया है। दंडी और उद्भट आदि परवर्ती लेखकों ने श्लेष का अन्य कई अलंकारों के साथ भी उल्लेख किया है। भामह द्वारा स्वीकृत इस विभाजन का प्रतीहारेंदुराज ने स्पष्ट रूप से संकेत (पृ० 47) किया है—भामहो हि "तत्, सहोक्त्युपमाहेतुनिर्देशात् त्रिविधं यथा" इति श्लिष्टस्य त्रैविध्यमाह।

1. 'जयमंगला' में यह अलंकार 'उदार' अथवा 'उदात्त' में ही अंतर्भूत कर लिया गया है। परंतु भरतमल्लिक और मल्लिनाथ ने दंडी और देवानाथ को प्रमाण मानकर इसे 'प्रेयस' का उदाहरण माना है। ये देवानाथ संभवतः मम्मट के टीकाकार देवानाथ ही हैं।

जानते[1]। रूपक के वर्गीकरण में भामह ने 'समस्त-वस्तु-विषय' और 'एकदेश-विवर्ति' दो भेद किए हैं। भट्टि ने इससे भिन्न परंपरा का अनुसरण किया है और चार उपभेदों का उल्लेख किया है, जो क्रमशः इस प्रकार हैं—कमलक (विशिष्टोपमा-युक्त), अवतंसक (शेषार्थान्ववसित अथवा खंड-रूपक)[2], 'अर्थ-रूपक' और ललामक (अन्वर्थोपमा-युक्त)। उपमा के उपभेदों का विवेचन करते हुए भट्टि ने भामह की तरह 'उपमा' के 'इव' और 'यथा' वाचक शब्दोंवाले उदाहरण दिए हैं। उनकी लुप्तोपमा और तद्धितोपमा शायद किसी हद तक भामह की 'समासोपमा' और 'वत्' बाचक शब्द के साथ 'उपमा' के समरूप हैं; किंतु भट्टि ने भामह की 'प्रतिवस्तूपमा' का उदाहरण नहीं दिया है और न ही 'निंदोपमा' 'प्रशंसोपमा', 'आचिख्यासोपमा' और 'मालोपमा' को निर्दिष्ट किया है। भामह ने इनका खंडन किया है, किंतु दंडी ने इनको स्वीकार किया है।[3] इनके साथ-साथ, भामह के ग्रंथ में भट्टि के 'सहोपमा' और 'समोपमा' जैसे अलंकार नहीं हैं।

इस संक्षिप्त विवेचन[4] से यह स्पष्ट हो जाता है कि भट्टि और भामह ने, उपभेदों को छोड़ दें तो, स्वतंत्र अलंकारों का विवेचन समान रूप से किया है। यह

1. यदि इनमें से यमक के कुछ उपभेदों का भट्टि काव्य में उल्लेख न होता तो उनका नाम ही लुप्त हो गया होता। परवर्ती लेखकों ने उनसे नितांत भिन्न उपभेदों का नामोल्लेख किया है। हां, उनमें से कुछ नाम भरत में सुरक्षित हैं। उन्होंने दस उपभेदों का वर्णन किया है, किंतु अधिकांशत: उनके लक्षण भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, भट्टि का 'समुद्ग' वही अलंकार है, जिसका लक्षण भरत ने भी दिया है, किंतु भट्टि ने x. 2 में जिसे युक्पाद कहा है, उसे भरत ने 'विक्रांत' कहा और रुद्रट ने 'संदष्ट' नाम दिया है। इसी प्रकार भट्टि ने x. 3 में जिसे 'पादांत' कहा है, उसे भरत ने 'आम्रेडित' संज्ञा दी है। भरत का 'चक्रवाल' भट्टि के 'चक्रवाल' से तो भिन्न है, किंतु 'कांचि' के समरूप है, जब कि भरत का कांचि अलंकार एक बिलकुल भिन्न उपभेद है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी भी प्राप्य ग्रंथ में 'वृंत', 'मिथुन' अथवा 'विपथ' नाम के अलंकार नहीं मिलते, किंतु संभव है कि भट्टि के परवर्ती लेखकों के ग्रंथों में केवल भट्टि द्वारा वर्णित इस प्रकार के अलंकार किन्हीं अन्य नामों से मिलते हों। भट्टि काव्य में इनका उल्लेख करते हुए जयमंगलाकार ने शायद किसी ऐसी श्रुति-परंपरा अथवा प्रमाण-परंपरा का अनुसरण किया है, जो संप्रति अज्ञात है।
2. इनका वर्णन 'वाग्भटालंकार' iv. 66 में है।
3. भरत (xvi. 49-50) ने निंदोपमा और प्रशंसोपमा का उल्लेख किया है। उनकी कल्पितोपमा शायद आचिख्यासोपमा के समरूप है। वामन (iv. 2. 2) ने कल्पितोपमा को माना है, किंतु उसकी परिभाषा भिन्न रूप में की है।
4. भामह और भट्टि द्वारा किए गए विवेचन में साम्य और भेद के विषय में और भी देखिए एच० आर० दिवाकर, जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1929 पृ० 825-41.

ध्यान देने की बात है कि भामह ने 'अनन्वय', 'ससंदेह', 'उपमा-रूपक' और 'उत्प्रेक्षावयव' को भट्टि की तरह स्वतंत्र अलंकार माना है, जबकि दंडी ने प्रथम दो अलंकारों को उपमा के और अंतिम दो को क्रमशः 'रूपक' और 'उत्प्रेक्षा' के उपभेद माना है।[1] भट्टि की तरह भामह ने भी 'प्रहेलिका', 'सूक्ष्म' और 'लेश' को अस्वीकार किया है, किंतु भामह द्वारा अस्वीकृत 'वार्ता' और 'हेतु' अलंकारों को भट्टि ने स्वीकार किया है। दंडी इन सब को स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं, किंतु 'वार्ता' के स्थान में उन्होंने अधिक व्यापक अलंकार 'स्वभावोक्ति' को माना है। भामह ने इस अलंकार को मान्यता नहीं दी है और न ही भट्टि ने इसका उदाहरण प्रस्तुत किया है। स्वतंत्र अलंकारों के विषय में सबसे बड़ी विसंगति यह है कि भट्टि ने 'अप्रस्तुतप्रशंसा' को तो छोड़ दिया है, जिसे बाद में स्वभावोक्ति की तरह मान्यता प्राप्त हुई है, किंतु 'निपुण' का उल्लेख किया है, जिसका परवर्ती साहित्य में अस्तित्व नहीं मिलता। उपभेदों के संबंध में विसंगतियां और भी स्पष्ट हैं। संभव है कि अलंकारों का सूक्ष्म विभेदीकरण, जैसा कि दंडी प्रोक्त स्वतंत्र अलंकारों के असंख्य उपभेदों में द्रष्टव्य है, किसी सिद्धांतकार की निजी प्रतिभा का आविष्कार हो, किंतु यह तर्क भट्टि पर अच्छी तरह लागू नहीं होता, क्योंकि भट्टि स्वयं सिद्धांतकार नहीं थे। भट्टि का उद्देश्य अपने समय में प्रचलित अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करना मात्र था और संभव है, उन्होंने किसी प्रामाणिक ग्रंथ को आधार माना हो। इससे केवल यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भट्टि ने किसी ऐसे ग्रंथ का उपयोग किया हो, जो भामह को ज्ञात नहीं था, किंतु जो स्वयं उनके अपने स्रोत-ग्रंथ से अधिक भिन्न नहीं था। इन दोनों लेखकों की बीच की अवधि (अंतराल) में अलंकार-निरूपण की स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ। केवल 'यमक' और 'रूपक' के विवेचन में सरलता आ गई, निपुण अलंकार का लोप हो गया तथा अप्रस्तुतप्रशंसा जैसे मुख्य अलंकार अथवा प्रतिवस्तूपमा जैसे अलंकार-उपभेद को सम्मिलित कर लिया गया। यह प्रगति इतनी अधिक नहीं है, जितनी भरत और भट्टि के बीच की अवधि में हुए विकास से लक्षित होती है, जहां भरत ने केवल चार स्वतंत्र अलंकारों का उल्लेख किया था, जबकि भट्टि ने अड़तीस अलंकार गिनवाए हैं।[2]

---

1. वामन को छोड़कर अन्य सभी परवर्ती लेखकों ने इस विषय में दंडी का मतानुसरण किया है। वामन इन्हें स्वतंत्र अलंकार मानते हैं। पीटर्सन के अनुमान के विपरीत, vi.3-33 में दंडी ii.358 की आलोचना की गई है।
2. भामह नामके अनेक लेखक संस्कृत साहित्य में नहीं हैं। हां, इस नाम के एक लेखक वररुचि के 'प्राकृत-प्रकाश' के एक टीकाकार हैं, पर वह भामह शायद हमारे भामह से

ग्रंथ सूची

संस्करण—(१) के० पी० त्रिवेदी द्वारा बंबई संस्कृत सीरीज, बंबई, 1909 में प्रकाशित ग्रंथ 'प्रताप-रुद्र' के सं० के अनुबंध viii के रूप में छपा है। यह संस्करण मद्रास की पांडुलिपि संख्या 12920 (Cat xii, पृ० 8675) पर आधारित है। ग्रंथ का नाम है भामहालंकार। (२) पी० वी० नागनाथ शास्त्री द्वारा अंग्रेजी अनुवाद और टिप्पणी सहित, तंजोर से 1927 में प्रकाशित। इसके अतिरिक्त केवल मूल भी तंजोर से 1927 में छपा। (3) डी० एन० शर्मा और बी० उपाध्याय द्वारा, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस से 1928 में छपा। पांडुलिपि की सामग्री अपर्याप्त है और परवर्ती लेखकों के ग्रंथों में उपलब्ध भामह के उद्धरणों का विवेचन नहीं किया गया है। कई स्थानों पर पाठ संतोषजनक नहीं है। **टीका**—एकमात्र ज्ञात टीका 'भामह-विवरण' उद्भट लिखित है, जो अप्राप्य है। देखिए पृ० 46.

दंडी

(१)

काव्यादर्श के रचयिता दंडी का काल-निर्णय अलंकारशास्त्र के आचार्यों के पौर्वापर्य-निर्धारण में सबसे विकट समस्या है। आनंदवर्धन ने भामह की तरह प्रकट रूप से उनका उल्लेख नहीं किया है। दंडी के नाम का प्राचीनतम उल्लेख प्रतीहारेंदुराज (26) में मिलता है। दंडी के अपने ग्रंथ में भी कोई संकेत नहीं मिलता। उन्होंने 'भूत-भाषा' में लिखित बृहत्कथा (i.38) तथा 'महा-राष्ट्री' प्राकृत में लिखित 'सेतु-बंध' (i.34) का जो उल्लेख किया, उससे भी इस प्रश्न पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। दूसरे अध्याय के श्लोक सं० 278-79 में

भिन्न थे। इसके अतिरिक्त 'सुभाषितावली' के 1644-1645 श्लोक भी भामह कृत बताए जाते हैं, जो भामह की रचना (ii.92, iii,21) में भी उपलब्ध हैं। वामन के ग्रंथ पर की हुई 'कामधेनु' नामक टीका में प्रकट रूप से ऐसे अनेक श्लोक हैं, जो कला-विषय पर लिखे भामह के किसी ग्रंथ (पृ० 29 सं० बनारस) से उद्धृत हैं। किंतु हमारे आचार्य भामह और उनके 'भामहालंकार' (पृ० 39) से भी उसी टीका में कई स्थलों पर उद्धरण मिलते हैं। संभव है कि ये श्लोक उनके ग्रंथ के किसी संप्रति लुप्त अध्याय में रहे हों, जिसमें भामह ने कलाओं के नामों का उल्लेख किया था (अब कलानामुद्देशः कृतो भामहेन, उद्धृत श्लोक से पहले)। 'वृत्त-रत्नाकर' पर अपनी टीका (पृ० 5-6) में नारायण ने भामह के अनेक श्लोक दिए हैं। यदि यह प्रामाणिक हो तो संभव है कि भामह ने छंदः शास्त्र पर भी कुछ लिखा हो।

.....'प्रेयस्' अलंकार के अंतर्गत, राजवर्मा (अथवा रातवर्मा) नामक राजा को अपने इष्टदेव के दर्शन से परमानंद की अनुभूति का जो वर्णन है, उससे भी समय निर्धारण विषयक कोई निश्चित निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।[1] तरुणवाचस्पति और अन्य टीकाकारों ने iii· 114 (तथा, iii. 112 से तुलना कीजिए) के अंतर्गत 'प्रहेलिका' का हल सुझाते हुए कहा है कि वहाँ कांची के पल्लववंशीय राजाओं का निर्देश है।[2] किंतु इस बात से केवल तमिल परंपरा की पुष्टि होती है, जिसके अनुसार दंडी शायद एक दक्षिण-भारतीय लेखक थे। एक श्लोकविशेष में दंडी के i.1 का संकेत मिलता है और वह श्लोक-शार्ङ्गधर के अनुसार विज्जा अथवा विज्जका-रचित है (विज्जा की तिथि अज्ञात है, किंतु कुछ लोगों का अनुमान है कि वह चंद्रादित्य की पत्नी और लगभग 659 ई० में हुए पुलकेशी द्वितीय[3] की पुत्र-वधू, विजया है), पर वह श्लोक केवल किसी परवर्ती अभिमानिनी कवयित्री द्वारा दंडी पर किए गए विनोद को प्रदर्शित करने के अतिरिक्त कोई सहायता नहीं देता।

दंडी की तिथि की निश्चित सीमा दक्षिण भारतीय भाषाओं में प्राप्य अलंकार-ग्रंथों से ही निर्धारित होती है। ये ग्रंथ शायद नवीं शती ई० में लिखे गए थे और इनमें दंडी का प्रतिष्ठित और प्रामाणिक आचार्य के रूप में उल्लेख है। सिय-बस लकर (siya-bas-lakar) नामक सिंहली ग्रंथ के लेखक ने, जो बार्नेट के अनुसार,

---

1. कुछ विद्वानों ने (देखिए रंगाचार्य की भूमिका पृ० 8 तथा 'दशकुमार' सं० बंबई संस्कृत सीरीज, पृ० lxii इत्यादि में अगाशे की भूमिका) यह अनुमान लगाया है कि राजवर्मा राजसिंह वर्मा ही था, जो कांची-नरेश नरसिंह वर्मा द्वितीय भी कहा जाता है (वह सातवीं शती के अंत में हुआ है)। कहते हैं कि दंडी ने iii-50 में उसी के एक विरुद (अर्थात् 'कालकाल', जो शिव का नाम है) का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त iii-25 के अंतर्गत 'महावाराह' शब्द का भी श्लिष्ट प्रयोग बताया जाता है, जो चालुक्य पुलकेशी द्वितीय का राजसी चिह्न (महावाराह) को लक्षित करता है। किंतु उक्त स्थल पर किसी तत्कालीन राजा का निर्देश न होकर किसी पौराणिक राजा के निर्दिष्ट होने की अधिक संभावना प्रतीत होती है। संभव है कि पिशेल (Pischel) का यह सुझाव ठीक हो कि कदाचित् 278वां श्लोक पूरा का पूरा किसी पौराणिक कथा से संबंधित ग्रंथ से उद्धृत हो। जैकोबी लिखित उपर्युक्त ग्रंथ के पृ० 214 से भी तुलना कीजिए।

2. जैसा कि जी० के० शंकर ने लिखा है, 'प्रहेलिका' का 'अष्ट-वर्ण' पद महेंद्रवर्मा I के ममंदुर शिलालेख में भी मिलता है। दंडी के टीकाकार, प्रेमचंद्र ने, इस श्लोकमें 'पल्लव' शब्द के स्थान पर 'पुंड्रक' शब्द की व्याख्या की है, जिससे यह प्रतीत होता है कि इसकी अनेक व्याख्याएँ संभव हैं। IV.43-44 में कावेरी, चोल और कलिंग शब्द भी प्रयुक्त हैं।

3. देखिए अगाशे का उपर्युक्त ग्रंथ पृ० lix इत्यादि।

किसी तरह भी नवीं शती ई० के पश्चात् का नहीं हो सकता,[1] v.2 में दंडी को आदर्श प्रामाणिक आचार्य माना है। तीन अध्यायवाले 'कविराजमार्ग' नामक कन्नड ग्रंथ में, जो राष्ट्रकूट-नरेश अमोघवर्द्धन नृपतुंग (नवीं शती के पूर्वार्ध में) द्वारा रचित बताया जाता है, छह ऐसे श्लोक हैं[2], जो दंडी के श्लोकों के अनुवाद-मात्र हैं। पाठक ने इस ग्रंथ (पृ० 19) के अपने संस्करण (1898) की भूमिका में कहा है कि "तीसरे अध्याय में अधिकतम पद्य 'काव्यादर्श' के अनुवाद अथवा रूपांतर मात्र हैं, और इसके अतिरिक्त "ग्रंथ के अन्य भागों में भी दंडी के प्रभाव की निश्चित रूप से झलक मिलती है।"

इस प्रकार, दंडी के ग्रंथ की अर्वाचीनतम सीमा नवीं शती प्राप्त होती है। यह निष्कर्ष दंडी को वामन से पहले सिद्ध करने से भी प्राप्त होता है। वामन का समय इसी शती के प्रारंभ में ठहराया जा सकता है। इस विषय पर यहां विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, किंतु ऐसे अनेक स्पष्ट संकेत मिलते हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि वामन के ग्रंथ में दंडी द्वारा प्रतिपादित कुछ मौलिक विचारों का और भी अधिक परिवर्धन और परिमार्जन हुआ है। जिस रीति-सिद्धांत का दंडी ने (जिसे उन्होंने मार्ग कहा है) महत्त्व प्रतिपादित किया है, उसे वामन ने पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है और काव्य का प्राण माना है। दंडी ने इस मार्ग के केवल दो भेद माने हैं, जब कि वामन ने एक मध्यवर्ती तीसरी रीति भी मानी है। मम्मट ix-4 से यह ज्ञात होता है कि सबसे पहले वामन ने ही तीन रीतियों का प्रतिपादन किया था।[3] जहाँ भामह और दंडी, कथा और आख्यायिका के अंतर्गत काव्य का वर्गीकरण करने के विवाद में काफी उलझे हैं, वहां वामन ने तत्संबंधी चर्चा की उपेक्षा की है और तद्विषयक ज्ञान को अन्यतोग्राह्य[4] बताया है। दीर्घ विवाद में पड़कर दंडी ने तो विषयांतर भी कर दिया है और कहा है कि 'इव' शब्द 'उत्प्रेक्षा' का सूचक है, जबकि भामह ने अलंकारों में उसकी गणना भी (ii-88) केवल 'मेधाविन' का ध्यान रखकर की है। उधर वामन की दृष्टि में

1. जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1905, पृ० 841. हेंड्रिक जयतिलक ने इस ग्रंथ का संपादन किया है और वह कोलंबो से 1892 में छपा है।
2. अर्थात् जिन पद्यों में क्रमशः असाधारणोपमा, असंभवोपमा, अनुशयाक्षेप, विशेषोक्ति, हेतु और अतिशयोक्ति के लक्षण दिए गए हैं।
3. और यह बात ध्यान देने योग्य है कि दंडी 'रीति' संज्ञा से प्रायः अनभिज्ञ थे, जिसे वामन ने इतना प्रचलित कर दिया था। दंडी ने रीति के पर्याय रूप में 'मार्ग' का प्रयोग किया है, जिसका उल्लेख वामन के द्वारा भी iii.1.12 में किया गया है।
4. 1.2.32 पर—यच्च कथाख्यायिका महाकाव्यमिति तल्लक्षणं च नातीव हृदयंगममित्युपेक्षितमस्माभिः तदन्यतो ग्राह्यम्।

(iv. 3. 9 वृत्ति) तो उत्प्रेक्षा का अलंकारत्व एक सुप्रतिष्ठित तथ्य है। ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं, किंतु ऊपर जो कुछ कहा गया है, उससे कम से कम वामन की अपेक्षा दंडी की पूर्वभाविता तो पर्याप्त रूप से सिद्ध हो ही जाती है[1] और इस प्रकार उनकी तिथि की अधिकतम सीमा आठवीं शती के अंत और नवीं शती के आरंभ में ठहराई जा सकती है।[2]

---

1. कीलहॉर्न (Kielhorn) के मतानुसार ('दशकुमार' की अपनी भूमिका में पीटर्सन भी इनसे सहमत हैं) दंडी का श्लोक ii. 51. जिसमें कुछ उपमा-दोषों के दुष्टत्व का खंडन किया गया है, वामन के श्लोक IV.2.8 इत्यादि के खंडनार्थ लिखा गया है। इससे दंडी का वामन के पश्चात् होना सिद्ध होता है। इस विषय पर यदि भामह, दंडी और वामन के पाठों की तुलना की जाय तो उससे ये तथ्य निकलते हैं—मेधावी का मतानुसरण करते हुए भामह ने (ii.39-40) सात उपमा-दोष बताए हैं, अर्थात्, 'हीनत्व', 'असंभव, 'लिंग-भेद', 'वचन-भेद', 'विपर्यय', 'अधिकत्व' और 'असादृश्य'। दंडी ने अप्रकट रूप से इन्हें माना है और केवल दो युग्मों (अर्थात् 'लिंग-भेद' और 'वचन-भेद', तथा 'अधिकत्व' और 'हीनत्व') के बारे में कहा है कि यदि सूक्ष्म-संवेद्यता की उपेक्षा न हो तो आवश्यक नहीं कि उनसे उपमा का व्याघात हो ही। इस बात में उन्होंने अधिकांशतः भामह के मत का अनुसरण किया है, जिनका कथन है कि 'उपमेय' की 'उपमान' में सर्वांग समता नहीं होती (ii.43)। अधिकतर परवर्ती विद्वानों ने इस उक्ति का समर्थन किया है और उपमा का लक्षण इस प्रकार दिया है—भेदाभेदप्रधाने उपमा। इसलिए हीनत्व इत्यादि दोष तभी होते हैं, जब वे सहृदय की रसानुभूति में बाधा डालते हैं। वामन ने सात के स्थान पर छह 'उपमा-दोष' बताए हैं और विपर्यय को 'अधिकत्व' और 'हीनत्व' में ही अंतर्भूत कर लिया है (iv 2.11 वृत्ति), और अंत में कहा है—अतएवास्माकं मते षड्दोषाः। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि दंडी के i।.51 आदि भामह के ii.39 इत्यादि और वामन के iv. 2.8 इत्यादि के बीच की कड़ी के समान हैं।

2. पिशेल (Pischel) का कथन है (शृंगार तिलक की भूमिका में) कि दंडी मृच्छकटिक के लेखक से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि दंडी का श्लोक ii. 362 (लिंपतीव तमोंगानि, सं०, बिब्लियोग्राफिका इंडिका) उस नाटक में भी उपलब्ध है (सं०, निर्णयसागर प्रेस, 1916. i. 34)। यदि यह बात मान ली जाए तो, अन्य आपत्तियों के अतिरिक्त हमें यह भी मानना पड़ेगा कि दंडी भास से भी अभिन्न थे, क्योंकि यही श्लोक भास के तथाकथित-नाटकों में भी उपलब्ध है, यथा, 'चारुदत्त' (अंक 1 श्लोक 19) और 'बालचरित' (अंक 2 श्लोक 15)। शार्ङ्गधर 3603 और वल्लभदेव 1890 ने वही श्लोक क्रमशः भर्तृमेंठ और विक्रमादित्य-रचित बताया है। इससे पिशेल की बात और भी अमान्य सिद्ध होती है। दंडी (ii.226) में इस श्लोक के 'इति' के साथ पाए जाने से (इस विषय पर प्रेमचंद्र की टिप्पणी से तुलना कीजिए) यही प्रतीत होता है कि उदाहरणार्थ और आलोचनार्थ दंडी ने अन्य लेखकों के प्रसिद्ध श्लोकों के उपयोग को त्याज्य नहीं माना। उन्होंने स्वयं सामान्यरूप से इस बात को i.2 में स्वीकार किया है। यह बात भी ध्यान देने की है कि

(२)

दंडी के काल की प्राचीनतम सीमा निर्धारित करना आसान नहीं है। महेशचंद्र न्यायरत्न के मतानुसार पीटर्सन का कहना है[1] कि दंडी ii. 197 बाण-रचित 'कादंबरी' के एक प्रसंग, पृ० 102. 1. 16 (सं० बंबई संस्कृत सीरीज) का स्मारक है। जैकोबी इस बात को मानते हैं। बाण लगभग 606-647 ई० में राजा हर्ष के राज्यकाल में हुए थे और उन्होंने हर्ष की जीवनी लिखी थी। जैकोबी ने दंडी ii.302 और माघ ii.49 में परस्पर समानता निर्दिष्ट की है। पाठक का कहना है[2] कि दंडी ने 'कर्म' के तीन भेदों को अर्थात्, 'निर्वर्त्य, 'विकार्य' और 'प्राप्य' (ii.240) का वर्गीकरण भर्तृहरि के 'वाक्यपदीय, iii.45 इत्यादि से लिया गया है। थि-त्सिग के अनुसार भर्तृहरि का देहांत लगभग 651 ई० में हुआ, और माघ शायद सातवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुए थे।[3] इस प्रकार बाण, भर्तृहरि

पाठ के बिब्लियोग्राफिका इंडिका संस्करण में यह श्लोक दो बार मिलता है, (1) ii.226 आधे श्लोक के रूप में और (2) ii.362 में पूरा श्लोक। किंतु यह पाठ, जो पिशेल (Pischel) के मत का आधार है, संदिग्ध है और अन्य पांडुलिपियों के पाठों से मेल नहीं खाता। पाठ के तिब्बती रूप (जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1903) में और मद्रास संस्करण में भी इस श्लोक (ii.226) का आधा भाग ही उद्धृत किया गया है और वह भी केवल एक बार। मद्रास संस्करण के मूल पाठ में तो श्लोकार्ध ही है; हां, उनकी टीका में अवश्य पूरा श्लोक दिया गया है। पिशेल का यह कथन ठीक नहीं है कि प्रतीहारेंदु ने दंडी को इस श्लोक का रचयिता माना है, क्योंकि उत्प्रेक्षा पर चर्चा करते हुए टीकाकार ने केवल यह कहा है (पृ० 26) कि दंडी ने इस विषय का सविस्तर विवेचन किया है कि 'लिंपतीव' आदि पाठ 'अतिशयोत्प्रेक्षा' का उदाहरण है।

1. देखिए 'दशकुमार चरित' की भूमिका, नवीन सं० 1919, पृ० ix. दंडी में ऐसे अन्य स्मारकों का अनुमान भी संभव है, जैसे उसके i. 45 में (शकुंतला i. 20, मोनियर विलियम्स सं०, तुलना कीजिए, जर्नल ऑफ़ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1905 पृ० 841 इत्यादि), ii. 286 में (रघुवंश viii. 57), ii. 12 में (शकुंतला i. 26). इत्यादि। तरुणवाचस्पति का (i. 2) यह मत है कि दंडी ने कालिदास जैसे कवियों के प्रयोगों का उपयोग किया है। दशकुमारचरित पर भूमिका liv. इत्यादि में अगाशे द्वारा संगृहीत अन्य समांतर स्थल देखिए।
2. इंडियन एंटीक्वेरी, xli. 1912 पृ० 237.
3. देखिए कीलहार्न GN, 1906 पृ० 143-46. तुलना कीजिए : माघ, दूसरे सर्ग का 83 वाँ श्लोक, जिसमें माघ काव्यशास्त्र से भलीभांति परिचित प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त ii 8, 86,87 स. 13, xiii. 69; xiv. 50; xix. 37; xx. 44 (जहाँ उन्होने भरत का उल्लेख किया है) माघ की तिथि के संबंध में देखिए, सु० के० दे रचित संस्कृत साहित्य का इतिहास, कलकत्ता 1942, पृ० 88-89 और उसके अंतर्गत उल्लेख इत्यादि।

और माघ सभी लगभग समकालीन थे और सातवीं शती के पूर्वार्द्ध अथवा मध्य भाग में हुए थे।

इन प्रमाणों मे कुछ संकेत तो मिलते हैं, पर उनके आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। और अंततः दंडी और भामह के परस्पर संबंध का वह प्रश्न शेष रह ही जाता है, जिससे इन प्रमाणों की पुष्टि हो सकती है और जिसके आधार पर दंडी की तिथि निर्धारित की जा सकती है। यदि भामह को निश्चित रूप से दंडी से पूर्ववर्ती ठहराया जा सके तो दंडी की तिथि की लगभग संतोषजनक सीमा प्राप्त हो जाती है। किंतु इन दोनों विद्वानों के ग्रंथों के तुलनात्मक अध्ययन से तो भामह की पूर्वभाविता ही अनुमानित हो सकती है, क्योंकि दंडी ने भामह की नवीन उद्‌भावनाओं की आलोचना की है, जब कि प्रकटरूप से भामह ने दंडी की नवीन भावनाओं की कहीं भी आलोचना नहीं की, यद्यपि दंडी की नवीन उद्‌भावनाओं की संख्या बहुत है। इस प्रकार के आलोचनात्मक अध्ययन की सामग्री के अंतर्गत (उनके सामान्य सिद्धांतों के विवेचन को छोड़ भी दें तो) उन दोनों के पाठ में ऐसे अनेक अंश हैं, जो या तो (1) शब्दावली में अभिन्न अथवा समान हैं, अथवा (2) परस्पर इस प्रकार से संबंधित हैं कि एक लेखक दूसरे की आलोचना करता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रश्न पर बहुत विवाद हो चुका है[1] और क्योंकि सभी सूक्ष्म तथ्यों का भी गंभीरता से विवेचन किया जा चुका है, इसलिए यहां पर इस संबंध में संक्षेप से ही चर्चा की जाएगी। पहले वर्ग अर्थात् एक-सी शब्दावली के उदाहरणों के रूप में ये अंश निर्दिष्ट किए जा सकते हैं: भामह i. 20क ख और दडी i. 7 ग घ; भामह i.17 ग घ और दंडी i. 29 क ख (महाकाव्य का लक्षण); भामह ii.66 क ख और दंडी ii. 4 ग घ (कुछ अलंकारों के नामोल्लेख); भामह ii. 87 क ख और दंडी ii.244 क ख (वार्ता का उदाहरण) भामह iii.1 क ख और दंडी ii.5 ग घ (कुछ अलंकारों के नामोल्लेख), भामह iii.53 और दडी iii. 363 (भाविक-

1. एम. टी. नरसिंह हेंगर, जर्नल ऑफ़ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी 1905, पृ० 53 इत्यादि; के. बी. पाठक, जर्नल ऑफ़ दि बांबे ब्रांच ऑफ़ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, xxiii पृ० 19; आर. नरसिंहाचार, इंडियन ऐंटीक्वेरी xli. 1912, पृ० 90, 232; त्रिवेदी की 'प्रतापरुद्र' पर भूमिका, पृ० 32 और इंडियन ऐंटीक्वेरी xlii, 1913, पृ० 25,8-74 एच.जेकोबी ZDMG, lxiv. पृ० 134, SBAW, xxiv.1922 (भामह और दंडी इत्यादि) पृ० 210-226 और xxxi, 1928 (Zur Fruhgeschichted ind Poetik) जे. नोबल ZDMG, lxxiii 1919, पृ० 190 इत्यादि और उनका Beitraege Zur aelteren Geschichte des Alamakar Sastra, बर्लिन 1911 पृ. 78 पी.वी. काणे : संस्कृत काव्यालंकार का इतिहास, पृ० 96-108 इत्यादि।

अलंकार), भामह iii. 5 और दंडी ii. 276 (प्रेयस् का उदाहरण); भामह iv-1-2 और दंडी iv. 2-3 (दोषों की गणना); भामह iv.8 क ख और दंडी iv. 5 क ख (अपार्थ का लक्षण)। इन अंशों में शाब्दिक साम्य इतना स्पष्ट है कि उसे काकतालीय मान लेने से काम नहीं चलेगा। पर यह भी संभव है, इन दोनों का स्रोत-ग्रंथ एक ही रहा हो अथवा लक्षणों के मानक रूप स्थिर हो चुके हों तथा अलंकारादि संख्याएं स्थिर हो चुकी हों, अथवा इस प्रकार के शास्त्रीय ग्रंथों में उनका पर्याप्त प्रचलन रहा हो।

दूसरे वर्ग के पाठांशों में भी पर्याप्त शाब्दिक समानता विद्यमान है। यह वर्ग अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण है, क्यों कि इसमे यह चाहे सिद्ध न होता हो कि दोनों लेखक परस्पर खंडन-मंडन कर रहे हैं, पर इतना स्पष्ट है कि उनके विचार परस्पर विरोधी हैं। इनमें से दो अंश ऐसे हैं, जिनमें से एक में दंडी ने भामह द्वारा प्रस्तुत उदाहरण को अस्वीकार किया है, जबकि दूसरे में भामह ने दंडी के उदाहरण को त्याज्य माना है। लेकिन दोनों ने ही दोनों स्थलों पर अपने उदाहरण में समान शब्दावली का प्रयोग किया है। भामह ने 'हेतु' अलंकार के पश्चात् 'गतोऽस्तमर्को भातींदुर्यांति वासाय पक्षिणः' उदाहरण का उल्लेख करते हुए यह कहकर अस्वीकार किया है कि यह पद्य बेतुका है (ii.87) उन्होंने यह भी कहा है कि कुछ विद्वानों ने इसे 'वार्ता' अलंकार माना है। दंडी ने 'वार्ता' अलंकार का उल्लेख तो नहीं किया, किंतु 'हेतु' अलंकार के अतंर्गत उसी श्लोकार्ध का समर्थन के साथ उल्लेख किया है (ii.244)और उसे अच्छा उदाहरण बताया है। उधर भामह ने 'हिमापहामित्रधरैः' श्लोकार्ध को 'अवाचक' दोष के उदाहरण के रूप में दिया है (i. 41), किंतु दंडी ने इसी श्लोक के पूर्ण रूप को एक भिन्न संदर्भ (iii. 120)में एक प्रकार की 'प्रहेलिका' के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। भामह ने इसे सदोष मानकर अस्वीकार किया है, किंतु दंडी ने इसके रचना-वैचित्र्य को स्वीकार किया है। एक ही स्रोत-ग्रंथ से उद्धृत, किंतु विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त, इन उदाहरणों से यह प्रतीत होता है कि दंडी और भामह में परस्पर मतैक्य नहीं है। भामह ने उन्हें दोषयुक्त ठहराया है, किंतु दंडी ने स्पष्ट रूप से उनकी निर्दोषिता का समर्थन किया है।

विचार अथवा भाव-सामीप्य और अभिव्यक्ति की समानता इस वर्ग के उन अंशों में अपेक्षाकृत अधिक है, जिनमें (1) गौडीय और वैदर्भी-मार्ग के गुणों की तुलनात्मक विवेचना की गई है (भामह i- 31-35 और दंडी, i.40 इत्यादि), (2) गद्य के भेदों—'कथा' और 'आख्यायिका—के परस्पर अंतर का निरूपण किया गया है (भामह i.25 इत्यादि और दंडी i. 23 इत्यादि), और (3) दस दोषों की संख्या

के (भामह iv. 1 और दंडी iv. 2-4) विषय में विमर्श किया गया है। जो विद्वान भामह की अपेक्षा दंडी की पूर्वभाविता का समर्थन करते हैं, उनका कथन है कि उपर्युक्त विषयों में भामह ने दंडी की आलोचना की है। इनमें पहले तर्क के विषय में तो केवल यह कह सकते हैं कि भामह प्रबंध-रचना के प्रसंग में रीति अथवा मार्ग के साहित्यिक मूल्य के प्रति उदासीन थे। उन्होंने ऐसे लेखकों की हंसी उड़ाई है, जिन्होंने गौडी और वैदर्भी रीतियों में परस्पर भेद माना है, यद्यपि स्वयं उन्होंने गौडी रीति का ही समर्थन किया है। उनके मत से, जैसा कि उन्होंने अगले श्लोक (1. 36) में कहा है, काव्य में रीति का नहीं, वक्रोक्ति का महत्व है, ऐसा प्रतीत होता है कि भामह ने किसी व्यक्तिविशेष के विचारों की नहीं, केवल ऐसे सामान्य विचारों की आलोचना की है, जो परंपरागत थे अथवा सामान्य-रूप में विवादास्पद माने जाते थे। उन्होंने स्वयं इस संबंध में कहा है-

'गतानुगतिकन्यायान्नानाख्येयममेधसाम्'।

जैकोबी का कथन है कि दंडी से बहुत पहले गौडी मार्ग को अधिक सम्मान प्राप्त नहीं था और बाण ने तो हर्ष-चरित (1.7) में 'अक्षर-डंबर' कहकर इसे हेय बताया है। इसके विपरीत दंडी ने काव्य में रीति को बड़ा महत्व दिया है। उन्होंने उसे 'मार्ग' नाम से अभिहित करके अपने ग्रंथ में उसकी प्रचुर चर्चा की है। गौडी और वैदर्भी की दो सर्वथा पृथक् कोटियां मानते हुए भी उन्होंने इन दोनों के मध्य-वर्ती अनेक सूक्ष्म भेदों के अस्तित्व को स्वीकार किया है (i.40)। उन्होंने यह भी कहा है कि उन भेदों की यथार्थ रूप में परिभाषा नहीं की जा सकती (i. 101 इत्यादि), यद्यपि वे स्वयं वैदर्भी को उत्कृष्ट मानते हैं। यहां यह कह देना भी उचित होगा कि दस आवश्यक 'गुणों' के संबंध में दंडी द्वारा किए गए 'मार्ग' के विशिष्ट प्रतिपादन से भामह परिचित नहीं थे। उन्होंने रीति के संबंध में गुणों का उल्लेख न करके केवल प्रसंगवश तीन ही 'गुणों' का उल्लेख किया है, जिनका उत्कृष्ट प्रबंध में समावेश हो सकता है।

दोनों आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रीतियों के लक्षणों में कोई समानता नहीं है और यदि यह समझा जाय कि इस विषय में भामह का कथन विशेष रूप से दंडी का खंडन करने के लिए है तो यह आक्षेप मिथ्या होगा, क्यों कि इस विषय पर इन दोनों आचार्यों के मतों की आधारशिला सर्वथा भिन्न है।[1]

अन्य दो स्थलों पर भी यही बात लागू होती है। उनमें भी भामह ने कहीं भी प्रकट रूप में दंडी को निर्देश करके कुछ कहा हो, ऐसा नहीं लगता। भामह

1. इस विषय पर खंड ii में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

ने कथा और आख्यायिका के लक्षणों में जो विशिष्ट अथवा आवश्यक भेद बताए हैं, उन्हें दंडी ने स्वीकार नहीं किया है और इस संबंध में भामह के प्रथम परिच्छेद के सताईसवें श्लोक के उत्तरार्ध को अपने ग्रंथ के प्रथम परिच्छेद के उनतीसवें श्लोक के पूर्वार्ध के रूप में उद्धृत किया है। जिस भेद को दंडी ने अस्वीकार किया है, उसी को (भामह के अतिरिक्त) उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती विद्वानों ने स्वीकार किया है। बाण ने अपने 'हर्ष-चरित' को आख्यायिका और कादंबरी को 'कथा' नाम दिया है।[1] 'अमरकोश' से भी ऐसा ही भेद लक्षित होता है। दोषों की परिगणना से संबंधित अंशों से यह प्रतीत होता है कि भामह ने परंपरागत दस दोषों (तुलना कीजिए, भरत 26. 84)[2] की परिगणना करते हुए वही दस दोष बताए हैं, किंतु यह कहा है कि काव्य में 'प्रतिज्ञा-हेतु-दृष्टांतहीनत्व' अवांछनीय है (iv.2)। तार्किक प्रतिपादन के दृष्टिकोण से यह ग्यारहवां दोष उनके लिए महत्वपूर्ण है। यह मानते हुए कि सदोष तर्क भी सामान्यतः प्रबंध में एक बड़ा दोष है, उन्होंने[3] v. में इस पर चर्चा की है।

दंडी ने बिलकुल मिलते-जुलते शब्दों में वे ही दस दोष गिनाए हैं (2-3) और परंपरा-प्राप्त-मत का समर्थन करते हुए कहा है (iv.4) कि तथाकथित ग्यारहवें दोष का निर्णय करना कठिन है और उसकी चर्चा अनर्थक है।[4]

---

1. दंडी i. 25 पर तरुणवाचस्पति की टिप्पणी देखिए।
2. लक्षण एक से नहीं हैं। देखिए जैकोबी की उपर्युक्त पुस्तक, पृ० 222 इत्यादि।
3. अन्य दार्शनिकों के संबंध में भामह के तार्किक प्रतिपादन के लिए एनाल्स ऑफ़ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, के भाग 12 पृ० 372-87 में के. बी. पाठक का लेख देखिए।
4. भामह के पहले परिच्छेद के 22 वें श्लोक और दंडी के पहले परिच्छेद के 21 वें और 22 वें श्लोकों में भी परस्पर बहुत साम्य बताया जाता है। उक्त अंशों में यद्यपि शब्द-योजना एक-सी है, तथापि दोनों आचार्यों के दृष्टिकोण स्पष्टतया भिन्न हैं। (नाटक में रूढ़िगत दुःखांत के परंपरागत निषेध का अनुकरण करते हुए यहाँ भामह ने (काव्य में) दुखांत समाप्ति के प्रति असहमति प्रकट की है। इसके विपरीत दंडी यह मानते हैं कि नायक को तो विजयी होना ही चाहिए, अतः वे दुखांत समाप्ति के निषेध की परवाह नहीं करते। उनके मत से प्रतीत होता है कि यदि प्रतिनायक के पराक्रम की प्रशंसा की जाए और तब वैसे पराक्रमी प्रतिनायक पर नायक की विजय दिखाते हुए उसके उत्कर्ष की व्यंजना की जाय तो अभिव्यक्ति अधिक कलापूर्ण होगी। भामह ने दूसरे परिच्छेद के 37-38 श्लोक में उपमा के (निंदोपमा, प्रशंसोपमा, आचिख्यासोपमा आदि) भेदों के निरूपण की जो अनावश्यकता बताई है, उसका कुछ लोगों ने यह अर्थ निकाला है कि वह दंडी-कृत विस्तृत भेद-निरूपण का खंडन है, परंतु इस मान्यता में वास्तव में कोई तथ्य नहीं है। भामह ने जिस त्रिप्रकारत्व का खंडन किया है, वह दंडीकृत प्रकार विधान नहीं है, क्योंकि दंडी ने तीन नहीं 32 भेद बताए हैं। उधर निंदोपमा, प्रशंसोपमा आदि का उल्लेख भरत ने भी किया है।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दंडी को भामह की रचना ज्ञात थी। अतः वह भामह की उपेक्षा नहीं कर सकते थे, क्योंकि भामह अपने युग के एक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् थे और दंडी उनके अनेक मतों से सहमत नहीं थे। इस संबंध में दंडी के टीकाकारों[1] ने एक स्वर से इस बात की पुष्टि की है कि इन अधिकांश विवादास्पद स्थलों पर दंडी ने भामह के मतों का खंडन करने का यत्न किया है। यहाँ उनके सिद्धांतों की विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है। दो भिन्न संप्रदायों के अनुयायियों में मौलिक और महत्वपूर्ण अंतर होना स्वाभाविक है। दंडी ने अधिकतर विषयों का अधिक विस्तार और सूक्ष्मता से भेद-निरूपण किया है, जिससे यह सूचित होता है कि भामह के समय की अपेक्षा दंडी के समय में अलंकारों का अध्ययन अधिक समुन्नत और व्यापक था।[2]

यदि इस निष्कर्ष को भामह की संभावित अग्रता के रूप में स्वीकार कर लिया जाय तो उनकी तिथि को दंडी की तिथि की ऊपरी सीमा माना जा सकता है। उनकी तिथि की निचली सीमा, जिस पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है, भामह की तिथि से अभिन्न है, अर्थात् उनकी तिथि उद्भट के समकालिक वामन की ही तिथि है। संभवतः दंडी आठवीं शती के पूर्वार्द्ध में ही हुए हैं।[3]

1. यथा, तरुणवाचस्पति की टीका 23-24, 29; ii. 235, 237, 258; iv. 4 इत्यादि; हरिनाथ i. 15 पर (ABOD 206b में उद्धृत) टीका; वादिजंघाल की i. 21 पर टीका।

2. उदाहरण के लिए 'रीति', गुण', 'दोष', अलंकार (दंडी ने अलंकार को मूलतः 'गुण' से अभिन्न माना है, ii. 3), और 'वक्रोक्ति' (भामह ii. 85 और दंडी ii. 362) पर उनके विचार देखिए। इसी प्रकार अलंकारों का विवेचन-क्रम भी द्रष्टव्य है (भामह ने उनका विवेचन क्रमबद्ध वर्गों के रूप में किया है, किंतु दंडी के पैंतीस स्वतंत्र अलंकार ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो वे पूर्णतः मान्य हैं। दंडी ने एक-एक अलंकार के अनंत उपभेद बताकर उनके सूक्ष्म भेदों का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त दोनों आचार्यों द्वारा किया हुआ 'यमक', 'उपमा', उत्प्रेक्षा', 'अनन्वय' और 'ससंदेह', 'उपमा-रूपक' और 'उत्प्रेक्षावयव' (इनमें से अंतिम चार को दंडी ने स्वतंत्र अलंकार नहीं माना है) इत्यादि का क्रमशः विवेचन भी द्रष्टव्य है। इन विषयों पर अगले खंड में विस्तार से चर्चा की जायगी।

3. यहां पर यह समस्या कि हमारे दंडी 'दशकुमाचरिरत' के रचयिता दंडी से अभिन्न हैं, अप्रासंगिक है। इस विषय पर देखिए—एस. के. डे का 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' कलकत्ता 1947, पृ० 207-9. यह मानना पड़ेगा कि दोनों दंडी अभिन्न हैं और 'अवंतिसुंदरीकथा' (सं. एम. आर. कवि, मद्रास 1924) दंडी रचित है, अन्यथा उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। देखिए, एस. के. डे का Aspects of Sk. Lit. कलकत्ता, 1959, पृ० 296-308.

(३)

इसमें कोई संदेह नहीं कि भामह की तरह दंडी भी अपने पूर्ववर्ती विद्वानों के आभारी रहे होंगे। दंडी ने उनका नामोल्लेख नहीं किया, फिर भी उनकी रचना में इस बात के यथेष्ठ प्रमाण मिल जाते हैं कि उन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों का उपयोग किया और उन आचार्यों में भामह भी एक हैं। दंडी ने इस आभार को सामान्य रूप में स्वीकार किया है तथा स्थान-स्थान पर 'अन्यों' और 'आचार्यों के मतों का निर्देश किया है (यथा i. 9, 10; ii. 2, 7, 9, 54; iii. 106)। वे इस बात को छिपाते नहीं कि उन्होंने पूर्ववर्ती कवियों के उदाहरणों का अवलोकन किया है और संभवतः उन्हें अपने उदाहरणों में सम्मिलित भी किया है। ऐसे कवियों का उल्लेख उन्होंने i. 30, 100; ii. 65, 223, 225, 363; iv. 7, 32, 42, 57 में किया है।[1] दंडी के i. 2 पर 'हृदयंगम' टीका में दो लेखकों, काश्यप और वररुचि (vi. 2; ii. 7,), का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। अनुमान है कि दंडी ने इनके ग्रंथों का उपयोग किया है। इसी प्रकार, वादिजंघाल की 'श्रुतानुपालिनी' टीका में काश्यप, ब्रह्मदत और नंदिस्वामी को दंडी से पूर्ववर्ती आचार्य बताया गया है। संभव है, ये नाम पौराणिक अथवा परंपरा-प्राप्त हों, किंतु काश्यप के नाम का उल्लेख दंडी के एक अन्य प्रशंसक ने भी किया है, जिसने सिंहली में काव्य-शास्त्र-विषयक ग्रंथ लिखा था। इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। अभिनवगुप्त काश्यप को भरत से पूर्ववर्ती मुनि मानते हैं और 'अभिनव भारती' में उन्होंने रागों के विषय में उनके मत का उल्लेख भी किया है। 'संगीत-रत्नाकर' (ii. 2. 31) की टीका में कल्लिनाथ ने काश्यप के तीन श्लोक दिए हैं। संगीत पर प्राचीन आचार्यों में से नान्यदेव (11 वीं से 12 वीं शती) ने उनकी गणना संगीत के प्राचीन आचार्यों में की है और बृहत्काश्यप और वृद्ध-काश्यप के साथ-साथ इनका भी उल्लेख किया है। इसके विपरीत, पंचसायक (iv. 19) में उन्हें कामशास्त्र का और 'अग्नि-पुराण' में छंदःशास्त्र का अधिकारी आचार्य कहा गया है। पाणिनि ने viii. 4. 67 में एक काश्यप का नामोल्लेख किया है और आफ्रेक्ट (Aufrecht) के कथनानुसार माधव ने काश्यप नामक एक वैयाकरण का उल्लेख किया है।

पिशेल (Pischel)[2] ने प्रेमचंद्र तर्कवागीश,[3] पीटर्सन,[4] और जैकोबी[5] के इस सुझाव का निराकरण किया है। i. 12 में दंडी ने 'छंदो-विचिति' शब्द द्वारा

1. अगाशे के उपर्युक्त ग्रंथ में पृ० liii. इत्यादि पर इस विषय की चर्चा देखिए।
2. 'शृंगार-तिलक' पर भूमिका, पृ० 14 इत्यादि।
3. दंडी के i. 12 पर टीका।
4. दशकुमारचरित की भूमिका, पृ० ix-x.
5. Ind. Stud. xvii पृ० 447.

छंद:शास्त्र पर लिखित अपने ग्रंथ का उल्लेख किया है। दंडी ने स्वयं उसी श्लोक में छंदो-विचिति के लिए 'सा विद्या' कहा है, जिससे यही लगता है कि वह शब्द सामान्य छंद:शास्त्र के लिए ही प्रयुक्त है, किसी विशिष्ट ग्रंथ को लक्षित नहीं करता।[1] पिशेल के निर्देशों के अतिरिक्त, कौटिल्य का अर्थशास्त्र (i.3.1.), आपस्तंब 'धर्म-सूत्र' ii. 4.8. में भी छंदो-विचिति शब्द का उल्लेख हुआ है तथा राजशेखर पृ० 6 और हेमचंद्र की टीका पृ० 5 का उल्लेख पर्याप्त होगा। दंडी ने iv. 49 में एक कला-परिच्छेद का उल्लेख किया है। पीटर्सन ने इसे दंडी का एक अन्य ग्रंथ मान लिया है; किंतु यह उल्लेख संभवत: उनके 'काव्यादर्श' के एक अतिरिक्त अथवा पूरक अध्याय को निर्दिष्ट करता है। तरुणवाचस्पति ने ऐसा ही सुझाव दिया है (पृ० 282)। यह ध्यान देने योग्य है कि वामन पर 'कामधेनु' नामक टीका में कलाओं पर भामह के किसी लुप्त ग्रंथ अथवा अध्याय से इसी प्रकार के उद्धरण दिए गए हैं।[2]

दंडी के 'काव्यादर्श' में तीन परिच्छेद अथवा अध्याय (एम० रंगाचार्य के संस्करण में चार) और लगभग 660 पद्य हैं। इसमें निम्नलिखित विषय हैं—(i) काव्य की परिभाषा और उसके भेद, तत्संबंधी दो मार्ग (वैदर्भ और गौड) और दस गुण, उत्कृष्ट कवि के अनिवार्य गुण (प्रतिभा, श्रुत और अभियोग)। (ii) अलंकार की परिभाषा, परिगणना और 35 अर्थालंकारों का वर्णन, अर्थात् 'स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृति, आक्षेप, अर्थांतरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति,उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म, लेश अथवा लव, यथासंख्य अथवा क्रम, प्रेयस्, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, अपह्नुति, श्लेष, विशेषोक्ति, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुत-प्रशंसा, व्याजोक्ति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशी:, संकीर्ण और भाविक।' (iii) शब्दालंकारों का विस्तृत विवेचन, अर्थात् यमक, चित्रबंध और प्रहेलिका के 16 भेद, दस दोष (रंगाचार्य के संस्करण में अध्याय iv. में)।

(4)

दंडी के टीकाकार

निम्नलिखित ग्रंथसूची के अनुसार दंडी पर अनेक टीकाएँ हैं। मद्रास संस्करण में प्रकाशित तरुणवाचस्पति की टीका और 'हृदयंगम' नामक अज्ञात

---

1. देखिए पी. वी. काणे, इंडियन ऐंटीक्वेरी, 191, i. पृ० 177.

3. देखिए पृ० 53 पा. टि. 2।

लेखक की टीका को छोड़कर, अधिकतर टीकाएँ अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक अथवा आलोचनात्मक दृष्टि से उनकी कोई उपयोगिता नहीं है।

ग्रंथ-सूची

संस्करण : (1) बिब्लिओथिका इंडिका, 1863, में प्रेमचंद्र तर्कवागीश का संस्करण, उनकी अपनी टीका सहित, भवदेव चट्टोपाध्याय, कलकत्ता 1881, द्वारा पुनर्मुद्रित। (2) जीवानंद विद्यासागर, 1882 इत्यादि। (3) ओ० बोह्टलिंक, लिपज़िग, 1890 का संस्करण, अनुवाद सहित। (4) एम० रंगाचार्य मद्रास 19 0, दो टीकाओं सहित (एक तरुणवाचस्पति की है और दूसरी का नाम है 'हृदयंगम', । (5) एस० के० बेल्वलकर और रंगाचार्य, बी० रेड्डी का संस्करण, संस्कृत टीका और अंग्रेजी टिप्पणी सहित, बंबई संस्कृत सीरीज, बंबई, भाग i (1919) और भाग ii (1920)। (6) एस० के० बेल्वलकर, पूना 1924 (अग्र प्रकाशन, अध्याय i-ii, 1920) कृत संस्कृत पाठ और अंग्रेजी अनुवाद। (7) अनुकूल चंद्र बनर्जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1939, कृत संस्कृत और तिब्बती पाठ का संस्करण। (8) रत्नश्रीज्ञान का रत्नश्री टीका सहित संस्करण। इन्होंने अनंतलाल ठाकुर और यू० झा, मिथिला इंस्टीट्यट, दरभंगा, 1957, के तिब्बती पाठ का अनुकरण किया है। (9) हृदयंगम सहित डी० टी० तताचार्य का संस्करण, वादिजंघाल और तरुण-वाचस्पति, बंबई (?) (1941) की टीकाएँ। (10) सं० वादिजंघाल की टीका सहित वी० कृष्णमाचार्य, श्रीनिवास प्रेस, तिरुवाडी, 1936. अन्यथा निर्दिष्ट न होने पर हमारे ये निर्देश एम० रंगाचार्य के मद्रास संस्करण से संबंधित हैं। इस संस्करण में पाठ को तीन की जगह चार अध्यायों में विभक्त किया गया है।

टीकाएं : (1) तरुणवाचस्पति, मद्रास कैटलॉग xii, 12834. ऊपर कहे अनुसार मुद्रित। यह पुरानी टीका प्रतीत होती है; किंतु चूँकि इसमें (i.40-पर) भोज ii.28 और दशरूपक i.8 (i.31 पर टीका में) का उल्लेख है, अतएव इसे बहुत प्राचीन नहीं माना जा सकता। इस टीका में (i.30 पर) कवि हरित-मल्ल का उल्लेख है। ये जैन कवि हस्तिमल्लसेन हो सकते हैं, जिन्होंने नाटक और काव्य लिखे हैं। तरुणवाचस्पति के पुत्र केशव भट्टारक, महाराजाधिराज रामनाथ (होयसल वीर रामनाथ) के गुरु थे। वे 1255 ई० में राजसिंहासन पर बैठे। देखिए वी० राघवन, जर्नल ऑफ़ ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास, xiii पृ०305, इस प्रकार तरुणवाचस्पति की तिथि 12 वीं० शती के अंत और 13 वीं शती के पूर्वार्ध के मध्य संभव हो सकती है। कुछ पांडुलिपियों के अंतिम पृष्ठ-विवरण (Colophon) में उन्हें 'साधु' नाम से अभिहित किया गया है।

(2) अज्ञात लेखक की टीका 'हृदयंगम', मद्रास केटलॉग 12833, जैसा ऊपर बताया गया है (केवल अध्याय i-ii); भोज ने इसका नामोल्लेख किए बिना दंडी पर इसकी टिप्पणियों (ii. 284, 286, 288, 289-91) को शब्दशः अपने ग्रंथ श्रृंगार-प्रकाश, (अध्याय xi) में उद्धृत किया है।

(3) विश्वधर के पुत्र और केशव के कनिष्ठ भ्राता हरिनाथ की टीका, 'मार्जना'। Abod. 206 पीटर्सन vi. 30 (उद्धरण). B O R 1 (केटलॉग xii. संख्या 124) के अंतर्गत पांडुलिपि, प्रतिलिपि 1746-1690 ई०। भोज की सरस्वती-क. पर भी हरिनाथ ने टीका लिखी थी। वे केशवमित्र के पश्चात् हुए हैं, क्योंकि अलंकार पर उनके ग्रंथ से उन्होंने उद्धरण दिए हैं।

(4) गदाधर के पुत्र और कृष्णशर्मा के पौत्र नरसिंह सूरी की मुक्तावली। मित्र 2394 (औफ्रेक्ट i. 102b)

(5) त्रिशरणतटभीम रचित 'चंद्रिका'। हाल की सूची पृ० 63 पर इसका उल्लेख है।

(6) विश्वनाथ रचित 'रसिक-रंजनी'। औपर्ट (Oppert 4112, औफ्रेक्ट i. 103a)।

(7) कृष्णकिंकर तर्कवागीश भट्टाचार्य, गोपालपुर, बंगाल निवासी, कृत 'विवृति' अथवा 'काव्य-तत्व-विवेक-कौमुदी'। 10c pt. iii. संख्या 1128-1497, पृ० 321.

(8) वादिजंघाल (अथवा वादि-घंघाल) रचित 'श्रुतानुपालिनी'। ऊपर बताए अनुसार मुद्रित। स्टीन (Stein) पृ०61, xxviii, उद्धरण संख्या 1179. दि रिपोर्ट ऑफ़ पेरीपेटेटिक पार्टी ऑफ़ मद्रास, Mss लाइब्रेरी 1917-19 में पुस्तकालय के लिए इस टीका की प्राप्ति का उल्लेख है। भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में पांडुलिपि, कैटलॉग xii संख्या 125. इस टीका में काश्यप, ब्रह्मदत्त और नंदिस्वामी का दंडी के पूर्ववर्ती विद्वानों के रूप में उल्लेख है।

(9) भागीरथ रचित टीका। औफ्रेक्ट i. 102 b.

(10) विजयानंद की टीका। Bori कैटलॉग xii, संख्या 123 (अपूर्ण) के अंतर्गत पांडुलिपि।

(11) जगन्नाथ के पुत्र मल्लिनाथ की 'वैमल्य-विधायिनी' टीका। औफ्रेक्ट (Aufrecht) ii. 20a. शायद ये वही मल्लिनाथ हैं, जिनका उल्लेख काव्यादर्श के टीकाकार के रूप में विश्वेश्वर ने अलंकौस' पृष्ठ 69 पर किया है। इन्हें प्रसिद्ध कोलाचल मल्लिनाथ से भिन्न मानना चाहिए।

(12) त्रिभुवनचंद्रकृत (अपूर्ण) टीका। उनका दूसरा नाम वादिसिंह था। वे जैन थे। पी० वी० काणे कृत संस्कृत काव्यालंकार का इतिहास, iii, संख्या 57.

(13) यामुन अथवा यामुनेय रचित टीका, Bori, कैटलॉग xii, संख्या 126 के अंतर्गत पांडुलिपि। कदाचित् यह दक्षिण-भारतीय रचना है। इसमें रंगाचार्य के मद्रास संस्करण के समान काव्यादर्श को चार अध्यायों में विभाजित किया गया है।

(14) रत्नश्रीज्ञान रचित 'रत्नश्री' टीका। संस्करण पूर्वोक्त अनुसार। लेखक लंका के भिक्षु थे। उन्होंने किसी राष्ट्रकूट राजा के संरक्षण में यह टीका लिखी थी। इस राजा का नाम तुंग था और वह गौड़ और मगध के महाराजा (तिथि 908 ई०) राज्यपाल के अधीन था। अश्वघोष और कालिदास के अतिरिक्त इसमें इन लेखकों का उल्लेख मिलता है—मातृचेट, आर्यशूर, कोहल, रामशर्मा, मेधाविरुद्र, कंबल, हरिवृद्ध, भामह, भर्तृमेंठ, गुणाढ्य, 'चंद्र-व्याकरण' मल्लनाग और धर्मकीति।

(15) अज्ञात लेखकों की टीकाएँ : मित्र 297; ओपर्ट (Oppert) 7903; Scc vii. 21; ओपर्ट 2581 के अंतर्गत धर्मवाचस्पति की एक टीका, जो संभवतः अशुद्ध है। शुद्ध नाम तरुणवाचस्पति है। रेगनो (Regnaud) (Rhetorique पृ० 367 पा० टि०) ने भी वाचस्पति की एक टीका का उल्लेख किया है और टेलर (Taylor) ii. 501 का हवाला दिया है। शायद वह ग्रंथ भी इसी टीका को लक्षित करता है।

उद्भट

(१)

उद्भट ने भामह पर 'भामह-विवरण' अथवा 'भामह-विवृति'[1] नामक टीका लिखी और साथ-ही-साथ अपने ग्रंथ, काव्यालंकार-संग्रह' की रचना में भामह के ग्रंथ का उपयोग किया।[2] आनंदवर्धन[3] ने ध्वनि-सिद्धांत को विकसित करके उसे

1. परवर्ती लेखकों ने 'भामह-विवरण' का अनेक बार उल्लेख किया है। उदाहरणतया, अभिनवगुप्त ने अपने 'लोचन' में (पृ० 10, 40, 134, 159); हेमचंद्र ने (टीका, पृ० 17, 110); माणिक्यचंद्र ने (संकेत, सं. मैसूर, पृ० 289); समुद्रबंध ने ('अलंकार-सर्वस्व' पर पृ० 89); प्रतीहारेंदुराज ने (पृ० 13 पर) इत्यादि।
2. ऐसा प्रतीत होता है कि उद्भट ने इन अलंकारों की परिभाषाओं में शब्दशः भामह के ग्रंथ का उपयोग किया है—आक्षेप, विभावना, अतिशयोक्ति, कथासंख्य, उत्प्रेक्षा, पर्यायोक्त, अपह्नुति, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, सहोक्ति, ससंदेह और अनन्वय। अलंकारों की परिगणना में भी भामह के क्रम का अनुकरण किया गया है। किंतु उद्भट ने कुछ ऐसे अलंकारों को छोड दिया है, जिनकी भामह ने परिभाषा दी है (यथा यमक, उपमा रूपक, उत्प्रेक्षावयव) और कुछ ऐसे अलंकारों को सम्मिलित कर लिया है, जिनकी परिभाषा भामह ने नहीं दी (यथा पुनरुक्तवदाभास, काव्यलिंग, दृष्टांत और संकर)।
3. प्रतीहारेंदुराज (पृ० 79), रुय्यक और जयरथ (पृ० 3) और जगन्नाथ (पृ० 414-5) के मतों की तुलना कीजिए।

अंतिम रूप दिया। उन्होंने, वास्तव में, भट्टउद्भट का पृ० 96 और 108 पर उल्लेख किया है: क्योंकि आनंदवर्धन 9 वीं शती में हुए हैं, इसलिए उद्भट निश्चित रूप से उनसे पहले हुए हैं। उद्भट के नाम से मालूम होता है कि वे काश्मीरी थे।[1] कल्हण (iv. 495) ने एक भट्ट उद्भट का नाम लिया है, जो काश्मीर के राजा जयापीड (लगभग 779-813ई०) के सभापति थे, और बूहलर (Buhler) ने, काश्मीर में उद्भट के ग्रंथ की खोज करने के लिए हम जिनके आभारी हैं, उन्हें 'काव्यालंकार संग्रह' (अथवा 'काव्यसार-संग्रह') के लेखक से अभिन्न माना है। इस अभिन्नता को मानते हुए, जैकोबी के कथनानुसार, उद्भट के अधिक सक्रिय काल को जयापीड के राज्यपाल के पूर्वार्द्ध में निर्धारित किया जा सकता है, क्योंकि इसके राज्यकाल के उत्तरार्द्ध में प्रजापीडन के कारण ब्राह्मण इससे विमुख हो गए थे। अतएव, उद्भट की तिथि 8 वीं शती के अंत में निर्धारित की जानी चाहिए। संभव है, वे 9 वीं शती के आरंभ तक वर्तमान रहे हों।

लुप्त 'भामह-विवरण' के अतिरिक्त प्रतीहारेंदुराज का कथन है (पृ०15) कि उद्भट ने 'कुमारसंभव' नामक काव्य भी लिखा था। पाठ में अधिकतर उदाहरण उसी में से लिए गए हैं।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सभवतः उद्भट ने भरत के 'नाट्यशास्त्र' पर एक टीका भी लिखी थी। वह अब उपलब्ध नहीं है। अभिनवगुप्त ने भरत पर अपनी टीका में औद्भटों अथवा उद्भट के अनुयायियों का उल्लेख किया है।

उद्भट के 'काव्यालंकार-संग्रह' में छह अध्याय (वर्ग) हैं। इसमें अनुष्टुप् में 75 कारिकाएं और उदाहरण हैं और 41 अलंकारों पर चर्चा की गई है। 'सुभाषितावली' में 498, 1463, 3453 पद्य उद्भट-रचित कहे जाते हैं। इनमें संख्या 498 का पद्य प्रसिद्ध सुभाषित है। यह 'चाणक्य-शतक' जैसे संग्रहों में भी उपलब्ध है। यद्यपि उद्भट ने अलंकारों के विवेचन में भामह का अनुकरण किया है, तथापि उनके अपने विशिष्ट विचार भी हैं, जिनका अस्तित्व तो भामह में है ही नहीं अथवा जिनके संबंध में उनका भामह से मतभेद है। उदाहरण के लिए, भामह ने श्लेष के तीन भेद बताए हैं, जबकि उद्भट ने केवल दो भेद बताए हैं और उनके वर्गीकरण का आधार भी भिन्न है। उद्भट की तीन वृत्तियों का, जो अनुप्रास के वर्गीकरण का आधार हैं, भामह में अभाव है।[2]

1. Kashmir Rep, पृ० 65.
2. अधिक उदाहरणों के लिए पी. वी. काणे, HSP, पृ० 127-128 देखिए। उद्भट के ग्रंथ के अंतर्गत विषयों का संक्षेप वर्णन खंड ii. अध्याय ii (2) में दिया गया है।

(२)

मुकुल और प्रतीहारेंदुराज

उद्भट के टीकाकार, प्रतीहारेंदुराज, अपने ही कथनानुसार, कोंकण के निवासी और मुकुल के शिष्य थे। मुकुल, 'अभिधावृत्ति-मातृका' के रचयिता होने के नाते प्रसिद्ध हैं। यह ग्रंथ अभिधा और लक्षणा की व्याकरण और अलंकार संबंधी समस्या पर लिखा गया है। इसमें वृत्तिसहित 15 कारिकाएं है। ग्रंथ के अंतिम पद्य से मालूम होता है कि लेखक के पिता का नाम भट्ट कल्लट था; जो कल्हण v.66 के अनुसार, काश्मीर-नरेश अवंतिवर्मा (855-884 ई०)[1] के राज्यकाल में हुए और इस प्रकार रत्नाकर और आनंदवर्धन के समकालीन थे। कल्हण के कथन को स्वीकार कर लिया जाय, तो मुकुल की तिथि लगभग 9वीं शती के अंत और 10 वीं के आरंभ में निर्धारित की जा सकती है। उनके शिष्य प्रतीहारेंदुराज, इस प्रकार, 10 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए थे।[2] उद्भट पर अपनी टीका, 'लघु-वृत्ति' में, प्रतीहारेंदुराज ने भामह, दंडी, वामन, 'ध्वन्यालोक' और रुद्रट के उद्धरण अधिकांशतः नामसहित दिए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत से भलीभाँति परिचित थे, किंतु उसके अनुयायी नहीं थे।

पीटर्सन ने प्रतीहारेंदुराज और भट्टेंदुराज की अभिन्नता का सुझाव दिया है।[3] अभिनवगुप्त ने अपने लोचन (पृ० 25, 43, 116, 160, 207, 223) में अस्मदुपाध्याय और भरत पर अपनी टीका में केवल 'उपाध्याय' कहकर उनका उल्लेख किया है। अभिनवगुप्त ने अपने ग्रंथ 'लोचन'[4] के आदि और अंत में इस गुरु के प्रति अपना असीम ऋण-भार प्रकट किया है। एक स्थल पर (पृ० 160) उन्होंने उनकी प्रशंसा में उन्हें 'विद्वत्कविसहृदयचक्रवर्ती' की उत्कृष्ट उपाधि दी है। इन सबसे और अभिनव के कथन से कि उन्होंने काव्य की शिक्षा भट्टेंदुराज से प्राप्त की, इस अनुमान की पुष्टि होती है कि यह आचार्य काव्य विद्या में प्रवीण थे। तिथि-

1. बूहलर का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 66, 78.
2. तुलना कीजिए, शृंगारतिलक पर पिशेल की भूमिका, पृ० 12.
3. 'सुभाष' पर भूमिका पृ० 11, किंतु ऑफ्रेक्ट ने i. 59a में इसका विरोध किया है। बनहट्टी द्वारा प्रस्तुत अभिन्नता के आधुनिक तर्क के आधार ठोस और युक्तियुक्त नहीं हैं। समुद्रबंध पृ० 132 में केवल एक ऐसा उदाहरण है, जहाँ पर दोनों इंदुराजों की अभिन्नता का भ्रम है, किंतु यह प्रमाण पर्याप्त नहीं है।
4. सं. काव्यमाला, पृ० 1 और जर्नल ऑफ़ दि डिपार्टमेंट आफ़ लैटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1922, पृ० 42 (एस.के. दे के ग्रंथ 'कुछ समस्याएँ'–(Some Problems) पृ० 245 इत्यादि में पुनर्मुद्रित।

संबंधी बाधा न होते हुए भी ऐसे अनेक कारण हैं, जिनसे दोनों इंदुराजों में परस्पर भेद किया जा सकता है। 'भगवद्गीता'[1] पर अभिनव की टीका से प्रतीत होता है कि भट्टेंदु, श्रीभूतिराज के पुत्र और कात्यायन-गोत्रोत्पन्न सौचुक के पौत्र थे; किंतु प्रतीहारेंदु की वंशावली अथवा उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में हमें केवल इतना ही ज्ञात है कि वे कोंकण के निवासी और मुकुल के शिष्य थे।[2] भट्टेंदु मुख्यतः एक कवि थे और अभिनव के उद्धरण से प्रतीत होता है कि उन्होंने संस्कृत और प्राकृत, दोनों में लिखा है। कदाचित् उनकी प्रेरणा से उनके शिष्य ने अपने ग्रंथों में उनके पद्यों का उपयुक्त उदाहरणों के रूप में प्रयोग किया। अभिनव ने भरत पर अपनी टीका में रस और तत्संबंधी विषयों पर, उनके विचारों का जैसा उद्धरण दिया है, वह उद्भट पर प्रतीहारेंदु की टीका में व्यक्त विचारों के साथ मेल नहीं खाता। भट्ट और प्रतीहार केवल सम्मानसूचक शब्द हैं, उनसे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। किंतु अभिनव ने अपने गुरु के उल्लेख में सदा भट्टेंदुराज (प्रतीहारेंदुराज का नहीं) शब्द का प्रयोग किया है। यह बात महत्वपूर्ण है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि दोनों ही इंदुराज शायद समकालीन थे, संभव है, अभिनव ने दोनों में भेद लक्षित किया हो। परवर्ती काव्यसंग्रहों में भी इस बात पर कोई भ्रम नहीं, क्योंकि कवि सदैव इंदुराज[3] अथवा भट्टेंदुराज कहा गया है। संभवतः यह कहा जा सकता है कि कवि भट्टेंदुराज ही अभिनव के गुरु थे। उन्हें इसी नाम से क्षेमेंद्र के दो ग्रंथों[4] और शार्ङ्गधर, वल्लभदेव और जल्हण के काव्य संग्रहो[5] में निर्दिष्ट

---

1. बूहलर का उपर्युक्त ग्रंथ पृ० 30 और cxlxii-viii.
2. यह विचित्र बात है कि अभिनव ने अपने अधिकतर गुरुओं और परम-गुरु का उल्लेख किया है, किंतु मुकुल को छोड़ दिया है। यदि मुकुल परमगुरु थे तो उनका ग्रंथ अभिनव के लिए महत्त्वपूर्ण था; क्योंकि इसमें अलंकार के समान शब्द के कार्य (शक्ति) और उसके अर्थ की समस्या पर विवेचन किया गया था।
3. इंदुराज के दो पद्य कवि के नाट्यशास्त्र के संस्करण में 287 और 306 पर मिलते हैं।
4. 'औचित्य विवेचन', श्लोक 25, 31 के नीचे। 'सुवृत्ततिलक' श्लोक 2, 24. 29, 30 के नीचे।
5. 'सुभाषितावली' 918. शार्ङ्गधर पद्धति (1052) में 'परार्थे यः पीडां' पद्य इंदुराज-रचित माना गया है, आनंदवर्धन ने इसका दो बार (अज्ञात लेखक) उल्लेख किया है। किंतु इस बात से कोई निर्णय नहीं होता, क्योंकि अभिनव की टीका इस पद्य के रचयिता के बारे में चुप है, जो 'भल्लट-शतक' 56 में मिलता है और 'सुभाष' 947 में एक अन्य कवि, यश, का लिखा माना गया गया है। 'सदुक्तिकर्णामृत' में यह पद्य वाक्पति पर आरोपित है। हेमचंद्र (टीका पृ० 257) और जयरथ (पृ० 108) ने अज्ञात लेखक के रूप में इस पद्य का उल्लेख किया है।

किया गया है। इसके विपरीत, टीकाकार प्रतीहारेंदुराज कोई प्रसिद्ध कवि नहीं थे। मुख्यतः उन्होंने अलंकार पर लिखा है और वे अपने विचारों में उद्भट के प्राचीन मत के अनुयायी थे। यद्यपि, अभिनव के समान, नव-प्रतिष्ठित ध्वनि-सिद्धांत में उनकी आस्था नहीं थी, फिर भी उन्हें उसका पूर्ण ज्ञान था। आनंदवर्धन के इस नए सिद्धांत को लक्षित करते हुए, प्रतीहारेंदु ने एक स्थान पर (पृ० 79) इस प्रकार कहा है—ध्वनि, जिसे कुछ चिंतकों ने काव्य का 'प्राण' माना है, उसे कुछ चर्चाधीन अलंकारों के विवेचन के अंतर्गत, उसके लेखक उद्भट ने शामिल कर लिया है। इसलिए उसकी पृथक् चर्चा आवश्यक नहीं है। इसके विपरीत, ऐसा प्रतीत होता है कि, भट्टेंदुराज ध्वनि के नवीन सिद्धांत के पक्ष में थे, क्योंकि अभिनव (लोचन-पृ० 2) का कथन है कि मेरे गुरु ने ध्वनि-सिद्धांत के संबंध में आनंद की वृत्ति के मंगलश्लोक की व्याख्या मुझे बताई थी। प्रतीहारेंदुराज और अभिनव के दृष्टिकोण में इतनी भिन्नता है कि यह मानना कठिन है कि उन दोनों में कोई आध्यात्मिक संबंध रहा होगा, क्योंकि अभिनव जिस ध्वनि-सिद्धांतके मान्यताप्राप्त प्रवर्तक थे, पूर्वोक्त लेखक किसी प्रकार भी उसके अनुयायी नहीं थे।

राजानक तिलक

रुय्यक (अथवा रुचक) के ग्रंथ 'अलंकार-सर्वस्व' पर अपनी टीका में जयरथ ने अनेक स्थानों पर (सं NSP 1893, पृ० 15, 124, 305) राजानक तिलक रचित 'उद्भट विचार' का उल्लेख किया है और कहा है कि रुय्यक ने साधारणतया तिलक के विचारों का अनुकरण किया है। हमें ज्ञात है कि राजानक तिलक रुय्यक के पिता थे। गायकवाड़ सीरीज (ग्रंथसूची में नीचे देखिए)[1] के अंतर्गत उद्भट के पाठ पर टीका सहित, एक अज्ञातनाम लेखक की, 'विवृति' नामक टीका प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक के संपादक का दावा है कि 'विवृति' जयरथ द्वारा उल्लिखित 'विवेक' अथवा 'विचार' से अभिन्न है। वर्तमान लेखक[2] और उसी समय बनहत्ति (Benhatti) ने भी उद्भट के ग्रंथ के अपने संस्करण में, मद्रास गवर्नमेंट औरियंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी में टीकाओं की इस अद्वितीय पांडुलिपि के वर्तमान होने की ओर ध्यान आकर्षित किया था। बनहत्ति ने अभिन्नता के प्रश्न पर संकोच से काम लिया है; किंतु उनका विचार है कि 'विवृति' स्पष्टतया जयरथ कथित राजानक तिलक के 'उद्भट-विवेक' अथवा 'विचार' से भिन्न है।

1. जर्नल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1934, पृ० 173,74 में वर्तमान लेखक द्वारा उसकी समीक्षा देखिए।
2. BSOS, iv, 1926, पृ० 279.

"विवृति' के संपादक ने 'विवृति' को तिलक का लुप्त ग्रंथ, 'विवेक' अथवा 'विचार' प्रमाणित करने का बड़ा प्रयत्न किया है।[1] प्रस्तुत प्रमाण स्वीकार्य है, किंतु निर्णायक नहीं है, और निश्चित सामग्री के अभाव में अच्छा यही है कि इस प्रश्न को ज्यों-का-त्यों ही रहने दिया जाय। यह अनामलेखक टीका आधुनिक है, इसका प्रमाण इसकी अंतर्वस्तु, राजशेखर की 'विद्धशालभंजिका' का इसमें उल्लेख, और स्पष्ट रूप से मम्मट के मानक ग्रंथ के विनियोग से मिलता है। व्याख्या के रूप में इस ग्रंथ को अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता।

ग्रंथ सूची

उद्भट

संस्करण : (1) रोमन लिपि में पाठ जी० ए० जेकब कृत, जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी (JRAS) 1897, पृ० 829-53; (2) प्रतीहारेंदुराज का टीकासहित पाठ, एम० आर० तेलंग कृत, निर्णय सागर प्रेस 1905, 1915 (यह संस्करण अपनी टीका के कारण उपयोगी है, किंतु टीका-गत कुछ पद्य गलती से कारिका-पद्य के रूप में दिए गए हैं); (3) प्रतीहारेंदुराज की टीका सहित एन० डी० बनहत्ती का संस्करण, बंबई संस्कृत सीरीज, पूना 1925. अन्यथा निर्देश न होने पर सभी हवाले तेलंग के संस्करण से दिए गए हैं।

टीकाएँ: (1) प्रतीहारेंदुराज-कृत टीका (ऊपर कहे संस्करणों में मुद्रित) (ii) एक अज्ञात लेखक की 'विवृति' नामक टीका (संपादक ने इसे राजानक तिलक रचित माना है), सं० के० एस० रामस्वामी शास्त्री, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज 1931.

मुकुल

संस्करण ए० आर० तेलंग-कृत, निर्णय सागर प्रेस, बंबई 1916.

प्रतिहारेंदुराज

उपर्युक्त, उद्भट के पाठसहित।

राजानक तिलक

टीकाओं के अंतर्गत, ऊपर देखिए।

1. पी. वी. काणे (HSP, पृ० 130) इस विचार से सहमत हैं।

वामन

(१)

वामन की तिथि की ऊपरी सीमा उनके अपने उद्धरणों (iv. 3,6 और i. 2.12) से प्राप्त होती है, जो भवभूति-रचित 'उत्तर-राम-चरित' (1.38) और 'महावीर-चरित' (1.54) में दिए गए हैं। भवभूति, कन्नौज के राजा यशोवर्मा के संरक्षण में, 8 वीं शती के प्रथम चरण में हुए।[1] उनकी तिथि की निचली सीमा राजशेखर द्वारा वामन i.2.1-3 से लिए गए उद्धरण (पृ०14) से और वामनीयों के निर्देश से प्राप्त होती है। इससे विदित होता है कि 9 वीं शती के अंत तक वामन के अनुयायियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। अभिनवगुप्त ('लोचन', पृ० 37)[2] से यह भी विदित होता है कि 9 वीं शती के मध्य में आनंदवर्धन वामन से परिचित थे, यद्यपि उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से वामन का उल्लेख नहीं किया है, फिर भी iii. 52 पर वृत्ति में स्पष्टतया उनके रीति-सिद्धांत को लक्षित किया है। भामह, दंडी और उद्भट की तरह शायद वामन उस समय हुए, जब आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत को ख्याति नहीं प्राप्त हुई थी। प्रतीहारेंदुराज वामन के विचारों के बड़े भक्त थे। उन्होंने 'अलंकार-ध्वनि' की चर्चा करते हुए स्पष्टतया कहा है (पृ०81) कि वामन

1. 'राजतरंगिणी' iv.144; 'मालती-माधव' पर भंडारकर की भूमिका, पृ०xiii इत्यादि; JBRAS xxiii, पृ० 92; एस. पी. पंडित की 'गौडवहो' पर भूमिका पृ० xvii; WZKM, ii. 332। चंद्रगुप्त के एक मंत्री, सुबंधु (पाठांतर, वसुबंधु) को iii. 2.2 पर वृत्ति के अंतर्गत एक उदाहरण से संबंधित एक तर्क में निर्दिष्ट किया गया है। सुबंधु अथवा वसुबंधु के संरक्षक (भूपति) की अभिन्नता का विषय बहुत विवादास्पद रहा है, (देखिए, इंडियन एंटीक्वेरी xl, 1911, पृ० 170, 312; xii. 1912 पृ० 1,15; इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली i, पृ० 261)। वी. राघवन (इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टरली xix, 1943, पृ० 70-72) ने यह प्रदर्शित किया है कि यह मानने की कोई आवश्यकता नहीं है कि वामन ने प्रसिद्ध गद्यकथा 'वासवदत्ता' के लेखक सुबंधु को निर्दिष्ट किया है, वामन का निर्देश तो चंद्रगुप्त मौर्य और बिंदुसार के मंत्री सुबंधु की ओर है। अभिनव गुप्त ने महाकवि सुबंधु को 'वासवदत्ता नाट्य-धारा' नामक नाटक का लेखक कहा है। नाट्य-धारा शब्द से विदित होता है कि क्रमानुसार अंक के अंदर अंक देकर इस नाटक की पूर्त्ति (विकास) की गई थी।
2. 'लोचन' में वामन के उद्धरण पृ०8, 10, 180 पर मिलते हैं। इसके अतिरिक्त 'अभिनव-भारती' खंड 1.पृ० 288 (वामन i.3, 30-21)पर। वामन ने (iv. 3.10 उषो यदि व्योम्नि) माघ iii. 8 का उद्धरण दिया है, इसके अतिरिक्त वामन v. 2.9 माघ i. 25 'यो भर्तृ-पिंडस्य', जिसे v. 2.28 में व्याकरण के अनुसार अशुद्ध कहा गया है, 'प्रतिज्ञा-यौगंधरायण' iv.3 में मिलता है, और iv.3.25 में उल्लिखित पद्य 'शरच्छशांक गौरेण', 'स्वप्नवासवदत्ता' iv. 7 में मिलता है।

ने ऐसे अवसरों पर 'वक्रोक्ति' शब्द का प्रयोग किया है (iv.3.8)।[1] यदि वामन की तिथि को 9वीं शती के मध्य में निर्धारित किया जाय तो गलत नहीं होगा।[2]

इन बातों से यह संभव प्रतीत होता है कि वामन 8 वीं शती के मध्य और 9 वीं शती के मध्य के अंतर्वर्ती काल में, अर्थात् लगभग 800 ई० के आसपास हुए। कल्हण iv.497 और 'काश्मीरी पंडितों की परंपरा' का आदर करते हुए, हमारे वामन और काश्मीर-नरेश जयापीड (779-813 ई०) के मंत्री वामन में बूहलर द्वारा प्रतिपादित अभिन्नता को मानना पड़ेगा। इस निष्कर्ष से उद्भट और वामन समकालीन और प्रतिस्पर्धी सिद्ध होते हैं। राजशेखर, हेमचंद्र और जयरथ ने जिस प्रकार वामनीय और औद्भटीय दो प्रतिस्पर्धी मतों का उल्लेख किया है, उससे भी इस अनुमान की पुष्टि होती है।

सूत्रों पर सोदाहरण वृति, कविप्रिया, जैसा कि मंगल-श्लोक से विदित होता है, वामन ने स्वयं लिखी थी (तुलना कीजिए, iv.3.33)। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि परवर्ती लेखकों ने दोनों भागों को वामन-रचित माना है। उनके अपने कथन के अनुसार, उदाहरण 'स्वीय' और परकीय, दोनों हैं (iv. 3.33)। सूत्रपद्धति के अनुसार रचित, वामन के ग्रंथ में पांच अधिकरण हैं और प्रत्येक अधिकरण में कई अध्याय हैं। पहले और चौथे अधिकरण में तीन अध्याय हैं और शेष अधिकरणों में दो-दो अध्याय हैं। कुल मिलाकर बारह अध्याय हैं। अधिकरणों के नाम से विषय-सामग्री सूचित होती है-(i) शारीर, (ii) दोष-दर्शन, (iii) गुण-विवेचन (iv) आलंकारिक और (v) प्रायोगिक। अंतिम अध्याय में शब्द-शुद्धि अथवा प्रायोगिक के एक अंग व्याकरण-शुद्धि का विवेचन है। उदाहरण सहित छत्तीस अलंकारों की परिभाषा दी गई है।

1. यदि जैकोबी के कथनानुसार यह मान लिया जाय कि वामन अनाम ध्वनिकार के समकालीन थे तो भी यह प्रमाणित नहीं हो सकता कि वे किसी तरह उस सिद्धांत से प्रभावित हुए थे। रुय्यक के कथन (पृ० 7) और जयरथ से प्रतीहारेंदुराज के मत की पुष्टि होती है। जयरथ ने प्राचीन लेखकों को लक्षित करके स्पष्ट रूप से कहा है कि वे ध्वनिकार के मत से अनभिज्ञ थे ('ध्वनिकार मतमेभिर्नदृष्टम्', पृ० 3)। जयरथ के विचार में ध्वनिकार वास्तव में स्वयं आनंदवर्धन ही थे।
2. कैपेलर (Cappeller) के थीसिस (Vaaman's Stilregen) पृ० iii तथा उनके संस्करण की भूमिका पृ० vii का, कि वामन को 1000 ई० के पश्चात् निर्धारित किया जाय, उपर्युक्त उद्धरणों से पूर्णतया निराकरण होता है। तुलना कीजिए, पिशेल (Pischel) का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 23। पिशेल के अनुसार कविराज के उल्लेख मात्र से वामन को 1000 ई० में निर्धारित करना आवश्यक नहीं है।

(२)

यह पहले ही बताया जा चुका है कि वामन ने, कई बातों में दंडी की पद्धति को परिष्कृत करने की चेष्टा की है। प्रयुक्त उदाहरणों के विषय में, वामन ने मौलिकता का दावा नहीं किया है। अनेक उदाहरण प्रसिद्ध ग्रंथों से उद्धृत प्रतीत होते हैं। वामन ने जिस रीति-सिद्धांत का पहली बार व्यवस्थित और स्पष्ट रूप में प्रतिज्ञापन किया, वह शायद भामह से भी प्राचीन है, क्योंकि उन्होंने 'गौडी' और 'वैदर्भी' के वर्गीकरण का उल्लेख किया है। वामन ने स्वयं अपनी वृत्ति में यथा, I. 2.11, 12-13, 3.15, 29, 32; II. ', 18, 2.19; III. 1. 2. 9, 25, 2.15 IV. 1. 7 पर 'अत्र लोकाः' अथवा 'तथा चाहुः' के साथ प्राचीन अज्ञात आचार्यों के उद्धरण दिए हैं। इन अज्ञात लेखकों और वामन के मध्य में दंडी एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं, किंतु वामन के ग्रंथ में इस सिद्धांत का पूर्ण चेतन रूप उपलब्ध हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती काल में वामम के प्रभाव से उत्पन्न वामनीय मत के होते हुए भी, मैदान में आनंदवर्धन के आ जाने के कारण, इस सिद्धांत का पतन हो गया।

मंगल

मंगल शायद इसी सिद्धांत के अनुयायी थे। वे अपेक्षाकृत प्राचीन लेखक थे। राजशेखर ने पृ० 11,14,16 और 20 पर उनके उद्धरण दिए हैं। हेमचंद्र के कथनानुसार (टीका पृ० 195) ओज की परिभाषा पर वे भरत से सहमत थे। वामन के साथ उनका भी कथन है कि दंडी का यह कहना कि ओज केवल गौडी रीति में है, ठीक नहीं, क्योंकि ओज सभी रीतियों में विद्यमान है।[1] इस लेखक के विषय में हमें केवल इतना ही ज्ञात है, किंतु यह प्रतीत होता है कि उनके विचार वामन-पक्षीय थे, जो शायद उनसे पूर्व हुए हैं। 'सदुक्ति-कर्णामृत' में मंगल नामक कवि का उल्लेख मिलता है।

वामन के टीकाकार

वामन पर विद्यमान अधिकतर टीकाएं अर्वाचीन हैं और आलोचनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक स्वीकार्य नहीं हैं। दक्षिण-भारतीय विद्वान्, गोपेंद्र तिप्प भूपाल विजयनगरवंशीय देवराय II (1423-46 ई०) के अधीन राज्यपाल रहे थे। उनकी लिखी 'कामधेनु' नामक टीका, पाठ की विशद व्याख्या करती है और भारत में अनेक बार प्रकाशन से उसकी सर्वप्रियता सिद्ध होती है।

1. तुलना कीजिए, माणिक्यचंद्र (संकेत, मैसूर सं०, पृ० 292)।

ग्रथ-सूची

संस्करण और अनुवाद : (1) कार्ल केपेलर, जीना, 1875, कृत Vaman's Lehrbuch der Poetik; (2) संस्करण, दुर्गाप्रसाद और के० पी० परब, निर्णय सागर प्रेस, बंबई 1880, और 1889; (3) सं० ए० बरुआ, कलकत्ता 1883, (4) सं० ग्रंथ प्रदर्शिनी, 1895; (5-6) स०कामधेनु टीका सहित, बनारस संस्कृत सीरीज 1908 और श्रीवाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम् 1909; (7) सं० एन० एन० कुलकर्णी, कामधेनु के उद्धरणों के साथ, पूना, 1927; (8) Vaman's Stilregelen, Bearbeitet V.C. Cappelier (अंतिम अध्याय का अनुवाद), स्ट्रासबर्ग, 1880.--अंग्रेजी अनुवाद, गंगानाथ झा, इलाहाबाद (तिथि रहित), इंडियन थाट में सर्वप्रथम प्रकाशित, खंड iii-iv. 1912, पुनर्मुद्रण, ओरिएंटल बुक एजेंसी, पूना 1928 (द्वितीय संशोधित संस्करण)। हमारे निर्देश अन्यथा संकेत न होने पर 1908 के बनारस संस्करण के प्रति हैं।

टीकाएं : (1) 'कामधेनु' गोपेंद्र (अथवा गोविंद) तिप्प (अथवा, स्वकथित नाम के अनुसार, तिरपुरहर, भूमिका v. 8) भूपाल द्वारा। उनके विषय में ऊपर देखिए। उन्होंने अन्य लेखकों के अतिरिक्त, विद्याधर, विद्यानाथ, भट्ट गोपाल (मम्मट के टीकाकार ?), घंटापथ (मल्लिनाथ कृत) और धर्मदास सूरी रचित 'विदग्ध-मुख-मंडन' (ii. 2. 21 पर) को निर्दिष्ट किया है। इस प्रकार वे 14 वीं शती के पश्चात् हुए हैं। उन्होंने 'कवि गजांकुश' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। ग्रंथ-प्रदर्शिनी 1895 में सपाठ संस्करण, बनारस संस्कृत सीरीज और श्रीवाणी विलास प्रेस, इत्यादि। हमारे निर्देश पृष्ठों के अनुसार बनारस संस्करण के प्रति हैं।

(2) महेश्वर रचित 'साहित्य-सर्वस्व' (I.O.C. 566; ABod 207b.) देखिए श्रीवत्सलांछन (मम्मट पर टीकाओं के अंतर्गत, आगे देखिए) (3) सहदेव रचित एक टीका, जिसका 'काव्यमीमांसा' पृ० 5, के गायकवाड संस्करण बड़ौदा की टिप्पणी में उल्लेख किया गया है।

रुद्रट और रुद्रभट्ट

(१)

राजशेखर (पृ० 31) ने, जो 9 वीं शती के अंत और 10 वीं शती के आरंभ में हुए हैं, रुद्रट के अलंकार 'काकुवक्रोक्ति' (ii.16) का उनके नामसहित उल्लेख किया है। इस प्रकार रुद्रट की तिथि की निचली सीमा प्राप्त हो जाती है। यह निष्कर्ष दो कारणों से पुष्ट होता है। वल्लभदेव, जैसा कि आगे बताया जायगा, 10वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए थे। उन्होंने माघ पर अपनी टीका (स० काशी संस्कृत

सीरीज, 1929. ii. 44) में रुद्रट का नाम-सहित उल्लेख किया है और कहा है (iv. 21, पर) कि उन्होंने स्वयं रुद्रट द्वारा अलंकार पर रचित एक ग्रंथ पर टीका लिखी है। उस टीका में उन्होंने इस प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की है। इसी टीका में हुल्ट्श (Hultzsch) ने रुद्रट संबंधी कई उद्धरण देखे हैं।[1] अधिकतर वे अनाम हैं। प्रतीहारेंदुराज ने भी, लगभग उसी समय में, अनामतः (पृ० 42,49) रुद्रट के कारिकापद्यों vii.35 और xii.4 को उद्धृत किया है और रुद्रट vii.36 के उदाहरण-पद्य का उल्लेख किया है[2] (पृ० ४३)। अभिनवगुप्त ने भी रुद्रट का एक कारिका-पद्य (vii. 38) अनामतः उद्धृत किया है ('लोचन' पृ० 45)। इस प्रकार बूहलर (Buhler) द्वारा अनुमानित तिथि,[3] अर्थात्, 11 वीं शती का उतरार्द्ध, और उनकी संशोधित तिथि[4] अर्थात्, 10 वीं शती का मध्य दोनों का निराकरण हो जाता है। सर्वप्रथम पीटर्सन[5] ने इस तिथि को प्रस्तुत किया था।

ऊपरी (उच्च) सीमा का निर्धारण निश्चय से नहीं किया जा सकता; किंतु यह संभव है कि रुद्रट भामह, दंडी और वामन से कनिष्ठ थे। उनकी तिथि का निर्धारण अपेक्षित है। जैकोबी[6] की तरह हम यह नहीं मान सकते कि रुद्रट ने 'वक्रोक्ति' का विचार रत्नाकर के प्रसिद्ध काव्य 'वक्रोक्ति-पंचाशिका' से प्राप्त किया और इस तरह वे काश्मीर नरेश बृहस्पति और अंवतिवर्मा के राज्यकाल में अमृत-भानु के पुत्र रत्नाकर के पश्चात् हुए हैं। किंतु, यह बात स्पष्ट है कि वक्रोक्ति के

---

1. देखिए वल्लभदेव की टीका सहित हुलट्श-रचित 'मेघ-दूत' के संस्करण की भूमिका, लंदन 1911, पृ० x-xi. ये निर्देश मुद्रित पाठ में उपलब्ध नहीं हैं। यह वल्लभदेव, 'सुभाष' के संकलक वल्लभदेव से भिन्न हैं।

2. तुलना कीजिए, पिशेल (Pischel) Gga, 1885, पृ० 764. प्रतीहारेंदुराज ने अन्य उद्धरण भी दिए हैं, यथा, पृ० 11—रुद्रट iii.40; पृ० 31—रुद्रट viii.89; पृ० 34— रुद्रट viii.95; धनिक का iv.35 पर उद्धरण—रुद्रट xii.4.

3. Kashmir Rep. पृ० 67.

4. इंडियन एंटीक्वेरी, xii.30.

5. पीटर्सन (विस्तृत रिपोर्ट, 1883) पृ० 14, और 'सुभाष०' की भूमिका, पृ० 105. इनके तर्क रुद्रट पर नमि-साधु की टीका पर आधारित हैं। इसे अब 1069 ई० में निर्धारित किया गया है। नमि-साधु के विषय में आगे देखिए।

6. WZKM ii.151 इत्यादि।

इस नए विचार की उत्पत्ति यदि रत्नाकर अथवा रुद्रट के समय में नहीं हुई तो भी रुद्रट ने सर्वप्रथम इसकी परिभाषा की और रत्नाकर ने विशिष्ट अलंकार के रूप में इसका उदाहरण दिया। इस अलंकार को श्लेष अथवा काकु पर आधारित कहा गया है, जिसमें चतुर प्रत्युत्तर देने के लिए जान-बूझकर दूसरे के शब्दों का अन्यथा ग्रहण किया जाता है (रुद्रट ii.14-17)। इसके विपरीत, भामह ने (ii.85) वक्रोक्ति को विशिष्ट अलंकार न मानकर अभिव्यक्ति का वैचित्र्य माना है, जो सभी अलंकारों में विद्यमान होता है। दंडी ने वक्रोक्ति का क्षेत्र सीमित कर दिया था और स्वभावोक्ति के सिवा सभी अलंकारों के लिए इसे सामूहिक नाम के रूप में माना था (11.362 और उस पर टीका)। वामन ने सर्वप्रथम वक्रोक्ति को विशेष अलकार (अर्थालंकार) माना। किंतु उन्होंने भी इसे लक्षण पर आधारित विशेष व्यंजना की अभिव्यक्ति के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त किया (iv.3.8)[1] इससे यह प्रतीत होता है कि (1) इन सब ग्रंथों में वक्रोक्ति, प्रथमतः सभी अलंकारों में सामान्य गुण लक्षित करते हुए व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ और अंत में रुद्रट द्वारा प्रदत्त परिभाषा के अंतर्गत एक विशिष्ट शाब्दिक अलंकार के सूक्ष्म और संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। सभी परवर्ती लेखकों ने इस परिभाषा की प्रतिष्ठा की (किंतु अपवाद स्वरूप, कुंतक ने स्वयं भामह से यह विचार लेकर उसका विकास किया)। (2) विकास-क्रम से यह स्पष्ट निष्कर्ष मिलता है कि रुद्रट संभवतः दंडी और वामन के पश्चात् हुए हैं, क्योंकि उनके समय में वक्रोक्ति का प्रयोग पुराने व्यापक अर्थ में नहीं होता था और इसे परिभाषाबद्ध शब्दालंकार की कोटि के अंतर्गत माना जा चुका था। (3) रत्नाकर ने वक्रोक्ति का, रुद्रट-निरपेक्ष उदाहरण दिया है। इससे 9 वीं शती में वक्रोक्ति का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। भामह, दंडी और वामन के साथ रुद्रट के अन्य सिद्धांतों के तुलनात्मक अध्ययन से निरपेक्ष, संभव है कि सार रूप में, रुद्रट का मत इन प्राचीन लेखकों से अपेक्षाकृत आधुनिक था। यदि यह निष्कर्ष मान लिया जाय तो रुद्रट को वामन के पश्चात् मानना चाहिए। वे इस लेखकवर्ग के अंतिम सदस्य थे। इस प्रकार हमें उनकी तिथि की उच्च सीमा प्राप्त हो जाती है।

क्योंकि रुद्रट आनंदवर्धन से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं, अतएव उनकी तिथि 9वीं शती के प्रथम चरण में निर्धारित की जा सकती है। यदि पिशेल[2] (Pischel)

1, तुलना कीजिए, जैकोबी 2 DMG/xiv, पृ॰ 130 इत्यादि।

2. श्रृंगार-तिलक की भूमिका, पृ॰ 12,26.

द्वारा निर्धारित मान्य तिथि अर्थात् 9 वीं शती का मध्य[1] को स्वीकार कर लिया जाए तो गलत न होगा। इस तिथि से वे आनंदवर्धन के समकालीन ठहरते हैं, किंतु आनंदवर्धन ने जहां अन्य प्रसिद्ध पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख किया है, वहाँ उन्होंने न कहीं रुद्रट का उल्लेख किया है और न ही कोई उद्धरण दिया है। यदि उन्हें वक्रोक्ति का यह आलंकारिक अर्थ ज्ञात था, तो भी उन्होंने उसे प्रत्यक्ष रूप में मान्यता नहीं दी।

रुद्रट के काव्यालंकार में 16 अध्याय और (अंतिम पद्य को छोड़कर) आर्या छंद में 734 कारिकाएं हैं और काव्यशास्त्र के सभी अंगों पर विशद चर्चा की गई है। अध्याय xii.40 (जिसमें आठ प्रकार के नायिका भेद बताए गए हैं) के पश्चात् 14 कारिकाएं इस परिगणना के अतिरिक्त हैं। इन्हें प्रक्षिप्त पद्य माना गया है।[2]

(२)

रुद्रट के विषय में यहां जो कुछ बताया गया है, वह रुद्रट अथवा रुद्रभट्ट पर लागू नहीं होता, यद्यपि पिशेल (Pischel)[3], वेबर[4] (Weber), औफ्रेक्ट (Aufrecht)[5] बूहलर (Buhler)[6] ने दोनों लेखकों को अभिन्न माना है। पीटर्सन (Peterson)[7] ने इस अभिन्नता को संदिग्ध घोषित किया है और दुगा

---

1. जैकोबी के इस सुझाव से कि रुद्रट काश्मीरी थे और काश्मीर-नरेश अवंतिवर्मा के उत्तराधिकारी शंकरवर्मा के समकालीन थे, हमारे निष्कर्ष पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि ii.15 में रुद्रट द्वारा दिया गया वक्रोक्ति का उदाहरण रत्नाकर प्रेरित था। उनके ग्रंथ में शिव और गौरी में परस्पर इस प्रकार के उत्तर-प्रत्युत्तर मिलते हैं।

2. रुद्रट के ग्रंथ के अंतर्गत विषयों के संक्षिप्त विवरण के लिए खंड ii, अध्याय ii(3) देखिए।

3. शृंगार-तिलक पर भूमिका, 2DMG x/ii.1888, पृ० 296-304, 425.

4. Ind. Shud. xvi.

5. ZDMG xxvii, पृ० 80-1, xxxvi पृ० 376; Cat., Bod. 209b; Cat. Cat. पृ० 528b, 530 a.

6. Kashmir Rep पृ० 67.

7. Rep. i, पृ. 14 सुभाष की भूमिका पृ० 104-5; किंतु इसके विरुद्ध, Report ii. 19, पा० टि०।

प्रसाद[1] और त्रिवेदी[2] ने इसे अस्वीकार किया है। अंततः दोनों लेखकों के ग्रंथों की विस्तार से जाँच करने के बाद जैकोबी ने यह कहकर इस विवाद का अंत कर दिया है कि संभवतः ये दोनों लेखक भिन्न व्यक्ति थे।[3]

रुद्रट लिखित काव्यालंकार के v.12-14 पर नमि साधु की व्याख्या के अनुसार यह प्रतीत होता है कि रुद्रट का दूसरा नाम शतानंद था और वे सामवेद के अनुयायी भट्ट वामुख के पुत्र थे। रुद्रटभट्ट की वंशावली अथवा व्यक्तिगत जीवन ज्ञात नहीं है, किंतु इन दोनों नामों के प्रत्यक्ष साम्य पर बहुत कुछ कहा गया है। शृंगारतिलक के अंतिम पद्य[4] में स्पष्ट रूप से लेखक का नाम रुद्र दिया गया है और अधिकतर पांडुलिपियों में ऐसा ही विवरण मिलता है,[5] किंतु नमिसाधु और वल्लभ ने काव्यालंकार के लेखक का नाम रुद्रट बताया है। ये दोनों लेखक भिन्न मतावलंबी थे। रुद्र शिवोपासक थे, किंतु रुद्रट ने शिव के स्थान पर (गणेश के अतिरिक्त) भवानी और मुरारि का उल्लेख किया है।

ग्रंथों की परीक्षा करने पर यह प्रतीत होता है कि रुद्रट के ग्रंथ के सोलह अध्यायों के अंतर्गत बहुत अधिक सामग्री है, जब कि रुद्र के अपेक्षाकृत लघु ग्रंथ में केवल तीन अध्याय हैं और विचारप्रवाह स्पष्ट रूप से भिन्न है। नमिसाधु के कथनानुसार, रुद्रट ने काव्य के अलंकारों पर बड़ा बल दिया है और इसीलिए ग्रंथ का शीर्षक भी काव्यालंकार है। ग्यारह अध्यायों में अलंकारों का ही विवेचन किया गया है। अंतिम पांच अध्यायों में रस, नायक-नायिका-भेद और काव्य की सामान्य समस्याओं का संक्षिप्त विवेचन है। इसके विपरीत, रुद्र की पद्धति की आधारशिला रस का सिद्धांत है, जिसमें शृंगार (अध्याय i और ii) का विशिष्ट

1. 'शृंगारतिलक' के सं०, पृ० 1 पर पा० टि०।
2. 'एकावली' के उनके सं० की टिप्पणी, पृ० 3.
3. WZKM ii. 1888 पृ० 151-56; ZDMG xlii पृ० 425 इत्यादि।
4. कुछ पांडुलिपियों में अंतिम पद्य नहीं है।
5. शारदा लिपि में एक काश्मीरी पांडुलिपि इसका अपवाद है (बूहलर की Kashmir Rep. सं० 264)। उसमें रुद्रट नाम दिया गया है। इस अद्वितीय साक्ष्य से एक वैध संदेह उत्पन्न होता है। किंतु इस विषय में यह कहा जा सकता है कि स्वभावतः यह किसी काश्मीरी लिपिक की गलती के कारण है। शायद वह रुद्रट के अधिक प्रसिद्ध नाम से विशेष परिचित था। यही बात इंडिया आफिस पांडुलिपि सं० 11. 31 (Cat. vii, पृ० 321) और दक्षिण भारतीय पांडुलिपि (मद्रास, xxii (1918) सं० 12955 पर भी लागू होती है। इसके अंतिम पद्य में रुद्र नाम दिया गया है। पांडुलिपियों के अंतिम पृष्ठ-विवरण का यह प्रमाण निर्णायक नहीं है। यह सर्वविदित है कि परवर्ती संग्रहों और प्रसिद्ध लेखकों में इन दोनों लेखकों के नाम-साम्य से भ्रांति हुई है।

उल्लेख है और अन्य रसों का संक्षेप में वर्णन किया गया है (अध्याय iii)। इस अपेक्षाकृत लघु ग्रंथ की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें श्रृंगार रस और नायक-नायिका विषय पर सूक्ष्म रूप से चर्चा की गई है। रुद्रट का सैद्धांतिक क्षेत्र और प्रणाली विशद और विस्तृत है, किंतु रुद्रट ने केवल एक अंश को लेकर श्रृंगार और अन्य रसों पर उपयुक्त, सुंदर और सुबद्ध पद्यों से सुसज्जित पुस्तिका की रचना की। उन्होंने परिभाषा और नियमों की परवाह नहीं की (वे शब्दशः रुद्रट के ग्रंथ के समान हैं)। जैकोबी का यह कथन वस्तुतः ठीक प्रतीत होता है कि "रुद्रट अलंकारों के मौलिक आचार्य थे, जब कि रुद्र एक उत्कृष्ट और मौलिक कवि थे, जिन्होंने अपने सामान्य शास्त्र की व्याख्या की।"

इन दोनों लेखकों के समान विषयों में बड़ा साम्य है। इसीलिए, कुछ विद्वानों ने एक ही लेखक को दोनों ग्रंथों का रचयिता मान लेने की गलती की है। किंतु यह साम्य ऊपरी ही है, क्योंकि दोनों में अनेक विषयों पर मतभेद है, जिन्होंने लेखकों के मूलभूत विचारों को प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ रस के विवेचन को लीजिए। रुद्र (i.9) ने उद्भट के समय से सामान्य परंपरा का पालन करते हुए, नौ रसों का उल्लेख किया है। रुद्रट ने इसके अतिरिक्त दसवां रस, अर्थात् प्रेयस् (xii.3) भी माना है और रुद्र से कुछ भिन्न क्रम में रसों का विवेचन किया है। रुद्र ने भावों (i.10-9) की परिगणना और विवेचना कुछ विस्तार से की है, किंतु रुद्रट ने केवल एक पद्य (xii.4) में ही उन्हें निबटा दिया है। वृत्तियों के विवेचन में भी यही भेद दृष्टिगोचर होता है। भरत (xx. 24 इत्यादि) का अनुसरण करते हुए रुद्र ने (i.12) चार सामान्य वृत्तियों (अर्थात्, कैशिकी आरभटी, सात्वती और भारती) का उल्लेख किया है। मूलतः ये नाटक-रचना की रीतियां मानी गई थीं, किंतु यहां इन्हें समान प्रयोजन के हेतु नाट्य-कला से लेकर काव्य में ग्रहण कर लिया गया (तुलना कीजिए, भरत-रचित उपर्युक्त ग्रंथ 21)। इसके विपरीत, उद्भट[1] का अनुसरण करते हुए रुद्रट ने पांच वृत्तियों (अर्थात् मधुरा, प्रौढ़ा, परुषा, ललिता और भद्रा) का उल्लेख किया है। इनका उपर्युक्त चार से कोई संबंध नहीं हैं, किंतु अनुप्रास के अंतर्गत होने के कारण विशेष अक्षरविन्यास द्वारा वे मुख्यतः उपयुक्त शब्द-समन्वय को लक्षित करती हैं। तत्संबंधी नायक-नायिका के विषय में भी इसी प्रकार की अशुद्धियां देखी जा सकती हैं। जहाँ रुद्र ने नायिका की रूढ़िगत आठ अवस्थाओं का विस्तार से वर्णन किया है (i.131-32), वहां रुद्रट ने केवल चार (अर्थात् अभिसारिका, खंडिता, स्वाधीन-पतिका और प्रोषित-पतिका, xii.41

1. अनुप्रास के संबंध में उद्भट ने केवल तीन वृत्तियों, अर्थात् परुषा, उपनागरिका और ग्राम्या का उल्लेख किया है (i. 4-7).

इत्यादि) का ही उल्लेख किया है। यद्यपि इस भिन्नता की पूर्ति के हेतु कुछ पांडुलिपियों में एक बड़ा पद्यांश (xii.40 और 41 के बीच) है, जिसमें सामान्य आठ अवस्थाओं का वर्णन है, किंतु वह संदर्भ के साथ मेल नहीं खाता। रुद्रट के ग्रंथ के संपादक ने उसे प्रक्षिप्त बताकर ठीक ही उसकी निंदा की है। रुद्र, तीसरे प्रकार की नायिका (वेश्या) के पक्ष में प्रतीत होते हैं (i.120-30), किंतु रुद्रट ने उसे केवल दो पद्यों (xii.39-40) में निबटा दिया है और प्रकट रूप में उसकी निंदा की है। रुद्रट ने (xiv.4-5) नायक की वासना (इच्छा) से लेकर मृत्यु तक की दस अवस्थाओं का संक्षिप्त वर्णन किया है, किंतु रुद्र ने प्रत्येक अवस्था की परिभाषा और उदाहरण दिया है (ii.6-30)। रुद्र के अनुसार (ii.53) परकीया-प्रेम काल, देश और प्रसंग पर निर्भर करता है, किंतु रुद्रट (xiv.18) के अनुसार एक चौथी दशा, अर्थात् पात्र, भी मानी जानी चाहिए।

इन सब बातों से यह संभव प्रतीत होता है कि रुद्रट और रुद्र दो भिन्न व्यक्ति थे। किंतु यदि ऐसा हो तो इस तथ्य का स्पष्टीकरण करना होगा, क्योंकि श्रृंगारतिलक और काव्यालंकार के अधिकतर पद्य, छंद-भेद (क्रमशः अनुष्टुप् और आर्या) को छोड़कर, शब्दशः समान हैं। दोनों लेखकों का एक ही माननेवालों ने इस साम्य पर बड़ा बल दिया है। किंतु इसमें यह देखना होगा कि यह विशिष्ट शाब्दिक साम्य केवल उन्हीं पद्यों तक सीमित है, जिनमें नियम और परिभाषाएं दी गई हैं। श्रृंगारतिलक में उदाहरण-पद्यों की रचना में विविध छंदों का प्रयोग किया गया है और यही इस काव्य-ग्रंथ का विशिष्ट गुण है। काव्यालंकार में यह बात नहीं मिलती। ऐसे तकनीकी ग्रंथों में, जिनमें मानकीकृत (standardised) और रूढ़िगत (conventional) नियमों और परिभाषाओं का बाहुल्य होता है, इस प्रकार का विवेचन और शब्दावली का अस्तित्व साधारण बात है। किंतु इतना कहने मात्र से इस साहित्य-चौर्य (plagiarism) का स्पष्टीकरण नहीं होता, भले ही शुष्क नियमों और परिभाषाओं के उदाहरणों के रूप में उसमें उत्तम और अनुमानतः मौलिक [1] पद्यों का समावेश हो। उपर्युक्त अशुद्धियों को ध्यान में रखते हुए दोनों लेखकों की अनुमानित अभिन्नता पर आधारित, यह स्पष्टीकरण संदेह से मुक्त नहीं है। वास्तविक स्पष्टीकरण का आधार यह हो सकता है कि रुद्र (वे अपेक्षाकृत अर्वाचीन लेखक थे) मुख्यतः एक कवि थे और उन्होंने अलंकारशास्त्र का मौलिक आचार्य होने का दावा कभी नहीं किया। उन्होंने रुद्रट के बने-बनाए नियमों में पर्याप्त सामग्री देखी और अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन करने के लिए

1. 'श्रृंगार-तिलक' में कुछ उदाहरण-पद्य प्राचीन ग्रंथों, यथा 'अमरु-शतक', से लिए गए हैं।

उन अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए, जो पहले छूट गए थे।[1] क्योंकि उन्होंने इस विषय पर मौलिक ग्रंथ रचने की भी आकांक्षा नहीं की, इसलिए निश्चित पद्धति में शब्द-परिवर्तन की आवश्यकता न समझते हुए केवल छंद के अनुरूप आवश्यक परिवर्तन किए। जहां रुद्रट का प्रत्यक्ष संबंध नियम-विधान से रहा है, वहां रुद्र अपने विषय और विवेचन में अधिक व्यावहारिक रहे हैं। श्रृंगार पर उनका ग्रंथ एक पद्यमय मनोवैज्ञानिक पथप्रदर्शक के समान है, जिसमें उन्होंने विभिन्न भावों का विशद विश्लेषण किया है। इस ग्रंथ का कामशास्त्र और काव्यशास्त्र, दोनों में समान स्थान है।[2]

---

1. रुद्रट के ग्रंथ में ये अध्याय केवल व्याख्यात्मक हैं और पिछले अध्यायों की तरह उनमें सभी उदाहरण नहीं दिए गए हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि रुद्र ने इसी कमी को पूरा करने के लिए स्वयं 'श्रृंगार-तिलक' की रचना की। किंतु इस परिकल्पना से उपर्युक्त बातों में मतभेद का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। इससे यह प्रतीत होता है कि वे स्वयं इस कमी को पूरा नहीं कर सके। वह कार्य किसी अन्य लेखक ने किया, जिसका उनसे कुछ मतभेद था।

2. परवर्ती साहित्य में इन दोनों लेखकों के उद्धरण अनामतः मिलते हैं और इस प्रश्न के निर्णय में उनसे कुछ सहायता नहीं मिलती। पद्यों के साथ लेखक का नाम बहुत ही कम स्थानों पर दिया गया है। मम्मट, जो स्वयं काश्मीरी थे, 'स्फुटमर्थालंकारं' पद्य को (ix. 8a) ठीक ही रुद्रट (iv.32) प्रणीत मानते हैं। समुद्रबंध (पृ० 6) और हेमचंद्र (पृ० 286 टीका) ने यथार्थ में क्रमशः vii. 38-40 और vii. 27 को रुद्रट-रचित निर्दिष्ट किया है। रुय्यक ने रुद्रट के मत पर चर्चा करते हुए रसों पर इनके विवेचन का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया। इसके विपरीत, बलदेव विद्याभूषण (पृ० 35) ने श्रृंगारतिलक' (ii.41) से 'वामता दुर्लभत्वं' का ठीक उल्लेख किया है और रुद्र को लेखक बताया है। वल्लभदेव ने अपने काव्य-संग्रह में 'काव्यालंकार' से कई पद्य उद्धृत किए हैं (421-ii. 17; 730-iii.57; 1387-vi. 10; 1667-ii. 30; 2047-vii. 71; 2061-vii. 33; 2234-vii. 41; 2409-vii. 32) और दो स्थानों को छोड़कर लेखक का ठीक नाम रुद्रट दिया है। इसी प्रकार शार्ङ्गधर ने 'श्रृंगारतिलक' में से आठ पद्यों का उद्धरण दिया है (3409-i. 95; 3567-i. 35; 3568-i. 81; 3679-ii. 107; 3578-ii. 12; 3579-ii. 50; 3675-i.51; 3754-i. 30) और दो स्थानों को छोड़कर ठीक ही रुद्र को लेखक बताया है। शार्ङ्गधर के दो उद्धरण (अर्थात् 3773 और 3788) गलती से रुद्र-रचित मान लिए गए हैं, किंतु वल्लभदेव ने उन्हीं दो पद्यों का उल्लेख किया है (2234 और 1667) तथा अशुद्धि का निवारण करके उन्हें ठीक रुद्रट-रचित निर्दिष्ट किया है। वल्लभदेव के दो अपवाद (2247 और 3122) जिन्हें रुद्रट-रचित माना गया है, न रुद्रट के ग्रंथ में मिलते हैं और न ही रुद्र के ग्रंथ में हैं। जल्हण ने 21 पद्यों को रुद्र का लिखा माना है। इनमें से 5 पद्य उनके ग्रंथ में नहीं मिलते। इनमें से 'किं गौरि मां' रुद्रट ii. 16 में; 'अंबा शेतेऽत्र' कवि

(३)

रुद्रभट्ट की तिथि अनिश्चित है। हेमचंद्र ही सबसे प्राचीन कवि हैं, जिन्होंने उनके मंगल पद्य (i.1) का अनामत: उद्धरण दिया है और उसकी आलोचना भी की है। इसलिए रुद्रभट्ट को रुद्रट और हेमचंद्र के मध्य में, अर्थात् ९ वीं शती के पश्चात् और, अधिक पहले नहीं तो, 12 वीं शती से पहले रख सकते हैं। रुद्र के एक पद्य का, जो उनके शृंगारतिलक में नहीं मिलता, धनिक ने उल्लेख किया है (iv.60, सं० निर्णय सागर प्रेस 1917, पृ० 103)। यदि यह रुद्र हमारे ही लेखक हैं तो उनकी तिथि 10 वीं शती से पहले निर्धारित की जानी चाहिए।[1]

(४)

रुद्रट के टीकाकार

वल्लभदेव

माघ (iv. 21, vi. 28) पर अपनी टीका में वल्लभदेव ने रुद्रटालंकार पर अपनी टीका का उल्लेख किया है। रुद्रट के ग्रंथ पर यह प्राचीनतम ज्ञात टीका है, किंतु अभी तक यह प्राप्त नहीं हो सकी है। वल्लभदेव का उपनाम परमार्थ-चिह्न था। अपने कथनानुसार वे राजनायक आनंददेव के पुत्र थे।[2] वे कई उच्चकोटि के मानक काव्यों के टीकाकार के नाते प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कालिदास, माघ, मयूर और रत्नाकर के काव्यों पर भी टीकाएं लिखी हैं। वे एक काश्मीरी विद्वान थे और संभवत: 10वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए थे, क्योंकि उनके पौत्र और चंद्रादित्य के पुत्र कय्यट ने आनंदवर्द्धन के ग्रंथ 'देवी-शतक' पर 977-78 ई० में टीका लिखी थी।[3]

वचन-समय में; 505=सुभाष 2247 (रुद्रट पर आरोपित)=सदुक्तिकर्ण ii.73 (भट्ट पर आरोपित); 'एकाकिनी यदबला' गलती से रुद्र पर आरोपित है (जैसे 'पद्धति' में 3773), किंतु वल्लभदेव ने ठीक ही इसे रुद्रट-रचित कहा है। हेमचंद्र ने अनामत: रुद्र के तीन पद्यों का उल्लेख किया है (i. 1=पृ० 110, i. 44-पृ० 304; i. 68=पृ० 305)।

1. धनिक ने रुद्रट के पद्य (xii. 4) भी iv. 35 पर अपनी टीका (सं० निर्णयसागर प्रेस) में अनामत: उद्धृत किए हैं। तुलना कीजिए, रुद्रभट्ट i. 16।
2. 'वक्रोक्ति-पंचाशिका' की टीका के अंतिम पद्य से प्रतीत होता है कि आनंददेव काश्मीर में कोई उच्च अधिकारी थे (काव्यमाला गुच्छक i. पृ० 114, पर अंतिम पृष्ठ-विवरण मिला x सं० 4064)।
3. देखिए काव्यमाला गुच्छक i. में 'वक्रोक्ति-पंचाशिका' पृ० 101-2 पर पादटिप्पणी और इसके अंतर्गत 'देवी शतक' सं० गुच्छक ix. पृ ०1. तुलना कीजिए हुलट्श लिखित मेघदूत की भूमिका, पृ० ix.

उस समय भीमगुप्त काश्मीर में राज्य करते थे (977-82) ई०। वल्लभ के गुरु प्रकाशवर्ष थे। हुलट्‌श (Hultzsch) के मतानुसार यह प्रकाशवर्ष शायद वही थे, जिनका उल्लेख 'सुभाषितावली' और 'शार्ङ्गधर-पद्धति' में मिलता है और जिन्होंने भारती पर एक टीका लिखी थी (औफ्रेक्ट i. 347)। हमारे लेखक 'सुभाषितावली' के संकलनकर्त्ता वल्लभदेव से अवश्य ही भिन्न व्यक्ति थे। औफ्रेक्ट ने उन्हें 16वीं शती में निर्धारित किया है।[1] माघ पर अपनी टीका में वल्लभ ने जो उद्धरण दिए हैं, हुलट्‌श ने उनकी एक सूची बनाई है। उन उद्धरणों में वल्लभ ने मेधाविरुद्र, भामह, उद्‌भट, भट्टि और 'विषमबाण-लीला' (आनंदवर्द्धन का प्राकृत काव्य) का उल्लेख किया है। यह ध्यान देने योग्य बात है।

नमि-साधु

नमि (अथवा नमि साधु अथवा नमि पंडित) वल्लभदेव के पश्चात् हुए हैं। उन्हें श्वेत-भिक्षु भी कहा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि वे श्वेतांबर जैन थे। उन्होंने अपने विषय में कहा है कि 'मैंने थारापद्र नगर-भूषण श्रीशालिभद्र सूरी के चरणकमलों का मधुचूषण किया है।' यह विदित है कि जिनभद्र सूरी, शालिभद्र के शिष्य थे और उन्होंने संवत् 1204=1148 ई० में ग्रथ-रचना की।[2] नमि के एक अन्य ग्रंथ 'षडावश्यक टीका' में शालिभद्र को श्रीशालि-सूरि भी कहा गया है। इस ग्रंथ की रचना-तिथि स्वयं ग्रंथ के अनुसार संवत् 1122=1066 ई० है।[3] रुद्रट पर अपनी टीका के एक अंतिम पद्य में नमि ने कहा है कि मेरी टीका 1125=

---

1. बूहलर (Buhler, Kunst Poesie, पृ० 71) का मत है कि पद्य संग्रहकर्त्ता वल्लभदेव 1400 और 1350 ई० के बीच हुए हैं। इस तिथि में अब संशोधन करने की आवश्यकता है, क्योंकि वंद्यघटीय सर्वानंद ने 1160 ई० में 'अमरकोश' पर अपनी टीका में, ग्रंथ और लेखक दोनों का नाम देते हुए, प्रत्यक्ष रूप में इस काव्य-संग्रह का उल्लेख किया है। इस प्रश्न पर देखिए, एस० के० डे, जर्नल ऑफ़ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1927, पृ० 471-91, और BSOS, v, खंड, i. पृ० 27 इत्यादि, v खंड iii. पृ० 499 इत्यादि।

2. पीटर्सन i. पृ० 68.

3. पीटर्सन iii. पृ० 13.

1069 ई॰ में लिखी गई थी ।[1] रुद्रट पर अपनी टीका में नमि ने अलंकारशास्त्र पर इन नामों का उल्लेख किया है—भरत (पृ॰ 150, 156, 164), मेघाविरुद्र (पृ॰ 2, 9, 145), भामह (पृ॰ 2, 116), दंडी (पृ॰ 2, 5, 169), वामन (पृ॰ 11, 100, 116), उद्भट (पृ॰ 69, 82, 150) और आनंदवर्धन का 'अर्जुन-चरित' । इसके अतिरिक्त उन्होंने धनपाल लिखित 'तिलकमंजरी' (xvi. 3 की टीका में) और छंदःशास्त्र पर जयदेव का उल्लेख किया है । (i. 18, 20 की टीका में)[2] मजेदार बात यह है कि नमि ने काव्य-शास्त्र के एक लेखक हरि (ii. 10) के एक पद्य का उद्धरण दिया है, जिसमें रुद्रट की पांच वृत्तियों के स्थान पर आठ वृत्तियों का वर्णन है ।

आशाधर

पीटर्सन (Peterson) ने (ii पृ॰ 85) रुद्रट के एक और जैन टीकाकार, सल्लक्षण और रत्नि के पुत्र, आशाधर को खोज निकाला । वे एक जैन आचार्य थे और संवत् 1296=1240 ई॰ तक जीवित रहे । वे रामजी भट्ट के पुत्र उस आशाधर से, जिन्होंने अप्पय के कुवलयानंद[3] पर बहुत बाद में टीका लिखी है, भिन्न थे । उनके ग्रंथ धर्मामृत के अंत में प्रशस्ति के अंतर्गत उनके व्यक्तिगत जीवन की झलक मिलती है । वे व्याघ्रेरवाला परिवार में उत्पन्न हुए थे । उनके पिता का

---

1. पंचविंशति संयुक्तै रेकादश समाशतैः ।
विक्रमात्समतिक्रांतैः प्रावृषीदं समर्थितम् ॥
इस पद्य में 'पंचविंशति' पाठ को, कीलहार्न (Kielhorn) की भोजपत्र पांडुलिपि (Report, 1880-81 पृ॰ 63) के प्रमाण के अनुसार संदेहास्पद माना गया है, क्योंकि उसमें 'षट्-सप्तति' पाठांतर है । इस पाठांतर से नमि और भी बाद में ठहरते हैं, किंतु, यह बात अन्य पांडुलिपियों से पुष्ट नहीं होती (यथा, मित्रा 3102, स्टीन (Stein) 61 पीटर्सन (Peterson) i. पृ॰ 16) और न ही अन्य स्रोतों से उद्धृत प्रमाणों से पुष्ट होती है । कीलहॉर्न का पाठ स्वयं अशुद्ध है, क्योंकि पद्य में छंदोभंग दोष है ।

2. इस लेखक के विषय में देखिए, एच॰ डी॰ वेलंकर, 'जयदामन', बंबई । 1951 भरत पर अपनी टीका में अभिनवगुप्त ने जयदेव और उनके छंदः-शास्त्र का उल्लेख किया है । उनकी तिथि (950 ई॰ से पूर्व) के विषय में देखिए, पी॰ के॰ गोडे, पूना ओरिएंटलिस्ट, पृ॰33-38 (उनकी पुस्तक Studies in Indian Lit. Hist. i. पृ॰138-43 इसका पुनर्मुद्रण हुआ है)

3 औफ्रेक्ट (Aufrecht) i.54b दोनों नामों से भ्रम में पड़ गए हैं और इसी प्रकार उनके अनुसरण में हरिचंद शास्त्री भी (पृ॰ 18), किंतु औफ्रेक्ट ने उनकी अभिन्नता के बारे में संदेह प्रकट किया है ।

नाम सल्लक्षण (अथवा,लक्षण) और माता का रत्नि था। शाकंभरी (सांभर) झील के प्रदेश में मंडलकर नामक किले में उनका जन्म हुआ था। उनकी पत्नी, सरस्वती से छाहड नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह मालवा के अर्जुनवर्मा (13 वीं शती का प्रथम चरण) का कृपापात्र था। तुरुष्क बादशाह (अर्थात् शहाबुद्दीन गोरी, जो दिल्ली का सुल्तान था और जिसने 1193 ई० में पृथुराज, अर्थात् पृथ्वीराज, को परास्त किया) के आक्रमण के पश्चात् आशाधर मालवा चले गए और धार में रहने लगे। वहां उन्होंने धर्मसेन के शिष्य, पंडित महावीर से जैन-धर्म के सिद्धांत और जिनेंद्रव्याकरण का अध्ययन किया। आशाधर अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध थे। ऋषि उदयसेन, कवि विल्हण (ये काश्मीरी कवि विल्हण से भिन्न हैं, ये लगभग 1070-90 ई० में हुए थे और विंध्य देश के राजा विजयवर्मा के मंत्री थे)। महान् यति मदनकीर्ति ने उनकी प्रशंसा की है। उन्होंने 15 से अधिक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने इन ग्रंथों की सूची भी दी है और रुद्रट पर अपनी टीका का भी उल्लेख किया है[1]। उनका ग्रंथ त्रिषष्टि-स्मृति-शास्त्र, जिसमें जैन पुराणों के 63 महापुरुषों की कथाएं हैं, 1236 ई० में लिखा गया था।[2]

ग्रंथ-सूची

रुद्रट

संस्करण—काव्यालंकार, सं दुर्गाप्रसाद और के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई (काव्यमाला 2) 1886,1909, नमि की टीका सहित। यहां पर 1909 के दूसरे संस्करण से निर्देश दिए गए हैं।

नमि-साधु

संस्करण—काव्यमाला 2,1886,1909, पाठ सहित (ऊपर देखिए)।

आशाधर

पांडुलिपियां—औफ्रेक्ट (Aufrecht) i.103a, 779a. रुद्रट पर वल्लभदेव की टीका की कोई भी पांडुलिपि ज्ञात नहीं है।

रुद्र भट्ट

संस्करण--शृंगार-तिलक (i) पिशेल (Pischel) की भूमिका सहित, कील (Kiel, 1886) (2) काव्यमाला गुच्छक iii.1887, 1899. यहां पर पिशेल (Pischel) के संस्करण से निर्देश दिए गए हैं।

1. पीटर्सन ii. पृ० 85 तथा पादटिप्पणी Bhandarkar Rep. 1883-84, पृ० 103-4.
2. औफ्रेक्ट (Aufrecht) i. 54b विंटरनिट्ज़ (Geschichte. पृ० 354, पा० टि० 5) ने आशाधर का साहित्य-रचना-काल 1228-1244 ई० में निर्धारित किया। देखिए कीलहॉर्न (Kielhorn) El. ix. 1908, पृ० 10 इत्यादि।

टीकाएं—रस-तरंगिणी, हरिवंश भट्ट द्रविड के पुत्र गोपाल भट्ट। आगे देखिए मम्मट और भानुदत्त पर टीकाकारों के अंतर्गत। पाठ के काव्यमाला संस्करण (पृ० iii) पर इसका उल्लेख है। लेखक का नाम रुद्र बताया गया है। यदि कुमारस्वामी द्वारा निर्दिष्ट गोपाल भट्ट वही व्यक्ति हैं तो वे 15 वीं शती के आरंभ से पहले ठहरते हैं; क्योंकि गोपाल भट्ट दक्षिण भारतीय लेखक प्रतीत होते हैं, इसलिए उनका अनुमान ठीक हो सकता है। रुद्रट पर ओपर्ट (Oppert) द्वारा वन तरंगिणी (ii.271,1787) का उल्लेख अशुद्ध है। रुद्र का नाम भ्रांतिवश रुद्रट दिया गया है।

विष्णुधर्मोत्तर तथा अग्निपुराण में अलंकारों का लेखक

विष्णुधर्मोत्तर

विष्णुधर्मोत्तर [1] एक उपपुराण है। यह एक विश्वकोशीय ढंग का अर्वाचीन पौराणिक ग्रंथ है। इसमें अनेक विषयों पर संक्षिप्त विवेचन के अतिरिक्त नृत्त (नृत्य), गीत, आतोद्य (संगीत), अलंकार, नाट्य और तत्संबंधी विषयों पर कुछ अध्यायों में चर्चा की गई है। यह ग्रंथ तीन कांडों में विभाजित है और इसमें आठ सौ से अधिक अध्याय हैं। प्रत्येक कांड में अध्यायों का विभाजन इस प्रकार है: i—अध्याय 269,ii—अध्याय 183, iii—अध्याय 355। यहां केवल तीसरे कांड के ही कुछ अध्याय विचाराधीन हैं। यह कांड चित्रसूत्र अथवा चित्रकला से आरंभ होता है और इसमें नृत्य, गीत और संगीत इत्यादि से संबंधित विषयों की भी चर्चा है। इस कांड के अध्याय 14--15 में काव्यशास्त्र के कुछ विषयों का सामान्य वर्णन है। इनमें परिभाषा-सहित अलंकार के 17 भेद बताए गए हैं, जो इस प्रकार हैं--अनुप्रास, यमक (संदष्ट और समुद्ग दो भेद बताए गए हैं) रूपक, व्यतिरेक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, अर्थांतरन्यास, उपन्यास (संभवतः व्याजोक्ति का एक भेद), विभावना, अतिशयोक्ति, स्वभावोक्ति (अथवा, कुछ पांडुलिपियों के अनुसार, वार्ता), यथासंख्य, विशेषोक्ति, विरोध, निंदा-स्तुति, निदर्शन तथा अनन्वय। इस सूची में उपमा को भी शामिल किया जा सकता है, किंतु उसका उल्लेख स्पष्ट रूप में नहीं किया गया है और न ही उसकी परिभाषा दी गई है। कुछ पद्यों में पुरातन अथवा पुराण अधिकारी

---

1. इस बृहत् संकलन के प्रत्येक अध्याय के सविस्तर विवरण के लिए देखिए, आ०सी० हाजरा, **Studies in the Upapuranas, i, कलकत्ता 1958, पृ० 147-218.**

विद्वानों का भी उल्लेख मिलता है। अध्याय 15 में शास्त्र और इतिहास से काव्य का अंतर बताया गया है। तत्पश्चात् महाकाव्य की परिभाषा और लक्षण दिए गए हैं, उसमें नौ रस, अर्थात् श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत, होने चाहिए; नगर-वर्णन, देश-वर्णन इत्यादि होना चाहिए। उसमें नायक और प्रतिनायक होना चाहिए, किंतु नायक की मृत्यु का वर्णन नहीं होना चाहिए। अध्याय 16 में प्रहेलिकाओं के नाम, परिभाषाए और उनका वर्गीकरण है। अध्याय 17-31 अधिकांशतः भरत के नाट्यशास्त्र पर आधारित है और उनमें सामान्यतः नाट्य पर चर्चा की गई है। रूपकों के 12 भेद बताए गए हैं, यथाः नाटक, नाटिका, प्रकरण, प्रकरणी, उत्सृष्टिकांक, भाण, समवकार, ईहामृग, व्यायोग, वीथि, डिम तथा प्रहसन। नायिकाओं के आठ भेद दिए गए हैं, अर्थात्,वासक-सज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीन-भर्तृका, कलहांतरिता, खंडिता, विप्रलब्धा, प्रोषित-भर्तृका, तथा अभिसारिका। अध्याय 189 के अंतर्गत नौ रसों के अनुकूल विभिन्न प्रकार के गीत और आतोद्य (संगीत) पर चर्चा की गई है। अध्याय 20-29 में नाट्य की परिभाषा, नृत्त का वर्गीकरण, रंगमंच की सामान्य रचना और तत्संबंधी संस्कार-विधि का वर्णन और अभिनय के चार प्रकार अर्थात् आसंगिक, सात्विक, वाचिक और आहार्य का वर्णन है। अध्याय 30 में 28 पद्यों के अंतर्गत भेदसहित नवरस (शांतसहित) की व्याख्या की गई है। अध्याय 31 में निर्वेद सहित 49 भावों का वर्णन किया गया है।

इस संक्षिप्त वर्णन से इस उपपुराण के 28 अध्यायों के अंतर्गत मोटे तौर पर अलंकार, नाट्य और तत्संबंधी विषयों का पता चलता है। किंतु पुराण का यह भाग केवल संक्षिप्त संकलन मात्र है; इसमें कोई सिद्धांत अथवा पद्धति प्रस्तुत नहीं की गई है। इस उपपुराण का रचना-काल अवश्य ही प्राचीन है। भरत के नाट्यशास्त्र का इसमें मूल-रूप में उपयोग किया गया है और इसलिए यह अवश्य ही उसके पश्चात् रचा गया है, किंतु संभवतः इसकी रचना भट्टि और भामह और दंडी के ग्रंथों से पहले हुई थी, क्योंकि उन्होंने अपेक्षाकृत बहुत अधिक अलंकारों की परिगणना की है। आंतरिक प्रमाणों से प्रतीत होता है कि इसका रचनाकाल 400 ई० के पश्चात् और 500 ई० से पूर्व ही निर्धारित किया जा सकता है। इसकी रचना काश्मीर अथवा पंजाब के उत्तर-सीमांत भाग में हुई थी, किंतु प्राचीन रचना होने के कारण इसका काश्मीरी ध्वनि-सिद्धांत से, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, कोई संबंध नहीं हो सकता।[1]

1. उपपुराण की तिथि और मूल रूप (Provenance) के प्रश्न पर देखिए आर०सी०हाजरा उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 205-12.

अग्नि-पुराण

अग्नि-पुराण (अध्याय 336-346) में काव्य विषय पर लेखक ने उद्धरणात्मक ढंग अपनाया है, किंतु विवरण अधिक व्याप्त और व्यवस्थित है। यद्यपि यह ग्रंथ अधिक प्राचीन नहीं है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें आनंदवर्धन के काश्मीरी मत से भिन्न, किंतु अपेक्षाकृत प्राचीन परंपरा का पालन किया गया है। अग्नि-पुराण को अठारह महापुराणों के अंतर्गत माना गया है, किंतु संदिग्ध-प्रमाणग्रंथ होने के कारण इसका रचना-काल अनिश्चित है,[1] किंतु इस बात का पर्याप्त प्रमाण मिलता है कि इसका अलंकार-संबंधी खंड मुख्यतः संग्रहमात्र ही है। इसके लेखक स्वयं कोई बड़े सैद्धांतिक नहीं थे। उनका उद्देश्य एक कामचलाऊ संग्रह प्रस्तुत करना था। उन्होंने किसी विशेष मत अथवा सिद्धांत का अनुसरण न करके सभी सूत्रों से प्राप्त सामग्री को सार रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें अलंकारों का विवेचन यत्किंचित् असंबद्ध और आलोचना-निरपेक्ष होते हुए भी स्वतंत्र है और इसके अतिरिक्त भरत, भामह, दंडी और संभवतः अन्य प्राचीन अज्ञात लेखकों[2] के पद्यों के उद्धरणों से भी पूर्वोक्त बात सिद्ध होती है। अग्नि पुराण 339·6 में भरत के नाम का उल्लेख है और नाट्य, नृत्य, अभिनय और रस का अधिकांश विवेचन भरत की व्याख्या के इतना निकट है कि भरत के कुछ प्रसिद्ध पद्यों का शब्दशः उद्धरण देकर उनकी व्याख्या की गई है। उदाहरणार्थ, अग्नि 337.11-12 = भरत xxii.28-29, अग्नि 338.12 = भरत iv. 36; अग्नि 338.7-8 = भरत vi.39, अग्नि 342.15-17 = भरत xvii.62-65. काव्य की परिभाषा (अग्नि 336.6) और अलंकार की परिभाषा (अग्नि 341.17) शब्दशः दंडी i. 10 और ii.1 से क्रमशः उद्धृत की गई है। इसके अतिरिक्त, तुलना कीजिए अग्नि 336.13 = दंडी i.29 = भामह i.27; अग्नि 336. 23, 25, 26 = दंडी i.12,15,17 = भामह i.20. इससे स्पष्टतया यह प्रतीत होता है कि इस पुराण के

---

1. वर्त्तमान अग्निपुराण (i. H2, xii, पृ० 683-89) एक मूल और प्राचीन अग्निपुराण का नवीन रूप है। इसके पाठ का मत्स्यपुराण और स्कंदपुराण में वर्णन किया गया है और धर्मशास्त्र के कुछ लेखकों ने भी इसके उद्धरण दिए हैं।

2. यथा, 'अभिधेयेन संबंधात्', (अग्नि. 344. 11-12) पद्य, जिसे मम्मट ने ('शब्द-व्यापा०' पृ० 8) और वामन iv. 3. 8 पर 'कामधेनु' ने अनामतः उद्धृत किया है, मुकुल (पृ 17) द्वारा भर्तृमित्र पर आरोपित किया गया है। भर्तृहरि में यह पद्य नहीं मिलता। मम्मट पर अपनी टीका में (पृ 16) सोमेश्वर ने भर्तृमित्र का उल्लेख किया है।

इन अध्यायों को दंडी के पश्चात् संकलित किया गया था।[1] 'अपरे काव्य-संसारे' तथा 'शृंगारी चेत्कवि:' दो पद्य अग्नि 338.10-11 और आनंदवर्धन के ध्वन्यालोक (पृ० 222) में मिलते हैं। वे 9 वीं शती के मध्यभाग में हुए हैं।[2] क्योंकि अभिनव गुप्त (अभि० भा० सं० GOS. i. पृ० 295) ने आनंदवर्धन को स्पष्ट रूप में इन में से एक पद्य (शृंगारी चेत्कवि:) का लेखक माना है, इसलिए यह अनुमान किया जा सकता है कि अग्निपुराण में यह पद्य ध्वन्यालोक से लिया गया है। क्योंकि अग्निपुराण ने वामन के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं किया है, इसलिए इससे कोई निश्चित परिणाम नहीं निकाला जा सकता। किंतु 'वक्रोक्ति' की परिभाषा (341.33) रुद्रट द्वारा दी गई इसी अलंकार की परिभाषा ii.14-16 से मिलती-जुलती है।[3] इसके विपरीत, अग्निपुराण का यह भाग ('विष्णुधर्मोत्तर' में अलंकार-भाग के समान), भोज द्वारा अनामत: विनियोग को छोड़कर, काव्यालंकार के क्षेत्र में, विश्वनाथ (14वीं शती) के समय से पूर्व, आधिकारिक नहीं माना जाता था। उन्होंने अग्निपुराण के 336.3--4(=1.2) और 337.7 का उल्लेख किया है। यह पुराण एक प्रकार के बड़े विश्वकोश के समान है और इसमें ज्ञान (विद्या) के विविध अंगों का समावेश है। संपूर्ण पुराण की रचना-तिथि भले ही कुछ हो, किंतु उपर्युक्त कथन के अनुसार इसके अंतर्गत अलंकार भाग को 9वीं शती के मध्यभाग के पश्चात् ही निर्धारित करना युक्तियुक्त होगा[4]। अधिकतर प्राचीन लेखकों का, जो इस सिद्धांत के विकास से पहले हुए हैं,[5] अनुसरण करते

1. अग्नि में दी गई कुछ अलंकारों की परिभाषाएँ (यथा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति, विभावना, आक्षेप, अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति और पर्यायोक्ति) दंडी और भामह के ग्रंथों में लगभग वैसी ही भाषा में मिलती हैं।

2. क्योंकि भोज ने अपने ग्रंथ 'सरस्वती-कंठाभरण' में अग्निपुराण की परंपरा का अनुसरण और उसका विकास किया, इसलिए इसकी तिथि अनुमानत: 11वीं शती से पूर्व है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भोज ने अपने सिद्धांत को अग्निपुराण के भ्रांतिजनक पद्यों पर आधारित किया था, किंतु मतपरंपरा में वशेष भिन्नता नहीं है। भोजोत्तर तिथि के लिए देखिए, IHQ. x. पृ० 767-79.

3. इस विषय पर अधिक बल देना अनावश्यक है, क्योंकि 'वक्रोक्ति' की कल्पना, रत्नाकर के काव्य के अनुसार, 9 वीं शती में विद्यमान थी।

4. पी०वी० काणे ने (Hist. of Dharma-sastra) धर्म-शास्त्र का इतिहास, i. पृ०170-73 में स्मृति-अध्यायों का रचनाकाल 900 ई० दिया है। अलंकार भाग का भी यही काल निर्धारित किया गया है। IHQ. xii. पृ० 689-90 भी देखिए।

5. तुलना कीजिए, रुय्यक, पृ० 3 इत्यादि।

हुए ध्वनि की कल्पना को सामान्यतः 'आक्षेप' अलंकार के अंतर्गत समाविष्ट कर लिया गया है।[1]

अलंकार भाग में विषयवस्तु और अध्यायों की व्यवस्था इस प्रकार है— अध्याय 336 में काव्य की परिभाषा और वर्गीकरण है। अध्याय 337 में नाट्य (रूपक तथा उपरूपक के 12 भेद, 5 अर्थप्रकृतियां और 5 संधियां) संबंधी विषयों का विवेचन है। अध्याय 338 में रस (स्थायी-भाव, विभाव और अनुभावसहित), नायक-नायिका भेद और उनके लक्षणों का विवेचन है। अध्याय 339 में चार रीतियों (पांचाली, गौड़ी, वैदर्भी और लाटी), चार वृत्तियों (भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी) का उल्लेख है। अध्याय 340 में नृत्य का वर्णन है। अध्याय 341 में अभिनय के चार भेदों (सात्विक, वाचिक, आंगिक और आहार्य) पर चर्चा की गई है। अध्याय 342 में चित्र के सात भेदों और प्रहेलिका के सोलह भेदोंसहित शब्दालंकारों की परिभाषा और वर्गीकरण है। अध्याय 343 में अर्थालंकारों पर चर्चा है। अध्याय 344 में शब्दालंकारों का विवेचन है, किंतु इसमें आक्षेप, समासोक्ति और पर्यायोक्ति भी सम्मिलित हैं। अध्याय 345-46 में गुण-दोष का वर्णन है।

ग्रंथ-सूची

संस्करण : विष्णुधर्मोत्तर, वेंकटेश्वरप्रेस, बंबई, 1912 में, पोथी-आकार में मुद्रित हुआ था। अग्निपुराण भारत में अनेक बार मुद्रित हुआ है। राजेंद्रलाल मित्र द्वारा जो Bibliotheca Indica के अंतर्गत 3 खंडों का सस्करण 1873, 1876 और 1878 में मुद्रित हुआ था, वह अधिक उपयोगी है। यहां उसी संस्करण का उपयोग किया गया है। (इस संस्करण के अध्याय 336-346 = आनदाश्रम संस्करण के अध्याय 337-347)। इसका अंग्रेजी अनुवाद, दो खंडों में, मन्मथनाथ दत्त, कलकत्ता, 1903-4, द्वारा हुआ है। अन्य संस्करण— आनंदाश्रम, पूना 1900 और वेंकटेश्वर प्रेस, (पोथी-आकार) बंबई 1901। वह्नि पुराण भिन्न ग्रंथ है।

1. इस अध्याय (336. 1. तुलना कीजिए भोज i. 1) के प्रथम पद्य में ही 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग मिलता है, किंतु यहां वह व्याकरण-संबंधित शब्द को लक्षित करता है, जिससे 'स्फोट' की अभिव्यक्ति होती है। 'वाक्यपदीय' में इसे इसी शब्द से लक्षित किया गया है। भोज ने भी यही भूल की है, किंतु उन्हें आनंदवर्धन और उनके अनुयायियों के मत का अपेक्षाकृत अधिक ज्ञान था। संभव है, इस पुराण-लेखक को भी आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत का ज्ञान रहा हो, किंतु वे प्रकट रूप में उनके अनुयायी नहीं थे।

अध्याय चार

ध्वनिकार तथा आनंदवर्धन

(१)

बूहलर (Buhler) तथा जैकोबी (Jacobi) ने राजतरंगिणी v. 34 के आधार पर आनंदवर्धन को 9 वीं शती के मध्यभाग में निर्धारित किया है। इस पद्य के अनुसार आनंदवर्धन ने अवंतिवर्मा (855-84 ई०) की राजसभा को अलंकृत किया था। आनंदवर्धन के टीकाकार अभिनवगुप्त का समय निश्चित रूप में ज्ञात है, क्योंकि उन्होंने स्वयं कहा है कि 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' पर उनकी 'बृहतीवृत्ति' 1015 ई० में, 'क्रमस्तोत्र' 990-991 ई० में और 'भैरव-स्तोत्र' अथवा 'ईश्वर-स्तोत्र' 992-993 ई० में रचा गया था। अभिनव-गुप्त ने 'ध्वन्यालोक' के 'उद्योत' i और iii पर अपनी 'लोचन' टीका के अंत में जो कुछ कहा है, उससे यह प्रतीत होता है कि उनके परिवार में इस प्रसिद्ध ग्रंथ के अध्ययन की परंपरा थी; उन्होंने अपनी टीका को स्वगोत्रोत्पन्न पूर्ववर्ती एक अन्य विद्वान् द्वारा लिखित 'चंद्रिका' (पृ० 60) नामक टीका के प्रत्युत्तर में लिखा था;[1] इस पूर्ववर्ती टीकाकार का उन्होंने पृ० 178 और 185 पर चंद्रिकाकार[2] के नामसे उल्लेख किया है; इनके मत की चर्चा अथवा विरोध 'लोचन' में चार बार (पृ० 123, 174, 185, 215) किया गया है। आनंदवर्धन और अभिनवगुप्त के मध्य कई पीढ़ियों का व्यवधान आवश्यक प्रतीत होता है, अतएव पिशेल (Pischel) के इस मत का

---

1. चंद्रिकाकारैस्तु पठितं ... . इत्यलं पूर्ववंश्यैः सह विवादेन बहुना पृ० 185; इत्यलं निज-पूर्वजसगोत्रैः साकं विवादेन, पृ० 123, इत्यादि। मम्मट पर अपनी टीका में सोमेश्वर ने (पृ० 55) भी चंद्रिकाकार का उल्लेख किया है।
3. महिमभट्ट-लिखित 'व्यक्ति-विवेक, (1.5) के आरंभ में एक श्लेषमय पद्य में भी 'चंद्रिका का उल्लेख मिलता है—

ध्वनिवर्त्मन्यतिगहने स्खलितं
वाण्याः पदे पदे सुलभम्।
रभसेन यत्प्रवृत्ता प्रकाशकं
चंद्रिकाद्यदृष्टैव ॥

इस पर टीकाकार ने इस प्रकार कहा है—
चंद्रिका ज्योत्स्ना ध्वनि-विचारणग्रंथोऽपि (पृ० 1)।

कि अभिनवगुप्त ने तीन स्थलों पर आनंदवर्धन को अपना गुरु कहा है, निराकरण हो जाता है। ये स्थल मुद्रित पाठ के पृ० 37, 183 और 214 पर हैं, किंतु संदर्भ के अनुसार उनके परीक्षण से प्रतीत होता है कि आदरसूचक शब्द गुरु का प्रयोग यदि आनंदवर्धन के लिए ही किया गया है तो वह शाब्दिक नहीं है, बल्कि 'परंपरा-गुरु', जिनके ग्रंथ का परिवार में बहुत आदर था[1], के समान आलंकारिक प्रयोग है अथवा यह अधिक संभव है कि इस शब्द से अभिनवगुप्त का कोई अन्य गुरु, यथा, भट्टतौत अथवा भट्टेंदुराज लक्षित होते हों। भरत पर अपनी टीका में अभिनव ने पूर्वोक्त को 'अस्मदुपाध्याय' कहा है। कय्यट का कथन है कि उन्होंने आनंदवर्धन के 'देवीशतक' (सं० काव्यमाला, गुच्छक ix) पर लगभग 977 ई० में टीका लिखी थी। इसका तात्पर्य यह है कि दसवीं शती के अंत तक आनंदवर्धन इतने विख्यात हो चुके थे कि उनके ग्रंथ पर दो विद्वानों ने टीकाएं लिखीं। इसके अतिरिक्त, राजशेखर ने, जो 9 वीं शती के अंत और दसवीं शती के आरंभ में हुए हैं, अपनी काव्यमीमांसा पृ० 16 में आनंदवर्धन के नाम का उल्लेख किया है। इस प्रकार कह्लण-निर्धारित और बूहलर और जैकोबी द्वारा स्वीकृत तिथि को प्रामाणिक मानने में किसी संदेह की गुंजाइश नहीं है।

(२)

काव्यालंकार पर ध्वन्यालोक नामक प्रसिद्ध ग्रंथ आनंदवर्धन-रचित माना जाता है। इसे 'काव्यालोक' अथवा 'सहृदयालोक' भी कहा गया है।[2] इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात्, (1) कारिका पद्यमय है और इसमें 'ध्वनि' का विवेचन किया गया है; और (2) वृत्ति, अथवा कारिका की व्याख्या, सामान्यतः गद्यमय है, किंतु उदाहरण पद्यमय हैं। प्रश्न यह है कि कारिका तथा वृत्ति का लेखक एक ही था अथवा भिन्न-भिन्न थे।

परवर्ती अनेक लेखकों ने इस विषय में अभिनवगुप्त का अनुसरण किया है। उन्होंने कारिकाकार और वृत्तिकार में स्पष्ट रूप से भेद किया है और उनका विरोध भी किया है। उन्होंने 'वृत्ति-ग्रंथ' शब्द को 'कारिका' शब्द से बिल्कुल

1. जैकोबी, WZKM iv. पृ० 237-38.
2. अभिनव ने उद्योत iii.और iv.के अंतिम पद्यों में इसे 'काव्यालोक' कहा है। किंतु भरत पर अपनी टीका (vii. खंड i.पृ० 344, xvi. 5, खंड ii.,पृ० 299-300) में उन्होंने ध्वन्यालोक पर अपनी टीका को 'सहृदयालोक-लोचन' कहा है। इस ग्रंथ की संक्षिप्त विषय-सूची के लिए देखिए, HSP, पृ० 190,191. ध्वन्यालोक और ध्वनि-कारिकाओं के पाठ के बारे में देखिए, एस० पी० भट्टाचार्य, Proc. A- I. O. C., पटना 1933, पृ० 613-22.

भिन्न माना है।[1] इन तीन स्थलों (पृ० 123, 130-1, अध्याय iv. पृ० 29) पर अभिनवगुप्त ने कारिकाकार और वृत्तिकार के परस्पर विरोधी मतों का समाधान करने का यत्न किया है।

सर्वप्रथम बूहलर (Bühler)[2] ने इस तथ्य की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। अभिनवगुप्त के प्रमाण के आधार पर जैकोबी (Jacobi) ने[3] यह सुझाव दिया कि कारिका के अनुमानित प्राचीन लेखक, ध्वनिकार, वृत्ति के लेखक आनंदवर्धन से भिन्न व्यक्ति होने चाहिए। इस सुझाव को पुष्ट करने के लिए यह कहा गया है कि ग्रंथ के दोनों भागों में पूर्ण मतैक्य का अभाव है, यद्यपि दूसरा खंड पहले की व्याख्या करता है। इसके विपरीत, ऐसा प्रतीत होता है कि कारिकाकार द्वारा संक्षिप्त-पद्य-रचित-सिद्धांत की रूपरेखा का वृत्तिकार ने पर्याप्त विस्तार से व्याख्या, संशोधन और परिवर्तन किया है। इसके अतिरिक्त ऐसी अनेक समस्याएं हैं, जिनकी विवेचना पूर्ववर्ती ने बिल्कुल नहीं की है, जबकि परवर्ती ने उनका बड़े विस्तार से विवेचन किया है। उदाहरण के लिए, एक स्थान पर (पृ० 123) अभिनवगुप्त ने स्पष्टतया यह कहा है कि कारिका में वस्तु, अलंकार और रसादि के अनुसार ध्वनि के वर्गीकरण का प्रतिपादन नहीं है; इसके अतिरिक्त अध्याय iv में एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है कि वृत्तिकार ने काव्य में अर्थ की अनंत विविधता के स्रोत अथवा कारण की समस्या का उल्लेख किया है, किंतु कारिकाकार ने उसे अछूता ही रहने दिया है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि आनंदवर्धन ने कारिकाओं की संक्षिप्त और असंबद्ध सामग्री के आधार पर अपनी प्रतिष्ठा-प्राप्त वृत्ति में काव्यशास्त्र के अव्यवस्थितप्राय सिद्धांत के निर्माण का यत्न किया। उनको इस कार्य में इतनी अधिक सफलता प्राप्त हुई कि कुछ समय के बाद इस महान् टीकाकार की तुलना में कारिकाकार पीछे छूट गए। ऐसा माना जाने लगा कि ध्वनिकार कुछ स्मरणीय पद्यों के रचयिता ही नहीं थे, बल्कि स्वयं

---

1. पृ० 1. 59-60, 71, 78, 85, 104, 123, 130-1; अध्याय iv. पृ० 25, 29, 37, 38, 39, 40, JDL, ix. 1923 कलकत्ता विश्वविद्यालय। 'लोचन' पृ० 123 पर एक स्थल से यह लक्षित होता है कि पूर्ववर्ती टीकाकार अर्थात् चंद्रिकाकार ने कारिकाकार और वृत्तिकार में ऐसा ही भेद किया था। इन स्थलों के संग्रह के लिए देखिए, एस० के० डे, BSOS i. खंड 4, पृ० 3 (एस०के०डे कृत, Some Problems of Sanskrit Poetics, कलकत्ता, 1959, पृ० 80-90) में पुनर्मुद्रित वहाँ सारी समस्या पर चर्चा की गई है) तथा हरिचंद शास्त्री का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 86-87.
2. Kashmir Rep. पृ० 65.
3. DMG, 1902, पृ० 405 इत्यादि।

टीकाकार आनंदवर्धन थे और उन्होंने ही सिद्धांत के वर्तमान आकार को व्यवस्थित किया। धीरे-धीरे ध्वनिकार शब्द का ध्वनि-सिद्धांत के रचयिता के अर्थ में प्रयोग होने लगा और परवर्ती लेखकों ने अविवेकवश इस शब्द को आनंदवर्धन के लिए प्रयुक्त किया। संभवत:, वे इस सिद्धांत के प्रवर्तक नहीं थे, किंतु सैद्धांतिक मत-मतांतरों के पारस्परिक संघर्ष में विजय का श्रेय उन्हीं को प्रदान किया गया।

इसमें कोई विस्मय नहीं कि जह्लण के ग्रंथ में तथाकथित राजशेखर-रचित पद्य में आनंदवर्धन को ध्वनि-सिद्धांत का प्रवर्तक माना गया है। इसी प्रकार, समुद्रबंध (पृ० 4) में, रुय्यक से पूर्व काव्यशास्त्र के पांच सिद्धांतों की समीक्षा करते हुए, आनंदवर्धन को ध्वनि-सिद्धांत का पांचवां अथवा अंतिम प्रवर्तक कहा गया है। परवर्ती लेखकों के ग्रंथों में 'ध्वन्यालोक' के दो भ्रांतिजनक उद्धरण मिलते हैं। इन उद्धरणों में उन लेखकों ने आनंदवर्धन को ध्वनिकार से अभिन्न माना है अथवा उनके नामों के कारण भ्रांतिग्रस्त हो गए हैं। उपर्युक्त चर्चा से यह भ्रांति दूर हो जाती है कि एक ओर, आनंदवर्धन के नाम से अनेक कारिकाओं का उल्लेख है, जबकि दूसरी ओर वृत्ति में अनेक अंश ध्वनिकार के बताए गए हैं। परवर्ती लेखक इस कारण पूरी तरह भ्रांत रहे, यहां तक कि ग्यारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में महिमभट्ट, जिन्होंने नवीन सिद्धांत के उन्मूलनार्थ 'व्यक्ति-विवेक' में भीषण प्रहार किया, सामान्य ध्वनिकार के नाम से कारिका और वृत्ति दोनों के भेदभाव-रहित रूप से उद्धरण देते गए हैं। इसी प्रकार, क्षेमेंद्र ने ग्यारहवीं शती के अंतिम चरण में, और हेमचंद्र ने बारहवीं शती के प्रथम चरण में आनंदवर्धन को, क्रमशः कारिका iii.24 और i.4 का रचयिता माना है। इनसे भी परवर्ती लेखकों, यथा जयरथ, विश्वनाथ, गोविंद तथा कुमारस्वामी ने स्वयं आनंदवर्धन को ही ध्वनिकार माना है और कारिका और वृत्ति, दोनों का ही उन्हें अभेद रूप से रचयिता स्वीकार किया है।[1] मम्मट सामान्यत: एक जागरूक लेखक थे।

1. क्षेमेंद्र, 'औचित्य-विचार', पृ० 134='ध्वन्यालोक' iii. 24; हेमचंद्र, टीका, पृ० 26=वल्लभदेव, 'सुभाष' 157='ध्वन्यालोक' i. 4; गोविंद ठक्कुर, पृ० 16=ध्वन्यालोक पृ० 221; विश्वनाथ, पृ० 114=ध्वन्यालोक पृ० 130; जयरथ, पृ० 119=ध्वन्यालोक 111; कुमारस्वामी, पृ० =64ध्वन्यालोक iii. 3. राजशेखर ने (पृ० 15) आनंदवर्धन के अपने केवल एक उद्धरण में पृ० 137 पर वास्तव में वृत्ति के एक परिकर-श्लोक का उल्लेख किया है। इसके विपरीत, कुंतक ने आनंदवर्धन के अपने प्राकृत पद्य 'तला जाअंति' ('ध्वन्यालोक' पृ० 62) (उनके लुप्त ग्रंथ विषम-बाण-लीला से उद्धृत) का उल्लेख किया है कि वे आनंदवर्धन को ध्वनिकार मानते थे (देखिए, 'वक्रोक्तिजीवित' की भूमिका, द्वितीय संस्करण, पृ० xi)।

उन्होंने आनंदवर्धन को कारिका-लेखक से भिन्न माना है। कारिका-लेखक को उन्होंने 'ध्वनिकार' अथवा 'ध्वनिकृत' (पृ० 213 तथा 214) कहा है। किंतु एक स्थान पर (पृ० 445) वे भी भटक गए और ध्वनिकार को एक ऐसे पद्य का लेखक मान बैठे, जो निस्संदेह वृत्ति के अंतर्गत है। कारिकाकार और वृत्तिकार के भेद की समस्या का अभी अंतिम रूप से निर्णय नहीं किया जा सकता।

(३)

यदि ध्वनिकार को आनंदवर्धन से भिन्न मान लिया जाय तो स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि ध्वनिकार कौन थे ? और उनकी तिथि क्या निर्धारित की जाय ? अभिनवगुप्त इस विषय पर सर्वथा मौन हैं। जैकोबी ने 'ध्वन्यालोक' के अपने विद्वत्तापूर्ण अनुवाद की भूमिका में बड़े सुंदर रूप में इस प्रश्न को उठाया है, किंतु वे कोई समुचित समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। सोवनी (Sovani) की यह परिकल्पना[1] कि अज्ञात कारिकाकार का नाम सहृदय था, निश्चयात्मक नहीं है। उन्होंने इस आधार पर यह अनुमान किया है कि (1) स्वयं ग्रंथ का वैकल्पिक नाम 'सहृदयालोक' है, और (2) 'ध्वन्यालोक' के अध्याय iv के अंत में और अभिनवगुप्त की टीका के आदि में 'सहृदय' तथा 'कवि-सहृदय' शब्दों का प्रयोग इस अनुमान की अर्थवत्ता को पुष्ट करता है। यह सर्वविदित है कि सहृदय शब्द (अर्थात् हृदय सहित व्यक्ति) विचाराधीन पद्यों की तरह, अलंकार-साहित्य में अनेकानेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, और एक सुरुचिसंपन्न, साहित्य-सौंदर्य के पारखी तथा रस-मर्मज्ञ व्यक्ति को परिलक्षित करता है। स्वयं आनंदवर्धन ने अपनी वृत्ति (पृ० 160) में 'सहृदयत्व' की चर्चा की है, और अभिनवगुप्त ने 'सहृदय' की परिभाषा इस प्रकार की है (पृ० 11) :

"येषां काव्यानुशीलनाभ्यासवशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे
वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता, ते हृदयसंवादभाजः सहृदयाः।"

यह परिभाषा इतनी मान्यताप्राप्त (मानक) हो गई कि हेमचंद्र ने, बिना किसी कठिनाई का अनुभव किए, इसको शब्दशः उद्धृत कर लिया (टीका, पृ० 3)।[2]

---

1. JRAS, 1910, पृ. 164-67.
2. मम्मट ने अपने ग्रंथ (पृ० 10) के आरंभ में ही 'कवि' और 'सहृदय' शब्दों का उल्लेख किया है। विद्याधर (पृ० 21) ने इन दोनों में व्युत्पत्ति-भेद किया है। मम्मट और विश्वनाथ का कथन है कि सहृदय ही काव्य-रस का प्रत्यक्ष-ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

सामग्री के अभाव के कारण इस समस्या का समाधान करना बहुत कठिन है। अभिनव के एक स्थल के आधार पर जैकोबी (Jacobi) का मत है कि अज्ञात ध्वनिकार मनोरथ के समकालीन थे। 'राजतरंगिणी' (iv.497 तथा 671) ने मनोरथ को जयापीड और उनके उत्तराधिकारी ललितापीड के राज्यकाल में, अर्थात् आठवीं शती के तीसरे चरण और नवीं शती के प्रथम चरण (लगभग 780-813 ई०) के मध्यवर्ती काल में निर्धारित किया है। किंतु इस विषय का निर्णय करने में अनेक कठिनाइयां हैं। 'ध्वनि' के विरुद्ध विविध सिद्धांतों की चर्चा करते हुए आनंदवर्धन ने एक अज्ञात लेखक के पद्य को उद्धृत करते हुए यह कहा है— 'तथा चान्येन कृत एवात्र श्लोकः।' इस पर अपनी टीका में अभिनवगुप्त ने यह कहा है— "तथा चान्येन इति। ग्रंथकृत्समानकालभाविना मनोरथनाम्ना कविना।" यदि यह मान लिया जाय कि 'ग्रंथकृत्' से अभिनवगुप्त का तात्पर्य आनंदवर्धन से हैं, तब मनोरथ आनंदवर्धन के समकालीन हो जाते हैं और उनकी तिथि नवीं शती का मध्यभाग अथवा उत्तरार्द्ध ठहरती है, अर्थात् कह्लण द्वारा निर्धारित तिथि के कुछ पश्चात्। किंतु इसमें यह मानना पड़ेगा कि दोनों मनोरथ एक ही व्यक्ति थे। इसके विपरीत यदि यह मान लिया जाय कि ग्रंथकृत्, जैकोबी के कथनानुसार, अज्ञात ध्वनिकार थे, तो एक नई कठिनाई उत्पन्न होती है, क्योंकि अभिनवगुप्त ने 'ग्रंथकृत्' शब्द को सभी जगह आनंदवर्धन के लिए ही प्रयुक्त किया है (पृ० 12, 37, 90 इत्यादि)। इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह मानना पड़ेगा कि या तो (1) (जैसा कि पिशेल का तर्क है) कह्लण ने मनोरथ को जयापीड और ललितापीड के राज्यकाल में वर्तमान मानकर गलती की है, या (2) दोनों मनोरथ एक ही व्यक्ति नहीं थे, या (3) स्वयं अभिनवगुप्त किसी असावधानी के कारण कारिकाकार और वृत्तिकार के विषय में भ्रांतिग्रस्त हो गए हैं। उपर्युक्त सभी प्रस्ताव समान रूप से ग्राह्य हैं, किंतु इस बात का निर्णय करने के लिए कुछ भी सामग्री उपलब्ध नहीं है, अतएव यह कहना कि मूल ध्वनिकार कह्लण के मनोरथ के समकालीन थे, अनुमान मात्र ही है। इसे प्रमाणित नहीं माना जा सकता।[1]

(४)

इसके विपरीत, कारिकाएं नवीं शती के प्रथम चरण से भी प्राचीन हैं। जैकोबी ने इसी काल में ध्वनिकार को मनोरथ का समकालीन माना है। मनोरथ का उल्लेख और कह्लण का अशुद्ध कथन कोई बाधा उत्पन्न नहीं करता और

1. टी० आर० चिंतामणि ने JOR ii. (1928) पृ० 44-47 में अशुद्धियों का समाधान करने का प्रयत्न किया है।

सामान्य रूप में अभिनवगुप्त के प्रमाण का विरोध भी अपेक्षित नहीं है, क्योंकि यह मान लेना युक्तियुक्त है कि विवेचनाधीन मनोरथ एक कवि हुए हैं। अभिनवगुप्त के कथनानुसार वे आनंदवर्धन के समकालीन थे और कह्लण के प्रसिद्ध मनोरथ से सर्वथा भिन्न व्यक्ति थे। क्योंकि स्वय अभिनवगुप्त ने इसका विरोध किया है, इसलिए 'ग्रंथकृत्' शब्द का कारिकाकार अर्थ करना अनावश्यक है। इससे समस्या सुलझ जाती है। इसमें कह्लण द्वारा मनोरथ के उल्लेख से कोई अंतर नहीं पड़ता—उनसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं है। इसके विपरीत, यदि ध्वनिकार को कह्लण के मनोरथ का समकालीन मान लें तो कारिकाकार और वृत्तिकार में केवल एक या दो पीढ़ी का अंतर रह जायगा। इतना अल्प समय प्रतिपाद्य विषय की शास्त्रीय व्याख्या के लिए अपर्याप्त है। किंतु निस्संदेह इस व्याख्यात्मक सक्रियता के कुछ अवशेष 'परिकर-श्लोकों' (पृ० 34, 130, 137, 147, 163), 'संग्रह-श्लोकों' (पृ० 87. 223) तथा संक्षेप-श्लोकों (पृ० 44, 74, 243) के रूप में आनंदवर्धन की वृत्ति के अंतर्गत अद्यावधि सुरक्षित हैं, और संभवतः वह पहली वृत्ति नहीं थी। ये श्लोक एक प्रकार के पुनरावृत्ति पद्य हैं। वृत्तिकार ने इन्हें अज्ञात ग्रंथों से उद्धृत किया था। उन्हें कारिकाओं की व्याख्या करने के लिए अथवा उनके प्रवर्धन एवं पूर्ति के लिए प्रयोग किया गया है—किंतु सिद्धांत के मूल सूत्रकार और उसके प्रथम चिंतनशील व्याख्याता के मध्य में बहुत अधिक अवकाश (अंतराल) मान लेना अनावश्यक है। इसलिए किसी पद्धति की रचनात्मक व्यवस्था के लिए बहुत अधिक समय लगना आवश्यक नहीं है। यह साधारण बात है कि यदि कोई साहित्यिक अथवा बौद्धिक विचारधारा विकासमान अवस्था में हो तो कुछ पीढ़ियों में अथवा अधिकाधिक एक शती में अपनी निश्चित चरमोन्नति को प्राप्त कर लेती है अथवा पूर्ण हो जाती है। यदि मान लिया जाय कि ध्वनि-सिद्धांत बहुत प्राचीन काल में विद्यमान था, तो रस-सिद्धांत की तरह किसी सीमा तक, आनंदवर्धन के पूर्ववर्ती लेखकों पर उसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव अवश्य होना चाहिए था, यद्यपि यह तर्क स्वयं में निर्णायक नहीं है। इसके विपरीत यह मानना पड़ेगा कि ध्वनिकार रस, रीति और अलंकार के सिद्धांतों से परिचित थे, किंतु इससे उनकी अथवा उनके सिद्धांत की प्राचीनता सिद्ध अथवा असिद्ध नहीं होती, क्योंकि ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि वे इन सिद्धांतों के समर्थक भामह, दंडी अथवा वामन के विशिष्ट विचारों से परिचित थे। ध्वनिकार की तरह इन लेखकों को भी अपने-अपने सिद्धांतों का एकमात्र प्रवर्त्तक नहीं माना जा सकता। इससे यही सिद्ध होता है कि ध्वनिकार द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत इन दूसरे सिद्धांतों के साथ-साथ उसी तरह विद्यमान था, जैसा कि उपलब्ध ग्रंथों में दृष्टिगोचर होता है,

क्योंकि यदि इसे अधिक अर्वाचीन मान लिया जाय तो यह स्वयं आनंदवर्धन के समय के अत्यंत निकट हो जायगा। यदि ध्वनिकार, दंडी अथवा वामन के समकालीन थे तो उन्हें अपने टीकाकार से अधिकाधिक एक शती पूर्व, अर्थात् आठवीं शती के पूर्वार्द्ध में निर्धारित किया जा सकता है।

(५)

यदि आनंदवर्धन ने ही 'ध्वनि सिद्धांत' को अंतिम अधिकृत रूप दिया तो अनाम ध्वनिकार इसके एकमात्र रचयिता नहीं हो सकते। अभिनवगुप्त इत्यादि लेखकों ने तो केवल इसका परिमार्जन किया है। यह बात कारिका के इस कथन से स्पष्ट हो जाती है कि प्राचीन आचार्यों ने इस सिद्धांत का उपदेश किया और स्वयं ध्वनिकार के समय में भी यह विविध रूपों में विद्यमान था। जैसा कि आनंदवर्धन ने अपनी व्याख्या में कहा है, यह सिद्धांत अविच्छिन्न परंपरा (परंपरया यः समाम्नातः) में चलता आया है, यद्यपि, जैसा कि आनंदवर्धन ने अपनी टीका में कहा है, विशेष ग्रंथों में इसकी व्याख्या नहीं की गई है (अविच्छिन्नेन प्रवाहेण तैरेतदुक्तं, विनापि विशिष्ट पुस्तकेषु विवेचनादित्यभिप्रायः, पृ० 23)। इससे निस्संदेह यह परिलक्षित होता है कि यह सिद्धांत बहुत प्राचीनकाल से विद्यमान था और किसी अज्ञात लेखक ने इसे संगृहीत करके सिद्धांत रूप में व्यवस्थित किया। उनके इस ग्रंथ को साहित्य-क्षेत्र में बड़ा सम्मान मिला, किंतु स्वयं लेखक को अस्पष्ट-सी, आदरसूचक उपाधि 'ध्वनिकार' प्राप्त हुई। उनके महान वृत्तिकार ने उनके सिद्धांत को एक स्थायी रूप दिया और आगामी पीढ़ियों ने पूर्ववर्ती लेखक के स्थान पर उन्हें ही सम्मानित किया। कालांतर में वृत्तिकार ध्वनिकार से भी अधिक प्रसिद्ध हो गए, यहां तक कि अलंकार के आधुनिकतम लेखक, कुमारस्वामी ने (पृ० 288) उन्हें विचित्र किंतु महत्वपूर्ण उपाधि—ध्वन्याचार्य— से विभूषित कर उनका सम्मान किया है।

(६)

आनंदवर्धन के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। उनके ग्रंथ की इंडिया आफिस पांडुलिपि के अंतर्गत अध्याय iii के पृष्ठांत विवरण में उन्हें 'नोणोपाध्यायात्मज' नाम से संबोधित किया गया है। अध्याय iv के पृष्ठांत-विवरण में 'जोनोपाध्याय' रूप है। उनके पिता के नाम के इन दो रूपों में पहला शुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि आनंदवर्धन के 'देवी-शतक' को संकेत करते हुए हेमचंद्र ने (टीका पृ० 225) लेखक को 'नोणसुतः श्रीमदानंदवर्धननामा' कहा है। इसी ग्रंथ के अंतिम श्लेषमय पद्य पर टीका करते हुए कय्यट ने लेखक

को नोण-पुत्र कहा है और उनके दो ग्रंथों—'विषमबाणलीला' और 'अर्जुनचरित'—का उल्लेख किया है। इस पद्य में इन दोनों ग्रंथों का श्लेषमय उल्लेख है। अभिनवगुप्त ने (पृ० 152, 176, 222) आनंदवर्धन की वृत्ति में और हेमचंद्र ने (पृ० 15, 213 पर) इन दोनों ग्रंथों का उल्लेख किया है। प्रथम ग्रंथ प्राकृत में था। आनंदवर्धन ने पृ० 233 पर अपने एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख किया है। इस पर अभिनव ने इस प्रकार टीका की है—'ग्रंथांतरिति विनिश्चयटीकायां धर्मोत्तमायां या विवृतिरमुना ग्रंथकृता कृता।' यह ग्रंथ वास्तव में धर्मकीर्ति के प्रमाण-विनिश्चय पर 'धर्मोत्तमा' नामक टीका है। अभिनव ने 'लोचन' iv (पृ० 31) में आनंदवर्धन के 'तत्त्वालोक' नामक एक अन्य ग्रंथ का उल्लेख किया है। ऐसा कहा जाता है कि उसमें लेखक ने अन्य विषयों के साथ-साथ काव्य-नय और शास्त्र-नय के पारस्परिक संबंधों का विवेचन किया है।

(७)

अभिनवगुप्त

अभिनवगुप्त मुख्यतः काश्मीरी शैव-सिद्धांत पर अपने दार्शनिक ग्रंथों के कारण प्रसिद्ध हैं। काव्यालंकार के क्षेत्र में भी उन्होंने बहुत यश प्राप्त किया है। वे भरत और आनंदवर्धन पर क्रमशः अपनी 'अभिनवभारती' तथा 'काव्यालोक-लोचन' नामक टीकाओं के लिए विख्यात हैं। क्योंकि 'लोचन' का अनेक बार उल्लेख मिलता है, इसलिए वह अन्य टीकाओं से पहले लिखा गया होगा। अपने एक गुरु (अस्मदुपाध्याय) भट्टतौत के ग्रंथ 'काव्य-कौतुक' पर अपनी एक अन्य टीका का उन्होंने 'लोचन' (पृ० 179 तथा 29) में उल्लेख किया है। यह टीका अब लुप्त हो चुकी है। भट्टतौत (अथवा भट्टतोट) के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है; किंतु प्रारंभिक चतुर्थ पद्य से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके गुरु ने ही उन्हें भरत पर टीका लिखने के लिए प्रेरित किया था। इस टीका में उनके नाम का अनेक बार उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार उनके एक अन्य गुरु, भट्टेंदुराज ने उन्हें 'लोचन' लिखने के लिए प्रेरित किया था। तौत के लुप्त ग्रंथ के वस्तु-विषय के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है, किंतु अभिनवगुप्त के उल्लेख (पृ० 187, 275, 310) से यह प्रतीत होता है कि उसमें सामान्य रूप से काव्य-सिद्धांत, विशेष रूप से रस-सिद्धांत और 'नाट्यशास्त्र' के तत्संबंधी अंश की व्याख्या की गई थी।[1]

1. भरत पर टीकाकारों के अंतर्गत देखिए, पृ० 33, 101 सोमेश्वर ने (मम्मट पर टीका पृ० 55) इस ग्रंथ को तथा इस पर अभिनव की टीका को देखा था (तच्च भट्टतौतेन काव्यकौतुके, अभिनवगुप्तश्च तद्वृत्तौ निर्णीतम्)।

'व्यक्ति-विवेक' (पृ० 13) पर अनामलेखक टीका में भी काव्य-कौतुक का उल्लेख मिलता है । हेमचंद्र (पृ० 316) ने अपने पाठ में भट्टतौत के तीन पद्यों का उद्धरण दिया है और भरत पर अभिनव के अंश को लेकर अपनी टीका में रस-सिद्धांत से संबंधित इस आचार्य के मत का उल्लेख किया है। क्षेमेंद्र ने अपने ग्रंथ औचित्य-विचार (श्लोक 35 के नीचे) में तौत का एक पद्यांश दिया है; हेमचंद्र (पृ० 3)[1] ने इसी पद्य का पूर्ण, किंतु अनाम उद्धरण दिया है। माणिक्यचंद्र (पृ० 5 पर), श्रीधर और चंडीदास ने भी मम्मट पर अपनी-अपनी टीकाओं में तौत का उल्लेख किया है।

भट्टतौत और भट्टेंदुराज दोनों संभवतः काव्य और अलंकार में उनके गुरु रहे हैं। लोचन में भट्टेंदुराज की बहुत प्रशंसा की गई है। अभिनव और उनके संबंध में पहले ही बताया जा चुका है। उन्होंने दर्शनशास्त्र में अपने गुरुओं, यथा सिद्धिचेल,[2] लक्ष्मण गुप्त इत्यादि का अपने दर्शनशास्त्रीय ग्रंथों में उल्लेख किया है। हमें उससे कुछ मतलब नहीं है, किंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अभिनव ने अपने ग्रंथ प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-लघुवृत्ति में उत्पल को अपना परम-गुरु, अर्थात् गुरु का भी गुरु, कहा है। अपने लोचन (पृ० 30) में उत्पल (देखिए, पृ० 32) के इस वर्णन का उन्होंने पुनरुल्लेख किया है। यहाँ अभिनव ने पाठ (i.8) के अंतर्गत प्रत्यभिज्ञा शब्द पर चर्चा की है और इस विषय में उत्पल के मत का भी उल्लेख किया है। काश्मीर-शैव-सिद्धांत के इतिहास में अपने ग्रंथ ईश्वरप्रत्यभिज्ञा (इसके सूत्रों और वृत्ति पर अभिनव ने क्रमशः लघुवृत्ति तथा बृहती वृत्ति लिखी है) के कारण उत्पल बहुत प्रसिद्ध हैं। बूहलर ने (उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 79) इनकी तिथि दसवीं शती के पूर्वार्द्ध में निर्धारित की है। काश्मीर शैव-सिद्धांत पर अपने अनेक ग्रंथों में अभिनव के कथनानुसार गुरु-परंपरा इस प्रकार थी—सोमानंद-उत्पल-लक्ष्मणगुप्त-अभिनवगुप्त। सोमानंद संभवतः प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के आदि प्रवर्तक, वसुगुप्त के शिष्य थे। तंत्रशास्त्र के अध्ययन में उनकी यह गुरुपरंपरा मानी जा सकती है—पुमतिनाथ-सोमदेव-शंभुनाथ-अभिनवगुप्त।

अपने ग्रंथ, 'परात्रिंशिका-विवरण' के अंतिम अंश में अभिनवगुप्त ने अपना व्यक्तिगत तथा आनुवंशिक वर्णन दिया है। उसमें उन्होंने बताया है कि वे

---

1. वामन पर 'कामधेनु' नामक टीका (बनारस संस्करण) पृ० 4 पर। शायद यह पद्य गलती से मामह (अथवा भामह ?) का माना गया है।

2. 'लोचन' के अंतिम पद्यों में ऐसा उल्लेख मिलता है।

काश्मीरक चुखल[1] के पुत्र तथा वराहगुप्त के पौत्र थे। मनोरथगुप्त नामक उनके एक भ्राता थे। उत्पल तथा आनंदवर्धन के साथ उनके संबंधों के तथा स्वयं अपने कुछ ग्रंथों में ग्रंथरचना की तिथि के उल्लेख से, उनकी तिथि सरलता से निर्धारित की जा सकती है। पूर्वोक्त कथनानुसार, उनका ग्रंथ 'क्रमस्तोत्र' 990–91 ई० में, तथा 'भैरव' अथवा 'ईश्वरस्तोत्र' 992–93 ई० में लिखा गया था। उत्पल के 'प्रत्यभिज्ञा' पर उनकी 'बृहती वृत्ति' में 1015 ई० का उल्लेख है। इसलिए उनका समय निश्चित रूप से दसवीं शती के अंतिम चरण और ग्यारहवीं शती के प्रथम चरण में स्थिर किया जा सकता है।[2]

ग्रंथ-सूची

आनंदवर्धन

संस्करण तथा अनुवाद : (i) कारिका तथा 'लोचन' सहित, सं० दुर्गाप्रसाद तथा के० पी० परब, काव्यमाला 25, निर्णय सागर प्रेस, बंबई 1890, 1911. (ii) अभिनवगुप्त के 'लोचन' तथा उदयोत्तुंग की कौमुदी सहित, सं० कुप्पुस्वामी शास्त्री; केवल प्रथम उद्योत, मद्रास 1944. जर्मन-भाषा में अनुवाद हेर्मन जैकोबी (Hermann Jacobi) की भूमिका सहित, ZDMG–lvi-lvii, 1902-03, के अंतर्गत (लाइपजिग–1903, में अलग से पुनर्मुद्रित) अंग्रेजी अनुवाद, केवल i–ii, के० राम पिशरोती, इंडियन थॉट ix-x के अंतर्गत (1917–18); अपूर्ण। यहां काव्यमाला सं० 1911, में से ही उद्धरण दिए गए हैं।

यह पाठ आधुनिक टीकाओं सहित मुद्रित हुआ है (इनमें किसी भी नई पांडुलिपि का उपयोग नहीं हुआ है, इसलिए इन्हें समालोचनात्मक संस्करण नहीं

---

1. बूहलर की पांडुलिपि में काश्मीरक 'विचुलक' (उपर्युक्त ग्रंथ पृ० clv) तथा 'चुखल' (पृ० clvii) दोनों पाठ हैं। उनका वास्तविक नाम नरसिंहगुप्त प्रतीत होता है। उनकी माता का नाम विमला था।

2. अभिनवगुप्त-रचित ग्रंथों के विषय में देखिए—के० सी० पांडे, 'अभिनवगुप्त, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस 1935, पृ० 122-24; वी. राघवन, JOR, xiv. पृ० 318-20 तथा New Cat. Cat i, 224-26. 'अभिनव भारती' के अंतर्गत लेखकों के विषय में देखिए, वी० राघवन, JOR, vi पृ० 153-62.

कहा जा सकता)। (i) मधुसूदन मिश्र, उनकी अपनी अवधान नामक टीका सहित, कलकत्ता 1939 (ii) बदरीनाथ शर्मा, उनकी अपनी टीका, दीधिति सहित, हरिदास संस्कृत सीरीज, बनारस, 1937, इत्यादि।

अभिनवगुप्त

सस्करण (1) काव्यमाला 25, 1890, 1911 के अंतर्गत, उपर्युक्त पाठ के अनुसार (केवल प्रथम तीन उद्योत) (2) चतुर्थ उद्योत, पाठ-रहित Journal of the Department of letters, कलकत्ता विश्वविद्यालय, खंड ix, 1923, के अंतर्गत वर्त्तमान लेखक-रचित (एस० के० डे रचित Some Problems पृ० 236-267 के अंतर्गत पुनर्मुद्रित)। 'काव्यालोक-लोचन' पूरा शीर्षक है। (3) प्रथम उद्योत, पाठ सहित, सं०, पट्टाभिराम शास्त्री, काशी संस्कृत सीरीज, बनारस 1940.

टीकाएँ: (1) परमेश्वराचार्य रचित 'लोचनव्याख्या कौमुदी'। Oppert 2694. (2) 'अंजन', अज्ञात-लेखक, मद्रास कैटलॉग xii, 12895, उद्धरण (केवल प्रथम उद्योत पर)। संभवत: लेखक का नाम दाशरथी था (के० कुंजुनी राजा के ग्रंथ 'कंट्रिब्यूशन ऑफ़ केरल', मद्रास 1958, पृ० 244)। लेखक ने गलती से भट्टेंदुराज को अभिनव का परमगुरु कहा है। (3) 'लोचन-कौमुदी' (केवल उद्योत i पर), केरल के उदयोत्तुंग अथवा उदयराज रचित; प्रकाशन यथापूर्व, मद्रास 1944, कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा। लेखक संभवत: 15 वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुए हैं (के० आर० पिशरोती, जर्नल ऑफ़ दि गंगानाथ झा रिसर्च इंस्टीट्यूट, i, पृ० 445-52)। उन्होंने 'मयूरसंदेश' नामक एक 'दूतकाव्य' लिखा है (सं० सी० कुन्हन राजा, पूना ओरिएंटल सीरीज 1944); इस पर कुंजुन्नी राजा का उपर्युक्त ग्रंथ देखिए, पृ० 228।

अभिनव तथा अन्य लेखकों द्वारा उल्लिखित आनंदवर्धन पर 'चंद्रिका' नामक टीका लुप्त है।

भरत पर 'अभिनवभारती' के विषय में भरत के अंतर्गत ऊपर देखिए।

अभिनव के 'काव्यकौतुक-विवरण' अथवा स्वयं 'काव्य-कौतुक' की कोई भी पांडुलिपि प्राप्त नहीं हुई है।

जेकब (Jacob) ने JRAS, 1897 पृ० 290 तथा 297 पर काव्य और अलंकार पर आनंदवर्धन तथा अभिनवगुप्त के ग्रंथों के उल्लेखों की एक सूची दी है। जेकब के कथनानुसार उसमें से अभिनव द्वारा उल्लिखित धनिक नामक लेखक का नाम छोड़ देना चाहिए।

अध्याय पाँच

राजशेखर से महिम भट्ट तक

राजशेखर

(१)

राजशेखर, महामत्री दुर्दुक अथवा दुहिक तथा शीलावती[1] के पुत्र और यायावर कुलोत्पन्न कवि अकालजलद के प्रपौत्र थे। वे काव्यालंकार-शास्त्र के लेखक होने की अपेक्षा कवि तथा नाटककार के नाते अधिक प्रसिद्ध हैं। अपने 'बाल-रामायण' **i.**12 में राजशेखर ने अपने को छह ग्रंथों का लेखक बताया है। संभवतः वे ग्रंथ 'बाल-रामायण' से भी पूर्व विद्यमान थे। उन्होंने 'बाल-रामायण' अपेक्षाकृत आरंभिक काल में लिखी थी।[2] यह तो ज्ञात नहीं है कि उन्होंने अपने अन्य तीन प्रसिद्ध नाटक भी इसी काल में लिखे थे, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने संभवतः छह ग्रंथ लिखे थे। हेमचंद्र (टीका, पृ० **335**) ने 'हर-विलास' नामक राजशेखर-कृत ग्रंथ को 'स्व-नामांक्ता' कविता का उदाहरण बताया है और उसके दो पद्य उद्धृत किए हैं (टीका, पृ० **334-335**)। उज्ज्वलदत्त ने भी (ii. 28) उनका एक पद्यार्द्ध उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त काव्यमीमांसा (xvii.18) में सामान्य भूगोल पर 'भुवनकोश' नामक उनके एक ग्रंथ का उल्लेख मिलता है। उज्ज्वलदत्त ने (ii. 76) शिव के पर्यायवाची शब्दों के संबंध में राजशेखर के एक पद्यार्द्ध का उल्लेख किया है। यदि वह पद्यार्द्ध 'हरविलास' में नहीं है तो संभवतः उसे राजशेखर के किसी अज्ञात कोश से उद्धृत किया गया है।

---

1. 'बालरामायण', अध्याय i. 7, 13; 'बालभा०, अध्याय i. 8: विद्धशालभंजिका अध्याय i. 5. राजशेखर ने अपने को कविराज कहा है (कर्पूरमंजरी i 9; विद्धशालभंजिका i. 5), जो काव्यमीमांसा के अनुसार काव्य-कौशल की दस श्रेणियों में से सातवीं श्रेणी है और महाकवि से एक सोपान ऊपर है।
2. 'कर्पूरमंजरी i.9 में कहा गया है कि राजशेखर ने अपना लेखनकार्य 'बालकवि' से आरंभ किया। वे बालकवि इसलिए कहलाए, क्योंकि उन्होंने 'बालरामायण' तथा 'बालभारत' लिखा, इस प्राकृत नाटक तथा 'विद्धशालभंजिका' की रचना से उन्होंने 'कविराज' की उपाधि प्राप्त की।
3. काणे (HSP पृ० 207-8) का मत है कि 'भुवनकोश' कोई पृथक् ग्रंथ नहीं था, बल्कि 'काव्यमीमांसा' का ही एक भाग था।

वल्लभदेव और शार्ङ्गधर के कोशों में राजशेखर-रचित अनेक पद्य मिलते हैं। स्टेन् कोनो (Sten Konow) ने इनमें से लगभग 24 पद्यों को राजशेखर के चार नाटकों में ढूँढ़ निकाला है।[1] किंतु लगभग 10 पद्य अभी तक उनकी किसी भी ज्ञात रचना में अथवा 'काव्यमीमांसा' में भी नहीं मिले हैं। ये पद्य तथा कवियों के स्मारक अधिकतर अन्य पद्य संभवतः एक भिन्न और कनिष्ठ राजशेखर द्वारा लिखे गए थे।[2]

इसमें कोई संदेह नहीं कि 'काव्यमीमांसा' के लेखक, नाटककार राजशेखर ही हैं, यद्यपि राजशेखर की रचनाओं की इन परिगणनाओं में इसका उल्लेख नहीं मिलता।[3] राजशेखर ने अपने इस ग्रंथ के प्रथम अध्याय के अंत में अपना नाम 'यायावर' राजशेखर बताया है। उनके नाटकों में भी ऐसा ही वर्णन है और इसी के आधार पर परवर्ती लेखकों ने उन्हें केवल 'यायावर' ही कहा है।[4] अपने यायावर वंश के विचारों अथवा मतों का उन्होंने सामान्य 'यायावरीय' नाम से अनेक बार उल्लेख किया है।[5] उनके वंश में सुरानंद,

---

1. स० 'कर्पूरमजरी' पृ०189-91.
2. यह दूसरे राजशेखर, 'प्रबंध-कोश' (1348 ई०) के रचयिता, जैन राजशेखर हो सकते हैं, अथवा नहीं भी। राइस (Rice) 282 ने बालकवि के ग्रंथ 'कर्पूर-रस-मंजरी' का उल्लेख किया है, जो राजशेखर और उनके प्रसिद्ध प्राकृत नाटक को ही निर्दिष्ट करता है, न कि किसी अलंकार ग्रंथ को।
3. Aufrecht (ABOD 135a) का कथन है कि शंकर ने 'शकुंतला' पर अपनी टीका में 'काव्यमीमांसा' का नामशः उल्लेख किया है।
4. 'बाल भारत' i. 6.13. विद्धशालभंजिका' i. 5, तथा धनपाल तिलकमंजरी, सं० काव्यमाला 85, 1903, श्लोक 33, तथा माणिक्यचंद्र, 'संकेत' टीका (सं० मैसूर) पृ० 308. इसके अतिरिक्त, हेमचंद्र (पृ० 235) तथा सोमेश्वर (सं० जोधपुर 1959, पृ० 224 'यायावरीय')। नारायण दीक्षित ने 'विद्धशालभंजिका 1.5 पर देवल का उद्धरण दिया है और कहा है कि 'यायावर' एक प्रकार का गृहस्थ होता है (द्विविधो गृहस्थः, यायावरः शालिनश्च; देखिए 'मिताक्षरा' में यज्ञ-भाग, i. 128) जिसके अनुसार यायावर का अर्थ होता है, ब्राह्मण का एक विशिष्ट वर्ग, जो सादा जीवन बिताता है और दान आदि नहीं लेता। राजशेखर की पत्नी क्षत्रियकुल की थी, लेकिन अनुलोम विवाह विहित था। देखिए काणे का 'हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र ii. पृ० 641-42.
5 चेदि देश का अलंकार (चेदि-मंडल-नंदन, जह्लण की सूक्ति-मुक्तावली, 88-89 पृ० 47)। इनके संरक्षक रणविग्रह को भंडारकर ने (रिपोर्ट 1887-91, पृ० xix) राष्ट्रकूट राजवंश के कृष्ण द्वितीय का बहनोई माना है, जिनका समय 875 से 911 ई० के बीच है। काव्य-मीमांसा के पृष्ठ 75 पर भी इनका उल्लेख है।

अकालजलद[1] तरल[2] तथा कविराज-जैसे कवि तथा विद्वान् हुए हैं। इसके अतिरिक्त अपने वंश के कीर्तिप्राप्त सदस्यों, जिनका 'बालरामायण' i. 13 तथा अन्य स्थलों पर वर्णन किया गया है, के मतों का उन्होंने व्यक्तिशः उल्लेख किया है। उन्होंने चाहुआन कुलोत्पन्न अपनी पत्नी, अवंतिसुंदरी के विचारों का भी सादर वर्णन किया है (पृ० 20,46,57)। उन्होंने 'कर्पूरमंजरी' (i.11) की रचना विशेषतया अपनी पत्नी के मनोविनोद के लिए की थी। वे भी विदुषी लेखिका थीं। इस ग्रंथ में उन्होंने प्राकृत भाषा के प्रति अपने प्रेम का प्रदर्शन किया है (पृ० 34, 51) तथा अपने भूगोल-ज्ञान का परिचय (अध्याय xvii) दिया है और 'बालरामायण' के अंक x में इस विषय पर अपनी जानकारी का प्रभूत प्रमाण दिया है। इन तथ्यों से प्रतीत होता है कि विवेचनाधीन राजशेखर प्रसिद्ध नाटकार राजशेखर से भिन्न व्यक्ति नहीं थे।[3]

(२)

अट्ठारह अध्याय पर्यंत 'काव्यमीमांसा' का प्रकाशित पाठ योजनागत एक बृहद् ग्रंथ का प्रथम खंड है। उस बृहद् ग्रंथ की साररूप योजना प्रथम अध्याय में दी गई है। आगामी खंडों में विषय-विवेचन से संबंधित टिप्पणियों (यथा, रीतयस्तिस्रस्तास्तु पुरस्तात्, पृ० 10, तथा तमौपनिषदिके वक्ष्यामः, पृ० 11) से भी ऐसा ही प्रतीत होता है। यदि उस योजनाबद्ध ग्रंथ में अट्ठारह अधिकरण थे, तो इस समय 'कविरहस्य' के प्रारंभिक विषय पर केवल एक ही खंड शेष है।[4] राजशेखर के अलंकार-संबंधी एक ग्रंथ में से केशवमिश्र (पृ० 32, 67) ने तीन पद्य उद्धृत किए हैं। यदि वे इसी लेखक द्वारा लिखे गए थे, तो वे, जैसा कि उनके

1. राजशेखर के प्रपितामह। यह इनका वास्तविक नाम नहीं है, बल्कि उपनाम है, जिसकी अभिव्यक्ति श्रीपद्धति 777=सुभाष 843 (दाक्षिणात्य) में है। ये अपने काव्य-रत्नों के लिए प्रसिद्ध थे, जिनमें से कुछ की चोरी कादंबरी राम ने (जह्लण, सूक्ति-मुक्तावली 83-84, पृ० 46) की थी। बालरामायण (i.3) में इन्हें 'महाराष्ट्र चूड़ामणि' कहा गया है। विद्धशालभंजिका (i.5) भी देखें।

2. इनका उल्लेख जह्लण ने किया है। ये एक पुस्तक के लेखक हैं, जिसका नाम संभवतः 'सुवर्णबंध' है।

3. देखिए, एस० के० डे कृत History of Kavya Literature (काव्य साहित्य का इतिहास) अध्याय viii—राजशेखर तथा उनके नाटक 'कर्पूरमंजरी' (i.6 पर) उन्होंने अपने को सर्वभाषा-चतुर कहा है। कवि के रूप में उनका दावा है कि वे पूर्वजन्म में बाल्मीकि, मेंठ तथा भवभूति थे।

4. तुलना कीजिए, 'काव्यमीमांसा' की भूमिका, पृ० xvii-xviii.

विषय से प्रतीत होता है, क्रमशः 'उभयालंकारिक' तथा 'वैनोदिक' पर लुप्त अध्यायों में से लिए गए थे।

परवर्ती लेखकों में 'काव्यमीमांसा' बहुत प्रिय रही है। क्षेमेंद्र, भोज, हेमचंद्र तथा कनिष्ठ वाग्भट ने इसका प्रभूत उपयोग किया है। उदाहरणार्थ, हेमचंद्र ने इसके अध्याय viii, ix, xiii, xviii में से कई दीर्घांशों की शब्दशः अनुलिपि की है। वाग्भट ने भी उन्हीं अंशों को या तो सीधे इसी ग्रंथ से लिया है अथवा अप्रत्यक्ष रूप में हेमचंद्र से लेकर उद्धृत किया है।[1]

राजशेखर ने स्वयं कई प्राचीन लेखकों के प्रति आभार प्रकट किया है और मेधाविरुद्र (पृ० 12), उद्भट तथा औद्भटों (पृ० 22, 44), वामन तथा वामनीयों (पृ० 14, 20), रुद्रट (पृ० 31), मंगल (पृ० 11, 14, 16, 20) तथा आनंद (पृ० 16) के मतों का प्रत्यक्ष उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त सामान्य 'आचार्य'[2] नाम से कई अज्ञात लेखकों का भी उल्लेख किया है। अपराजिति के नाम का भी उल्लेख मिलता है। सुभाषितावली 1024 में एक अपराजित[3] का भी वर्णन है। उनके विषय में 'कर्पूरमंजरी' i.8 में कहा गया है कि वे समकालीन कवि तथा 'मृगांकलेखाकथा' के रचयिता थे। इनके अतिरिक्त, राजशेखर ने अपने एक पूर्वज सुरानंद, अपनी पत्नी अवंतिसुंदरी,[4] पाल्यकीर्ति (पृ० 46), श्यामदेव (पृ० 11, 13, 17) तथा वाक्पतिराज[5] (पृ० 62) का भी उल्लेख किया है। इन उद्धरणों से प्रकट होता है कि इन सब ने विवेचनाधीन विषयों पर अपने-अपने मतों का प्रकाशन किया था।

(३)

राजशेखर की तिथि लगभग ठीक-ठीक निर्धारित की जा चुकी है। उनके

---

1. पाठ के गायकवाड़ संस्करण में टिप्पणी के अंत में इन उद्धरणों की तुलनात्मक सारणी दी गई है।
2. पृ० 3, 9, 13, 16, 20, 23, 30, 35, 50, 51, 56, 57, 58, 61, 62, 78 94, 99.
3. 'कवींद्र-वचन' में एक अपराजित-रक्षित का उल्लेख है, किंतु नाम से वे बौद्ध प्रतीत होते हैं। संभवतः, वे राजशेखर के समकालिक अपराजिति से भिन्न थे। वी० राघवन (JOR. vi. पृ० 170) के मत से राजशेखर के अपराजिति वास्तव में लोल्लट हैं।
4. काव्यमीमांसा पृ० 46 में अवंतिसुंदरी का एक पद्य उद्धृत किया गया है, किंतु उनकी कोई रचना अभी प्राप्त नहीं हुई है। हेमचंद्र ने अपने 'देशीनाममाला' (i.81 तथा i.157) में अवंतिसुंदरी के तीन प्राकृत पद्य उद्धृत किए हैं।
5. ये वाक्पतिराज (वापाइ-रा) स्पष्टतः गौडवहो के लेखक हैं (आठवीं शती का मध्य; कह्लण iv.144) ये निश्चित रूप से मालव के सातवें परमार-नरेश मुंज-वाक्पतिराज से, जिन्होंने 947 से 995 ई० तक राज्य किया, भिन्न हैं। धनंजय के अंतर्गत आगे देखिए।

चार उपलब्ध नाटकों[1] से विदित होता है कि उनके पूर्वज महाराष्ट्र में निवास करते थे। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय मध्यदेश में व्यतीत किया। वे महेंद्रपाल (अथवा निर्भय अथवा निब्भय) नामक राजा के गुरु (उपाध्याय) थे। राजा महेंद्रपाल के पुत्र तथा उत्तराधिकारी, महीपाल[2] ने भी राजशेखर को संरक्षण प्रदान किया। यह भी विदित होता है कि उनका 'बालभारत' नाटक महोदय नामक स्थान पर अभिनीत हुआ था। अपनी 'काव्यमीमांसा' (पृ० 94) में भी उन्होंने इस स्थान के प्रति पक्षपात प्रकट किया है। फ्लीट (fleet) ने यह प्रमाणित[3] किया है कि यह महीपाल 917 ई० के अस्नी शिलालेख के महीपाल ही हैं। वे पिशेल से इस बात में सहमत हैं[4] कि महोदय ही कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज का दूसरा नाम है।[5] सियदोनी शिलालेख[6] के अनुसार यह राजा तथा महेंद्रपाल कन्नौज से ही संबंधित थे। सियदोनी शिलालेख के आधार पर कीलहॉर्न (Kielhorn) ने कन्नौज के चार राजाओं का निर्धारण किया है और उससे प्रतीत होता है कि महेंद्रपाल की तिथि 903-07 ई० थी। औफ्रेक्ट (Aufrecht)[7] तथा पिशेल (Pischel)[8] ने यह भी प्रमाणित किया है कि महेंद्रपाल निर्भर अथवा निर्भय (प्राकृत में निब्भर अथवा निब्भय) नाम से भी प्रसिद्ध थे। संभवतः फ्लीट को यह बात मालूम नहीं थी।[9] ऐसा प्रतीत होता है कि राजशेखर किसी समय युवराज के शिष्य हो गए थे। यह युवराज चेदि राज्य के अंतर्गत, कलचुरि-वंशीय, त्रिपुरी के राजा, प्रथम युवराज कयूरवर्ष थे। राजशेखर

1. विद्धशालभंजिका i.6; बालरामायण 1.5; बालभारत 1.7, 11; कर्पूरमंजरी i. 5, 9
2. 'बालभारत' i.9.
3. IA (इंडियन ऐंटीक्वेरी) xvi.175-78.
4. GgA, 1883, पृ० 1217 इत्यादि।
5. तुलना कीजिए, 'बालरामायण' x अध्याय 87, 89, 90. काव्यमीमांसा में भी महोदय के प्रति राजशेखर का पक्षपात दृष्टिगोचर होता है (पृ० 8, 94)।
6. EI (एपिग्राफिका इंडिका) i.170 इत्यादि।
7. ZDMG.xxvii (शार्ङ्गधर पद्धति पर)
8. उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 1221.
9. इसके अतिरिक्त फ्लीट (fleet) ने यह भी प्रमाणित किया है (देखिए उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 175 इत्यादि) कि यह महेंद्रपाल सामंत महेंद्रपाल से भिन्न थे, जैसा कि पीटर्सन (Peterson) तथा दुर्गाप्रसाद का विचार है। उन्होंने इंडियन एंटिक्वेरी (IA XV. 105) के अंतर्गत उनके 761—62 ई० के शिलालेख का संपादन किया है। वे राजशेखर के शिष्य से भिन्न थे।

के संबंधी सुरानंद, इसी प्रदेश में आकर बस गए थे। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर निश्चित रूप से 10 वीं शती के आरंभ में हुए हैं और संभवत: 9 वीं शती के अंतिम अंश में भी थे। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि राजशेखर ने जिन अर्वाचीनतम लेखकों के नाम लिए हैं, उनमें काश्मीरी रत्नाकर तथा आनंदवर्धन हैं, जो 9 वीं शती के मध्य-भाग अथवा उत्तरार्द्ध में हुए हैं। जैन सोमदेव ऐसे प्राचीनतम लेखक हैं, जिन्होंने राजशेखर का उल्लेख किया है। उनके 'यशस्तिलक' की तिथि 960 ई०है।[1] लगभग इसी काल में अभिनवगुप्त ने भरत पर अपनी टीका में स्पष्ट रूप से 'कर्पूरमंजरी' नामक एक सट्टक तथा 'बाल-रामायण' का उल्लेख किया है। 12 वीं शती से आगे के काव्यसंग्रहों में राजशेखर के अनेक उद्धरण मिलते हैं।[2]

ग्रंथसूची

संस्करण—भूमिका तथा टिप्पणी सहित, सी० डी० दलाल, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा 1916। नारायण शास्त्री खिस्ते ने अपनी टीकासहित पाठ को चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस (1931) के अंतर्गत मुद्रित करवाया है। इसके अतिरिक्त, इसी ग्रंथमाला के अंतर्गत मधुसूदन मिश्र ने अपनी टीका तथा हिंदी अनुवादसहित 1931-1932 में मुद्रित करवाया है। ये संदर्भ बड़ौदा संस्करण से ही दिए गए हैं। नादिन शोपाक (Nadine Stchoupak) तथा लूई रीनो (Louis Renou) का फ्रेंच अनुवाद, पैरिस 1946 में छपा है।

---

1. राजशेखर के संबंध में अन्य जानकारी के लिए, कोनो (Konow) द्वारा संपादित 'कर्पूरमंजरी' का संस्करण देखिए (हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज 4, 1901) पृ० 175 इत्यादि पर संपूर्ण ग्रंथसूची दी गई है। 'काव्यमीमांसा' के विविध तथा विस्तृत विषयों का संक्षिप्त रूप में विवरण देना कठिन है, किंतु खंड ii अध्याय iv (3) के अंतर्गत सामान्य सार (general resume) दिया गया है। काणे ने भी अपने उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 199-201 में संक्षिप्त सार दिया है।
2. देखिए 'कवींद्रवचन' पर एफ० डब्ल्यू० टामस (F. W. Thomas) की भूमिका। अधिकतम उल्लेख वहीं से उद्धृत किए गए हैं।

धनंजय तथा धनिक

(१)

धनंजय की लगभग निश्चित तिथि 10 वीं शती का अंतिम चरण मानी जा सकती है। इनका कथन है (iv. 80) कि इनके पिता का नाम विष्णु था और ये राजा मुंज द्वारा संरक्षित विद्वन्मंडल के सदस्य थे। मुंज स्वयं सहृदय विद्वान तथा विद्या-प्रेमी थे। पीटर्सन (Peterson)[1] ने इन मुंज को, जो मुंज वाक्पतिराज के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं, कह्लण (iv.144) तथा राजशेखर द्वारा निर्दिष्ट, 18 वीं शती के पूर्वार्द्ध में कन्नौज के राजा यशोवर्मा द्वारा संरक्षित, 'गौडवहो' के लेखक, वाक्पतिराज (अथवा बाप्पै-राज) को समझने में गलती की है। हमारे मुंज मालवा के परमार वंश के सप्तम राजा थे। उनके अपने शिलालेखों[2] से विदित होता है कि वे 974 ई० में अपने पिता हर्षदेव सीयक के पश्चात् राज-सिंहासन पर बैठे और उन्होंने लगभग 995 ई० तक राज्य किया। चालुक्य शिलालेखों से परिलक्षित होता है[3] कि चालुक्य तैलप II ने उन्हें परास्त किया, बंदी बनाया और अंत में उनका वध करवा दिया। संभवतः स्वयं एक कवि होने के नाते वाक्पतिराज[4] नाम से विख्यात होने के अतिरिक्त वे कई और उपनामों से प्रसिद्ध थे, यथा, अमोघवर्ष, पृथ्वी-वल्लभ तथा श्रीवल्लभ। उनके एक शिलालेख में उन्हें उत्पलराज[5]

1. 'सुभाष०' पर भूमिका, पृ० 115.
2. आर्कियोलाजिकल सर्वे। वेस्टर्न इंडिया iii. 100=इंडियन एंटिक्वेरी vi. 48-51; इंडियन एंटिक्वेरी xiv. 159-60 देखिए बूहलर, 'नवसाहसांकचरित' (अनुवाद, इंडियन एंटिक्वेरी xxxvi. पृ० 149-172), 1888, पृ० 116 इत्यादि।
3. इंडियन एंटिक्वेरी xii. 270, xvi. 18, 23, xxi. 167-68; एपिग्राफिका इंडिका ii. 212 इत्यादि। मुंज की तिथि के संबंध में सभी संदर्भ हास (Hass) ने 'दशरूपक' के अपने संस्करण की भूमिका में एकत्र किए हैं।
4. धनिक ने (iv. 54-55 पर) मुंज के एक पद्य को दो बार उद्धृत किया है। पहली बार उन्हें मुंज कहा है और दूसरी बार वाक्पतिराजदेव। 'तिलकमंजरी' में धनपाल ने दोनों नामों से एक ही व्यक्ति को लक्षित किया है। मुंज के एक उत्तराधिकारी, अर्जुनवर्मा ने, जो 13 वीं शती के आरंभ में राज्य करते थे, मुंज का एक पद्य प्रस्तुत किया है और कहा है कि यह पद्य उनके एक पूर्वज "मुंज ने रचा था, उनका दूसरा नाम वाक्पतिराज था" ('अमरु-शतक' पर टीका, सं० काव्यमाला 1916, पृ० 23)। जह्लण ने (पृ० 199) भी इस पद्य को मुंज-रचित माना है।
5. क्षेमेंद्र ने अपनी रचनाओं में मुंज के पद्य उद्धृत किए हैं ('औचित्य विचार' श्लोक 16 के नीचे; 'कविकंठा' ii.1 के नीचे; 'सुवृत्त-तिलक' ii.6 के नीचे) और उन्हें उत्पलराज कहा है।

कहा गया है । काव्यमाला सीरीज़ (गुच्छक i. पृ० 131) के संपादकों ने अनवधानता के कारण उन्हें काश्मीर के शैव दार्शनिक तथा अभिनवगुप्त का परम गुरु उत्पल मान लेने की गलती की है । शंभु[1] तथा पद्मगुप्त[2] ने इस राजा को 'कवि-बांधव' अथवा 'कवि-मित्र' कहा है । ऐसा प्रतीत होता है कि उनके भतीजे तथा उत्तराधिकारी भोज ने ये गुण उन्हीं से प्राप्त किए थे ।

(२)

धनंजय के 'शतरूपक' के अंतर्गत नाट्य का विवेचन भरत के प्राचीन आधिकारिक ग्रंथ पर आधारित है । भरत का बृहद् ग्रंथ व्यावहारिक तथा सैद्धांतिक दृष्टिकोण से नाटक-कला तथा अन्य विषय-विस्तार के कारण बहुत जटिल है । धनंजय ने इसमें बड़ी काट-छांट की है । अपने आप को केवल नाट्य-क्षेत्र में ही सीमित करके उन्होंने सामान्य सिद्धांतों को व्यावहारिक, संक्षिप्त तथा सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया है । इन गुणों के कारण यह नया ग्रंथ इतना प्रसिद्ध तथा प्रचलित हो गया कि कालांतर में इसने अपने विषय पर अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त भरत के आधारभूत ग्रंथ को भी विस्थापित कर दिया । उदाहरणार्थ, विश्वनाथ ने यदा-कदा भरत का उल्लेख किया है तथा 'नाट्यशास्त्र' में से उनके एक-दो रूढ़ उद्धरण ही दिए हैं, किंतु नाटक-विषयक विवेचन में धनंजय ही को अपना आधार बनाया है । अपने ग्रंथ के 'नाटक-प्रकरण' में धनंजय के प्रति आभार प्रकट किया है और यह कहा है—एषा प्रक्रिया दशरूपोक्तरीत्यनुसारेण (पृ० 131) ।

'दशरूपक' में चार प्रकाश, अथवा अध्याय हैं । इसमें मुख्यतः नाट्य-विषय पर विवेचन किया गया है, किंतु चतुर्थ अथवा अंतिम प्रकाश में रस-सिद्धांत पर भी चर्चा की गई है । प्रथम प्रकाश में नृत्य के लक्षण, पांच अर्थ-प्रकृतियों तथा अंगों सहित संधियों की परिभाषा और अंत में विष्कंभक, प्रवेशक तथा अन्य नाट्य-युक्तियों की परिभाषाएं दी गई हैं । द्वितीय प्रकाश के अंतर्गत नायक-नायिका विचार, उनके लक्षण तथा चार नाट्य-वृत्तियों और उनके अंगों की विवेचना की गई है । तृतीय प्रकाश में दस प्रकार के रूपकों की प्रस्तावना इत्यादि पर विचार किया गया है । चतुर्थ प्रकाश में इस ग्रंथ के विशिष्ट रस-सिद्धांत की व्याख्या की गई है । इसमें भट्ट नायक के मतानुसार रस तथा काव्य में व्यंग्य-व्यंजक संबंध के स्थान पर भाव्य-भावक संबंध का स्थापन किया गया है ।

इसके अतिरिक्त देखिए शाङ्‌र्गधर (1.6 वाक्पतिराजस्य; 1017 उत्पलराजस्य), वल्लभदेव (3414 श्रीहर्षदेवात्मज-वाक्पतिराजस्य) तथा जह्लण, पृ० 63 तथा 199 (श्री मुंजस्य) ।

1. राजेंद्रकर्णपूर, श्लोक 17, 36.
2. नवसाहसांक *i.7,8; ii. 93.*

(३)

धनिक को विष्णु-पुत्र तथा धनंजय के ग्रंथ पर 'अवलोक' नामक टीका का रचयिता कहा गया है। संभवत: वे धनंजय के समकालीन एक प्रसिद्ध विद्वान् थे और उनकी तिथि उसी काल में निर्धारित होनी चाहिए। धनिक ने पद्मगुप्त (अथवा परिमल)[1] के उद्धरण दिए हैं। वे लगभग 995 ई० में हुए हैं। धनिक ने मुंज का भी उल्लेख किया है। भोज ने 11 वीं शती के पूर्वार्द्ध में अपने सरस्वती-कंठाभरण में धनिक का उल्लेख किया है। एक पांडुलिपि[2] में उन्हें राजा उत्पलराज का 'महासाध्यपाल' कहा गया है। यह उत्पलराज, धनंजय के संरक्षक हमारे मुंज-वाक्पति ही थे। मुख्यत: नाम-साम्य तथा समान गोत्रनाम (पैतृक नाम) के आधार पर साहित्यदर्पण (अध्याय vi. 64a='दशरूपक' iii.29) के समान किसी परवर्ती ग्रंथ में धनंजय-रचित पद्य को गलती से धनिक-रचित मानकर दिया गया। यह सुझाव कि 'दशरूपक' का लेखक तथा उसका टीकाकार एक ही व्यक्ति है, अधिक विचारणीय नहीं है।[3] जैकोबी ने इस सुझाव[4] को यह कहकर पुष्ट किया है कि टीका में कोई पृथक् 'मंगलाचरण' नहीं है। कुछ परवर्ती लेखकों ने वास्तव में धनंजय तथा धनिक में भेद किया है, इसलिए इस परिकल्पना की उपपत्ति नहीं होती। उदाहरणार्थ, विद्यानाथ ने 'दशरूपक' को अनेक बार

1. ii.37b पर = नवसाहसांक vi.42.
2. देखिए विलसन का 'सिलेक्ट स्पेसिमेन्स' (Select Specimens) तृतीय सं० I, xx, xxi, हॉल (Hall) ने पृ० 3 की टिप्पणी से समर्थन किया है। एक विचित्र बात ध्यान देने योग्य है कि धनिक (iv. 23 पर, परब सं०) ने 'निद्रार्ध०' पद्य का उल्लेख किया है। यह बिह्लण की 'चौरपंचाशिका' में भी मिलता है (सं० सोल्फ (Solf) सं० 36)। किंतु इस अनामलेखक के उद्धरण मात्र से (जो कुंतक के ग्रंथ में भी है) धनिक को बिह्लण के समय, अर्थात् 11 वीं शती के मध्य-भाग के पश्चात् नहीं रखा जा सकता, क्योंकि इस पद्य की प्रामाणिकता विवादास्पद है।—'सुभाष'० 1280 तथा जह्लण पृ० 152 पर इसे कलशक का माना गया है। बिह्लण ने इसे रचा है, यह बात विवादास्पद है। अतएव इस उद्धरण के आधार पर कोई तैथिक निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं है। हास (Haas) ने इस पद्य को नहीं देखा।
3. हास (Haas) ('दशरूपक' सं० की भूमिका xxxiv) का यह कथन कि टीका में "ग्रंथलेखक की भिन्नता के कई संकेत मिलते हैं" ठीक नहीं है। उन्होंने इस बात की पुष्टि के निमित्त ii, 20b-21a, iii. 32b, iv. 43c उद्धृत किए हैं। जैकोबी ने विस्तार से यह प्रमाणित किया है (GgA, 1913, पृ० 304 इत्यादि) कि हास (Haas) ने इन अंशों को बिल्कुल गलत समझा है।
4. उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 303. देखिए लेवी (Levi)—जर्नल एशियाटिक, 1886 पृ० 221.

निर्दिष्ट करते हुए, कारिका-पद्यों को ही उद्धृत किया है, टीका को[1] कभी उद्धृत नहीं किया, यद्यपि उनके टीकाकार कुमारस्वामी ने एक स्थान पर (पृ० 29)[2] धनिक को धनंजय-रचित एक पद्य (ii. 23b) का लेखक मानने की गलती की है। एक पांडुलिपि में 'अवलोक' के एक 'मंगल'-पद्य को हॉल (Hall) ने कल्पित कहा है और इसका मुख्य कारण यह बताया है कि इसकी रचना धनिक की आलंकारिक रचना की तुलना में बहुत घटिया है (पृ० 4 टिप्पणी)। यह 'घटिया' पद्य वही है, जो औफ्रेक्ट (Aufrecht) की बोडलीन (Bodlein) पांडुलिपि के आरंभ में ही मिलता है। जिसे उन्होंने बोडलीन केटलाग 203 a में ढूंढ़ा था, इसके विपरीत, मंगल-पद्य का अभाव-मात्र निर्णायक नहीं माना जा सकता; क्योंकि मम्मट की अपनी वृत्ति में कोई पृथक् मंगल-पद्य नहीं है, किंतु वामन तथा रुय्यक ने दिया है। शार्ङ्गधर ने अपने संग्रह में अनेक पद्य धनिक-रचित माने हैं (3417, तथा 3973)। धनिक ने इन्हें अपनी टीका (iv. 3a तथा ii. 10a) में स्वरचित बताया है। इसलिए, यदि यह मान लिया जाय (क्योंकि यह अधिक संभव है) कि लेखक तथा टीकाकार भिन्न थे, तो धनिक को धनंजय का भाई माना जा सकता है। इस अनुमान से नाम-साम्य तथा एक पैतृकनाम (गोत्रनाम) का समाधान हो जाता है। संभवतः धनिक ने टीका लिखकर ग्रंथ-रचना में सहायता की थी।[3]

'अवलोक' से यह विदित होता है कि इसके लेखक ने संस्कृत तथा प्राकृत में पद्य-रचना की तथा 'काव्य-निर्णय' (iv. 35 पर सात पद्य उद्धृत किए गए हैं) नामक एक ग्रंथ भी लिखा। इस ग्रंथ में 'ध्वन्यालोक' को निर्दिष्ट किया गया है और इसमें काव्यशास्त्र में सामान्य विषयों का विवेचन किया गया है।

'दश-रूपक' पर अन्य कम प्रसिद्ध टीकाओं के संबंध में निम्नलिखित ग्रंथसूची देखिए।[4]

1. पृ० 46, 101, 102, 104, 105, 114, 124, 131, 219, 221, 228.
2. अन्य अंशों में उद्धरण ठीक प्रतीत होते हैं, पृ० 47, 128, 130, 221, 233, 235, 259. 'विक्रमोर्वशीय' (लगभग 1656 ई०; सं० निर्णयसागर प्रेस 1914, पृ० 31) पर अपनी टीका में रंगनाथ ने ऐसी ही गलती की है। मल्लिनाथ ने 'कुमारसंभव' i.4 तथा 'शिशुपालवध' vii.11 की टीक में 'दशरूपक' (ii. 36b तथा ii. 24a) का ठीक उद्धरण दिया है।
3. यह अनुमान जैकोबी द्वारा निर्दिष्ट अंश (iv. 33 पर) के विरुद्ध नहीं है। इसमें टीकाकार ने लेखक को अपने से अभिन्न मानकर कहा है—अस्माभिः .... निषिध्यते, अर्थात् मूल लेखक तथा टीकाकार ने भी निषेध किया है।
4. परवर्ती नाट्य-ग्रंथों, यथा कुमारगिरि का वसंतराजीय, के संबंध में अध्याय x के नीचे, लघु-लेखक शीर्षक के अंतर्गत देखिए।

ग्रंथसूची

धनंजय

संस्करण (1) फिट्ज़-एडवर्ड हॉल (Fitz-Edward Hall) अवलोक-सहित, बिब्लियोथिका इंडिका 1861-65. (2) जीवानंद (उपर्युक्त का पुनर्मुद्रण मात्र) कलकत्ता, 1897. (3) के०पी० परब, निर्णय सागर प्रेस, बंबई, 1897, 1917 (अवलोक सहित), चतुर्थ संस्करण 1928—अंग्रेजी अनुवाद, लिप्यंतरित (transliterated) पाठ, भूमिका तथा टिप्पणी सहित—जी० सी० ओ० हास (G.C.O. Haas) कोलंबिया विश्वविद्यालय, इंडो-ईरानियन सीरीज़, न्यूयार्क 1912 (अधिक विश्वसनीय नहीं है, किंतु भूमिका तथा इंडेक्स बहुत विस्तृत है)। ये संदर्भ हॉल के संस्करण से दिए गए हैं। हास (Haas) के संस्करण पर आलोचनार्थ जैकोबी का GgA, 1913, पृ० 302 इत्यादि में तथा वार्नेट का जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1913, पृ० 190 इत्यादि में लेख देखिए।

धनिक

संस्करण: पाठ सहित हॉल तथा परब के संस्करणों में मुद्रित। धनिक का 'काव्य-निर्णय' संभवतः लुप्त हो चुका है।

धनंजय तथा धनिक पर अन्य टीकाएँ

(1) टीका-नृसिंहभट्ट, गवर्नमेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, में पांडुलिपि (देखिए (BSOS, iv. 1926, पृ० 280) यह वास्तव में धनिक की टीका पर एक लघु-टीका है (दशरूपस्य या व्याख्या धनिकेन समाहिता, तस्य भट्ट-नृसिंहेन लघु टीका विधीयते)। इस पद्य में धनिक को दशरूपक का टीकाकार कहा गया है और इस प्रकार इस परंपरा को मान लिया गया है कि टीकाकार धनिक दशरूपक के लेखक धनंजय से भिन्न व्यक्ति थे। भट्ट नृसिंह ने भोज के 'सरस्वती-कंठाभरण' पर भी टीका लिखी है।

(२) देवपाणि-रचित टीका 'विक्रमोर्वशीय' सं० निर्णय सागर प्रेस, 1904, पृ० 6, 31 पर रंगनाथ ने इसका उल्लेख किया है; तुलना कीजिए, AFl 444 तथा ABod 135 b)। कोई भी पांडुलिपि प्राप्त नहीं हुई है। विल्सन (Wilson) सिलेक्ट स्पेसिमेन्स (Select Specimens) तथा औफ्रेक्ट (Aufrecht) ने इस लेखक को गलती से पाणि कहा है, क्योंकि वे रंगनाथ से

पहले हुए हैं, अतएव उनकी तिथि 1656 ई० से पूर्व होनी चाहिए। रंगनाथ ने इसी संदर्भ में (पृ० 31) एक 'साहसांकीय-टीका' को भी निर्दिष्ट किया है।

(3) कुरविराम रचित 'पद्धति' (हुलट्श 554 के अंतर्गत पांडुलिपि, तीन पृष्ठ मात्र) जैसा कि हुलट्श के इंदराज (entry) से प्रतीत होता है, यह 'दशरूपक' पर टीका नहीं है। यह नाट्य पर 110 पद्यों का एक स्वतंत्र ग्रंथ है। देखिए—Madras Trm II, A, 820 (C) कुरविराम आधुनिक एवं बहुलेखी दक्षिण भारतीय टीकाकार हैं। वे उत्तर अर्काट जिले के अंतर्गत कार्वेतिनगरम् के जमींदारों के दरबार में रहे। उन्होंने दो प्रसिद्ध काव्यों, अर्थात्, अनंतभट्ट के 'चंपूभारत' तथा वेंकट के 'विश्वगुणादर्श' पर भी टीकाएँ लिखी हैं। पश्चोक्त काव्य पर अपनी टीका में अप्पय्य के 'कुवलयानंद' तथा धनंजय पर अपनी टीका का उल्लेख किया है। देखिए, हुलट्श i, पृ० xi।

(4) बहुरूप मिश्र की टीका। इसके विवरण के लिए देखिए वी० राघवन, जर्नल ऑफ़ ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास viii, पृ० 321-34. क्योंकि बहुरूप ने भोज के 'शृंगार-प्रकाश' तथा शारदातनय के 'भाव-प्रकाशन' में से उद्धरण दिए हैं, इसलिए वे 1250 ई० के पश्चात् ही रहे होंगे।

कुंतक

(१)

अलंकार-साहित्य में कुंतक वक्रोक्ति-जीवितकार[1] की उपाधि से अधिक प्रसिद्ध हैं, क्योंकि वे 'वक्रोक्ति-जीवितम्' नामक विशिष्ट ग्रंथ के लेखक थे। उनके ग्रंथ का यह नाम इसलिए पड़ा कि इसमें 'वक्रोक्ति ही काव्य की आत्मा है' यह सिद्धांत मुख्य रूप से प्रतिपादित किया गया है। पहले इस ग्रंथ के कुछ उद्धरण ही मिलते थे, किंतु बाद में वर्तमान लेखक ने दो अपूर्ण पांडुलिपियों के आधार पर इसका संस्करण मुद्रित करवाया है।

एक ओर कुंतक की तिथि[2] उनके द्वारा नाटककार राजशेखर के उद्धरणों से,

1. रुय्यक, सं० काव्यमाला, पृ० 8, जयरथ के साथ (पृ० 12, 150 इत्यादि पर भी) और समुद्रबंध (पृ० 4); विश्वनाथ, सं० दुर्गाप्रसाद पृ० 14, वामन I. 1.1 सं० बनारस पृ० 6, इत्यादि पर 'कामधेनु'।

2. एस० के० डे के 'वक्रोक्ति-जीवितम्' के मौलिक संस्करण (editio princeps) की भूमिका में इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया है। यहां केवल संक्षिप्त उल्लेख है।

तथा दूसरी ओर महिमभट्ट द्वारा कुंतक तथा उनके ग्रंथ के उल्लेख से, निर्धारित की जा सकती है। महिमभट्ट, जैसा कि आगे बताया जायगा, 11 वीं शती के अंतिम भाग में हुए थे, अतएव, हम कुंतक का समय 10 वीं शती के मध्य-भाग से लेकर 11 वीं शती के मध्य-भाग तक के समय में निर्धारित कर सकते हैं। क्योंकि यह तिथि अभिनवगुप्त की तिथि से मेल खाती है (उनकी तिथि अधिकाधिक 1015 ई० है), इसलिए कुंतक को आनंदवर्धन के इस टीकाकार का समकालीन माना जा सकता है। यद्यपि अभिनव ने वक्रोक्ति पर विविध पूर्ववर्ती विचारों का उल्लेख किया है, किंतु विशिष्ट बात यह है कि उन्होंने वक्रोक्ति-जीवितकार का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। उनकी उपाधि, राजानक, से प्रतीत होता है कि वे संभवतः काश्मीरी थे। यदि उनका यह महत्वपूर्ण ग्रंथ अभिनव के समय से पहले लिखा गया था तो विपक्षी सैद्धांतिकों द्वारा उसकी इस प्रकार उपेक्षा नहीं होनी चाहिए थी।

(२)

ग्रंथ के पहले दो तथा तीसरे अध्याय का एक अंश ही मुद्रित हुआ है और उनसे कुंतक के मुख्य सिद्धांत की सामान्य रूपरेखा का ज्ञान होता है। उनके मूल ग्रंथ में कितने अध्याय थे, यह मालूम नहीं है। मद्रास पांडुलिपि के अंतर्गत अपूर्ण चतुर्थ अध्याय के साथ ही ग्रंथ की परिसमाप्ति हो जाती है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संभवतः चतुर्थ अध्याय ही ग्रंथ का अंतिम अध्याय था, क्योंकि उसमें लेखक द्वारा परिगणित 'वक्रता' के अंतिम भेद का विवेचन किया गया है। संभवतः गद्यमयी वृत्ति तथा कारिका-श्लोक, जो ग्रंथ का अभिन्न अंग है, स्वयं कुंतक ने रचे थे, क्योंकि टीकाकार ने स्पष्टतया अपने आप को लेखक से अभिन्न कहा है। इसके अतिरिक्त परवर्ती लेखकों[1] ने भी कारिकाओं को पूर्ण रूप से वृत्ति के साथ ही माना है। कालिदास, भवभूति, अनंगहर्ष ('तापस-वत्सराज' के लेखक), हाल, बाण, माघ, भारवि, भल्लट, अमरु, मयूर, श्रीहर्ष, भट्ट नारायण, राजशेखर के उद्धरण देने के अतिरिक्त कुंतक ने सर्वसेन, मंजीर, मायुराज तथा 'उदात्त-राघव' का नामोल्लेख किया है और भामह, रुद्रट तथा ध्वनिकार (= आनंदवर्धन) के उद्धरण दिए हैं। वक्रोक्ति-सिद्धांत पर यह एक अद्वितीय ग्रंथ है। इस सिद्धांत के विकास में तथा इसके आधार पर अलंकार का

1. 'व्यक्ति-विवेक' पर टीका, पृ० 16, वामन पर 'कामधेनु' टीका, पृ० 6, इत्यादि।

विश्लेषण करने में भामह [1] का अनुसरण किया गया है। रुय्यक से लेकर जगन्नाथ[2] प्रभृति विद्वानों ने इसे मान्यता दी है।

ग्रंथसूची

संस्करण : एस० के० डे रचित, कलकत्ता ओरिएंटल सीरीज़ के अंतर्गत प्रथम संस्करण केवल एक पांडुलिपि के आधार पर मुद्रित हुआ, 1923, दूसरा संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण दो पांडुलिपियों पर आधारित है (क्रमश: मद्रास तथा जैसलमेर की पांडुलिपियाँ)। इसमें प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय उन्मेष का कुछ अंश है। इसके साथ तृतीय और चतुर्थ उन्मेषों के असंपादित अंश का सार तथा भूमिका भी है। कलकत्ता ओरिएंटल सीरिज़, 1928.

क्षेमेंद्र

(१)

क्षेमेंद्र, जिनका कुलनाम व्यासदास है, बड़े उद्यमी काश्मीरी विद्वान् थे। उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। संस्कृत काव्यालंकार में वे अपने दो रोचक ग्रंथों, 'औचित्यविचारचर्चा' तथा 'कविकंठाभरण' के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अलंकारों पर 'कविकर्णिका' नामक अपने एक अन्य ग्रंथ[3] का भी उल्लेख किया है।

क्षेमेंद्र ने स्वयं अपनी तिथि सूचित की है। उनके दोनों ग्रंथों तथा उनके 'सुवृत्त-तिलक' (सं० काव्यमाला गुच्छक 2, 1886) के अंतिम पद्यों में ऐसा कथन है कि उन्होंने काश्मीर नरेश अनंत के राज्यकाल में अपने ग्रंथ लिखे। उनके ग्रंथ 'समय मातृका' के पृष्ठांत-विवरण से यह प्रकट होता है कि यह ग्रंथ उसी राजा के राज्यकाल में 1050 ई० में समाप्त हुआ था। उन्होंने अपने अन्य ग्रंथ 'दशावतार-चरित' को स्वयं 1066 ई० में अनंत के पुत्र तथा उत्तराधिकारी कलस के राज्यकाल में रचित कहा है। अनंत ने 1028 से 1063 ई० तक राज्य किया और 1063 में अपने पुत्र कलस का राज्याभिषेक किया। अतएव, क्षेमेंद्र के साहित्य-

---

1. विस्तार के लिए देखिए, कुंतक के ग्रंथ के द्वितीय संस्करण में एस० के० डे की भूमिका। सामान्यत: कुंतक की वक्रोक्ति सामान्य भाषा व्यवहार से भिन्न अभिव्यक्ति को निर्दिष्ट करती है, जिससे एक विशिष्ट वैचित्र्य अथवा विच्छित्ति उत्पन्न होती है, जो कवि-प्रतिभा पर निर्भर (कवि प्रतिभा-निर्वर्तितत्व) होती है।
2. देखिए जैकोबी, Ueber Begriff und caesen der poetischen, G. N. 1908.
3. औचित्यविचार, श्लोक 2 में।

रचना-काल को बूहलर [1] ने 11 वीं शती [2] के दूसरे तथा तीसरे चरण में उचित ही निर्धारित किया है।

(२)

ऐसा प्रतीत होता है कि बूहलर ने इस समस्या पर अपना अंतिम मत प्रकट नहीं किया, इसीलिए पीटर्सन (Peterson) ने यह सुझाव [3] प्रस्तुत किया कि क्षेमेंद्र वास्तव में काश्मीरी शैव क्षेमराज थे। वे अभिनवगुप्त के शिष्य थे। उन्होंने अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त 'शिवसूत्र' पर तथा अभिनवगुप्त के 'परमार्थसार' पर टीकाएँ लिखीं। स्टीन (Stein) ने उस अभिन्नता का समर्थन किया, किंतु पीटर्सन ने कालांतर [4] में अपने उक्त मत को संदेहास्पद माना। अपने 'औचित्य-विचार' में क्षेमेंद्र ने अच्युत अथवा विष्णु के प्रति सम्मान प्रकट किया है, किंतु यह ज्ञात है कि युवावस्था में, अपने पिता के समान, वे शैव थे। कालांतर में, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है, सोमाचार्य ने उन्हें वैष्णव बना लिया। इस तथ्य से तथा तैथिकी (Chronology) से प्रस्तावित अभिन्नता में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती, किंतु इस बात की पुष्टि के लिए कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं है। क्षेमेंद्र ने स्वयं को प्रकाशेंद्र का पुत्र तथा सिंधु का पौत्र कहा है।[5] उनके गुरु का नाम गंगक बताया गया है।[6] वे सोमेंद्र के पिता तथा उदयसिंह और राजपुत्र लक्षणा-

1. काश्मीर रिपोर्ट (Kashmir Rep.) पृ० 46.
2. धनिक 10 वीं शती के अंतिम भाग तथा 11 वीं शती के आरंभ में हुए हैं। उन्होंने (i. 61 पर टीका में) दो पद्य उद्धृत किए हैं, जो क्षेमेंद्र-रचित 'बृहत्कथामंजरी' (ii. 216, 217) की कुछ पांडुलिपियों में मिलते हैं। इसलिए इस काल को क्षेमेंद्र की अंतिम तिथि मानना अनुचित प्रतीत होता है। किंतु 'बृहत्कथामंजरी' 1037 ई० में लिखी गई थी और क्योंकि दोनों विचाराधीन पद्य केवल एक ही पांडुलिपि में मिलते हैं, इसलिए कई कारणों से यह मान लिया गया है कि वे प्रक्षिप्त पद्य हैं। क्षेमेंद्र ने ('औचित्य-विचार' श्लोक 11,16,20) परिमल (अन्य नाम पद्मगुप्त) का उल्लेख किया है। वे धनंजय तथा धनिक के समकालीन थे।
3. i. (विस्तृत रिपोर्ट), 1883, पृ० 11, 85 तथा बूहलर इंडिया एंटिक्वेरी xiii, 1884, पृ० 29। वास्तव में बूहलर ने 'सांबपंचाशिका' के रचयिता क्षेमराज तथा 'स्पंदसंदोह' के रचयिता क्षेमेंद्र की अभिन्नता प्रस्तावित की थी, किंतु उन्होंने इन दोनों को कवि क्षेमेंद्र व्यासदास से भिन्न माना है (देखिए काश्मीर रिपोर्ट, पृ० 81)।
4. iv. पृ० xxiii.
5. 'दशावतार' का अंतिम पद्य।
6. 'औचित्यविचार'—श्लोक 39 के नीचे। उन्होंने भट्टतौत का भी उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त भट्ट भल्लट, गौड कुंभकार तथा कालिदास के 'कुंतेश्वर-दौत्य' का भी उल्लेख मिलता है।

दित्य के गुरु थे ।[1] इसके विपरीत, क्षेमराज की वंशावली अथवा उनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। किंतु 'बृहत्कथामंजरी' के अंत में ऐसा विवरण मिलता है कि क्षेमेंद्र ने साहित्य की शिक्षा अभिनवगुप्त से प्राप्त की। अपने 'स्वच्छंदोद्योत'[2] के अंत में (तथा अपने 'स्तवचिंतामणि' के पृष्ठांत-विवरण में) क्षेमराज को इसी महान् दार्शनिक का शिष्य कहा गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्षेमेंद्र के 'कलाविलास' को छोड़कर उनके सभी ग्रंथों में उनका कुलनाम अथवा उपनाम, व्यासदास[3] दिया गया है, किंतु क्षेमराज के किसी भी दर्शन-ग्रंथ में यह नाम नहीं मिलता। क्षेमेंद्र ने अपने संबंध में बहुत कुछ जानकारी प्रदान की है, किंतु क्षेमराज ने अपने आपको गुप्त रखकर स्वयं को स्वाभाविक गर्व से मुक्त सिद्ध किया है। अतएव इस समस्या को अंतिम रूप से निश्चित नहीं माना जा सकता। समस्या का, जैसा कि बूहलर ने बहुत पहले कहा है,[4] क्षेमराज के पिता का नाम ज्ञात होने पर ही समाधान हो सकता है।[5]

क्षेमेंद्र-रचित अनेक ग्रंथों की सूची नीचे दी गई है।

ग्रंथसूची

क. औचित्यविचारचर्चा

संस्करण (1) काव्यमाला गुच्छक i, 1886 (2) श्वेतारण्य-नारायण की सहृदयतोषिणी टीका सहित, मद्रास 1906. इस ग्रंथ में पूर्वोक्त संस्करण से संदर्भ दिए गए हैं। इसका अतिरिक्त संस्करण चौखंबा संस्कृत सीरीज़, बनारस 1933 का है। ग्रंथ के विवरण के लिए देखिए, जर्नल ऑफ़ दि बंबई ब्रांच ऑफ़ रॉयल एशियाटिक सोसायटी xvi. पृ० 167-180। इसमें ग्रंथ के समस्त उद्धरणों का संग्रह तथा उनकी विवेचना है।

ख. कविकंठाभरण

संस्करण (1) काव्यमाला गुच्छक iv, 1887, 1899, (2) चौखंबा

---

1. 'कविकंठाभरण' v.i (पृ० 138, 139) के नीचे। क्षेमेंद्र ने अपने शिष्य उदयसिंह के 'ललिताभिधान-महाकाव्य' का उल्लेख किया है।
2. बूलहर, उपर्युक्त ग्रंथ, परिशिष्ट, ii. पृ० C'xix (उद्धरण)।
3. 'सुभाष०' (460, 1658, 3039) में तीन पद्य व्यासदास के माने गए हैं।
4. इंडियन एंटिक्वेरी xiii, उल्लिखित स्थल (loc cit)।
5. क्षेमेंद्र के दोनों ग्रंथों के विषय-सार के लिए देखिए खंड ii, अध्याय ix (i) उनके उपदेशात्मक तथा व्यंग्यात्मक ग्रंथों के लिए देखिए, एस० के० डे रचित संस्कृत साहित्य का इतिहास, कलकत्ता 1947, पृ० 404-10.

संस्कृत सीरीज, बनारस, 1933। इस ग्रंथ पर विश्लेषणात्मक तथा जर्मन अनुवाद सहित निबंध—जे० शोनवर्ग (J. Schonberg), विएन (Wien) 1884 (Sb. der Wiener Akad.) के अंतर्गत।

क्षेमेंद्र की 'कवि-कर्णिका' का पता नहीं चला है।

क्षेमेंद्र के ग्रंथ—यहां क्षेमेंद्र के मुद्रित एवं अमुद्रित ग्रंथों की सूची दी जा रही है। जिनका 'औचित्यविचारचर्चा', 'कविकंठाभरण' तथा 'सुवृत्ततिलक' में उल्लेख मिलता है, वे क्रमशः (औ), (क) तथा (सु) से चिह्नित किए गए हैं।

(1) अमृत-तरंग (अथवा-तुरंग) (क)। (2) औचित्य-विचार। (3) अवसर-सार (औ)। (4) कनकजानकी (क)। (5) कलाविलास (सं० काव्यमाला गुच्छक)। (6) कवि-कंठाभरण। (7) कविकर्णिका (औ)। (8) क्षेमेंद्र प्रकाश (A Bod 38 b में इसका उल्लेख है)। (9) चतुर्वर्गसंग्रह (औ, क तथा सं० काव्यमाला गुच्छक 5)। (10) चारुचर्या (सं० काव्यमाला गुच्छक 2)। (11) चित्रभारत नाटक (औ तथा क) (12) दर्पदलन (सं० काव्यमाला गुच्छक 6,1891)। (13) दशावतारचरित-काव्य (सं० दुर्गाप्रसाद तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, 1891)। (14) देशोपदेश (क, सं० एम० कौल, श्रीनगर 1923)। (15) दान-पारिजात। (16) नर्ममाला (सं० एम० कौल, श्रीनगर, 1923)। (17) नीति-कल्पतरु (संभवतया 'क' में उल्लिखित 'नीति-लता')। (18) पद्य-कादंबरी (क)। (19) पवन पंचाशिका (सु)। (20) बृहत्-कथा-मंजरी (सं० शिवदत्त और परब, निर्णय सागर प्रेस 1901)। (21) बौद्धावदान कल्पलता। (क) इसके तिब्बती संस्करण सहित, सं० शरत् चंद्र दास, दो खंड, बिब्लियोग्राफिका इंडिका, (1888-1918)। (22) भारत-मंजरी (सं० शिवदत्त और परब, नि० सा० प्रे० 1898। (23) मुक्तावली काव्य (औ, क)। (24) मुनि-मत-मीमांसा (औ)। (25) राजावली (कल्हण i.13 में उल्लिखित)। (26) रामायण-मंजरी (सं० भवदत्त और परब, नि० सा० प्रे०, 1903)। (27) ललितरत्न-माला। (28) लोक-प्रकाश (Ind. Stud xviii. 1898 पृ० 298-412; अनुवाद और टिप्पणियों सहित जे० ब्लॉच, पी० गथ्नर, पेरिस 1914)। (औ) (29) लावण्यवती काव्य (औ और क)। (30) वात्स्यायन-सूत्र-सार (औ और पंचसायक में उल्लिखित)। (31) विनय-वल्ली (औ) (32) वेताल-पंचविंशति (बृहत्कथामंजरी से, सं० एच० उह्ले, मंचेन, 1924)। (33) व्यासाष्टक, जिसका बूहलर की काश्मीर रिपोर्ट (1877) में उल्लेख है, सं० 154; देखिए पृ० 45-46। (34) शशिवंश महाकाव्य (क)। (35) समयमातृका (सं० दुर्गाप्रसाद और परब, नि० सा० प्रे०, 1888) (36) सुवृत्त तिलक (सं० काव्यमाला गुच्छक 2;

चौखंबा संस्कृत सीरीज 1933 में भी)। (37) सेव्यसेवकोपदेश (सं० काव्यमाला गुच्छक 2)। शोनबर्ग और पीटर्सन के द्वारा उल्लिखित हस्तिजनप्रकाश के लेखक यदु शर्मा के पुत्र क्षेमेंद्र हैं (देखिए काव्यमाला पृ० 115 आदि और ऑफ्रेक्ट i.765) शोनवर्ग द्वारा उल्लिखित नवौचित्य'विचार संभवतः औचित्य विचार ही है। कला-विलास का जर्मन अनुवाद आर. श्मिट (R. Schmidt) ने WZKM xviii, 1914, पृ० 406-35 में किया है; इन्होंने ही 'दर्पदलन' का अनुवाद ZDMG lxix, 1915, पृ० 1-51 के अंतर्गत किया है (तथा सं० एवं अनुवाद बी० ए० हिर्सबैंट (B. A. Hirsbant) द्वारा, सेंट पीटर्सबर्ग 1892); समयमातृका का अनुवाद जे० जे० मेयर (J. J. Meyer), लाइपजिग 1903 ने किया है। बृहत्कथामंजरी के अंशों का अनुवाद सिल्वाँ लेवी (Sylvain Levi) ने (प्रथम लंभक, पाठ रोमन लिपि में) जर्नल एशियाटिक vi. 1885, पृ० 397–479, किया है; तथा लिओ वी० मंकोवस्की ने (Leo V. Mankowski) (पंचतंत्र, पाठ रोमन लिपि में), लाइपज़िग, 1892.

भोज

(१)

Kanti हेमचंद्र[1] काव्यशास्त्र के प्राचीनतम लेखक हैं, जिन्होंने भोज का उल्लेख किया है। वे, जैसा कि आगे बताया जायगा, 12 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए हैं। वर्धमान ने, जिन्होंने अपना लेखन-कार्य 1140 ई० के पश्चात् आरंभ किया, अपने 'गणरत्न' के दूसरे पद्य में भोज का उल्लेख किया है। पद्य पर वृत्ति में भोज को 'सरस्वती-कंठाभरण' का रचयिता कहा गया है। राजशेखर[2] अर्वाचीनतम लेखक हैं, जिनका भोज ने उल्लेख किया है। राजशेखर की अधिकमतम तिथि 10 वीं शती का आरंभ है, यद्यपि बिह्लण की "चौरपंचाशिका" (संख्या 12 सं० बोह्लन-Bohlen) के कुछ पद्य 'सरस्वती-कंठाभरण' में मिलते हैं (क घ i. 152)[3]। भोज ने एक पद्य (क घ i.71, पृ० 22) में मुंज, अर्थात् मालव के मुंज वाक्पति-राज का भी उल्लेख किया है। जैकब ने नमिसाधु (इन्होंने 1069 ई० के पश्चात्

1. अनाम उद्धरणों के अतिरिक्त, टीका, पृ० 295.
2. कर्पूरमंजरी, बालभारत, तथा विद्धशालभंजिका से। उद्धरणों के लिए देखिए कोनो (Konow) का कर्पूरमंजरी का संस्करण, पृ० 198 इत्यादि; तथा जैकब, जर्नल ऑफ़ दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, 1897, पृ० 304 इत्यादि।
3. इसे किसी तैथिक निगमन का आधार नहीं माना गया है, क्योंकि इस ग्रंथ का बिह्लण का लेखकत्व निर्विवाद नहीं है। सोल्फ़ (Solf) ने चोर अथवा चौर कवि, जिनकी तिथि अज्ञात है, का अस्तित्व प्रमाणित करने का यत्न किया है।

ही रुद्रट पर अपनी टीका लिखी थी) को भोज द्वारा उल्लिखित लेखकों की सूची में सम्मिलित करके गलती[1] की है; क्योंकि विचाराधीन पद्य नमि के अपने नहीं हैं, अपितु उन्होंने वास्तव में पूर्ववर्ती लेखकों के पद्यों को उद्धृत किया है।[2] इसके अतिरिक्त भोज ने 'दशरूपक' तथा इसकी टीका[3] के, जो मुंजकालीन, अर्थात् 10 वीं शती के अंत तथा 11 वीं शती के आरंभिक काल की है, कई पद्यों का लगभग सोलह बार उद्धरण दिया है। अतएव, पाठ के अंतःसाक्ष्यों के आधार पर 'सरस्वती-कंठाभरण' के लेखक को 11 वीं शती के दूसरे तथा चौथे चरण के मध्यवर्ती काल में निर्धारित करना उचित है। यह तिथि परमार वंश के धारा-नरेश की ज्ञात तिथि से ठीक मेल खाती है। वे 11 वीं शती के एक राजा थे और विद्याप्रेमी होने के नाते बहुत प्रसिद्ध थे। इन दोनों को एक ही मानना युक्तियुक्त है। परवर्ती अलंकार-साहित्य में हमारे भोज का भोजराज के नाम से उल्लेख मिलता है। जिस प्रकार भरत को मुनि नाम से संबोधित किया गया है, उसी प्रकार उन्हें कभी-कभी केवल राजन्[4] नाम से भी संबोधित किया गया है, जिससे प्रतीत होता है, वे साहित्य के इस क्षेत्र में श्रेष्ठ माने जाते थे।

(२)

कह्लण का कथन है (vii.259)[5] कि धारानरेश भोज कवियों के सच्चे

1. उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 304.
2. उदाहरण के लिए, 'अयं पद्मासनासीन' पद्य (भोज i.51, पृ० 15) नमि xi.24 में मिलता है, किंतु वास्तव में यह पद्य इसी संदर्भ में अनेक पद्यों के साथ भामह ii.55 से उद्धृत किया गया है। इसी प्रकार 'स मरुता' तथा 'स पीतवासा' दो पद्य, जिन्हें भामह ने स्वयं (ii.41,58) पूर्ववर्ती लेखकों से उद्धृत किया है, (जिनमें से एक का नाम रामशर्मा दिया गया है), भोज के ग्रंथ में अनाम मिलते हैं (i. 121, पृ० 43-44)। नमि ने भी इन्हें इसी संदर्भ में उद्धृत किया है। यह मानना निराधार है कि भोज ने इन पद्यों को सीधे भामह से न लेकर नमि की टीका से उद्धृत किया है। (यथा, आक्रोशन्नाह्वयन्, भोज iii.8 पृ० 144=भामह ii.94; भामह ii.92= भोज iv.51, पृ० 226-7=सुभाष० 1645 भामहस्य)। जैकब के अन्य अनुमानित उद्धरणों के विषय में भी यही बात लागू होती है। उनसे यह गलती शायद इसलिए हुई, क्योंकि उन्हें भामह का ग्रंथ-पाठ याद नहीं था।
3. 'दशरूपक' iv. 66 के नीचे एक पद्य को (लक्ष्मी-पयोधरोत्संग), जिसे धनिक ने अपना (यथा ममैव) कहा है उसे भोज ने अन्योक्ति के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है (एस० के० iv.)।
4. यथा, विद्याधर पृ० 98, 150 192, 287, 304 तथा मल्लिनाथ पृ० 287, 304 इत्यादि।
5. स च भोजनरेंद्रश्च दानोत्कर्षेण विश्रुतौ।
   सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्तां कवि-बांधवौ ॥

मित्र थे। साहित्य में संभवतः स्वयं उनकी भी रुचि थी। वे सिंधुराज के पुत्र तथा उत्तराधिकारी एवं विद्याप्रिय मुंज-वाक्पतिराज के भतीजे थे। भोज के अपने तथा अन्य शिलालेखों के आधार पर उनकी तिथि ठीक-ठीक मालूम[1] है। अलबेरूनी (Alberuni)[2] ने उन्हें 1030 ई० में राज्यारूढ़ बताया है। 'राज-मृगांक' में, जो भोज-रचित माना गया है, शक ९64-1042 तिथि दी गई है। यह भी ज्ञात है कि उन्होंने चालुक्य जयसिंह III से 1011 तथा 1019 ई० के मध्य, तथा उनके उत्तराधिकारी सोमेश्वर (1042-1066 ई०) से युद्ध किया था। बिह्लण के अनुसार सोमेश्वर के आक्रमण के कारण भोज को धारा नगर छोड़ना पड़ा था। बिह्लण ने स्वयं भोज को अपना समकालीन कहकर यह कहा है—'मेरी उनसे भेंट नहीं हुई, यद्यपि मैं उनसे मिल सकता था।[3] भोज तथा क्षितिराज के संबंध में कह्लण के उस कथन को, जिसका उल्लेख पहले किया गया है, बूहलर ने 'तस्मिन् क्षणे' को उस समय के अर्थ में लिया है, जब 1062 ई० में कलस के नाममात्र राज्याभिषेक के पश्चात् क्षितिराज ने संन्यास धारण कर लिया तथा कुछ समय के पश्चात् सांत्वना देने के लिए उन्होंने राजा अनंत से भेंट की। यदि यह व्याख्या ठीक मान ली जाय तो भोज की तिथि की अधिकतम सीमा 1062 ई० हो जाती है। उनके उत्तराधिकारी जयसिंह[4] के एक ताम्र-लेख पर 1055 ई० अंकित है और उससे बूहलर का अनुमान संदेहास्पद हो जाता है। इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए भोज की तिथि को संभवतः 1010 और 1055 ई० के मध्य निर्धारित करना युक्तिसंगत होगा; अर्थात् इसमें मोटे तौर से 11 वीं शती के प्रथम चरण का एक अंश तथा संपूर्ण द्वितीय चरण सम्मिलित करना होगा। वे संभवतः उसी शती के तृतीय चरण में ही जीवित रहे होंगे। उनके सिंहासनारोहण एवं मृत्यु की निश्चित तिथियां अज्ञात हैं; किंतु ऐसा प्रतीत

---

1. इंडियन एंटिक्वेरी, vi पृ० 53 इत्यादि (उज्जैन प्लेट, 1021-22 ई०); एपिग्राफिका इंडिका i. पृ० 230-33; एपिग्राफिका इंडिका ix, पृ० 182 (बांसवाड़ा प्लेट, 1020 ई०); ब्रिटिश संग्रहालय (British Museum) में सरस्वती की मूर्ति-शिलालेख (रूपम्, 1924, पृ० 18; 1033 ई०); तिलकवाड़ा ताम्रलेख (Proc. of the 1st Orient Comf. पृ० 319, 1047 ई०) इत्यादि।

2. सं० सकाऊ (Sachau) i.191. मेरुतुंग के अनुसार भोज संवत् 1078=1022 में मुंज के उत्तराधिकारी हुए। देखिए भंडारकर 1882-83, पृ० 44-45.

3. बूहलर का सं० 'विक्रमांक' पृ० 23 की पा० टि०; तथा पाठ xviii. 96.

4. एपिग्राफिका इंडिका iii. पृ० 46-50 (मांधाता प्लेट)

होता है कि गुजरात के राजा भीम तथा त्रिपुरी[1] के राजा कलचुरि कर्ण के साथ युद्धों में तथा दीर्घकालीन रुग्णावस्था में उनका देहांत हुआ।

(३)

अपने प्रसिद्ध ग्रंथ, 'सरस्वती-कंठाभरण' के अतिरिक्त भोज ने 'शृंगार-प्रकाश'[2] नामक ग्रंथ भी लिखा था। उसकी एक पांडुलिपि गवर्नमेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास में विद्यमान है।[3] यह 36 प्रकाशों[4] में रचा गया है तथा संस्कृत काव्यशास्त्र में सबसे दीर्घकाय ग्रंथ माना गया है। इसमें काव्यशास्त्र तथा नाट्य, दोनों ही विषयों का विवेचन है। पहले आठ अध्यायों में अभिव्यक्ति के साधन शब्द तथा अर्थ से संबंधित व्याकरण की समस्या पर तथा वृत्ति के सिद्धांत पर चर्चा की गई है। नवें तथा दसवें अध्याय में गुण-दोष का विवेचन तथा ग्यारहवें अध्याय में क्रमशः महाकाव्य तथा नाटक पर चर्चा की गई है। अगले चौबीस अध्यायों में केवल रस-सिद्धांत की चर्चा है। उसमें भी शृंगार के भेद तथा उसके चार पुरुषार्थों, अर्थात् धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष के परस्पर संबंध का निरूपण किया गया है। अहंकार-अभिमान-शृंगार नामक एकमात्र विशिष्ट रस-सिद्धांत को मुख्य तथा अनिवार्य माना गया है। इस ग्रंथ का नाम भोज के सिद्धांत पर आधारित है, जिसके अनुसार शृंगार ही एकमात्र मान्य रस है।[5] 'सरस्वती-कंठाभरण' के सदृश ही इस ग्रंथ (शृंगार-प्रकाश) में भी ज्ञान-कोश की पद्धति पर नियमों और सिद्धांतों को स्पष्ट करने के लिए अनेक उद्धरण दिए गए हैं। वास्तव में शारदा-

---

1 मेरुतुंग की 'प्रबंधचिंतामणि,' टाउनी (Tawney) का अनुवाद पृ० 4 पर।

2 विद्याधर ने पृ० 98 पर इस ग्रंथ का उल्लेख किया है; कुमारस्वामी ने पृ० 114, 221 पर; अमर पर रायमुकुट तथा सर्वानंद ने, तथा 'रघु' पर हेमाद्रि ने इसका उल्लेख किया है।

3 इसका उल्लेख लाइब्रेरी की 1916-19 की Rep. of the working of the peripatetic party में किया गया है। ग्रंथ अभी पूरा मुद्रित नहीं हुआ है। यदुगिरि यतिराज मेलकोट (मैसूर, 1926) ने तीन प्रकाश (22-24) प्रकाशित किए हैं, तथा वी० राघवन् ने ग्रंथ का विस्तार से विवेचन किया है, (खंड i, भाग I तथा खंड ii, बंबई 1940, पृ० 1-542)

4 अध्याय xxvi पूरा लुप्त है, इसके अतिरिक्त अध्याय xxv का अंत, अध्याय xxvii का आरंभ तथा यत्र-तत्र कई अंश छूट गए हैं।

5 तुलना कीजिए विद्याधर–'राजा तु शृंगारमेकमेव शृंगार–प्रकाशे रसमुररीचकार पृ० 98, कुमार स्वामी पृ० 221, शृंगार एक एव रस, इति शृंगार प्रकाशकारः। इस ग्रंथ के संक्षिप्त विषय-विवरण के लिए देखिए खंड ii अध्याय 6—भोज ने चार अध्यायों (xviii-xxi) के अंतर्गत धर्मशृंगार, अर्थ-शृंगार, काम-शृंगार तथा मोक्ष शृंगार की चर्चा की है। लौकिक शृंगार के संभोग तथा विप्रलंभ भेदों मात्र का 16 अध्यायों में विवेचन किया गया है।

तनय कृत 'भाव-प्रकाश', जिसमें इसी विषय का प्रतिपादन किया गया है, भोज कृत 'शृंगार-प्रकाश' के प्रमुख अध्यायों का एक प्रकार से सारांश प्रस्तुत करता है।

(४)

'सरस्वती-कंठाभरण' में पांच परिच्छेद हैं। यह कोई बहुत मौलिक ग्रंथ नहीं है। इसमें विश्वकोश की भांति पूर्ववर्ती ग्रंथों से, विशेषतया दंडी से, उद्धरण संग्रहीत किए गए हैं। जैकब (Jacob) के अनुसार, इसमें दंडी के 164 उदाहरण उद्धृत किए गए हैं। जैकब द्वारा तैयार की गई उद्धरण-सूची के अनुसार इस ग्रंथ में वामन का 22 बार, रुद्रट का 19 बार, तथा 'ध्वन्यालोक' का 10 बार से अधिक (छह कारिकाओं का भी) उल्लेख किया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भोज ने यमक तथा उसके अनेक उपभेदों के संबंध में भट्टि के उदाहरणों का प्रभूत उपयोग किया है। काव्यशास्त्र के सामान्य विषय-विवेचन के पश्चात् क्रमशः पद, वाक्य तथा वाक्यार्थ के 16 दोषों की तथा क्रमशः शब्द तथा वाक्यार्थ के 24 गुणों की चर्चा की गई है। दूसरे तथा तीसरे अध्याय में क्रमशः 24 शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों की परिभाषा तथा उदाहरण दिए गए हैं। इसी प्रकार चौथे अध्याय में 24 शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों की चर्चा है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि छह रीतियों को शब्दार्थालंकार माना गया है। पांचवें अध्याय में रस, भाव, नायक-नायिका, पंच-संधि तथा चतुर्वृत्ति इत्यादि का विवेचन है। भोज के ग्रंथ का मुख्य गुण यह है कि इसमें प्रत्येक नियम के लिए उदाहरण दिए गए हैं। कुल संख्या 1500 से अधिक है। यह ग्रंथ इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें अग्निपुराण की भांति एक मत-परंपरा निहित है, किंतु यह परंपरा रूढ़ काश्मीरी सिद्धांत से भिन्न है।

भोज को 80 से अधिक ग्रंथों का रचयिता माना गया है। इनमें अधिकतर ग्रंथ विशालकाय हैं। व्याकरण-संबंधी उनके ग्रंथ का नाम भी 'सरस्वती-कंठाभरण' है (सं० मद्रास विश्वविद्यालय 1937, तथा, सं० त्रिवेंद्रम संस्कृत सीरीज, नारायण दंडनाथ की हृदयहारिणी टीका सहित, 1935-48)।

(५)

भोज पर निम्नलिखित अनेक विद्वानों ने टीकाएँ लिखी है, किंतु वे अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। रत्नेश्वर की टीका पाठ-सहित कई बार मुद्रित हुई है, किंतु अभी तक इसके केवल तीन ही अध्याय मुद्रित हुए हैं।

ग्रंथसूची

क. सरस्वतीकंठाभरण

संस्करण (1) ए० बरुआ रचित, कलकत्ता 1884. (2) वीरेश्वर शास्त्री रचित, बनारस 1888 (अध्याय iv तथा v)। (3) जीवानंद विद्यासागर रचित अध्याय i-iii पर रत्नेश्वर की टीका-सहित, कलकत्ता 1894. (4) केदारनाथ दुर्गाप्रसाद तथा वासुदेव एल० पनशीकर रचित, निर्णयसागर प्रेस, अध्याय i.iii पर रत्नेश्वर की तथा अध्याय iv पर जगद्धर की टीका सहित, बंबई 1925, 1934. यहाँ पर बरुआ के 1884 के सं० से संदर्भ दिए गए हैं।

टीकाएं : (1) मिश्र रत्नेश्वर का 'रत्नदर्पण' सं० जीवानंद के पाठ सहित, कलकत्ता 1194, सं० बनारस तथा निर्णयसागर प्रेस, तथा उपर्युक्त। आरंभ के दूसरे पद्य में उल्लिखित नाममात्र लेखक रामसिंहदेव वास्तविक लेखक के संरक्षक थे। पृष्ठांत विवरण में लेखक का नाम मिश्र रत्नेश्वर दिया गया है; पाठ के बनारस सं० में (तिरहुत के?) रामसिंहदेव के आदेश से टीका लिखी जाने की बात कही गई है। कैटलॉगों में इस ग्रंथ को कहीं-कहीं गलती से रामसिंहदेव के नाम से दिया गया है। लेखक ने 'काव्यप्रकाश' पर अपनी टीका का उल्लेख किया है। उपर्युक्त संस्करणों में इस 'रत्नदर्पण' के केवल प्रथम तीन अध्याय मुद्रित हुए हैं, और मद्रास तथा बोडलियन (Bodleian) दोनों पांडुलिपियों में केवल यही अध्याय हैं। रत्नेश्वर 14 वीं शती में हुए हैं। (2) मार्जना, हरिनाथ रचित दंडी पर अपनी टीका (A Bod 206b) में स्वयं उन्होंने इसका उल्लेख किया है। देखिए पृ० 70. (3) 'दुष्करचित्र-प्रकाशिका', लक्ष्मीनाथ भट्ट रचित। वे कीलहॉर्न की रिपोर्ट 1880-81, पृ० 71 के अनुसार 1601 ई० में 'पिंगलप्रदीप' के लेखक लक्ष्मीनाथ हो सकते हैं। पश्चोक्त ग्रंथ की कीलहॉर्न की पांडुलिपि 1660 में तैयार की गई थी तथा बर्नेल (Burnell) की ('पिंगलार्थ-दीपिका' पृ० 53b, 175b) 1632 ई० में तैयार की गई थी। (4) टीका, रत्नधर तथा दमयंती के पुत्र जगद्धर रचित। इसका उद्धरण 'अलवर कैटलाग' 1086 तथा स्टीन (Stein) पृ० 275 पर मिलता है। निर्णयसागर प्रेस के सं० में टीका-अंश चौथे अध्याय में है। यह ग्रंथ संभवत: 17 वीं शती से पहले का है, किंतु 14 वीं शती से पीछे का है, (देखिए भंडारकर, 'मालतीमाधव' की भूमिका, पृ० xviii-xxi)। जगद्धर की वंशावली इस प्रकार है—चंडेश्वर—वेदेश्वर (अथवा वेदधर)—रामधर (रामेश्वर)—गदाधर—विद्याधर—रत्नधर—जगद्धर। उन्होंने (औफ्रेक्ट—i. 195) 'मेघदूत', 'वासवदत्ता', 'वेणीसंहार', 'मालतीमाधव' इत्यादि पर कई

टीकाएं लिखीं। स्टीन (Stein) की पांडुलिपि (पृ० 276) की तिथि शक 1521 = 1460 ई० है। (5) हरिकृष्ण व्यास रचित टीका। SCB 34.

ख. शृंगार-प्रकाश

गवर्नमेंट ओरिएंटल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास में उपर्युक्त रिपोर्ट में लिखित इस ग्रंथ की केवल एक पांडुलिपि विद्यमान है। अभी तक इस ग्रंथ के केवल कुछ अंश ही प्रकाशित हुए हैं; देखिए पृ० 136.

भोज के नाम से अन्य प्रकाशित ग्रंथ इस प्रकार हैं—'समरांगण-सूत्रधार' (सं० टी० गणपति शास्त्री, दो खंड, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा, (1924-1925)। इस ग्रंथ में मुख्य रूप से वास्तुकला (architecture) तथा प्रतिमा-विज्ञान (Iconography) का निरूपण है; 'युक्ति-कल्पतरु' (सं० ईश्वरचंद्र शास्त्री, कलकत्ता, 1917) नीतिशास्त्र सहित; 'तत्वप्रकाश', सं० टी० गणपति शास्त्री, श्रीकुमार की तात्पर्य-दीपिका नामक टीका सहित, त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज 1920; अनुवाद, ई० पी० जानविअर (E P. Janvier) इंडियन एंटिक्वेरी liv, 1925, पृ० 151-56 के अंतर्गत, आध्यात्मिक-दार्शनिक विषयों सहित; 'योग-सूत्र' पर 'राजमार्तंड' नामक टीका (सं० बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1883; सं० चौखंबा संस्कृत सीरीज, पाठ तथा अन्य पांच टीकाओं सहित, बनारस 1930; सं० जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता 1903; अनुवाद-गंगानाथ झा, बंबई 1907) में योग-दर्शन का विवेचन किया गया है।

महिमभट्ट

(१)

अपने ग्रंथ के नाम पर राजानक महिमन, महिमक अथवा महिमभट्ट को आम तौर से व्यक्तिविवेककार[1] कहा जाता है। उनकी उपाधि से यह सूचित होता है कि वे संभवत: काश्मीरी लेखक थे। उन्होंने स्वयं को श्रीधैर्य का पुत्र तथा महाकवि श्यामल का शिष्य कहा है। अपने ग्रंथ के आरंभ में ही (i.3) उन्होंने सूचित किया है कि मेरा मुख्य उद्देश्य ध्वनिकार के मत का विवेचन करना है। अपने इस प्रयास में उन्होंने ध्वनिकार के पाठ की परीक्षा की है, कारिका तथा वृत्ति में से ऐसे सूक्ष्म उद्धरण दिए हैं, जिनसे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वे आनंद-

1. विश्वनाथ, सं० दुर्गाप्रसाद, निर्णयसागर प्रेस, 1915, पृ० 18, 249, मल्लिनाथ, टीका 'किरात' iii. 21, रुय्यक, सं० निर्णयसागर, प्रेस पृ० 12, केशवमिश्र, पृ० 80-81, जगन्नाथ पृ० 13 इत्यादि। केशव ने उनका नाम महिमन् बताया है।

वर्धन के पश्चात् हुए हैं।[1] यह भी संभव है कि महिमभट्ट, आनंदवर्धन के टीकाकार अभिनवगुप्त के पश्चात् हुए हों, क्योंकि कहीं-कहीं वे पश्चोक्त के ग्रंथ से परिचित प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, पृ० 19 पर महिमभट्ट ने 'लोचन' (पृ० 33) से एक दीर्घांश उद्धृत किया है और अभिनव के विवेचन के अंतर्गत तत्संबंधी विषय को समझते हुए उसकी आलोचना की है। यह अंश 'ध्वन्यालोक' i.13 को लक्षित करता है। इसमें, अभिनव के व्याख्यानुसार, ध्वनिकार द्वारा 'व्यंक्तः' क्रिया का द्विवचन प्रयोग द्व्यर्थकत्व को निर्दिष्ट करता है। भट्टनायक ने द्विवचन प्रयोग पर आपत्ति की है; इस पर अभिनव ने इस प्रकार टिप्पणी की है—'तेन यद् भट्टनायकेन द्विवचनं दूषितं तद् गज-निमीलिकयैव।' महिमभट्ट ने इस विवेचन का संदर्भ देते हुए अभिनव का उपर्युक्त वाक्य ही नहीं, अपितु सारे अंश को अनामतः उद्धृत किया है तथा यह कहा है—केचिद् विमानिनः यदाहुस्तद् भ्रांतिमूलम् (पृ० 19)। नरसिंह अय्यंगर ने ठीक कहा है[2] कि विचारार्थ विषय से यही सूचित होता है कि महिमभट्ट ने स्पष्टतया विपक्षी सैद्धांतिक के रूप में यहां अभिनव को निर्दिष्ट किया है। वे यदि समकालीन नहीं थे तो उनसे अधिक-पहले भी नहीं हुए थे। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि महिमभट्ट ने कुंतक के ग्रंथ 'वक्रोक्तिजीवितम् (i. 7-8) में उनके कुछ विचारों का उल्लेख तथा आलोचना की है (पृ० 28) तथा यह प्रमाणित करने का यत्न किया है कि ध्वनि के समान वक्रोक्ति को भी अनुमान के अंतर्गत आना चाहिए। उन्होंने राजशेखर के 'बालरामायण' (पृ० 40-50) तथा 'विद्धशालभंजिका' (पृ० 85) में से भी उद्धरण दिए हैं। इससे हमें महिमभट् की तिथि की सीमा प्राप्त हो जाती है। उधर रुय्यक, जैसा कि आगे बताया जायगा, 12 वीं शती में हुए हैं और संभवतः उन्होंने महिमभट्ट पर एक अनाम टीका लिखी है (पाठ के त्रिवेंद्रम् संस्करण में मुद्रित)। वे ऐसे प्राचीनतम लेखक हैं, जिन्होंने महिमभट्ट का उल्लेख किया है तथा उनके विचारों की आलोचना की है।[3] अतएव, हम महिमभट् की तिथि को अभिनव तथा रुय्यक की मध्यवर्ती अवधि में अर्थात् 11 वीं शती के प्रथम चरण के पश्चात्, किंतु

1. तुलना कीजिए—जयरथ पृ० 12, ध्वनिकारांतरभावी व्यक्तिविवेककार इति, जयरथ के मत से ध्वनिकार स्वयं आनंदवर्धन ही थे।
2. जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1908, पृ० 65 इत्यादि।
3. अय्यंगर (उपर्युक्त ग्रंथ) तथा हरिचंद (उपर्युक्त ग्रंथ पृ० 105) का यह मत है कि मम्मट ने महिमभट्ट का 'उल्लेख अथवा आलोचना की है'; किंतु, जैसा कि 'काव्यप्रकाश' v. पृ० 252 (बंबई संस्कृत सीरीज़ 1917) से सूचित होता है, मम्मट ने महिमभट्ट अथवा

12 शती के प्रथम चरण से पूर्व निर्धारित कर सकते हैं। उनकी तिथि लगभग 11 वीं शती के उत्तरार्द्ध अथवा अंतिम अंश में निर्धारित की जा सकती है। यह तिथि श्यामल की संभव तिथि से मेल खाती है, क्योंकि महिमभट्ट ने अपने गुरु के रूप में उनका उल्लेख किया है; किंतु ऐसा तभी हो सकता है जब यह श्यामल क्षेमेंद्र द्वारा निर्दिष्ट कवि श्यामल हों।[1]

(२)

महिमभट् का शंकुक से क्या संबंध था, यह निश्चित करना कठिन है। शंकुक भी, महिमभट्ट की तरह, अपने रससिद्धांत में 'अनुमितिवादी' थे।[2] किंतु अभी तक उनका ग्रंथ उपलब्ध नहीं हो सका है। हमारे लेखक ने यह दावा किया है कि मेरा विवेचन मौलिक, तथा पर-अनुकरण से मुक्त है[3], अतएव पूर्ववर्ती लेखकों के उल्लेखाभाव में कोई विचित्र बात नहीं है।

विश्वनाथ पर[4] बंगाल में 18 वीं शती के टीकाकार रामचरण का प्रमाण अधिक विचार-योग्य नहीं है, किंतु यह संभव है कि महिम का सिद्धांत, जिसका

उनके ग्रंथ का बिल्कुल उल्लेख नहीं किया है, बल्कि केवल एक अनुमान-सिद्धांत की बालोचना की है, जिनमें आगम द्वारा ध्वनि-सिद्धांत की व्याख्या की गई है। इस बात को किसी तैथिक निष्कर्ष का आधार नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि महिमभट्ट से बहुत पहले ही आनंदवर्धन ने इसी प्रकार के सिद्धांत का उल्लेख किया है।

1. 'औचित्य विचार' श्लोक 16, 'सुवृत्ततिलक' ii. 31, तथा 'सुभाष' 2292. क्षेमेंद्र के श्यामल, श्यामिलक से अभिन्न प्रतीत होते हैं; इन्होंने 'पाद-ताडितक' नामक भाण लिखा (सं० रामकृष्ण कवि तथा रामनाथ शास्त्री, मद्रास 1922); क्षेमेंद्र के उपर्युक्त दो ग्रंथों में वे पद्य, जो श्यामल-रचित कहे गए हैं, भाण के मुद्रित पाठ में क्रमशः श्लोक 33 तथा 125 के रूप में मिलते हैं। पृष्ठांत-विवरण के अनुसार भाण-लेखक विश्वेश्वरदत्त के पुत्र तथा 'उदीच्य' थे। इससे यह संभव प्रतीत होता है कि वे काश्मीरी श्यामल, श्यामलक अथवा श्यामिलक थे, जिनका अभिनवगुप्त ने भी उल्लेख किया है। अभिनव तथा कुंतक दोनों ने इस भाण में से अनाम पद्य उद्धृत किए हैं। 'सुभाष' में यह पद्य श्यामलक का माना गया है—(प्रायश्चित्तं मृगयते यः प्रियापादताडितः। क्षलनीयं शिरस्तस्य कांतागंडूषशीधुभिः ॥) जो निश्चित रूप में इस भाण को निर्दिष्ट करता है। इसका दूसरा अंश कुछ विकृत रूप में स्वयं भाण में मिलता है (श्लोक 132)। राजशेखर ने एक श्मामदेव का उल्लेख किया है (पृ० 11, 13, 17)।
2. मल्लिनाथ ('तरला' पृ० 85) तथा कुमारस्वामी (पृ० 219) ने उन्हें इसी प्रकार संबोधित किया है।
3. उदाहरणार्थ उनका कथन है कि मैंने 'चंद्रिका' तथा 'दर्पण' देखे बिना ही अपना ग्रंथ लिखा है। इसका उद्देश्य भी ध्वनि-सिद्धांत का निराकरण करना था (i. 4, 5).
4. सं० दुर्गाप्रसाद पृ० 248 सं० रोअर (Roer) पृ० 121 note 'शंकुक-मतानुयायिनां, व्यक्ति-विवेककारादीनां मतं दुष्यति'।

उन्होंने विकास किया, मूल रूप में उनका अपना नहीं था। आनंदवर्धन ने किंचित् विस्तार से 'अनुमान' के किसी सिद्धांत का निराकरण किया (पृ० 201 इत्यादि) है। इस सिद्धांत के अनुसार ध्वनिसिद्धांत से लक्षितार्थ तर्कसंगत-आगम-प्रक्रिया-गम्य होता है। महिमभट्ट ने स्वयं विवेचन के सार-रूप में संग्रह-श्लोकों के अतिरिक्त अंतरश्लोक अथवा अंतराय भी दिए हैं, जिनसे विवेचन का परिवर्धन होता है। वे संभवतः अन्य ग्रंथों से लिए गए हैं, जिससे यह सूचित होता है कि अन्य लेखकों ने भी इन विषयों पर पहले चर्चा की थी। संभवतः महिमभट्ट ने आनंदवर्धन की विशिष्ट व्याख्या के प्रत्युत्तर के रूप में इस प्रबंध की रचना की थी (हो सकता है, आनंदवर्धन को इस प्रत्युत्तर की प्रत्याशा थी;) किंतु अभिनवगुप्त तथा अन्य लेखकों ने ऐसा कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया, जिसके आधार पर उन्हें शंकुक के सिद्धांत से सबद्ध किया जा सके।

'व्यक्ति-विवेक' में तीन 'विमर्श' हैं। यह मुख्यतः एक वादानुवादात्मक ग्रंथ है। इसमें कोई नवीन सिद्धांत अथवा पद्धति प्रस्तुत नहीं की गई है। इसका एकमात्र उद्देश्य आनंदवर्धन के ध्वनिसिद्धांत का निराकरण करना है। इसमें यह कहा गया है कि तथाकथित व्यंजना का कार्य केवल अनुमान-प्रक्रिया अथवा तर्कसंगत-आगम ही है और इसे पहले से ही मान्यता दी जा चुकी है। प्रथम विमर्श में उन्होंने ध्वनि की परिभाषा की आलोचना करते हुए अपने पक्ष का प्रतिपादन तथा परिवर्धन किया है। द्वितीय विमर्श में उन्होंने शब्द तथा अर्थ से संबंधित औचित्य-प्रश्न का विवेचन किया है। तृतीय विमर्श में 'ध्वन्यालोक' के लगभग चालीस उदाहरण उद्धृत किए गए हैं और यह बताया गया है कि उदाहरण वास्तव में व्यंजना के न होकर अनुमान के हैं।[1]

(३)

'व्यक्ति-विवेक' से यह भी विदित होता है कि महिमभट्ट ने 'तत्वोक्ति-कोश' नामक ग्रंथ की भी रचना की थी। इसमें उन्होंने काव्य से संबंधित 'प्रतिभातत्व'[2] का विवेचन किया है।

महिमभट्ट के ग्रंथ में ध्वनि के नवीन सिद्धांत को स्वीकार कर लिया गया है, किंतु उन्होंने इसकी व्याख्या, आनंदवर्द्धन के मतानुसार व्यंजना के पृथक्कार्य को आधार न मानकर, अनुमान के प्रतिष्ठित आधार पर की है। परवर्ती सैद्धांतिक उनकी अपेक्षा आनंदवर्द्धन के मत के पक्ष में रहे हैं। उनके टीकाकार ने भी

1. खंड ii में महिमभट्ट के विचारों पर विस्तार से चर्चा की जायगी।
2. तुलना कीजिए, जैकोबी Sb. der Preuss. Akad, xxiv, 225 पा० टि०।

उनके इस एकांतिक मत के प्रति अधिक सहानुभूति प्रकट नहीं की है।[1] महिमभट् ही ऐसे लेखक हैं, जिनका परवर्ती साहित्य में कोई मतानुयायी नहीं था।

किन्हीं कारणों[2] से रुय्यक को महिमभट्ट का टीकाकार मान लिया गया है। अलंकार पर अनेक स्वतंत्र ग्रंथ लिखने के अतिरिक्त रुय्यक ने मम्मट पर भी टीका लिखी है। अगले अध्याय में अलंकार पर स्वतंत्र लेखक के रूप में मम्मट की चर्चा की जायगी।

ग्रंथ सूची

संस्करण—टी० गणपति शास्त्री रचित, भूमिका, टिप्पणी तथा एक अनाम-लेखक टीका (रुय्यक-लिखित), त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज़, 1909 द्वितीय विमर्श के मध्य भाग में टीका समाप्त हो जाती है।

1. रुय्यक 'अलंकारसर्वस्व', (पृ० 12 इत्यादि), तथा विश्वनाथ ('साहित्य-दर्पण' पृ० 248 इत्यादि) ने महिमभट्ट के मत की कड़ी आलोचना की है।

2. संक्षिप्त तर्कों के लिए देखिए—काणे, HSP पृ० 245.

अध्याय छह

मम्मट तथा अल्लट

(१)

मम्मट की तिथि के विषय में बड़ी अनिश्चितता है। उनके नाम[1] तथा उनकी उपाधि 'राजानक' से प्रतीत होता है कि संभवतः वे काश्मीरी थे। हॉल[2] (Hall) तथा वेबर[3] (Weber) ने उस किंवदंती को स्वीकार कर लिया, जिसके अनुसार मम्मट 'नैषध'-लेखक के मामा थे। प्रसिद्ध व्यक्तियों के बारे में प्रायः ऐसी कहानियाँ गढ़ ली जाती हैं।

मम्मट की तिथि की निचली सीमा एक तिथि-अंकित पांडुलिपि[4] तथा 'काव्यप्रकाश' पर दो टीकाओं के आधार पर निश्चित की जा सकती है। माणिक्य-चंद्र की टीका पर स्पष्टतया संवत् 1216-1159-60 ई॰ अंकित है। रुय्यक-

---

1. औफ्रेक्ट (Aufrecht) (i. 432) का कथन है कि मम्मट का मूल नाम महिमभट्ट था। उन्होंने यह बात केशव मिश्र के अशुद्ध उद्धरण (पृ॰ 80-81) के आधार पर कही है। केशव ने जिस प्रसंग में महिमभट्ट का उल्लेख किया है, वह स्पष्ट रूप में मम्मट की बजाय महिमभट्ट को निर्दिष्ट करता है। उसी संदर्भ में महिमभट्ट को व्यक्तिविवेक का रचयिता कहा गया है। केशव ने 'अनौचित्याद्‌ऋते' पद्य का उद्धरण देते हुए उसे महिमन्‌रचित माना है। यह पद्य मूलतः 'ध्वन्यालोक', (पृ॰ 145) की वृत्ति में मिलता है। 'व्यक्तिविवेक' (पृ० 31-114) में यह पद्य 'स एवाह' के साथ उसी पाठ में से उद्धृत अनेक अन्य पद्यों के साथ वहीं से लिया गया है। संभवतः केशव ने मूल-स्रोत को जाने बिना यह पद्य सीधे 'व्यक्तिविवेक' से उद्धृत किया और महिमन्-रचित मान लिया। 'काव्यप्रकाश' में यह पद्य नहीं मिलता। औफ्रेक्ट का यह सुझाव कि मम्मट, महिमभट्ट नाम का विकृत रूप है, उसी प्रकार निराधार है, जिस प्रकार रुद्रट, रुद्रभट्ट का। तुलना कीजिए, पीटर्सन (Peterson) ii, पृ० 19.
2. 'बासवदत्ता' की भूमिका, पृ० 55.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास (अंग्रेजी अनुवाद, द्वितीय सस्करण), पृ० 232, पा० टि०।
4. 'काव्यप्रकाश' की एक जैसलमेर जैन भंडार पांडुलिपि से प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ संवत् 1215 आश्विन 14 (1158 ई० अक्तूबर 8) को अनहिलपातक स्थान पर तैयार की गई थी। उस समय कुमारपाल राज्य करते थे। पृष्ठांत विवरण से इस महत्वपूर्ण बात का पता चलता है कि यह ग्रंथ मम्मट तथा अलक ने मिलकर लिखा था (कृती मम्मटालकयोः) देखिए पी॰ के॰ गोडे, जर्नल ऑफ़ ओरिएंटल रिसर्च, xiii 46-53 (=उनका ग्रंथ, studies in Ind. Lit. Hist. i, 235 इत्यादि)।

रचित टीका की शुद्ध तिथि ज्ञात नहीं है, किंतु अन्य ग्रंथों के प्रमाण से सूचित होता है कि रुय्यक 12वीं शती के दूसरे तथा तीसरे चरण में हुए थे।

जैसलमेर की प्राचीनतम पांडुलिपि 1158 ई० में तैयार की गई थी। अतएव, मम्मट को 12वीं शती के आरंभ के पश्चात् निर्धारित नहीं किया जा सकता।[1]

उनकी तिथि की दूसरी सीमा इतनी अच्छी तरह निर्धारित नहीं की जा सकती। ऐसा कहा गया है कि मम्मट ने एक पद्य (भोज नृपतेस्तत्-त्यागलीलायितम् –x. 26b के नीचे, बंबई संस्कृत सीरीज़ सं० 1917 पृ० 684) में भोज की स्तुति की है। अनुमानतः वे भोज के समकालीन थे। एक परवर्ती टीकाकार, भीमसेन,[2] ने एक कथा में इस बात को पुष्ट करने का यत्न किया है। इस कथा के अनुसार मम्मट के पिता का नाम जय्यट था। उनके कय्यट तथा उव्वट नामक दो भाई थे। उव्वट (अथवा उवट) वैदिक ग्रंथों के प्रसिद्ध टीकाकार थे। उनके अपने ही कथन के अनुसार कुछ ग्रंथ अवंति में भोज के राज्यकाल में रचे गए थे (भोजे राज्यं प्रशासति)।

---

1. मम्मट पर परमानंद चक्रवर्ती तथा नागोजी की प्रामाणिकता के आधार पर झलकीकर ने कहा
है कि मम्मट ने अनेक स्थलों पर रुय्यक की आलोचना की है, इसलिए उन्हें मम्मट से पूर्व ही
निर्धारित करना चाहिए। किंतु उनके उद्धरण उनकी बात को पुष्ट नहीं करते। यथा,
'राजति ताटीयं' (काव्यप्रकाश, पृ० 758) पद्य रुय्यक (पृ० 199) के विरुद्ध माना गया है।
वहाँ यह पद्य इसी संदर्भ में उद्धृत किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मम्मट ने बिना
किसी टिप्पणी के इस पद्य को 'शब्दालंकार-संकर' के उदाहरण के रूप में दिया है। उन्होंने
केवल इतना कहा है कि यहाँ 'यमक' तथा 'अनुलोमप्रतिलोम-चित्र' का अन्योन्य सम्मिश्रण है।
इसके विपरीत, रुय्यक ने इसी पद्य को उद्धृत करते हुए अन्य लेखकों के मत को निर्दिष्ट किया
है तथा कुछ विस्तार से उस पर टिप्पणी की है। उनका कथन है कि यद्यपि कुछ विद्वानों ने
इस पद्य को 'शब्दालंकार-संकर' का उदाहरण बताया है, मेरे विचार में 'शब्दालंकारों' का इस
प्रकार सम्मिश्रण संभव नहीं है और यह उदाहरण गलत है। यह पद्य रत्नाकर के 'हरविजय'
(v. 137) में मिलता है। इस संबंध में जयरथ तथा समुद्रबंध ने यह कहा है कि रुय्यक ने
जिन अनाम लेखकों को अपनी आलोचना में निर्दिष्ट किया है, उन्होंने भी 'मम्मट' तथा अन्य
विद्वानों को लक्षित किया है। इसके अतिरिक्त स्वयं रुय्यक ने मम्मट की कारिका iv.15-16
को उद्धृत किया है (पृ० 102)। जयरथ ने यह स्पष्ट कहा है कि रुय्यक ने मम्मट पर
'काव्यप्रकाशसंकेत' नामक टीका लिखी थी (पृ० 102)। कई अन्य स्थलों पर जयरथ तथा
समुद्रबंध के कथनानुसार रुय्यक ने मम्मट की आलोचना की है (यथा, जयरथ पृ० 77, 102.
107, 150, 163, 199, 204, समुद्रबंध पृ० 23, 25, 119, 156, 243, 249
इत्यादि)।

2. 'काव्यप्रकाश' की भूमिका, सं० बंबई संस्कृत सीरीज़ (तीसरा सं० 1917) पृ० 6-7, पीटर्सन i.
पृ० 94 पर उद्धरण भी देखिए।

इस आधार पर यह कहा गया है कि उपर्युक्त उद्धरण में संभवतः उव्वट अपने संरक्षक के माध्यम थे, अथवा मम्मट ने ही भोज की उदार सभा में प्रवेश पाने के लिए ऐसा किया था।[1] किंतु यह परिकल्पना बहुत लचर है, क्योंकि उव्वट ने स्वयं कहा है कि मेरे पिता का नाम वज्रट था, जय्यट नहीं, तथा यह भी स्पष्ट नहीं है कि विचाराधीन पद्य, जिसे 'उदात्त' अलंकार (श्रेष्ठ व्यक्तियों के ऐश्वर्य का वर्णन) के अनाम उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, स्वयं मम्मट ने ही लिखा था। उन्होंने विविध ग्रंथों से उदाहरण-पद्य उद्धृत किए हैं। इस अनाम लेखक के पद्य में भोज को लक्षित करने से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि संभवतः मम्मट भोज से पूर्व नहीं हुए हैं।

यदि टीकाकारों की प्रामाणिकता के आधार पर भोज को 'सरस्वती-कंठाभरण' का रचयिता धारा-नरेश परमार भोज मान लिया जाय तो मम्मट की तिथि रुय्यक तथा भोज के मध्य निर्धारित की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, मम्मट संभवतः 11 वीं शती के मध्य तथा 12 वीं शती के प्रथम चरण के अंतर्वर्ती काल में हुए हैं। यदि मम्मट तथा रुय्यक के मध्य दो पीढ़ियों का अंतर मान लिया जाय तो मम्मट का साहित्य-रचना काल मोटे तौर से 11 वीं शती के अंतिम चरण में निश्चित किया जा सकता है। मम्मट ने 1015 ई० में जीवित (ऊपर देखिए) अभिनवगुप्त का उल्लेख किया है तथा 'नवसाहसांक-चरित' (अध्याय i) के पद्य उद्धृत किए हैं (x.131 के अंतर्गत, पुराणि यस्याम्)। यह ग्रंथ लगभग 1005 ई० में लिखा गया था।

(२)

'काव्य-प्रकाश' के लेखक होने के नाते मम्मट प्रसिद्ध हैं। इस ग्रंथ के कारण आनंदवर्धन का काश्मीरी सिद्धांत चूडांत तथा अंतिम रूप में स्थापित हो गया था। इसके अतिरिक्त मम्मट ने एक अन्य किंतु अपेक्षाकृत कम परिचित ग्रंथ, 'शब्दव्यापारपरिचय' भी लिखा है। जैसा कि इसके नाम से परिलक्षित होता है, इसमें शब्द की वृत्ति पर संक्षिप्त रूप में चर्चा की गई है। 'काव्यप्रकाश' के द्वितीय उल्लास में भी इस विषय पर विवेचना की गई है। काव्यविद्या के अधिकतर लेखकों की तरह मम्मट व्याकरण-शास्त्र में पारंगत थे। अपने बृहद् ग्रंथ में उन्होंने अपनी इस विशिष्ट योग्यता का प्रदर्शन किया है।[2]

1. गंगानाथ झा कृत 'काव्यप्रकाश' के अनुवाद की भूमिका, पृ० 6-7.
2. गजपति नारायणदेव ने अपने 'संगीत नारायण' में संगीत पर 'संगीत रत्नावली' को मम्मट-रचित माना है (देखिए, वी० राघवन, ABORI, xvi.(1934-35) पृ० 131 तथा उसके संदर्भ)।

'काव्यप्रकाश'[1] के विहगावलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ की रचना योजनाबद्ध तथा सुव्यवस्थित है। राजानक आनंद की 'निदर्शन[2] नामक टीका के आधार पर पीटर्सन ने ग्रंथ के एक-लेखकत्व पर पहले संदेह प्रकट किया था, यद्यपि उनकी पहली गलत धारणा[3], जिसे बाद में उन्होंने स्वयं ही[4] ठीक कर लिया, यह थी कि कारिका-पाठ स्वयं मम्मट ने लिखा था, किंतु उस पर गद्य-वृत्ति का रचयिता कोई और था। इस तथ्य के अब पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं, किंतु मम्मट ने लगभग संपूर्ण ग्रंथ (कारिका तथा वृत्ति) स्वयं लिखा, ग्रंथ के अंतिम अध्याय का एक लघु-अंश उनसे छूट गया था। उसे एक अन्य लेखक ने लिखा था। आनंद ने उस लेखक का नाम अलट अथवा अलक दिया है। सह-लेखकत्व (joint authorship) की बात बड़ी चतुराई से गुप्त रखी गई है। कुछ पांडुलिपियों [5] के अंतर्गत अंतिम पद्य में यही तथ्य इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है—'विद्वानों का यह मार्ग भिन्न होते हुए भी अभिन्न प्रतीत होता है, किंतु यह विचित्र बात नहीं है, क्योंकि यहाँ सम्यक् विनिर्मित संघटना के हेतु से ही ऐसा किया गया है। इसका स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि लेखक ने अपने इस सुव्य-वस्थित ग्रंथ में काव्यविद्या के विभिन्न लेखकों के पारस्परिक मतों का बड़ी कुशलता से खंडन करने का श्रेय ग्रहण करने का यत्न किया है। किंतु अधिकतर टीकाकार इस बात में एकमत हैं कि मम्मट से ग्रंथ का जो अंश अधूरा रह गया था, उसे किसी अन्य व्यक्ति ने पूरा किया और सहलेखकत्व के सभी चिह्न बड़ी

---

1. 'काव्यप्रकाश' में दस उल्लास हैं, जिनमें कारिका, वृत्ति तथा उदाहरण दिए गए हैं। संक्षिप्त विषय-विवरण इस प्रकार है— (i) काव्य का उद्देश्य, उत्पत्ति और परिभाषा तथा उत्तम, मध्यम और अधम भेद। (ii) अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना की व्याख्या और लक्षणा तथा व्यंजना के उपभेद। (iii) अर्थव्यंजकत्व-निरूपण। (iv) ध्वनि के अविवक्षितवाच्य तथा विवक्षितान्यपर-वाच्यभेद। रस-निरूपण। (v) गुणीभूत-व्यंग्य तथा उसके आठ उपभेद। (vi) चित्रकाव्य (vii) पद, वाक्य, अर्थ तथा रस के दोष-दोष को सुंदर कैसे बनाया जा सकता है। (viii) गुण तथा अलंकार में भेद। केवल तीन गुणों (माधुर्य, ओज तथा प्रसाद) को मान्यता दी गई है। गुणव्यंजक वर्ण-विन्यास। (ix) शब्दालंकार निरूपण। वक्रोक्ति (श्लेष तथा काकु), अनुप्रास (छेक, वृत्ति तथा लाट), यमक तथा उसके भेद, श्लेष, चित्र तथा पुनरुक्तवदाभास। 61 अर्थालंकारों की परिभाषा दी गई है।
2. इस टीका का नाम 'शितिकंठ-विवोधन' तथा 'काव्यप्रकाश-निदर्शन' दोनों है।
3. Rep. i. 21 इत्यादि।
4. Rep. ii. 13 इत्यादि। तुलना कीजिए. बूहलर, इंडियन एंटिक्वेटरी xiii, पृ० 30.
5. इत्येष मार्गो विदुषां विभिन्नोऽप्यभिन्नरूपः प्रतिभासते यत्, न तद् विचित्रं यदमुत्र सम्यग् विनिर्मिता संघटनैव हेतुः।

चतुरता से मिटा दिए। एक प्राचीनतम टीकाकार, माणिक्यचंद्र सूरि ने इस पद्य पर इस प्रकार टीका की है—'अथ चायं ग्रंथोऽन्येनारब्धोऽपरेण च समर्थित इति द्विखंडोऽपि संघटनावशादखंडायते'। रुय्यक ने अपनी 'संकेत' टीका में इस प्रकार कहा है—'एष ग्रंथो ग्रंथकृतानेन कथमप्यसमाप्तत्वादपरेण च पूरितावशेषत्वाद् द्विखंडोऽप्यखंडतया यदवभासते तत्र संघटनैव हेतुः।' जयंत भट्ट, सोमेश्वर, नरहरि सरस्वती-तीर्थ, कमलाकर, आनंद, ज्ञानेश्वर प्रभृति मम्मट के प्राचीन तथा नवीन टीकाकारों ने रुय्यक के उपर्युक्त मत का अनुसरण किया है। राजानक आनंद और भी स्पष्ट हैं। उन्होंने अपनी 'निदर्शन' नामक टीका में परपंरागत पद्य उद्धृत किया है।[1] जिसका तात्पर्य यह है कि ग्रंथ में परिकर-अलंकार के विवेचन तक (x. 32) का अंश मम्मट ने लिखा था तथा अंतिम अध्याय का अवशिष्ट अंश अलक, अलट अथवा अल्लट[2] ने पूरा किया था।

'काव्यप्रकाश' के सहलेखकत्व का कथन एक स्वतंत्र ग्रंथ से भी पुष्ट होता है। अर्जुनवर्मा ने, जो 13 वीं शती के प्रथम चरण में हुए हैं, अमरुशतक (सं० काव्यमाला 18, 1916, श्लोक 30) पर अपनी टीका में 'काव्यप्रकाश' vii. 14 के नीचे 'प्रसादे वर्तस्व'[3] का उद्धरण करते हुए इस प्रकार कहा है—"यथोदाहृतं दोषनिर्णये मम्मटालकाभ्याम्"। 'काव्य प्रकाश' के अंतर्गत दोषनिरूपण के उसी अध्याय में अमरु० 72 को 'जुगुप्साश्लील' नामक दोष के उदाहरण के रूप में उद्धृत किया गया है, क्योंकि उस पद्य में 'वायु' शब्द अश्लीलार्थक समझा गया है। इस तीखी आलोचना से अर्जुनवर्मा ने अमरु की रक्षा इस प्रकार की है— "किंतु ह्लादैकमयी-वर-लब्ध प्रसादौ काव्यप्रकाशकारौ प्रायेण दोषदृष्टी। येनैवंविधेष्वपि परमार्थसहृदयानंदपदेषु

---

1. कृतः श्रीमम्मटाचार्यवरैः परिकरावधिः।
प्रबंधः पूरितः शेषो विधायालट—(-लक अथवा ल्लट) सूरिणा॥

2. संभवतः इसी कारण से ग्रंथ की कुछ पांडुलिपियों के पृष्ठांत विवरण में मम्मट तथा अल्लट (अथवा अलक) लेखकों के नामों का उल्लेख हैं, यथा बोडलियन पांडुलिपि (हुलट्श संग्रह 172)। यह शारदा लिपि में काश्मीरी पांडुलिपि है। इसमें इस प्रकार कहा गया है—'इति काव्यप्रकाशाभिधानं काव्यलक्षणं समाप्तं, कृतिः श्री राजानक मम्मटाकालकयोः।' अथवा, स्टीन (Stein) जम्मू, कैटलॉग पांडुलिपि संख्या 1145 (तुलना कीजिए-भूमिका पृ० xiii इत्यादि), 1173. तथा देखिए, उपर्युक्त पृ० 145-146, पा० टि० 4 पर निर्दिष्ट की गई एक प्राचीन पांडुलिपि का पृष्ठांत विवरण ZDMG. xvi, पृ० 477-90 में वी० एस० सुक्थंकर ने 'काव्यप्रकाश' के दो लेखकों की बात स्वीकार की है।

3. शार्ङ्गधर 3565 में यह पद्य चंद्रक-रचित माना गया है। इस प्रश्न पर देखिए, काणे, इंडियन एंटिक्वेटरी, 1911 पृ० 208.

सरसकविसंदर्भेषु दोषमेव साक्षात्कुरुताम् ।" ये दोनों अंश, जिनमें 'काव्यप्रकाश' के द्वि-लेखकत्व का उल्लेख है, विशेष रूप से अध्याय vii को परिलक्षित करते हैं। उसमें काव्यदोषों का निरूपण किया गया है। यदि ऐसा मान लिया जाय कि इन टिप्पणियों से किसी विशेष अध्याय की रचना में सहयोग परिलक्षित नहीं होता, अपितु सह-लेखकत्व ही निर्दिष्ट होता है, तो इससे यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अल्लट (अथवा अलक) ने परंपरा के अनुसार न केवल 10 वें वरन् 7 वें अध्याय[1] की रचना में भी सहयोग दिया था।

(३)

नाम के तीन रूपों, अलक, अलट तथा अल्लट में से अंतिम नाम, जो स्टीन (Stein) की जम्मू की पांडुलिपि में दिया गया है, अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है।

काश्मीरी नामों में 'ट' प्रत्यय बहुत प्रसिद्ध है। स्टीन (Stein) ने कहा है कि 'काश्मीरी पंडितों में नाम के इसी रूप की परंपरा प्रचलित है', यद्यपि 'काव्यप्रकाश' के द्वि-लेखकत्व से वे खूब परिचित हैं।[2] किंतु 'अलक' भी एक काश्मीरी नाम का रूप है। यह अल्लट अथवा अलक वही राजानक अलक माने जाते हैं, जिन्होंने रत्नकंठ के उल्लेखानुसार रुय्यक पर एक टीका लिखी है।[3] पीटर्सन ने इन दोनों लेखकों की अभिन्नता का सुझाव प्रस्तुत किया था, किंतु स्टीन (Stein) ने उसका विरोध किया। परंतु यदि इस अभिन्नता को स्वीकार कर लिया जाय तो अलक को रत्नाकर के 'हरविजय' पर 'विषमपदोद्योत' नामक टीका [4] का रचयिता मानना पड़ेगा। इस टीका में अलक को राजानक जयानक का पुत्र बताया गया है। यह विचित्र प्रतीत होता है कि 'काव्यप्रकाश' के पूरक, अल्लट ने रुय्यक पर टीका लिखी, जबकि उन्होंने स्वयं उसी ग्रंथ पर टीका लिखी थी। इस प्रकार, दोनों लेखकों ने एक दूसरे के पाठ पर टीका लिखी थी,

---

1. जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1927 में, एच० आर० दिवेकर ने कहा है कि मम्मट ने परिकर अलंकार तक केवल कारिकाओं की रचना की थी तथा शेष कारिकाएं तथा संपूर्ण वृत्ति के रचयिता अलक हैं। इनके तर्क विश्वसनीय नहीं हैं।
2. देखिए जम्मू कैटलॉग पृ० 23 इत्यादि। स्टीन ने कहा है कि नाम का अल्ल रूप पंडित राजानक रत्नकंठ द्वारा शक संवत् 1570 (1648 ई०) में रचित काव्यप्रकाश संकेत की बढ़िया भोजपत्र-पांडुलिपि में भी मिलता है।
3 पीटर्सन ii पृ० 17 इत्यादि।
4. i पृ० 13-17, तुलना कीजिए, बूहलर-काश्मीर रिपोर्ट पृ० 45। 50 अध्याय पर्यंत यह ग्रंथ काव्यमाला 22 में मुद्रित हुआ है।

और यदि वास्तव में ऐसा ही हो तो रुय्यक के ग्रंथ में इस तथ्य का उल्लेख होना चाहिए था। उन्होंने वैसे तो 'काव्यप्रकाश' के द्वि-लेखकत्व का उल्लेख किया है, किंतु पूरक के नाते अल्लट के नाम का कहीं उल्लेख नहीं किया।[1]

(४)

बंगाल में मुख्य रूप से यह परंपरा है, और 'काव्यप्रकाश' के दो बहुत अर्वाचीन टीकाकारों[2] बलदेव विद्याभूषण तथा महेश्वर न्यायालंकार ने इसका समर्थन भी किया है कि कारिकाओं (यहाँ उन्हें सूत्र कहा गया है)[3] के रचयिता भरत थे एवं गद्य-वृत्ति के रचयिता मम्मट थे तथा स्वयं भरत ने अग्नि-पुराण की सामग्री का प्रयोग किया हैं।

'अग्नि-पुराण' के विषय में अंतिम कथन बिल्कुल निराधार है और ऐतिहासिक कल्पना से शून्य अर्वाचीन लेखकों की कपोलकल्पना मात्र है। वे पुराणों की प्राचीनता को बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं। भरत द्वारा कारिकाओं की रचना की बात एकदम अप्रामाणिक है। इस काल्पनिक बात को स्वीकार नहीं किया जा सकता। हेमचंद्र (टीका पृ० 109=काव्यप्रकाश v. 1-2b) ने पहली शती के प्रथम चरण में मम्मट को कारिकाओं का रचयिता माना है तथा जयरथ, विद्याधर, मल्लिनाथ, कुमारस्वामी तथा अप्पय्य जैसे परवर्ती लेखकों तथा टीकाकारों

1. 'काव्यप्रकाश' की एक पांडुलिपि के पृष्ठांत विवरण में कई नाम मिला दिए गए हैं। इस पांडुलिपि के अंतर्गत ग्रंथ पाठ तथा रुय्यक की 'संकेत' नामक टीका भी सम्मिलित है। नाम इस प्रकार मिले हुए हैं—इति श्रीमद्-राजानकाल्लट-मम्मट-रुचक-विरचिते निजग्रंथ-काव्यप्रकाश-संकेते प्रथम उल्लासः। पीटर्सन तथा स्टीन ने इसके आधार पर 'काव्य प्रकाश' को अल्लट, मम्मट तथा रुचक (अथवा रुय्यक) का संयुक्त संग्रह मान लिया। किंतु ऐसा मान लेना ठीक नहीं है, क्योंकि ये नाम केवल मूल ग्रंथ के लेखकों (अर्थात् मम्मट तथा अल्लट) तथा खंड के अंतर्गत—'संकेत' नामक टीका के लेखक को ही निर्दिष्ट करते हैं।

2. विद्याभूषण रचित मम्मट पर 'साहित्यकौमुदी' नामक टीका, सं० काव्यमाला 63, 1897, पृ० 2, तथा टीका; तथा टीका पृ० 1, तथा पाठ पृ० 189 (तुलना कीजिए, पीटर्सन ii. पृ० 10 इत्यादि); महेश्वर की टीका (सं० जीवानंद, 1876) पृ० 1. मम्मट के एक अन्य बंगाली टीकाकार, जयराम पंचानन ने भी इस बात का समर्थन किया है (देखिए, पीटर्सन ii पृ० 21-22, 107).

3. 'सूत्र' शब्द से यह मान लेना कि मूल ग्रंथ संभवतः सूत्र रूप में लिखा गया था, तथा बाद में उसे पद्यमय कारिका का रूप दिया गया था, ठीक नहीं है; क्योंकि टीकाकारों ने सामान्यतः मम्मट की कारिकाओं को ही सूत्र नाम से निर्दिष्ट किया है; यथा, 'प्रदीप' सं० काव्यमाला 1912; पृ० 378 'सूत्रे विभाग उपलक्षणपरः' पृ० 384; 'सूत्रे चोपलक्षणतया योज्यम्', '—प्रभा' पृ० 381 'सूत्राक्षरानुसारतः'; '—उद्योत' सं० चंदोरकर. x पृ० 123

ने इसका समर्थन किया है। 'प्रदीप' (i. 1.) पर टीका करते हुए वैद्यनाथ ने इस परंपरा का उल्लेख किया है और प्रत्यक्ष रूप में इसे अस्वीकार किया है।[1] मम्मट के अधिकतर टीकाकार इस तथ्य से उनसे सहमत हैं। इसके अतिरिक्त ग्रंथ-पाठ से भी इस परिकल्पना का निराकरण होता है।

भरत की एक उक्ति (vi.87, सं० ग्रोसे) कारिका iv. 4-5 को पुष्ट करती है और इससे कारिका के लेखक तथा 'नाट्यशास्त्र' के लेखक में भेद निर्दिष्ट होता है।[2] कारिका x.8b में 'माला तु पूर्ववत्' कहा गया है। संदर्भ के अनुसार इसका अर्थ यह है कि 'मालारूपक' पर 'मालोपमा' का नियम लागू होता है। पहली किसी भी कारिका में वह नियम नहीं बताया गया है, परंतु वृत्ति में उसकी व्याख्या की गई है। इससे स्पष्ट रूप से यह सूचित होता है कि कारिका तथा वृत्ति अविच्छिन्न हैं और उन्हें एक ही लेखक की कृति मानना चाहिए।[3]

इस परंपरा के मूल में भरत ऋषि के प्रति असीम आदर का भाव काम करता है, किंतु इसका एक कारण यह भी है कि स्वयं मम्मट ने भरत की कारिकाओं का अत्यधिक उपयोग किया है। यथा, भरत vi.15, 17-21 = मम्मट iv. 6-11. भरत के अतिरिक्त, मम्मट ने कई पूर्ववर्ती लेखकों की कारिकाओं तथा उदाहरण-पद्यों का समान रूप में उपयोग किया है। यथा, मम्मट vii. 10 में कारिका 'कर्णावतंसादि-पदे', ii.2.19 पर वामन की वृत्ति में 'संग्रह श्लोक' के रूप में मिलती है, मम्मट x.20 में 'आक्षेप' अलंकार की परिभाषा में 'लोचन पृ० 36 पर अभिनव के उद्धरण के अनुसार भामह ii.67a तथा 68a, अथवा उद्भट ii. 2a तथा 3a से ली गई है। मम्मट, iv. i तथा 3 स्पष्ट रूप में 'ध्वन्यालोक' ii.1

---

1. '—प्रभा' सं० काव्यमाला, पृ० 2.

2. तुलना कीजिए, वैद्यनाथ द्वारा i.1 पर टीका : ग्रंथ-कृदिति मम्मटभट्टाख्यस्य कारिकाकर्तु-र्निर्देशः—भरत-संहितायां कासांचित् कारिकानां दर्शनात् स एव ग्रंथकृदिति न युक्तम्, चतुर्थे—'कारणान्यथकार्याणि सहकारीणि' (iv. 4) इत्यादि कारिकार्थे 'यदुक्तं भरतेन' इति भरत-सम्मति-प्रदर्शनस्यासंगतित्वापत्तेः।

3. वैद्यनाथ ने इस अंश पर अपनी टीका (सं० काव्यमाला 1912, पृ० 329) में इसी मत का समर्थन किया है—'एतदेव सूत्रं सूत्रवृत्तिकृतोरेकत्वे ज्ञापकं, मालोपमायाः सूत्रावनुक्ताया वृत्तावेव कथनात्। झलकीकर की टीका, सं० बंबई संस्कृत सीरीज़, 1917, पृ० 599 के अंतर्गत समान मत से इसकी तुलना कीजिए। तथा देखिए, एस० के० डे, ABORI, vi.1925 (Some Problems of Skt. Poetics, कलकत्ता 1959, पृ० 131 इत्यादि) में 'माला तु पूर्ववत्'।

तथा 3 की व्यवस्था मात्र है। मम्मट ने रुद्रट के उदारहणों का भी अत्यधिक प्रयोग किया है।[1]

'काव्य-प्रकाश' के दस उल्लासों के अंतर्गत नाट्य को छोड़कर संस्कृत काव्य-विद्या के समस्त विषयों का विवेचन है। इसमें केवल 143 कारिकाएं हैं तथा विविध सूत्रों से उद्धृत 620 उदाहरण सकलित किए गए हैं। विषय की व्यापकता तथा विवेचन-संक्षेप गुणों के कारण संस्कृत-काव्य तथा अलंकार के क्षेत्र में 'काव्य-प्रकाश' को देशभर में एक प्रामाणिक तथा लोकप्रिय गौरव-ग्रंथ का स्थान प्राप्त है। इस ग्रंथ में प्रतिपाद्य विषय पर समस्त पूर्ववर्ती चिंतन का सार-संग्रह तथा एक उत्कृष्ट पाठ्य-पुस्तक के रूप में उसकी व्याख्या प्रस्तुत की गई है, यही कारण है कि इस ग्रंथ पर अनेक टीकाएं तथा पाठ्य-पुस्तकें लिखी गई हैं।[2]

ग्रंथ-सूची

(क) काव्यप्रकाश

संस्करण : यह ग्रंथ संपूर्ण अथवा खंडशः, सटीक अथवा टीका-रहित, अनेक बार प्रकाशित हो चुका है। यहां केवल महत्वपूर्ण संस्करणों का उल्लेख किया गया हैं।

पाठमात्र अथवा अर्वाचीन टीका सहित पाठ—(क) सं० नाथूराम, ऐजूकेशन प्रेस, कलकता, (संभवतः सर्वप्रथम संस्करण)। (ख) सं० महेशचंद्र न्यायरत्न, तात्पर्य विवरण नामक स्वलिखित टीका सहित, कलकत्ता 1866 (ग) सं० वामनाचार्य झलकीकर, स्वलिखित बालबोधिनी टीका सहित, बंबई संस्कृत सीरीज 1889, 1901, 1917 (घ) हरिशंकर शर्मा मैथिल रचित टीका सहित, सं० डी० आर० शास्त्री, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस 1926 (ङ) मल्लारि लक्ष्मण शास्त्री की बुधमनोरंजनी टीका सहित, मद्रास, 1891।

प्राचीन टीका सहित पाठ— (क) महेश्वर न्यायालंकार की 'आदर्श' टीका सहित, सं० जीवानंद विद्यासागर, कलकत्ता 1876 (तथैव सं० कलकत्ता संस्कृत सीरीज 1936)। (ख) कमलाकर भट्ट की टीका सहित, सं० पप शास्त्री, बनारस 1866 : (ग) गोविंद ठक्कुर की 'प्रदीप' टीका तथा वैद्यनाथ तत्सत् की 'प्रभा' टीका

1. सुक्थंकर ने ZDMG, lxvi पृ० 477 इत्यादि में उपर्युक्त कथन को प्रमाणित किया है।

2. इस ग्रंथ के अंतर्गत विविध विषयों की विवेचना के लिए एस० के० डे का, Some Problems पृ० 108-130 देखिए।

सहित, सं० निर्णयसागर प्रेस, बंबई, 1891, 1912। (घ) 'प्रदीप' तथा नागोजी भट्ट की 'उद्योत' टीका (अध्या० i, ii, vii तथा x) सहित, सं० डी० टी० चंदोरकर, पूना 1896, 1898, 1915। (ङ) 'पंडित' x-xiii, 1888-91 में 'प्रदीप' सहित। (च) 'प्रदीप' तथा 'उद्योत' (संपूर्ण) सहित, सं० बी० एस० अभ्यंकर, आनंदाश्रम प्रेस 1911. (छ) 'प्रदीप', 'उद्योत', 'प्रभा', 'संकेत' (रुचक-रचित) तथा नरहरि सरस्वती तीर्थ की 'बालचित्तानुरंजनी' (अध्या० i. ii. iii तथा x) सहित, सं० एस० एस० सुक्थंकर, बंबई, 1933, 1941. (ज) बलदेव विद्याभूषण की 'साहित्यकौमुदी' टीका सहित, सं० निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1897. (झ) माणिक्यचंद्र की 'संकेत' टीका सहित, सं० बी० एस० अभ्यंकर, आनंदाश्रम प्रेस, पूना 1921, सं० आर० शम शास्त्री, मैसूर, 1922 (ञ) चंडीदास की 'दीपिका' टीका सहित, सं० शिवप्रसाद भट्टाचार्य, सरस्वती भवन टेक्स्ट्स, बनारस 1933। (ट), श्रीविद्याचक्रवर्ती की 'संप्रदायप्रकाशिनी' तथा लौहित्य भट्ट गोपाल की 'साहित्य चूड़ामणि' टीका सहित, सं० एच० हरिहर शास्त्री, त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज, दो खंड, 1926, 1930। (ठ) भीमसेन दीक्षित की 'सुधासागर' टीका सहित, सं० नारायण शास्त्री खिस्ते, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस 1927। (ड) रुचक की 'संकेत' टीका सहित, सं० शिवप्रसाद भट्टाचार्य, कलकत्ता ओरिएंटल जर्नल ii, 1935 के अंतर्गत,। (ढ) श्रीधर की 'विवेक' टीका सहित, सं० शिवप्रसाद भट्टाचार्य, संस्कृत कालेज, कलकत्ता, 1959 भाग i (अध्याय i-iv)।

अनुवाद :—(क) अंग्रेजी-'पंडित' xviii-xxi, 1896-99 के अंतर्गत गंगानाथ झा द्वारा, पुनर्मुद्रित तथा पृथक् रूप में प्रकाशित, बनारस, 1899, 1918, द्वितीय संस्करण, इंडिया प्रेस, इलाहाबाद, 1925। (ख) अंग्रेजी-पांडुरंग पी० जोशी द्वारा (अध्या० i, ii तथा x) बंबई 1913।

यहां पर झलकीकर के 1917, बंबई संस्कृत सीरीज के संस्करण से पृष्ठों अथवा कारिकाओं के संदर्भ दिए गए हैं।

टीकाओं की सविस्तर विवेचना तथा उनकी सूची नीचे दी गई है।

(ख) शब्द-व्यापार-परिचय

संस्करण-एम० आर० तेलंग द्वारा, निर्णय सागर प्रेस, बंबई 1916. Cat xii पृ० 343-44 के अंतर्गत BORI पांडुलिपि में ग्रंथ का दूसरा नाम 'शब्द-व्यापार-विचार' दिया गया है।

मम्मट के टीकाकार

(१)

संस्कृत में शायद ही कोई ऐसा शास्त्रीय ग्रंथ है, जिस पर 'काव्यप्रकाश' से अधिक टीकाएं लिखी गई हैं। संस्कृत-पांडुलिपियों से संबंधित विविध सूचनाओं, ग्रंथ-सूचियों तथा पत्रिकाओं में इस ग्रंथ पर सत्तर से अधिक विभिन्न टीकाओं तथा भाष्यों का विवरण मिलता है। काव्यविधा के स्वतंत्र तथा प्रसिद्ध आचार्यों, रुय्यक तथा विश्वनाथ के अतिरिक्त, नैयायिक जगदीश तथा नरसिंह ठक्कुर, वैयाकरण नानोजी भट्ट, मीमांसक कमलाकर भट्ट, वैष्णव बलदेव विद्याभूषण तथा तांत्रिक गोकुलनाथ जैसे काव्यसाहित्येतर विद्वानों ने भी इस ग्रंथ पर टीकाएं लिखी हैं। अभी तक इनमें से कुछ टीकाएं ही मुद्रित हुई हैं। यहां केवल महत्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध टीकाकारों का उल्लेख किया गया है। ज्ञात होने पर उनकी तिथियां तथा अन्य उपलब्ध जानकारी भी दी गई है।

राजानक रुय्यक अथवा रुचक

इनकी टीका का नाम 'संकेत' है। ये अलंकार-सर्वस्व' के लेखक रुय्यक ही हैं (देखिए), 12 वीं शती का मध्यभाग।

स० शिवप्रसाद भट्टाचार्य, कलकत्ता ओरिएंटल जर्नल ii. 1935 के अंतर्गत, तथा खंडशः (i, ii, iii तथा x पर) सं० एस० एस० सुकथंकर, बंबई 1933, 1941।

माणिक्यचंद्र

इनकी टीका का नाम भी 'संकेत' है। इनकी तिथि संवत् 1216=1159-60 ई० है।[1] माणिक्यचंद्र गुजरात के जैन लेखक तथा कोटिकगण, वज्रशाख, राजगच्छ के मतावलंबी थे। इनकी टीका के अंतिम पद्यों में इनकी गुरु-वंशावली इस प्रकार दी गई है : आदि में शीलभद्र तथा उनके पश्चात् क्रमशः भरतेश्वर, वैरस्वामी वीरस्वामी), नेमिचंद्र तथा सागरेंदु। हमारे लेखक ने स्वयं को नेमिचंद्र तथा उनके उतराधिकारी सागरेंदु का शिष्य कहा है। पीटर्सन[2] ने इन सागरेंदु को पट्टन में संवत् 1252 (=1196 ई०) में अममस्वामी-चरित[3] की प्रथम प्रतिलिपि के लेखक सागरेंदु से अभिन्न माना है। हमारे माणिक्यचंद्र पार्श्वनाथ

---

1. पीटर्सन iii, उद्धरण पृ० 322, जहां तिथिवाला पद्य अपूर्ण है, किंतु 'काव्यप्रकाश' पर झलकीकर की भूमिका, पृ० 22, पर पूरा पद्य दिया गया है।
2. iv. पृ० cxxviii.
3. iii. App. p. 98.

चरित के लेखक माणिक्यचंद्र ही प्रतीत होते हैं। उन्होंने इस ग्रंथ की रचना समुद्र तट पर (v. 36) देवकूप (दिवबंदर) नामक स्थान पर संवत् 1276 =1220 ई०) में दीवाली के दिन समाप्त की थी। लेखक ने इस ग्रंथ में गुरु-वंशावली प्रद्युम्न सूरि से आरंभ की है। यह वंशावली 'संकेत' में दी वंशावली से ठीक मिलती है।[1] माणिक्य ने एक 'नलायन' अथवा 'कुबेरपुराण' भी लिखा है।[2] मेरुतुंग के 'प्रबंध चिंतामणि' नामक ग्रंथ में गुजरात-नरेश जयसिंह द्वारा संरक्षित माणिक्यचंद्र संभवतः एक अन्य व्यक्ति थे।[3]

पाठ-सहित संस्करण : (i) वसुदेव अभ्यंकर द्वारा, आनंदाश्रम प्रेस, पूना, 1921; (ii) आर० शर्मा शास्त्री, मैसूर 1922।

नरहरि अथवा सरस्वतीतीर्थ

इनकी टीका का नाम 'बाल-चित्तानुरंजनी' है। इन्होंने अपने 'स्मृतिदर्पण' तथा 'तर्क-रत्न' (इसकी 'दीपिका' टीका सहित) नामक दो ग्रंथों का भी उल्लेख किया है। औफ्रेक्ट के कथनानुसार नरहरि ने 'मेघदूत' पर भी एक टीका लिखी है। कैंब्रिज यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में उसकी एक प्रति विद्यमान है। स्टीन ने (पृ० 67) सरस्वतीतीर्थ की 'कुमारसंभव टीका' का उल्लेख किया है। मम्मट पर उनकी टीका में कहा गया है कि उनका जन्म 1298=1241-42 ई० में आंध्र प्रदेश में त्रिभुवन नामक स्थान पर हुआ। उन्होंने अपनी वंशावली वत्स-गोत्रोत्पन्न रामेश्वर से आरंभ की है तथा स्वयं को मल्लिनाथ तथा नागम्मा का पुत्र, तथा रामेश्वर के पुत्र नरसिंह का पौत्र कहा है। नारायण नामक उनके एक भाई थे। संन्यास लेने के पश्चात् उन्होंने सरस्वतीतीर्थ नाम ग्रहण किया और बनारस में अपनी टीका की रचना की।[4]

संस्करण : केवल एक अंश, (i,ii,iii तथा x पर) 'काव्यप्रकाश' के एस० एस० सुक्थंकर संपादित उपर्युक्त संस्करण के अंतर्गत, बंबई 1933, 1941, पांडुलिपि के उद्धरण : पीटर्सन i.74 तथा IOC. iii, पृ० 225 इत्यादि के अंतर्गत।

1. देखिए उद्धरण, पीटर्सन iii, परिशिष्ट पृ० 157-63; तथा vi. xci. 'षट्तर्की-ललना-विलास' पद्य, जिसमें उनके गुरु नेमिचंद्र का उल्लेख है, 'पार्श्वनाथचरित' तथा '—संकेत' में भी मिलता है। देखिए उद्धरण, पीटर्सन iii, पृ० 160 तथा 321।
2. पीटर्सन iii, परिशिष्ट, पृ० 357.
3. माणिक्यचंद्र की तिथि पर विवेचना के लिए, सोमेश्वर की टीका, पृ० 12-13, आर० सी० पारिख का संस्करण देखिए।
4. पीटर्सन i, पृ० 25 इत्यादि, 74।

जयंत भट्ट

इनकी टीका का नाम 'दीपक' अथवा 'जयंती' है। इन्होंने इसकी तिथि संवत् 1350 = 1294 ई० दी है। इन्होंने स्वयं को भरद्वाज का पुत्र कहा है। भरद्वाज गुजरात-नरेश शार्ङ्गदेव के मुख्यमंत्री के पुरोहित थे। शार्ङ्गदेव तृतीय बघेला सम्राट थे, जिन्होंने पट्टन में 1277-1297 तक राज्य किया।[1] परमानंद चक्रवर्ती तथा रत्नकंठ (अन्यत्र देखिए) ने जयंत का उल्लेख किया है। रत्नकंठ का कथन है कि मैंने अपनी टीका 'जयंती' के आधार पर लिखी है। हमारे जयंत भट्ट 'कादंबरीकथासार' (सं० काव्यमाला 11, 1888) के लेखक, अभिनंद के पिता, भट्ट जयंत अथवा जयंतक से भिन्न थे। आनंद एक प्राचीन लेखक थे, अभिनव (पृ० 142) ने उनका उल्लेख किया है। संभवतः वे 9 वीं शती में हुए हैं।

भंडारकर की रिपोर्ट 1883-84 परिशिष्ट 326 में उनके ग्रंथ का संक्षिप्त सार उपलब्ध है।

सोमेश्वर

इनकी टीका का नाम काव्यादर्श[2] (अथवा 'संकेत') है। अपने ही कथनानुसार ये भरद्वाज-गोत्रोत्पन्न भट्ट देवक के पुत्र थे। क्योंकि वे कन्नौज के पक्षपाती हैं, इसलिए संभवतः वे वहीं के निवासी थे। किंतु उन्होंने काश्मीर के प्रत्यभिज्ञा सिद्धांत को भी निर्दिष्ट किया है, इसलिए शायद वे काश्मीरी हों। पीटर्सन[3] तथा उनके अनुसार औफ्रेक्ट[4] ने उन्हें 'कीर्ति-कौमुदी' तथा 'सुरथोत्सव' का लेखक सोमेश्वर ही माना है और उनकी तिथि को 13 वीं शती के पूर्वार्द्ध में निर्धारित किया है। किंतु यह बात संदेहजनक है, क्योंकि इन सोमेश्वर के पिता का नाम कुमार बताया गया है। आर० सी० पारिख ने टीका की तिथि 1150 तथा 1160 ई० के मध्य निश्चित की है। हमारे सोमेश्वर ने भामह, रुद्रट, मुकुल, भट्ट नायक, भट्ट तौत, कुंतक (उल्लेख पृ० 135, 152, 302), वक्रोक्तिजीवितकार (पृ० 36), आचार्य भर्तृमित्र (पृ० 16) चंद्रिकाकार (पृ० 55) तथा यायावरीय (पृ० 224) का उल्लेख किया है। एक बड़े अर्वाचीन टीकाकार, कमलाकर ने भी सोमेश्वर का उल्लेख किया है।[5]

---

1. भंडारकर रिपोर्ट, 1883-84 पृ० 17-18. पीटर्सन ii, पृ० 17, 20।
2. औफ्रेक्ट i. 737 b में 'काव्यप्रकाशटीका' तथा 'काव्यादर्श' का उल्लेख है। केवल एक ही इंदराज होना चाहिए था, क्योंकि दोनों इंदराज इसी टीका को लक्षित करते हैं।
3. v. पृ० lxxxiv.
4. i. 102a, 737b.
5. भाऊ दाजी संग्रह (देखिए Cat. BRAS पृ० 45) में सोमेश्वर की एक टीका की पांडुलिपि में यह कहा गया है कि यह टीका संवत् 1283 की एक अन्य टीका से तैयार की गई है। अतएव यह टीका 1227 ई० से पहले की ही प्रतीत होती है।

संस्करण : आर० सी० पारिख, 2 खंड (पाठ सहित), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1959।

वाचस्पति मिश्र

इनके विषय में अथवा इनकी टीका के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है, किंतु चंडीदास ('प्राचीन' पृ० 131) ने, मम्मट पर विश्वनाथ ने तथा भीमसेन ने उनका उल्लेख किया है। उन्हें 'भामती' के लेखक, वाचस्पति मिश्र से भिन्न मानना चाहिए। वे संभवत: मम्मट से भी प्राचीन थे, क्योंकि 'भामती' के अंत में अपनी ग्रंथसूची में उन्होंने मम्मट पर किसी भी टीका को निर्दिष्ट नहीं किया है। शिवप्रसाद भट्टाचार्य (जर्नल ऑफ़ औरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, iii पृ० 259-63) का कथन है कि वाचस्पति मिश्र मिथिला-निवासी थे और लगभग 1200 ई० में हुए थे। किंतु हमारे वाचस्पति, 'आचार-चिंतामणि', 'विवाद-चिंतामणि' तथा अन्य ग्रंथों के रचयिता (देखिए, औफ्रेक्ट, i.559-60) मैथिली विधि-विशेषज्ञ से भिन्न व्यक्ति थे।

श्रीधर

चंडीदास (पृ० 29, 59, 62, 117) ने तथा मम्मट पर विश्वनाथ ने संधि-विग्रहिक उपाधि के साथ श्रीधर का उल्लेख किया है। उनकी टीका का नाम 'विवेक' है। 'विवेक' की एक पांडुलिपि 1405 ई० में मिथिला में तैयार की गई थी (शास्त्री, Cat. ASB. MSS vi.cclxxi)। श्रीधर की तिथि 13 वीं शती ई० के प्रथम चरण के आसपास हो सकती है। इस पांडुलिपि के पृष्ठांत विवरण के अनुसार लेखक को तर्काचार्य ठक्कुर कहा गया है। संभवत: वे मिथिला निवासी थे।

संस्करण : शिवप्रसाद भट्टाचार्य द्वारा भाग 1, अध्याय i-iv संस्कृत कालेज, कलकत्ता, 1959।

चंडीदास

इनकी टीका का नाम—'दीपिका' है। अपने मित्र लक्ष्मण भट्ट के अनुरोध पर इन्होंने इसकी रचना की थी। इस ग्रंथ की इंडिया आफिस पांडुलिपि बंगला लिपि में हैं। मुख्यत: उड़िया, मैथिली तथा बनारस के लेखकों ने (यथा, गोविंद ने अपने 'प्रदीप' पृ०21, 36, 202, 274 में, नरसिंह ठक्कुर, कमलाकर, वैद्यनाथ ने अपनी 'उदाहरणचंद्रिका' में, नागोजी भट्ट ने अपनी 'प्रभा', तथा विश्वेश्वर ने अपने 'अलंकारकौस्तुभ' (पृ० 125, 166) में उनके उद्धरण दिए हैं। वे 'साहित्य-

दर्पण' के लेखक विश्वनाथ के पितामह के कनिष्ठ भ्राता चंडीदास से भिन्न व्यक्ति हैं।[1] वे 1300 ई० के लगभग अथवा कुछ पहले हुए हैं। त्रिमलदेव (अन्यत्र देखिए) के पुत्र विश्वनाथ ने 1602 ई० की एक पांडुलिपि में उनका उल्लेख किया है। चंडीदास ने स्वरचित 'ध्वनि-सिद्धांत-ग्रंथ' का उल्लेख किया है। उन्होंने 'साहित्य-हृदय-दर्पण' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है। संभवतः यह भट्ट नायक का 'हृदय-दर्पण' नामक लुप्त ग्रंथ है।

संस्करण—शिवप्रसाद भट्टाचार्य द्वारा, सरस्वती भवन टैक्सट्स, बनारस 1933, उद्धरण IOC iii, 1141/491 (पृ० 320) के अंतर्गत।

विश्वनाथ

इन्होंने 'दर्पण' नामक टीका लिखी है। यह विश्वनाथ 'साहित्य-दर्पण' के लेखक विश्वनाथ (अन्यत्र देखिए) ही हैं। इस टीका में उन्होंने अपने 'साहित्य-दर्पण' का उल्लेख किया है। तिथि—14वीं शती का पूर्वार्द्ध। झलकीकर की भूमिका में इनका उद्धरण विद्यमान है।

भट्ट गोपाल

ये लौहित्य भट्ट गोपाल सूरि के नाम से विख्यात हैं। इनकी टीका का नाम 'साहित्य-चूड़ामणि' है। वामन पर 'कामधेनु' (सं० बनारस, पृ० 4, 8, 33) में कई बार इनका उल्लेख किया गया है। यदि ये भट्ट गोपाल, कुमारस्वामी द्वारा उल्लिखित (पृ० 93) गोपाल भट्ट ही हैं तो ये 15वीं शती से पहले हुए हैं। के० पी० त्रिवेदी के विचार से कुमारस्वामी के ये गोपाल भट्ट वही हैं, जिन्होंने 'रस-मंजरी' की टीका की है। अतएव, ये हरिवंश भट्ट द्राविड़ के पुत्र गोपाल भट्ट ही हैं, जिन्होंने रुद्र के श्रृंगारतिलक (पृ० 95 उपयुक्त) तथा भानुदत्त की 'रसमंजरी' (अन्यत्र देखिए) पर टीकाएं की हैं।

संस्करण—आर० हरिहर शास्त्री तथा के० सांबशिव शास्त्री द्वारा, 2 खंड, त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज 1926, 1930।

भास्कर

इन्होंने 'साहित्य-दीपिका' नामक टीका लिखी है। श्रीवत्सलांछन, गोविंद

1. देखिए, एच० पी० शास्त्री, Cat. ASB. MSS, vi.cclxvi ने 'दीपिका' के लेखक चंडीदास के विषय में विचित्र जानकारी दी है। वे बंगाल निवासी थे (मुख-कुल में उत्पन्न हुए)। उनका परिवार गंगातट पर उद्धारणपुर से चार मील पश्चिम में केतुग्राम नामक स्थान पर रहता था। शास्त्री के मतानुसार चंडीदास का साहित्य-रचना काल 15वीं शती का मध्य भाग अथवा कुछ पहले था। ...दूसरे चंडीदास उड़ीसा निवासी थे।

ठक्कर (पृ० 21), रवि (पीटर्सन, iii, पृ० 20), नरसिंह ठक्कुर, भीमसेन तथा रत्नकंठ (पीटर्सन, ii, पृ० 17) ने इनका उल्लेख किया है। नरसिंह ने इन्हें लाट भास्कर मिश्र कहा है। क्योंकि गोविंद ने (काव्यप्रदीप (पृ० 25, 204, 308, 329) इनका उल्लेख किया है, इसलिए ये 15वीं शती की समाप्ति से पूर्व हुए हैं। इनकी टीका का दूसरा नाम 'काव्यालंकार-रहस्य निबंध' है। इसका उद्धरण भित्रा 1681 में मिलता है।

परमानंद चक्रवर्ती

इनकी टीका का नाम 'विस्तारिका' है। इन्होंने मिश्र, दीपिकाकृत (जयंत भट्ट ?) तथा विश्वनाथ का उल्लेख किया है। क्योंकि इन्होंने विद्यानाथ के 'प्रतापरुद्रीय' का उल्लेख किया है, अतएव ये विद्यानाथ के पश्चात् ही हुए हैं। स्वयं कमलाकर, नरसिंह ठक्कुर, वैद्यनाथ (उदाहरण-चंद्रिका), नागोजी भट्ट, आनंद तथा रत्नकंठ ने इनका उल्लेख किया है। इनका प्राचीनतम उल्लेख संभवतः प्रभाकर भट्ट ने अपने 'रस प्रदीप' (पृ० 20) में 1583 ई० में किया है। ये संभवतः बंगाली नैयायिक थे। इन्होंने अपने गुरु ईसान न्यायाचार्य का नामोल्लेख किया है। तथा गंगेशोपाध्याय का 'तत्वचिंतामणि' को एक श्लेषार्थक पद्य[1] में लक्षित किया है। झलकीकर का विचार है कि उन्होंने गोदावरी लक्षणों के अंतर्गत 'चक्रवर्ती लक्षण' का निरूपण किया था। जैसा कि उनके उद्धरणों से प्रतीत होता है, परमानंद 14वीं शती के उत्तरार्द्ध से पूर्व नहीं हो सकते; वे संभवतः 16वीं शती[2] से पहले ही हुए हैं, जबकि गदाधर उस शती के अंत में हुए हैं। वे श्रीविद्या चक्रवर्ती से भिन्न व्यक्ति थे। श्रीविद्या चक्रवर्ती दक्षिण-भारतीय लेखक थे। उन्होंने रुय्यक (अन्यत्र देखिए) तथा मम्मट पर टीकाएं लिखी हैं। वे चक्रवर्ती के सामान्य नाम से भी विख्यात थे। परमानंद ने 'नैषध' (IOC. vii पृ० 1438) पर भी एक टीका लिखी है।

पीटर्सन के ii पृ० 108-9, तथा एच० पी० शास्त्री के Cat. ASB. MSS. vi. संख्या 4831/2492 में इनके उद्धरण दिए गए हैं।

श्रीविद्या चक्रवर्ती

इनकी संप्रदाय-प्रकाशिनी नामक टीका में रुय्यक पर एक स्वलिखित टीका का

---

1. अंधादोषांधकारेषु को वा न स्युर्विपश्चितः। नाहंतु दृष्टिविकलो धृतश्चिंतामणिः सदा॥
2. एच० पी० शास्त्री (Cat. ASB. vi. पृ० cclxix) का कथन है कि परमानंद कमलाकर भट्ट (17वीं शती का आरंभ) से पहले हुए हैं। जैसा कि बताया जा चुका है, उन्होंने उनके ग्रंथ से उद्धरण दिए हैं।

उल्लेख मिलता है। इनके विषय में अतिरिक्त जानकारी के लिए रुय्यक के अंतर्गत विवरण देखिए।

संस्करण—त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज, 1926, 1930, भट्ट गोपाल की उपर्युक्त टीका सहित।

गोविंद ठक्कुर

इनकी प्रसिद्ध टीका का नाम 'प्रदीप' है।[1] गोविंद ने एक 'उदाहरणदीपिका' भी लिखी है। यह स्टीन (पृ० xxviii, 60, 269) द्वारा उल्लिखित 'श्लोक-दीपिका'[2] ही है, जिसे नागोजी भट्ट ने निर्दिष्ट किया है। यह ग्रंथ पाठ के अंतर्गत उदाहरणार्थ पद्यों की टीका के रूप में बृहद् व्याख्या का पूरक है। 'प्रदीप' पर वैद्यनाथ तत्सत् ('प्रभा तथा उदाहरणचंद्रिका') तथा नागोजी भट्ट ('उद्योत') ने टीकाएँ लिखी हैं। गोविंद मिथिलानिवासी थे। रविकर परिवार में केशव तथा सोनीदेवी के ज्येष्ठ पुत्र तथा कवि श्रीहर्ष के बड़े भाई थे। यह श्रीहर्ष, जैसाकि पीटर्सन ने अनुमान किया है, 'नैषध'[3] के लेखक नहीं थे। इस सूचना के अतिरिक्त, गोविंद ने कहा है कि उन्होंने ज्येष्ठ सौतेले भाई रुचिकर से काव्य तथा साहित्य की शिक्षा प्राप्त की। उनकी ठीक तिथि तो ज्ञात नहीं है, किंतु गोविंद ने विश्वनाथ को अर्वाचीन कहा है तथा विश्वनाथ द्वारा मम्मट-कृत काव्य-परिभाषा की आलोचना तथा उनके द्वारा दी गई परिभाषा का उल्लेख किया है, किंतु उनका अथवा उनके 'साहित्यदर्पण' का कहीं नाम नहीं लिया है। संभवतः गोविंद 14 वीं शती के मध्य के पश्चात् ही हुए हैं। क्योंकि 1583 ई० में रचित प्रभाकर के 'रसप्रदीप' में उनका उल्लेख है, अतएव वे 16 वीं शती के अंतिम चरण से पूर्व ही हुए हैं। नरसिंह ठक्कुर, जो 1612 ई० के अधिक पश्चात् नहीं हुए हैं (उन्होंने स्वयं कमलाकर का उल्लेख किया है), वंशावली के आधार पर गोविंद से पांचवीं पीढ़ी में हुए हैं। इस प्रकार गोविंद की तिथि मोटे तौर से 15 वीं शती के अंत में निर्धारित की जा सकती है।[4]

1. टीका का पूरा नाम 'काव्यप्रकाश-प्रदीप' है, साधारणतया इसे 'काव्यप्रदीप' ही कहते हैं, पीटर्सन (i.27) ने नाम पर बेकार ही तर्क-वितर्क किया है।
2. इस ग्रंथ के दूसरे पद्य में 'काव्यप्रदीप' का निर्देश किया गया है।
3. उनके भाई का पद्य अध्याय x (पृ० 355) 'मद्भ्रातुः श्रीहर्षस्य' कथन के साथ उद्धृत किया गया है, किंतु उसी अध्याय (पृ० 351) में 'इति नैषध-दर्शनात्' 'नैषध' का नामोल्लेख किया गया है। इस अंतिम पद्य में उन्होंने अपने भाई श्रीहर्ष की मृत्यु पर शोक प्रकट किया है। यदि वे चाहते तो उसमें नैषध के कवि के रूप में उनका उल्लेख कर सकते थे, किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया।
4. देखिए, 'प्रदीप' के निर्णयसागर प्रेस के संस्करण की भूमिका तथा 'पंडित' xiii, पृ० 74 इत्यादि।

संस्करण—(1) पंडित के अंतर्गत, खंड x-xiii, 1888-89, रामशास्त्री भागवताचार्य द्वारा। (2) वैद्यनाथ की 'प्रभा' टीका सहित, काव्यमाला 24, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1891, 1912 (यहां 1912 के संस्करण के संदर्भ दिए गए हैं।) (3) उद्योत टीका सहित, आनंदाश्रम सीरीज, 1911 (4) उद्योत टीका (अध्या० i, ii, vii, x) सहित, चंदोरकर द्वारा, पूना 1889।

जयराम न्यायपंचानन

इनकी टीका का नाम 'तिलक' अथवा 'जयरामी' है। कुछ ग्रंथ-सूचियों में जयराम की 'रहस्यदीपिका' नामक टीका का भी उल्लेख है। यह इनकी टीका का अन्य नाम है। 'न्यायसिद्धांतमाला', 'न्यायकुसुमांजलि' तथा 'तत्वचिंतामणि-दीधिति' नामक ग्रंथों के टीकाकार से अभिन्न प्रतीत होते हैं। इन ग्रंथों से सूचित होता है कि ये नैयायिक थे। ये रामचंद्र (अथवा रामभद्र) भट्टाचार्य सार्वभौम के शिष्य तथा जनार्दन व्यास के गुरु कहे जाते हैं। श्री वत्सलांछन तथा भीमसेन ने इनका उल्लेख किया है। विश्वेश्वर ही ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने (न्यायपंचानन की उपाधि के साथ) अपने 'अलंकारकौस्तुभ' में पृ० 11, 23, 106, 127, 161, 162, 172, 263, तथा 327 पर इसके विस्तृत उद्धरण दिए हैं। जयराम निश्चित रूप से रघुनाथ शिरोमणि (16 वीं शती का आरंभ) के पश्चात् हुए हैं। उन्होंने इनकी 'तत्वचिंतामणि-दीधिति' पर टीका लिखी है। किंतु वे भीमसेन से पूर्व, अर्थात् 18 वीं शती के आरंभ से पहले हुए हैं। इनकी अधिक शुद्ध तिथि दी जा सकती है, क्योंकि इनकी 'न्यायसिद्धांतमाला' की तिथि संवत् 1750 (=1694 ई०) दी गई है। इन्हें कृष्णनगर (बंगाल) के राजा राम-कृष्ण का संरक्षण प्राप्त था। देखिए, एस० सी० विद्याभूषण, 'इंडियन लॉजिक', कलकत्ता 1921, पृ० 477 इत्यादि।

उद्धरण : पीटर्सन ii, पृ० 107, तथा मित्रा 1447.

श्रीवत्सलांछन[1] भट्टाचार्य तथा सुबुद्धि मिश्र

श्रीवत्स की टीका का नाम 'सारबोधिनी' है। हाल[2] (Hall) ने इसका उल्लेख किया है तथा 'महेश्वर अथवा श्रीवत्सलांछन'—रचित माना है।

1. इनके अन्य नाम हैं—श्रीवत्स शर्मा, श्रीवत्स वर्मा अथवा केवल वत्स-वर्मा।

2. 'वासवदत्ता' की भूमिका, पृ० 54.

सुबुद्धि मिश्र का अन्य नाम महेश्वर अथवा माहेश्वर था। औफ्रेक्ट[1] के कथनानुसार सुबुद्धि मिश्र ने वामन पर 'साहित्य-सर्वस्व' नामक टीका लिखी है। नरसिंह ठक्कुर, वैद्यनाथ (उदाहरणचंद्रिका), भीमसेन तथा रत्नकंठ ने सुबुद्धि को मम्मट के टीकाकार के रूप में भी निर्दिष्ट किया है। ये दोनों व्यक्ति भिन्न हैं, क्योंकि भीमसेन तथा रत्नकंठ ने श्रीवत्स तथा सुबुद्धि मिश्र का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। श्रीवत्स ने 'काव्यपरीक्षा'[2] नामक एक मौलिक ग्रंथ भी लिखा है। इसमें काव्य के सामान्य लक्षणों के साथ-साथ पांचों उल्लासों का निरूपण है और मुख्यतः मम्मट का अनुसरण किया गया है। संभवतः यह ग्रंथ सुबुद्धि मिश्र की 'तत्वपरीक्षा' (या 'शब्दार्थतत्वपरीक्षा') से भिन्न है। संभवतः यह मम्मट पर उनकी उस टीका का नाम है, जिसका रत्नकंठ ने उल्लेख किया है तथा कीलहॉर्न ने Central Prov. Cat पृ० 100 पर जिसका इंदराज किया है।[3] एच० पी० शास्त्री के Cat. ASB, MSS, vi, संख्या 4839/3515, पृ० 417-18 पर 'काव्यप्रकाश' की टीका के रूप में इसका उल्लेख है। 'काव्यामृत'[4] तथा रामोदय-नाटक नामक दो अन्य ग्रंथ भी श्रीवत्स-रचित माने गए हैं। मद्रास Cat. Tran. I, B, 362 में 'सिद्धांतरत्नमाला' (इसमें वेदांत के द्वैतवाद का खंडन किया गया है) नामक ग्रंथ का उल्लेख है। विष्णुध्वजाचार्य के पुत्र श्रीवत्सलांछन शर्मा को इसका रचयिता कहा गया है। क्योंकि श्रीवत्स ने विद्यानाथ का उल्लेख किया है, इसलिए वे 14 वीं शती से पूर्व नहीं हो सकते, किंतु वे 17 वीं शती से पहले ही

---

1. औफ्रेक्ट (ABod 208a; IOC, iii, 1130/566, पृ० 321) ने सुबुद्धि मिश्र को सुबुद्धिमिश्र-महेश्वर कहा है। उनके इस प्रकार के वर्णन से तथा हॉल के कथन से ऐसा मालूम होता है कि शब्द 'महेश्वर' नहीं बल्कि 'माहेश्वर' है और अभिनवगुप्त तथा विद्याधर की तरह शैव लेखक को परिलक्षित करता है। अतएव, यह संज्ञा दोनों लेखकों का गोत्रनाम है और इसी कारण उन दोनों को एक ही व्यक्ति समझ लिया गया है।

2. औफ्रेक्ट i. 778b, ii. 19b; IOC, iii पृ० 342 (पांडुलिपि पर 1550 ई० अंकित है)। इस ग्रंथ के पांच अध्यायों तथा मम्मट में परस्पर साम्य इस प्रकार है—(i) शब्दार्थनिर्णय=मम्मट 1-3 (ii) काव्यभेद=मम्मट 4-5 (iii) दोषनिर्णय=मम्मट 7 (iv) गुण-निरूपण=मम्मट 8-9 (v) अलंकार=मम्मट 10। कुछ अपवादों को छोड़कर लेखक ने अपनी टिप्पणी सहित मम्मट की कारिकाएं तथा उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। वास्तव में यह टीका मम्मट के ग्रंथ के कुछ अंशों पर ही लिखी गई है। मिथिला इंस्टीट्यूट, दरभंगा ने 1956 में इसको मुद्रित किया है।

3. देखिए पीटर्सन, ii, पृ० 17—जहां सुबुद्धि की टीका तथा 'तत्वपरीक्षा', दोनों का उल्लेख है।

4. औफ्रेक्ट i 103a ii 20a

हुए हैं, क्योंकि कमलाकर (1612 ई०) तथा जगन्नाथ (पृ० 39) ने उनका उल्लेख किया है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि कई स्थलों पर 'सारबोधिनी' ने परमानंद-लिखित 'विस्तारिका' का विस्तार अथवा संक्षेपण किया है। 'सारबोधिनी' (संख्या 107, Cat., xii, पृ० 115) की BORI पांडुलिपि के पृष्ठांत विवरण में श्रीवत्सलांछन भट्टाचार्य के पिता का नाम श्रीविष्णु भट्टाचार्य चक्रवर्ती था। मद्रास कैटलॉग xxii, 12827, तथा BORI पांडुलिपि कैटलॉग xii संख्या 54, पृ० 56-57 में 'काव्य-परीक्षा की पांडुलिपि के उद्धरण दिए गए हैं।

पंडितराज

रत्नकंठ ने इनका उल्लेख किया है। संभवतः ये धर्मशास्त्रज्ञ महेश ठक्कुर (देखिए, झा का 'काव्यप्रकाश' का अनुवाद, भूमिका पृ० ix) के शिष्य रघुनंदन राय ही थे। इन्हें जगन्नाथ पंडितराज मानना भ्रममूलक है।

स्टीन ने पांडुलिपि 1164 पृ० 60, 269 पर इनका उल्लेख किया है (औफ्रेक्ट i.19a)। स्टीन की पांडुलिपि केवल उल्लास ii तक ही है और मिश्र तथा प्रत्यभिज्ञाकार के अतिरिक्त उसमें किसी भी अधिकारी आचार्य का वर्णन नहीं है। झा की पांडुलिपि 1637 ई० में तैयार की गई थी।

रवि तथा रत्नपाणि

रवि ने 'मधुमति' नामक टीका की रचना की है। उसके अंतिम पद्य के कथनानुसार इन्होंने अपनी प्रिय पुत्री मधुमती के नाम पर अपनी टीका का नामकरण किया था। इन्होंने स्वयं को गौरी तथा मनोधर अथवा रत्नपाणि का पुत्र तथा अच्युत का पौत्र कहा है। अच्युत मिथिला के राजा शिवसिंह अथवा शिवसिद्ध के मंत्री थे (लगभग 15 वीं शती का मध्यभाग, IOC, iv पृ० 875 इत्यादि)। रत्नपाणि अथवा मनोधर ने मम्मट पर 'काव्यदर्पण' [1] नामक टीका भी लिखी है। उनके पुत्र ने इस टीका का उल्लेख किया है तथा स्वयं अपनी टीका की रचना उसी के आधार पर की है। भीमसेन ने पिता तथा पुत्र दोनों का उल्लेख किया है। कमलाकर तथा नरसिंह ने मधुमतिकार का उल्लेख किया है।

महेश्वर

इनकी उपाधि न्यायालंकार है। इनकी टीका का नाम—'आदर्श' अथवा 'भावार्थ-

1. देखिए-पीटर्सन iii, परिशिष्ट पृ० 332 'वहाँ इसका उद्धरण दिया गया है (विशेषतः श्लोक 5)। 'काव्यदर्पण' अथवा 'काव्यप्रकाशदर्पण' नामक इस ग्रंथ की एक पांडुलिपि मित्रा 3169 में निर्दिष्ट की गई है। लेखक का नाम मनोधर दिया गया है।

चिंतामणि' है। ये एक बंगाली लेखक थे। इन्होंने 'दायभाग' पर भी एक टीका लिखी थी। क्योंकि वैद्यनाथ ने इनका उल्लेख किया है, इसलिए इन्हें 17 वीं शती के मध्य में रखना चाहिए। संभवत: ये 17 वीं शती के आरंभ में हुए हैं।

संस्करण—जीवानंद विद्यासागर द्वारा कलकत्ता, 1876, तथा सं० कलकत्ता संस्कृत सीरीज 1936।

कमलाकर भट्ट

ये शर्मशास्त्री (Legist) होने के नाते अधिक प्रसिद्ध हैं। स्मृति तथा मीमांसा पर इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। ये बनारस के मराठा ब्राह्मण थे। रामकृष्ण भट्ट तथा उमा के पुत्र, दिनकर भट्ट के कनिष्ठ भ्राता, नारायण भट्ट के पौत्र तथा रामेश्वर भट्ट [1] के प्रपौत्र थे। राजा राजसिंह के मंत्री, गरीबदास के अनुरोध पर 'रामकल्पद्रुम' नामक ग्रंथ के रचयिता अनंत भट्ट, कमलाकर भट्ट के पुत्र थे। क्योंकि उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ निर्णयसिंधु पर संवत् 1668=1612 ई० अंकित किया है, इसलिए उनकी तिथि ज्ञात है। उन्होंने चार अध्याय पर्यंत 'रामकौतुक' नामक ग्रंथ भी लिखा है।

संस्करण—पप शास्त्री द्वारा, बनारस 1866. IOC. iii संख्या 1143/361, पृ० 327 में उद्धरण-सहित इस टीका का उल्लेख किया गया है।

राजानक आनंद

इनकी टीका का नाम 'निदर्शना' अथवा 'शितिकंठविबोधन' [2] है। हॉल ने 'वासवदत्ता' (पृ० 16) यह मानकर कि यह ग्रंथ शितिकंठ रचित

---

1. बनारस के भट्ट परिवार में कमलाकर के स्थान के लिए बी० एन० मांडलिक के व्यवहार-मयूख' सं० पृ० lxxvi में दी गई वंशावली देखिए। भंडारकर रिपोर्ट 1883-84 पृ० 50-1 भी देखिए। मीमांसा तथा स्मृति पर उन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। कुछ एक का उन्होंने अपनी टीका के अंत में उल्लेख किया है (देखिए औफ्रेक्ट i.80)। कहा जाता है कि उनके वंशज अब भी बनारस में विद्यमान हैं।

2. बूहलर (काश्मीर रिपोर्ट पृ० 69 पादटिप्पणी) के उल्लेखानुसार पृष्ठांत विवरण में ऐसा कहा गया है--इति श्रीमद् राजानकान्वयतिलकेन राजानकानंदकेन विरचितं काव्यप्रकाशनिदर्शनम्। किंतु स्टीन की जम्मू पांडुलिपि में विवरण इस प्रकार है—इति श्रीकाव्यदर्शन शितिकंठविबोधने काव्योद्देशदर्शनं प्रथमम्—अध्याय i के अंत का विवरण। पीटर्सन के विचार से संभवत: टीका का वास्तविक नाम 'निदर्शन' है। 'शितिकंठ-विवोधन' वैकल्पिक अथवा विवरणात्मक नाम है, जो शितिकंठ अथवा शिव से संबंधित है, जिसे टीका ने पाठ में सिद्ध किया है।

है तथा आनंद को समर्पित किया गया है, गलती की है। इस टीका के प्रथम पद्य[1] तथा अंतिम पृष्ठ के विवरण के कारण हॉल से ऐसी गलती हुई है,; किंतु ग्रंथ-लेखक ने स्वयं स्पष्टतया कहा है कि इस टीका का यह नाम इसलिए रखा गया है कि इसमें मम्मट के ग्रंथ के आलंकारिक अर्थ के अतिरिक्त शितिकंठ अथवा शिव-रहस्य की भी व्याख्या की गई है। संभवतः मम्मट स्वयं काश्मीरी शैव थे, किंतु इसमें संदेह नहीं कि आनंद अवश्य काश्मीरी थे। किंतु यह कहना कि ग्रंथ-पाठ इस प्रकार की व्याख्या लक्षित करता है, संदेहमूलक है। पृष्ठांत विवरण में 1665 ई० तिथि दी गई है। हॉल के विचार से यह ग्रंथ की पांडुलिपि के तैयार होने की तिथि है। स्टीन ने इस संबंध में इस प्रकार कहा है—'आनंद ने यह टीका 1665 ई० में लिखी थी। काश्मीरी पंडितों की परंपरा में वे अब भी राजानक रत्नकंठ के समकालीन तथा मित्र के नाते प्रसिद्ध हैं[2]। राजानक रत्नकंठ की एक ज्ञात तिथि 1648 ई० है। इस प्रकार आनंद की तिथि 17 वीं शती के दूसरे तथा तीसरे चरण में निर्धारित की जा सकती है। आनंद ने संभवतः 'नैषध' पर भी टीका लिखी थी।

उद्धरण—पीटर्सन (i. 74); तथा स्टीन के जम्मू कैटलॉग पृ० xxvii।

राजानक रत्नकंठ

इनकी टीका का नाम 'सारसमुच्चय' है। टीका के नाम तथा लेखक के अपने कथन से ही प्रकट होता है कि इसमें 'जयंत प्रभृति लेखकों की मुख्य टीकाओं का सार-संग्रह किया गया है।' इस प्रकार इन्होंने कुछ पूर्ववर्ती प्रसिद्ध टीकाओं का उल्लेख किया है।[3] इनमें (भास्कर-रचित) 'साहित्य-दीपिका', (श्रीवत्स-रचित) 'सार-बोधिनी', सुबुद्धि मिश्र तथा पंडितराज की टीकाएँ, (परमानंद रचित) 'विस्ता-रिका', (गोविंद-रचित) 'प्रदीप', और 'तत्वपरीक्षा' तथा 'रसरत्नदीपिका' नामक दो अन्य टीकाओं का उल्लेख है। स्टीन (भूमिका पृ० vii इत्यादि) के कथना-

---

1. प्रणम्य शारदां काव्यप्रकाशो बोधसिद्धये।
पदार्थविवृतिद्वारा शितिकंठस्य दर्श्यते॥
झलकीकर का पाठ है—स्वशिष्येभ्यः प्रदर्श्यते, तथा उनकी टिप्पणी है—अत्र शितिकंठस्य दर्श्यते इति पाठो विवरणकारैरंगीकृतः।

2. जम्मू कैटलॉग पृ० xxvii पा० टि० तिथि कलि संवत् (युग ?) 4766 दी गई है।

3. पीटर्सन, रिपोर्ट ii, पृ० 17 इत्यादि पर इनके द्वारा उल्लिखित लेखकों की सूची दी गई है।

नुसार इन्हीं रत्नकंठ ने 'राजतरंगिणी' की मूल-पांडुलिपि (Codex archetypus) तैयार की थी। इन्होंने 1648 में रुय्यक के 'संकेत' की पांडुलिपि, 1655 में अमर पर रायमुकुट की टीका तथा 1673 ई० में त्रिलोचनदास की 'कातंत्रपंजिका' की अनुलिपि तैयार की थी। यह रत्नकंठ, धौम्यायन गोत्रोत्पन्न शंकरकंठ के पुत्र तथा अनंतकवि के पौत्र रत्नकंठ ही हैं। इन्होंने 1681 ई० में 'स्तुतिकुसुमांजलि-टीका' ('शिष्य-हिता' नामक) की रचना की तथा 1672 ई० में 'युधिष्ठिर-विजय-काव्यटीका' (औफ्रेक्ट i, 489 b; स्टीन, उपर्युक्त ग्रंथ) लिखी। 1648 से 1681 ई० की अवधि ही इनका साहित्य-रचना काल रहा है।

इनके उद्धरण, पीटर्सन, रिपोर्ट ii, पृ० 129 (तथा ii, 16 इत्यादि) में दिए गए हैं। वहाँ इनके द्वारा निर्दिष्ट लेखकों की सूची भी दी गई है; BORI पांडुलिपि संख्या 113 (कैटलाग xii पृ० 121)।

नरसिंह ठक्कुर

इनकी टीका का नाम है 'नरसिंह मनीषा'। ये गोविंद ठक्कुर के वंश में हुए हैं तथा उनके पश्चात् पाँचवीं पीढ़ी में हुए हैं। अर्वाचीनतम लेखक, जिनका इन्होंने उल्लेख किया है, मधुमतिकार (रवि) तथा कमलाकर हैं। भीमसेन ने 'न्यायविद्यावागीश' की उपाधि के साथ इनका उल्लेख किया है। तिथि 1620 1700 ई० के बीच।

पांडुलिपि : औफ्रेक्ट i.101b, ii. 19 b.

वैद्यनाथ तत्सत्

इन्होंने दो टीकाओं की रचना की है—(1) गोविंद के 'प्रदीप' पर 'प्रभा' तथा (2) 'काव्यप्रकाश' के उदाहरण-पद्यों पर 'उदाहरणचंद्रिका'। दूसरी टीका की तिथि अंतिम पद्य के अनुसार, 1740=1684 ई०[1] है। इन्होंने अप्पय्य के 'कुवलयानंद' (अन्यत्र देखिए) पर 'अलंकारचंद्रिका' नामक टीका भी लिखी है। ये महादेव तथा वेणी के पुत्र तथा नागोजी भट्ट के शिष्य मैथिल वैयाकरण वैद्यनाथ से भिन्न हैं। हमारे वैद्यनाथ, तत्सत् वंश के रामचंद्र (अथवा रामबुध) भट्ट के पुत्र तथा विट्ठल भट्ट के पौत्र कहे जाते हैं। नागोजी ने स्वयं उनका उल्लेख किया है। हमारे वैद्यनाथ ने चंडीदास, सुबुद्धि मिश्र, दीपिकाकृत (गोविंद-रचित 'उदाहरणदीपिका'), चक्रवर्ती तथा महेश का उल्लेख किया है तथा स्वयं भीमसेन

1. यह तिथि IOC पांडुलिपि कैटलॉग iii, पृ० 322 संख्या 1151 में दी गई है।

ने इनका उल्लेख किया है। संभवत: ये जयदेव के 'चंद्रालोक' तथा नागोजी के 'परिभाषेंदुशेखर' (सं० आनंदाश्रम, पूना, 1913) पर टीका करनेवाले वैद्यनाथ पांडुगुंड नहीं हैं।

संस्करण : 'प्रभा' सं० 'प्रदीप' सहित, दुर्गाप्रसाद तथा के० पी० परब द्वारा, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1891, 1912 (यहाँ संदर्भ 1912 के सं० से दिए गए हैं)।

'उदाहरण-चंद्रिका', उद्धरण : पीटर्सन रिपोर्ट ii, पृ० 108 में SCC.vii,54 में IOC iii,1151/943 b में।

भीमसेन-दीक्षित

इनकी टीका का नाम 'सुधासागर' अथवा 'सुधोदधि' है।[1] इस पर संवत् 1779=1723 ई० अंकित है।[2] भीमसेन कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। स्वयं को इन्होंने शिवानंद का पुत्र तथा मुरलीधर का पौत्र कहा है। इनकी वंशावली इस प्रकार है—गंगादास-वीरेश्वर-मुरलीधर-शिवानंद-भीमसेन। इन्होंने दो मूल-ग्रंथ, 'अलंकार-सारोद्धार' तथा 'कुवलयानंदखंडन'[3] भी लिखे हैं। दूसरा ग्रंथ अप्पय्य के उसी नाम के ग्रंथ के विरुद्ध है। मम्मट पर इनकी टीका में दोनों ग्रंथों का उल्लेख है। दूसरा ग्रंथ अजितसिंह (1680-1725 ई०) के राज्य में जोधपुर में लिखा गया था। भीमसेन ने 'रत्नावली'[4] पर भी एक टीका लिखी है। इन्होंने अनेक टीकाकारों के नाम लिए हैं, यथा—चंडीदास, भास्कर, अच्युत, रत्नमणि, रवि, जयराज पंचानन, वाचस्पति मिश्र, चक्रवर्ती, रुचि मिश्र, पक्षधर उपाध्याय, देवनाथ तर्कपंचानन, श्रीवत्सलांछन, गोविंद तथा नरसिंह ठक्कुर, महेश अथवा महेश्वर तथा वैद्यनाथ।

संस्करण—नारायण शास्त्री खिस्ते द्वारा, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1927। उद्धरण: पीटर्सन i, पृ० 94, तथा 'काव्यप्रकाश' का झलकीकर का संस्करण।

---

1. पीटर्सन के उद्धरण (i, पृ० 94) में 'सुखोदधि' का रूप 'सुधोदधि' होना चाहिए।
2. पीटर्सन रिपोर्ट i, पृ० 94।
3. ग्रंथ का दूसरा नाम 'अलंकार सार स्थिति' है। इसकी एक पांडुलिपि का उल्लेख मित्रा 4084 (औफ्रेक्ट ii. 23a) में किया गया है। BORI (कैटलॉग xii, संख्या 156, पृ० 179-80—इसमें इसकी उल्लेख-सूची दी गई है) में इस ग्रंथ की एक अशुद्ध तथा अपाठ्य पांडुलिपि का उल्लेख है। तथा देखिए एच० पी० शास्त्री, Cat. ASB MSS.vi, संख्या 4895/3147, पृ० 456।
4. औफ्रेक्ट i. 492.

बलदेव विद्याभूषण

ये केवल विद्याभूषण के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनकी टीका, जिसे इन्होंने 'भरतसूत्र-वृत्ति' कहा है, का नाम 'साहित्यकौमुदी' है। इन्होंने मम्मट की कारिकाओं को भी 'सूत्र' कहा है। इन्होंने अपनी टीका पर स्वयं 'कृष्णानंदिनी' नामक 'टिप्पणी' लिखी है। इस ग्रंथ की योजना तथा विषय-सामग्री 'काव्यप्रकाश' के अनुरूप है, किंतु शब्द तथा अर्थ-अलंकारों पर ग्यारहवाँ अध्याय अतिरिक्त है। स्टीन ने (पृ० 59, 268) व प्रभा-पर्यंत 'काव्यकौस्तुभ' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है और उसे एक वैष्णव विद्याभूषण-रचित माना है। संभवतः ये हमारे ही लेखक हैं (देखिए भूमिका, 'साहित्य-कौमुदी', काव्यमाला संस्करण, तथा औफ्रेक्ट (i. 101a, ii. 19b, iii. 22b); इस ग्रंथ के विषय में अल्प-प्रसिद्ध लेखकों के विवरण के अंतर्गत देखिए। बलदेव, राधादामोदरदास ('साहित्यकौमुदी' का अंतिम पद्य तथा उसकी टीका) तथा गोपालदास (उपनाम, रसिकानंद, श्लोक 1 की टीका) के शिष्य तथा उद्धवदास के गुरु थे। ये वैष्णव तथा चैतन्य के अनुयायी थे। इन्होंने कई वैष्णव ग्रंथ लिखे हैं। उड़ीसा-निवासी होने पर भी ये बंगाल के परवर्ती वैष्णव संप्रदाय के समर्थक थे। इन्होंने मध्व तथा चैतन्य के मतानुयायियों में मेलमिलाप का प्रयत्न किया। इस संबंध में एस० के० डे रचित Vaishnawa Faith and Movement in Bengal कलकत्ता 1942, पृ० 11-12 देखिए। इनकी उपर्युक्त टीका के अतिरिक्त इनके मुख्य ग्रंथ, वेदांतसूत्र पर 'गोविंदभाष्य' तथा 'प्रमेय-रत्नावली' हैं। ये 18 वीं शती के आरंभ में हुए जयपुर-नरेश जयसिंह के समकालीन माने जाते हैं। औफ्रेक्ट के कथनानुसार 'उत्कलिका-वल्लरी' पर इनकी टीका 1765 ई० में लिखी गई थी। इन्होंने अपनी 'साहित्यकौमुदी' के प्रथम पद्य के अंतर्गत एक श्लेष में उत्कल अथवा उड़ीसा के गजपति प्रतापरुद्र का उल्लेख किया है। अपनी 'टिप्पणी' में उन्होंने इसकी व्याख्या भी की है।

संस्करण—'कृष्णानंदिनी' सहित, सं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1897; पीटर्सन ii, 10 में इसी ग्रंथ का उल्लेख 'भरतसूत्रवृत्ति' के नाम से किया गया है।

नागोजी अथवा नागेश भट्ट

इन्होंने 'प्रदीप' पर 'लघु-उद्योत' तथा 'बृहत् उद्योत' नामक टीकाएँ

लिखी हैं। पाठ-गत उदाहरणों पर इन्होंने 'उदाहरण-दीपिका' अथवा—'प्रदीप' नामक टीका भी लिखी है (स्टीन, पृ० xxvii, 268)। ये 18 वीं शती के प्रथम चरण में हुए हैं। इन्होंने जगन्नाथ (अन्यत्र देखिए) पर एक टीका के अतिरिक्त अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं। ये जगन्नाथ से दो पीढ़ी बाद में हुए हैं। आगे देखिए, जगन्नाथ के विवरण के अंतर्गत।

संस्करण—'उद्योत' 'प्रदीप' सहित, आनंदाश्रम सीरीज, 1911, सं० पाठ तथा 'प्रदीप' सहित (अध्या० i, ii, vii तथा x) चंदोरकर द्वारा, पूना 1889, 1915।

'उदाहरण दीपिका', औफ्रेक्ट ii, 19b (उद्धरण : स्टीन, पृ० 268-69 नाम-'प्रदीप'।)

(२)

मम्मट के कुछ अल्प-प्रसिद्ध टीकाकारों के नाम इस प्रकार हैं।

1. कलाधर : 'कारिकावली' कारिकाओं का सारांश है KBod 501.
2. कल्याण उपाध्याय : टीका का नाम अज्ञात है, झा ने 'काव्यप्रकाश' के अपने अनुवाद, पृ० ix पर इसका उल्लेख किया है।
3. कृष्ण द्विवेदी : टीका 'मधुररसा; औफ्रेक्ट i. 101b।
4. कृष्ण शर्मा : 'रस प्रकाश' HSP iii संख्या 58 (उद्धरण, केवल 5 वें अध्याय तक है); कैटलॉग ASB.MSS, vi, संख्या 4842/6581, पृ० 419-20 (केवल 20 पृष्ठों तक; पहला तथा दूसरा अध्याय मात्र है)।
5. कृष्णमित्राचार्य : रामनाथ के पुत्र तथा देवीदत्त के पौत्र। ये नैयायिक थे। इनकी रचनाओं के लिए देखिए औफ्रेक्ट i. 121b—'टीका' औफ्रेक्ट i. 101b।
6. गदाधर चक्रवर्ती भट्टाचार्य : 'टीका', मित्रा 1527 SCC. vii 13) रघुनाथ शिरोमणि के 'तत्वचिंतामणि-दीधिति' पर अपनी टीका के लिए गदाधर बहुत प्रसिद्ध हैं। यह ग्रंथ बंगाल के नव्य न्याय का मानक ग्रंथ है। ये हरिराम तर्कालंकार के शिष्य थे तथा 16वीं शती के अंत और 17 वीं शती के आरंभ में हुए थे।
7. गुणरत्न गणि : टीका—'सारदीपिका' (BORI कैटलॉग पांडुलिपि xii, पृ० 112) पांडुलिपि पर संवत् 1890 अंकित है।
8. गोकुलनाथ उपाध्याय (मैथिल स्मार्त)—इनकी 'टीका' झा के उपर्युक्त ग्रंथ पृ० ix पर निर्दिष्ट की गई है। अल्प-प्रसिद्ध लेखकोंवाले अध्याय के अंतर्गत आगे देखिए।

9. गोपीनाथ : टीका 'सुमनोमनोहरा'। औफ्रेक्ट i. 101b. इन्होंने विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' (अन्यत्र देखिए) पर भी टीका लिखी है। 17 वीं शती का अंतिम-भाग।

10. जगदीश तर्कपंचानन भट्टाचार्य : टीका—'रहस्य-प्रकाश'। औफ्रेक्ट i. 101b (मित्रा 1651)। पांडुलिपि इनके शिष्य ने शक 1579 = 1657 ई० में तैयार की थी। ये जगदीश तर्कालंकार नाभक नवद्वीप (बंगाल) निवासी भावानंद तथा (रामभद्र) सार्वभौम के शिष्य प्रसिद्ध नैयायिक से भिन्न हैं।

11. जनार्दन विबुध : अनंत के शिष्य। टीका—'श्लोक-दीपका'। औफ्रेक्ट i. 101b, ii. 19b (स्टीन 61, अपूर्ण)। इन्होंने 'रघु' तथा 'वृत्तरत्नाकर' पर भी टीकाएँ लिखी हैं। ये जयराम न्यायपंचानन के शिष्य, विट्ठल व्यास के पौत्र, बाबूजी व्यास के पुत्र, प्रसिद्ध लेखक जनार्दन व्यास से भिन्न हैं।

12. तिरुवेंकट : चिन्नतिम्म के पुत्र तथा तिरुमल गुरु के पौत्र दक्षिण-भारतीय लेखक। इन्होंने भट्ट-गोपाल की टीका का उल्लेख किया है। Madras Trm Cat. A 318.

13 देवनाथ तर्कपंचानन : टीका—'काव्यकौमुदी'। रचना-तिथि-संवत् 1717 (=1661) bori mss Cat, xii पृ० 81. पिता का नाम गोविंद था। कमलाकर तथा भीमसेन ने इनका उल्लेख किया है। भट्टि x, 73 पर भरत मल्लिक ने एक देवनाथ का उल्लेख किया है। हमारे देवनाथ बंगाल के तर्कशास्त्री थे। इन्होंने विश्वनाथ की विरोधी-आलोचना के सम्मुख मम्मट-मत का समर्थन किया। उद्धरणों के लिए देखिए—Madras Trm ii, C, 1570; तथा A, 819. देखिए, मित्रा 1447। इसमें एक 'एकषष्ट्यलंकार-प्रकाश' का उद्धरण है तथा देवनाथ और जयराम के ग्रंथों का सूत्र-ग्रंथों के रूप में उल्लेख किया गया है।

14. नरसिंह सूरि : तिम्मजी मंत्री के पुत्र तथा रंगप्रभु के पौत्र। टीका—'ऋजुवृत्ति' (केवल कारिकाओं पर) औफ्रेक्ट ii, 19b, Madras Trm B. 381.

15. नागराज केशव : टीका 'पदवृत्ति'। औफ्रेक्ट i, 101b।

16. नारायण दीक्षित: रंगनाथ दीक्षित के पुत्र तथा बालकृष्ण के भ्राता।

रंगनाथ ने 'विक्रमोर्वशी' पर अपनी टीका 1656 ई० में समाप्त की थी, इसलिए उनकी तिथि 17 वीं शती के अंत में निर्धारित कर सकते हैं।—'टीका,' औफ्रेक्ट i. 101b (देखिए, 292a : AFI पृ० 155 ।)

17. भानुचंद्र : 'टीका' औफ्रेक्ट i. 101b इन्होंने 'दशकुमार' पर भी टीका की रचना की है।

18. भवदेव : मिथिला-निवासी कृष्णदेव के पुत्र तथा भवदेव ठक्कुर के शिष्य। टीका—'लीला', औफ्रेक्ट ii. 20a; मद्रास कैटलॉग 12824-25 (उद्धरण). । इन्होंने 'वेदांतसूत्र' पर भी टीका लिखी है। (IOC. 1428)। इस टीका के अंतिम पद्य के अनुसार ये शाहजहाँ के राज्यकाल में हुए तथा इन्होंने टीका की रचना शक 1571=1649 ई० में पटना में की।

19. मधुमतिगणेश : टीका—'काव्यदर्पण', औफ्रेक्ट i. 102a।

20. यज्ञेश्वर यज्वन् : टीका—'व्याख्या', मद्रास कैटलॉग 12821 (उद्धरण)।

21. रघुदेव : टीका—'कारिकार्थ प्रकाशिका' औफ्रेक्ट ii. 20a (उल्लास ii के लगभग अंत तक)।

22. रत्नेश्वर : टीका का नाम ज्ञात नहीं है, किंतु स्वयं इन्होंने भोज पर अपनी टीका में उसे निर्दिष्ट किया है। (तुलना कीजिए, ABod 209 a)।

23. राघव : इन्होंने एक 'अवचूरि-टिप्पणी' लिखी है। झलकीकर पृ० 36 पर उसका उल्लेख मिलता है।

24. राजानंद : शीर्षक-विहीन टीका, मद्रास कैटलॉग 12820 (उद्धरण) तुलना कीजिए, औफ्रेक्ट ii, 20a।

25. रामचंद्र : इन्होंने 'काव्यप्रकाशसार' लिखा है। इसमें स्पष्टतया सार रूप में मूल ग्रंथ की व्याख्या की गई है। औफ्रेक्ट i. 102b।

26. रामनाथ विद्यावाचस्पति : ये बंगाली टीकाकार हैं। इन्होंने—'रहस्य-प्रकाश' लिखा है। औफ्रेक्ट i. 102a. भवदेव की 'संस्कारपद्धति' पर इनकी टीका की रचना 1623 ई० में हुई थी। (देखिए औफ्रेक्ट i. 516a)।

27. रामकृष्ण : टीका 'भावार्थ' अथवा 'कवि-नंदिनी' (अथवा-'नंदिका')। औफ्रेक्ट i. 102a, ii.20a; तथा ii. 16b।

28. विजयानंद : एक 'टीका' लिखी है। Deccan Coll Cat पृ० 44. पांडुलिपि की तिथि 1683 ई० दी गई है।

29. विद्यासागर : प्रत्यक्ष रूप में किसी टीकाकार की उपाधि है। श्रीवत्सलांछन ने इनका उल्लेख किया है। विद्यासागर नामक एक लेखक ने भट्ट पर 'कलादीपिका' नामक टीका लिखी है। भरत मल्लिक (x. 73 पर) तथा 'अमरकोश' पर अपनी टीका में रामनाथ ने इनका उल्लेख किया है। एस० पी० भट्टाचार्य (श्रीधर की टीका की भूमिका, पृ० xxx) के मत से यह मम्मट के टीकाकार पुंडरीक विद्यासागर हैं, जो 15 वीं शती के प्रथम चरण में हुए थे। इन्होंने दंडी तथा वामन पर भी टीकाएँ लिखी हैं।

30. वेंकटाचल सूरि : टीका, 'सुबोधिनी' औफ्रेक्ट i. 102a एच० पी० शास्त्री, Cat ASB MSS. v. संख्या 4837/8736, पृ० 415।

31. शिवनारायणदास सरस्वतीकंठाभरण, दुर्गादास के पुत्र : टीका-'दीपिका' वेबर i. संख्या 819; औफ्रेक्ट i. 102a। इनका रचना-काल 17वीं शती का आरंभ था। इनके अन्य ग्रंथों के लिए देखिए, औफ्रेक्ट i. 649b।

32. शिवराम त्रिपाठी : टीका 'विषमपदी'; कीलहार्न Central Prov. Cat. पृ० 107, इनके विषय में अल्पप्रसिद्ध लेखकों के अंतर्गत आगे देखिए।

33. सिद्धिचंद्र गणि : 'काव्यप्रकाश खंडन' (10 उल्लास), संपादक-रसिकलाल सी० पारिख, भारतीय विद्या भवन, बंबई 1953। लेखक एक प्रसिद्ध जैन भिक्षु थे (जन्म, 1587-88 ई०) तथा अकबर और जहाँगीर के समय में हुए थे। ये जगन्नाथ के समकालीन थे। इनके अपने कथनानुसार इनकी पद्धति 'अनुवाद-पूर्वकखंडन' है अर्थात् पहले व्याख्या तत्पश्चात् खंडन। इनकी सारी आलोचना युक्तियुक्त नहीं है। सिद्धिचंद्र ने काव्यप्रकाश पर भी एक बृहती टीका की रचना की थी। हेमचंद्र ने मम्मट के ग्रंथ को मानक ग्रंथ माना है, किंतु सिद्धिचंद्र जगन्नाथ की भाँति 'नव्य' थे। ये एक नवीन काव्य सिद्धांत की स्थापना में यत्नशील थे। लेखक तथा उनके ग्रंथों के विषय में

सूचनार्थ उपर्युक्त संस्करण की भूमिका देखिए। पांडुलिपि का शीर्षक है 'काव्यप्रकाश' अथवा 'काव्यामृत-तरंगिणी'। यह एक भिन्न ग्रंथ प्रतीत होता है।

इनके अतिरिक्त और भी टीकाएँ हैं। वे या तो अनाम हैं या उनके लेखकों के नाम लुप्त हैं। कुछ एक का उल्लेख औफ्रेक्ट **i. 101b, 778b, ii. 20a, 193b** में किया गया है। अतएव, महेश्वर नामक एक टीकाकार की यह उक्ति सत्य प्रतीत होती है—

काव्यप्रकाशस्य कृता गृहे गृहे।
टीका तथाप्येष तथैव दुर्गमः ॥

अध्याय सात

रुय्यक से विद्यानाथ तक

रुय्यक

(१)

रुय्यक का दूसरा नाम [1] रुचक था। उनके नाम के साथ काश्मीरी उपाधि 'राजानक' है। वे राजानक तिलक[2] के पुत्र थे। जयरथ के कथनानुसार (पृ० 115, 124, 205) राजानक तिलक ने उद्भट पर 'उद्भट-विवेक' अथवा 'उद्भट-विचार' नामक एक टीका अथवा आलोचना लिखी थी।

रुय्यक का प्रसिद्ध ग्रंथ 'अलंकार सर्वस्व' है। इसके दो भाग हैं, सूत्र तथा वृत्ति। इन दोनों भागों का लेखक एक ही व्यक्ति माना जाए अथवा नहीं, यह प्रश्न उठाया गया है। मूल पाठ का संस्करण उपर्युक्त शीर्षक के अंतर्गत निर्णय-सागर प्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस संस्करण में रुय्यक को सूत्र तथा वृत्ति दोनों का रचयिता माना गया है। रुय्यक के प्राचीनतम टीकाकार, जयरथ ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। उन्होंने लेखक को सूत्र तथा वृत्ति, दोनों अंशों के

---

1. पिशेल कृत 'सहृदयलीला' के संस्करण के पृष्ठांत विवरण में इस प्रकार कहा गया है—राजानक रुचकापरनाम्नोऽलंकारसर्वस्वकृतः (कृतिः)। तुलना कीजिए—इसी ग्रंथ का काव्यमाला गुच्छक v (1908) का संस्करण—पांडुलिपि 'ख' का पाठ। उनके अन्य बड़े ग्रंथ की पांडुलिपियों में यही नाम दिया गया है (यथा, मूल पाठ के निर्णय-सागर प्रेस तथा त्रिवेंद्रम् संस्करण, मित्रा ix पृ० 117)। इसके अतिरिक्त कुमारस्वामी (पृ० 393, 396, 425, 448), अप्पय्य दीक्षित (चित्र-मीमांसा, पृ० 72). 'शकुंतला' पर राधाभट्ट (पृ० 161, 179, 193) तथा रुय्यक के एक टीकाकार. श्रीविद्याचक्रवर्ती (मद्रास कैटलॉग xii, पृ० 8609) ने भी यही नाम दिया है। मम्मट पर रुय्यक रचित 'संकेत' नामक टीका के संबंध में बूहलर (काश्मीर रिपोर्ट, संख्या 247, पृ० xvi) तथा पीटर्सन (ii पृ० 13 इत्यादि) को भी नाम का यही रूप प्राप्त हुआ। रुय्यक के शिष्य मंखक (श्रीकंठ, अ० xxv, 30; आगे देखिए) ने इनके नाम का रुय्यक रूप अधिक प्रामाणिक माना है।

2. पिशेल-कृत 'सहृदयलीला' के पृष्ठांत विवरण में यह कथन है—'राजानकतिलकात्मज'। रुय्यक के समान उनके पिता भी काव्य-शास्त्र के लेखक तथा उद्भट के अनुयायी थे। मम्मट पर अपनी टीका में (सं० पारिख, पृ० 295, उल्लास x. 106 पर) सोमेश्वर ने तिलक का नाम लिया है तथा उनका एक पद्य उद्धृत किया है।

'ग्रंथकृत' के रूप में निर्दिष्ट किया है।[1] इस संस्करण में वृत्ति के मंगलाचरण-पद्य के दूसरे अंश में इस प्रकार कहा गया है—

'निजालंकार-सूत्राणां वृत्या तात्पर्यमुच्यते।'

अर्थात् वृत्तिकार ने स्वयं को सूत्रों का लेखक निर्दिष्ट किया है।[2] कुछ दक्षिण भारतीय पांडुलिपियों में उपर्युक्त पद्य के पाठांतर के कारण यह मत संदेहमूलक हो गया है, क्योंकि उनमें 'निजालंकारसूत्राणां' के स्थान पर 'गुर्वलंकारसूत्राणां' महत्वपूर्ण पाठांतर है। इन पांडुलिपियों में वृत्ति के अंत में एक अतिरिक्त पद्य है।[3] इस पद्य में मूल पाठ, 'अलंकार सूत्र' के स्थान पर वृत्ति का नाम 'अलंकार सर्वस्व' तथा वृत्ति के रचयिता का नाम मंखुक अथवा मंखक बताया गया है, जो काश्मीर-नरेश के 'संधिविग्रहिक' थे। तीन पांडुलिपियों पर आधारित त्रिवेंद्रम् सीरीज के अंतर्गत प्रकाशित ग्रंथ में ऐसा ही पाठ है। इसके अतिरिक्त, बर्नल[4] तथा विंटरनिट्ज़[5] ने पांडुलिपियों में ऐसा ही पाठ देखा है। मद्रास कैटलॉग[6] के अंतर्गत पांडुलिपियों से भी इसी पाठ का समर्थन हुआ है। समुद्रबंध नामक एक दक्षिणभारतीय टीकाकार ने इसी मत का समर्थन किया है। वे 13 वीं शती के अंत में हुए हैं। उनका पाठ त्रिवेंद्रम् संस्करण में प्रकाशित हुआ है। उन्होंने अपनी टीका के विषय अर्थात् वृत्ति को 'अलंकार सर्वस्व', उसके लेखक को मंखक तथा रुय्यक की मूल रचना को 'अलंकार सूत्र' माना है।

वृत्ति के लेखक के संबंध में मतभेद के कारण उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत में दो भिन्न परंपराएँ हैं। जहाँ तक वृत्ति के लेखक का प्रश्न है, रुय्यक सूत्रपाठ के निर्विवाद रचयिता हैं। हमारी दृष्टि में रुय्यक तथा मंखक की जन्मभूमि काश्मीर की उत्तर भारतीय परंपरा अधिक प्रामाणिक है। किंतु दक्षिण भारतीय

1. पृ० 19, 20, 55, 57, 67, 72, 83, 87 इत्यादि।
2. ABod, 210a में भी ऐसा ही पाठ है। रुप्पक रुय्यक का अशुद्ध रूप अथवा पाठांतर है (बूहलर, उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 68); मित्रा ix पृ० 117. जम्मू की सभी पांडुलिपियों में 'निजालंकार—' पाठ है।
3. इति मंखुको वितेने काश्मीरक्षितिपसंधिविग्रहिकः।
सुकवि-मुखालंकारं तदिदमलंकार-सर्वस्वम्॥
4. तंजोर कैटलॉग, पृ० 54a.
5. कैटलॉग ऑफ़ साउथ इंडियन मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि रॉयल एशियाटिक सोसायटी, पृ० 208, तुलना कीजिए, जेकब, जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1897, पृ० 283 इत्यादि।
6. xii, पृ० 8605-7 हरिचंद शास्त्री के उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 105 इत्यादि पर इस प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की गई है।

परंपरा में सूत्रों के लेखक तथा वृत्ति के लेखक में परस्वर भेद परिलक्षित नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, प्रसिद्ध दक्षिण भारतीय लेखक, अप्पय्य दीक्षित ने रुय्यक अथवा रुचक को 'अलंकारसर्वस्व' का लेखक बताया [1] है तथा सूत्र एवं वृत्ति दोनों का ही रचयिता स्वीकार किया है। इस संबंध में अप्पय्य के अतिरिक्त मल्लिनाथ, [2] कुमारस्वामी [3] तथा जगन्नाथ [4] का भी यही मत है। इसके विपरीत जयरथ स्वयं काश्मीरी थे। इसलिए अनेक मत-परंपराओं पर आधारित समुद्रबंध-जैसे परवर्ती टीकाकार का कथन जयरथ के साक्ष्य की तुलना में अधिक प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि काव्यालंकार के परवर्ती लेखकों ने रुय्यक (तथा जयरथ) की सविस्तर चर्चा की है, किंतु 'चित्रमीमांसा' (पृ० 10) में अप्पय्य के अतिरिक्त किसी भी लेखक ने मंखक का उल्लेख तक नहीं किया है।

(२)

रुय्यक के साथ मंखक के सहयोग की परंपरा का आधार यह है कि वास्तव में मंखक रुय्यक के शिष्य थे। [5] विश्वावर्त के पुत्र तथा मन्मथ के पौत्र, राजानक मंखक अथवा मंखुक प्रसिद्ध काश्मीरी विद्वान् हैं, जिन्होंने 'श्रीकंठचरित' (सं० दुर्गाप्रसाद तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, 1887) नामक ग्रंथ की रचना की है। बूहलर[6] के मतानुसार यह ग्रंथ 1135 और 1145 ई० के मध्य लिखा गया था। मंखक के भ्राता अलंकार (अथवा लंकक, xxv. 15, 37 इत्यादि)

---

1. 'चित्र मीमांसा' पृ० 14, 15, 54, 72, 84, 90, 94. 98. 'कुवलय' पृ० 41, 89, 92, 96, 184.
2. 'तरला' पृ० 21, 186, 187, 232, 237, 249, 261, 262, 266, 331, 332.
3. 'रत्नापण' पृ० 393 (=अलंकारसर्वस्ववृत्ति पृ० 58), 425 (तथैव, पृ० 133), 448 (=तथैव, पृ० 144), पृ० 341 (=तथैव 'सूत्र' पृ० 20) पृ० 452 (=तथैव, पृ० 156).
4. 'रसगंगाधर' में कई उल्लेख हैं, किंतु पृ० 163 तथा 200 देखिए। यहाँ सूत्र तथा वृत्ति दोनों का अलंकारसर्वस्व के अंतर्गत उल्लेख किया गया है। पृ० 251. 342-43, 352 482 भी देखिए तथा 'शकुंतला' पर राघवभट्ट पृ० 161 (=अलंकारसर्वस्ववृत्ति पृ० 64), पृ० 179 (=तथैव पृ० 75), पृ० 193 (=तथैव, पृ० 127)।
5. इस तथ्य से तथा 'अलंकारसर्वस्व' के पाठ में प्रदीप इत्यादि विकृतियों से संबंधित जयरथ के कथन से मंखक के सहयोग की परंपरा का कारण स्पष्ट हो जाता है।
6. उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 50 इत्यादि; उद्धरण; परिशिष्ट पृ० cix इत्यादि। तथा देखिए 'राजतरंगिणी' viii. 3354।

काश्मीर-नरेश सुस्सल तथा जयसिंह (112 -1150 ई०) के मंत्री (v. 62, xxv. 43, 61) थे। उनके श्रृंगार नामक एक अन्य भ्राता, सुस्सल के 'बृहत्-तंत्रपति' थे और उन्होंने हर्षदेव के विरुद्ध युद्ध में उनकी सहायता की थी। मंखक के अपने कथन के अनुसार, उन्होंने अपने भाई, अलंकार के घर में आयोजित विद्वानों तथा अधिकारियों की एक सभा में अपना काव्य प्रस्तुत किया था। उस सभा में उनके गुरु रुय्यक भी विद्यमान थे (xxv. 30, 135)। इस प्रकार रुय्यक के अपने ग्रंथ में मंखक के काव्य से उद्धृत पाँच उदाहरण-पद्यों का अस्तित्व स्पष्ट हो जाता[1] है, क्योंकि गुरु के द्वारा अपने योग्य शिष्य का उल्लेख किया जाना स्वाभाविक ही है। मंखक के काव्य की अधिकतम तिथि 1145 ई० बताई गई है। क्योंकि रुय्यक के 'अलंकार-सर्वस्व' में उसका उल्लेख है, इसलिए यह ग्रंथ मंखक के ग्रंथ के पश्चात् ही लिखा गया होगा। इसके अतिरिक्त, मम्मट पर माणिक्यचंद्र की 'संकेत' नामक टीका 1159-60 ई०, में लिखी गई थी। उसमें 'अलंकारसर्वस्व' का उल्लेख किया गया है। अतएव, रुय्यक का साहित्य-रचना-काल 12वीं शती के दूसरे एवं तीसरे चरण में निर्धारित किया जा सकता है।[2]

यह ग्रंथ सूत्र-वृत्ति पद्धति पर लिखा गया है। इसमें रुय्यक ने केवल काव्यालंकारों का ही विवेचन किया है। पुनरुक्तवदाभास, अनुप्रास (छेक, वृत्ति, तथा लाट), यमक तथा चित्र के पश्चात् उन्होंने उपमा आदि 75 अर्थालंकारों की चर्चा की है। उन्होंने विकल्प (पृ० 159) तथा विचित्र (पृ० 133-34) नामक दो सर्वथा नवीन अलंकार प्रस्तुत किए हैं। विश्वनाथ, विद्यानाथ तथा अप्पय्य दीक्षित इत्यादि मुख्यतः परवर्ती लेखकों ने उनके ग्रंथ का उपयोग किया है। रुय्यक ने अनेक स्थलों पर 'काव्यप्रकाश' को उद्धृत किया है (पृ० 107, पर्यायोक्त पर; पृ० 102, = काव्यप्रकाश iv पृ० 128; पृ० 183, भाविक की परिभाषा)

---

1. इन पद्यों (ii.49, iv.79, v.23, vi.16, x.10) के लिए देखिए, जेकब, जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1897, पृ० 283।
2. जेकब (उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 283) ने कहा है कि रुय्यक (पृ० 93) ने 'राजतरंगिणी' iv. 441 ('असमाप्त-जिगीषस्य') को उद्धृत किया है। इस ग्रंथ की रचना जयसिंह के शासनकाल में लगभग 1150 ई० से पहले समाप्त नहीं हुई थी: भरत पर (अध्याय iv, खंड i, पृ० 305) अभिनव का टीका में यह पद्य अज्ञात लेखक के उद्धरण के रूप में मिलता है। यह बात ध्यान देने की है कि जयरथ ने पाठ में अनधिकृत प्रक्षेपों तथा विकृतियों की अनेक बार शिकायत की है (पृ० 50, 67, 107, 124, 126 इत्यादि) तथा पाठांतरों पर चर्चा की है (पृ० 21, 37, 49, 172 इत्यादि), स्वयं जयरथ ने 'राजतरंगिणी' के बारह पद्य उद्धृत किए है (पृ० 194), जिनमें काश्मीर के ललितादित्य का वर्णन है।

तथा चित्र, काव्यलिंग, व्याजोक्ति, उत्तर, मीलित तथा समाधि की परिभाषाएँ 'काव्यप्रकाश' में दी गई परिभाषाओं के समान हैं।

(३)

रुय्यक ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। उनमें से केवल तीन मुद्रित हुए हैं :

1. 'काव्यप्रकाश-संकेत' : यह मम्मट के ग्रंथ पर टीका है। जयरथ (पृ० 102) तथा रत्नकंठ ने (पीटर्सन ii, पृ० 17, 19, 'बृहत्-संकेत' के रूप में) इसे रुय्यक-रचित माना है। संस्करण के लिए ऊपर देखिए पृ० 144।

2. 'अलंकार-मंजरी' : उन्होंने स्वयं पृ० 15 पर इसे अपनी रचना बताया है। जयरथ ने रुय्यक की रचना के रूप में इसका उल्लेख नहीं किया। पी० वी० काणे ने इसे रुय्यक का रचना मानने में संदेह प्रकट किया है।

3. 'साहित्य-मीमांसा' : लेखक ने स्वयं पृ० 61 पर तथा जयरथ ने पृ० 126 पर इसका उल्लेख किया है। विद्यानाथ ने पृ० 11 पर लेखक का नाम दिए बिना इसका उल्लेख किया है (तुलना कीजिए ABod. 21a)। बर्नल ने एक अज्ञात-लेखक की पद्यमयी 'साहित्य मीमांसा' (पृ० 58a) का उल्लेख किया है। उसमें आठ प्रकरण हैं और वृत्ति गद्यमयी है। यह स्पष्ट रूप से त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज के अंतर्गत 1934 में प्रकाशित 'साहित्यमीमांसा' है।[1] पांडुलिपि कई स्थलों में अपूर्ण है। लेखक का नाम न आदि में है, न अंत में। पी० वी० काणे ने इस ग्रंथ का विषयसार दिया है (HSP पृ० 269-72)। उनके मतानुसार रुय्यक ही इसके लेखक हैं। ध्यान देने की बात यह है कि इसमें व्यंजना के स्थान पर तात्पर्यवृत्ति को रसानुभूति का हेतु बताया गया है। रुय्यक का मत इससे सर्वथा भिन्न है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है (पृ० 13)—'अस्ति तावद् व्यंग्यनिष्ठो व्यापारः।' इस प्रकार यह भोज के 'शृंगारप्रकाश' से प्रभावित प्रतीत होता है। वी० राघवन (पृ० 99-100) ने इसे रुय्यक का ग्रंथ मानने में संदेह प्रकट किया है।

---

1. देखिए पृ० 133।

4. 'अलंकारानुसारिणी' : जयरथ ने इसे रुय्यक-रचित कहा है (पृ॰ 36, 57, 58 तथा 60)। पीटर्सन[1] का मतानुसरण करते हुए औफ्रेक्ट[2] तथा जकोबी [3] ने इसे जह्लण के 'सोमपालविलास' की टीका माना है। जयरथ के उल्लेखानुसार इसमें उस ग्रंथ के अंतर्गत कुछ अलंकारों पर विवेचन किया गया है, किंतु इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि यह वास्तव में जह्लण के 'सोमपालविलास' की टीका है। मंखक के 'श्रीकंठचरित' (xxv. 75) में कवि जह्लण का वर्णन किया गया है। जह्लण ने राजपुरी (काश्मीर के निकट) के राजा सोमपाल का जीवनचरित लिखा है। 'राजतरंगिणी' (viii.621 इत्यादि) से पता चलता है कि उन्होंने काश्मीर के राजा सुस्सल से युद्ध किया था। यह कवि 12 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए हैं और स्पष्ट रूप से 13 वीं शती के उत्तरार्द्ध में, 'सूक्तिमुक्तावली' के संग्रहकर्ता भगदत्त, जह्लणदेव से भिन्न हैं। औफ्रेक्ट (i.203 a) ने गलती से उन्हें 'सोमपालविलास' का लेखक मान लिया है।

5. महिमभट्ट के 'व्यक्तिविवेक' की एक टीका, जिसे जयरथ ने 'व्यक्तिविवेक-विचार' के नाम से लक्षित किया है (पृ॰ 13)। यह टीका वही है, जो त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज के अंतर्गत महिमभट्ट के ग्रंथ के साथ अनाम टीका के रूप में प्रकाशित हुई है। यद्यपि टीका के प्रकाशित पाठ में लेखक का नाम नहीं है, किंतु टीका को केवल 'व्याख्यान' नाम से लक्षित किया गया है। अज्ञात टीकाकार ने इस टीका में अपने अन्य ग्रंथों, यथा, 'साहित्यमीमांसा' (पृ॰32) तथा 'हर्षचरितवार्तिक' (पृ॰ 44, 50) का उल्लेख किया है। रुय्यक ने अपने 'अलंकारसर्वस्व' में स्वयं को इन दोनों ग्रंथों का लेखक कहा है और जयरथ ने भी ऐसा ही कहा है। ग्रंथ में उन्होंने 'चंद्रिका' ('ध्वन्यालोक' पर), 'काव्यकौतुक' (पृ॰ 13), 'हृदय-दर्पण' (पृ॰ 1, 13) तथा कुंतक के 'वक्रोक्तिजीवित' (पृ॰ 16, 32, 36, 44) का उल्लेख किया है।

---

1. रिपोर्ट, ii पृ॰ 17, 'सुभाष—' की भूमिका पृ॰ 106, Actes du 6me Congres पृ॰ 364 'स्तुति-कुसुमांजलि' पर अपनी टीका में रत्नकंठ ने इसका ऐसा ही उल्लेख किया है।
2. Cat. Cat. i. 32b.
3. ZDMG lxii, 291; तुलना कीजिए हरिचंद शास्त्री, उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 105-106।

6. महिमभट्ट पर उपर्युक्त टीका (पृ० 32) में उन्होंने 'नाटकमीमांसा' को अपनी रचना के रूप में परिलक्षित किया है।

7. 'अलंकारसर्वस्व' (पृ०61) तथा 'व्यक्तिविवेक व्याख्या' (पृ० 44, 50) पर उन्होंने 'हर्षचरितवार्त्तिक' को अपनी रचना निर्दिष्ट किया है।

8. 'सहृदयलीला' : यह काव्यमाला गुच्छक 5 तथा पिशेल (कील 1886, रुद्र के 'शृंगारतिलक' के साथ) द्वारा संपादित की गई है। इस ग्रंथ में चार उल्लेख हैं—(i) गुण : इसमें स्त्री (नायिका) के दस गुणों—रूप, वर्ण, प्रभा इत्यादि का वर्णन है, (ii) अलंकार : इसमें स्वर्ण, मोती इत्यादि के आभूषण, उबटन, स्त्रियों के द्वारा धारण किए जानेवाले पुष्पादि का वर्णन है; (iii) जीवित : इसमें स्त्री के सौंदर्य-सार अर्थात् यौवन का वर्णन है; तथा (iv) परिकर : इसमें सौंदर्य-प्रसाधन की चर्चा है।

9. 'अलंकार-वार्त्तिक' : जयरथ ने पृ० 71 पर रुय्यक को इस ग्रंथ का लेखक कहा है।

10. 'श्रीकंठ-स्तव' : 'अलकारसर्वस्व' पृ० 19 में रुय्यक ने इसे 'मदीय' कहा है।

(४)

रुय्यक के टीकाकार

अलक (अथवा अलट ?)

मम्मट पर अपनी टीका में रत्नकंठ ने राजानक अलक के नाम से इस टीकाकार का उल्लेख किया है।[1] मम्मट के ग्रंथ के पूरक, अलक, अलट अथवा अल्लट तथा इस टीकाकार की अभिन्नता संदेहजनक है।[2] यह पहले ही बताया जा चुका है और इसलिए उनकी टीका की प्राप्ति से पूर्व इस विषय पर कुछ और कहना अनावश्यक है।

जयरथ

इनकी टीका का नाम 'अलंकार-विमर्शिणी' है। इन्होंने अपने पिता का नाम शृंगार तथा अपने संरक्षक का नाम राजराज बताया है। अभिनवगुप्त के

1. पीटर्सन, रिपोर्ट ii, पृ० 17 इत्यादि। देखिए पृ० 155.
2. देखिए पृ० 137 इत्यादि।

'तंत्रालोक' नामक ग्रंथ पर अपनी 'विवेक' नामक टीका में अपने पिता का पूरा नाम शृंगाररथ बताया है और कहा है कि उनके जयरथ तथा जयद्रथ नामक दो पुत्र थे।[1] वे स्वयं शंखधर तथा शिव के शिष्य थे। जयरथ ने अपने 'विवेक' में विस्तार से अपनी वंशावली का वर्णन किया है। उनके परदादा के भाई का नाम शिवरथ[2] था। वे काश्मीर के राजा उच्छल (1101-1111 ई०) के मंत्री थे। क्योंकि उच्छल के मंत्री तथा जयरथ में चार पीढ़ियों का अंतर है, इसलिए बूहलर के विचार से जयरथ 13 वीं शती के आरंभ में हुए हैं। जैकोबी ने इस निष्कर्ष का समर्थन करते हुए जयरथ तथा उनके पिता के संरक्षक राजा राजराज को राजदेव ही माना है। 'राजतरंगिणी' v. 79-91 में जोनराज ने राजदेव का उल्लेख किया है। वे 1203-1226 ई० में हुए हैं।[3] इस प्रकार जैकोबी ने जयरथ की अधिक शुद्ध तिथि निश्चित करने का यत्न किया है।

जयरथ ने अनेक नामों का उल्लेख किया है। उनमें भामह, दंडी, उद्भट, वामन, रुद्रट, ध्वनिकार (=आनंदवर्धन), वक्रोक्तिजीवितकार, अभिनवगुप्त, व्यक्तिविवेककार, भोज तथा मम्मट का नामोल्लेख भी है। अपने लेखक के अन्य ग्रंथों तथा उद्भट पर राजानक तिलक के ग्रंथ का उल्लेख करने के पश्चात् जयरथ ने अलंकार पर कुछ ऐसी रचनाओं का उल्लेख भी किया है, जो हमें ज्ञात नहीं हैं; यथा, 'अलंकारसूत्र' (पृ० 150), 'अलंकारभाष्य' (पृ० 35, 46, 83, 138, 173), 'अलंकारसार' (पृ० 88, 97, 171, 172, 184) तथा रुय्यक-रचित 'अलंकारवार्त्तिक' (पृ० 71)। जगन्नाथ ने भी 'अलंकारभाष्य' का उल्लेख

---

1. बूहलर द्वारा परीक्षित 'अलंकार-विमर्शिनी' की काश्मीरी पांडुलिपियों में इस लेखक को इन दोनों नामों से लक्षित किया गया है। कहीं एक नाम दिया गया है, कहीं दूसरा। रत्नकंठ के 'सारसमुच्चय' की पीटर्सन की पांडुलिपि में जयद्रथ पाठ है (ii पृ० 17), जिसे औफ्रेक्ट ने स्वीकार किया है, यद्यपि 'विमर्शिनी' तथा विवेक के प्रकाशित पाठ में जयरथ दिया गया है। बूहलर के मतानुसार दोनों टीकाओं के लेखक का शुद्ध नाम यही है (उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 68)। दूसरा नाम उनके भाई का है। जयद्रथ ने 'हरचरितचिंतामणि' नामक 32 अध्याय पर्यंत एक काव्य लिखा है (सं० निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1897)।

2. v.22, बूहलर के उपर्युक्त ग्रंथ में परिशिष्ट पृ० Cli इत्यादि पर उद्धरण देखिए। 'राजतरंगिणी' viii. 111 में इस शिवरथ का उल्लेख है।

3. जेकब (जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1897, पृ० 283) के अनुसार जयरथ को 12 वीं शती के पश्चात् निर्धारित करना ही ठीक है। उन्होंने 'पृथ्वीराज-विजय' काव्य के उद्धरण दिए हैं (पृ० 64)। यह काव्य दिल्ली के राजा पृथ्वीराज पर लिखा गया था। उनका 1193 ई० में देहांत हुआ (तुलना कीजिए, बूहलर का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 62)।

किया है (पृ० 239, 365)। कीलहार्न की सूची[1] तथा पीटर्सन iii, परिशिष्ट पृ० 393 में 'अलंकारसार' का उल्लेख है। संभवतः यह एक परवर्ती ग्रंथ है। बालकृष्ण पायगुंड को इसका लेखक माना गया है। उन्होंने अप्पय्य की 'चित्र-मीमांसा' (अन्यत्र देखिए) पर भी टीका लिखी है। वे 16 वीं शती के पश्चात् ही हुए हैं।[2] जगन्नाथ ने 'विमर्शिनी' को बहुत विस्तार से उद्धृत किया है (पृ० 325, 327, 352, 380, 387, 414, 418 ।) इसका मुख्य कारण यह है कि अप्पय्य ने रुय्यक तथा जयरथ का अंधानुकरण किया है, इसीलिए जगन्नाथ ने उनकी कड़ी आलोचना की है।

अलंकार पर जयरथ ने 'अलंकारोदाहरण'[3] नामक एक अन्य ग्रंथ भी लिखा है। उसके अंतिम पद्य में उन्होंने अपनी 'विमर्शिनी' का उल्लेख किया है। मित्रा 2442 में दिए गए विषयवस्तुसार से प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ का उद्देश्य रुय्यक के पाठ के समर्थन में उदाहरण देना मात्र था।—'विमर्शिनी' के सीमित क्षेत्र के कारण वे ऐसा ठीक तरह नहीं कर पाए।

समुद्रबंध

अपने ही कथन के अनुसार समुद्रबंध केरल प्रदेश (मालावार) के अंतर्गत कोलंब (क्विलोन) के राजा रविवर्मा (अथवा संग्रामधीर) के राज्यकाल में हुए हैं। उनकी टीका में इस राजा के स्तुत्यर्थक अनेक पद्य हैं।[4] इस राजा का जन्म 1266-67 ई० में हुआ। इन्होंने 1312-13 ई० में वेगवती के तट पर स्वयं को मालावार-नरेश घोषित किया। समुद्रबंध की तिथि 13 वीं शती के अंतिम भाग तथा 14 वीं शती के आरंभ में निर्धारित की जा सकती है।

समुद्रबंध ने पूर्ववर्ती लेखकों का अधिक उल्लेख नहीं किया है, किंतु वे भामह, उद्भट, वामन, रुद्रट, ध्वनिकार तथा आनंदवर्धन, भट्टनायक, वक्रोक्ति-जीवितकार, महिमभट्ट, भोज तथा मम्मट से परिचित थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने भामह के 'काव्यालंकार' पर उद्भट की 'वृत्ति' का भी उल्लेख किया है। उन्होंने 'अलंकारसर्वस्व' के अन्य टीकाकारों की व्याख्या निर्दिष्ट की है (पृ० 55, 96, 145, 239) तथा पाठांतरों चर्चा की है (पृ० 57)।

1. कीलहॉर्न की सूची 18; ऑफ्रेक्ट i. 32b भी देखिए।
2. देखिए CgA, 1885, पृ० 765 पर पिशेल का लेख, विपक्ष में देखिए ZDMG, xlii 293, जैकोबी का लेख।
3. देखिए जम्मू कैटलॉग संख्या 806. पृ० 59।
4. यथा पृ० 48, 58, 76, 133, 149 (कोलंबाधिपति) इत्यादि, रविवर्मा तथा समुद्रबंध के विषय में के० कुंजुन्नी राजा का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 211-13 देखिए।

श्री विद्या-चक्रवर्ती

मल्लिनाथ[1], कुमारस्वामी[2] अप्पय्य[3] तथा विश्वेश्वर[4] ने रुय्यक पर 'संजीवनी' अथवा 'अलंकारसंजीवनी' नामक टीका का उल्लेख किया है। उन्होंने चक्रवर्ती को इस टीका के रचयिता के रूप में निर्दिष्ट किया है। कुमारस्वामी ने इस टीकाकार को उनके द्वारा उद्धृत दो पद्यों[5] का लेखक माना है। कुमार-स्वामी के अन्य उद्धरणों से यही प्रकट होता है कि चक्रवर्ती ने 'अलंकारसर्वस्व' पर 'संजीवनी' नामक टीका लिखी थी। यह चक्रवर्ती परमानंद चक्रवर्ती से भिन्न थे, किंतु श्रीविद्या चक्रवर्ती से अभिन्न थे। मद्रास कैटलॉग[6] में रुय्यक पर 'संजीवनी' नामक उनकी टीका की दो पांडुलिपियों का उल्लेख है। मम्मट पर इसी लेखक की 'संप्रदायप्रकाशिनी-बृहती टीका[7] तथा संजीवनी में एक दूसरे का उल्लेख है तथा 'संजीवनी' के अंत में इन दोनों टीकाओं का एक साथ इस प्रकार उल्लेख किया गया है—

काव्यप्रकाशेऽलंकारसर्वस्वे च विपश्चिताम्।
अत्यादरो जगत्यस्मिन् व्याख्यातमुभयं ततः॥

इससे परवर्ती काल में मम्मट तथा रुय्यक का रचनाओं की लोकप्रियता का आभास मिलता है। श्रीविद्या-चक्रवर्ती ने अपने लेखक का नाम रुचक दिया है। विश्वनाथ को उन्होंने 'संधिविग्रहिक' कहा है। वे प्रत्यक्ष रूप से शैव संप्रदाय अथवा शैव मतावलंबी[8] दक्षिण भारतीय लेखक हैं। मल्लिनाथ के निर्देश के आधार पर

1. पृ० 31, 57, 221, 237, 324.
2. पृ० 54 (चक्रवर्ती, अलंकारसर्वस्व के टीकाकार के रूप में), 319, 377, 383 (—संजीवनी, अलंकारसर्वस्व पर टीका), 387, 393, 398, 435, 449-50, 465.
3. चित्र मीमांसा, पृ० 7, 74.
4. अलंकारकौस्तुभ, पृ० 11.
5. पूर्व कथन के अनुसार='रत्नापण' पृ० 378।
6. xit, संख्या 12799-12800, पृ० 8609-10 जैकोबी का अलक को इस '—संजीवनी' का लेखक अनुमान करना गलत है (ZDMG. lxii पृ० 292)।
7. तथैव: संख्या 12826-28, पृ० 8627, बर्नल 55a. संस्करण-त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज 1926, देखिए पृ० 162। बृहती टीका की रचना से पूर्व उन्होंने एक 'लघुटीका' भी लिखी है, उसमें इस टीका का उल्लेख है। त्रिवेंद्रम् संस्करण में इनमें से केवल एक टीका प्रकाशित हुई है।
8. प्रभाकर भट्ट ने अपने 'रसप्रदीप' (1583 ई० से पूर्व) में पृ० 11, 13, 32 पर संप्रदाय-मत अथवा सांप्रदायिकों का उल्लेख किया है।

उनकी तिथि 14 वीं शती के अंत से पूर्व निर्धारित की जा सकती है। वे 14 वीं शती के आरंभ में श्रीवल्लाल III (होयसल) के सभारत्न थे। (वी० राघवन ABORI. xiv 1933, पृ० 256)। विद्या-चक्रवर्ती को 'रसमीमांसा'[1] तथा नाट्य तथा रस-विषय पर 'भरतसंग्रह' नामक ग्रंथों का लेखक माना गया है (ABORI, xiv 1933, पृ० 256)।

ग्रंथ सूची

अलंकारसर्वस्व

संस्करण—(1) सं० दुर्गाप्रसाद तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1893, (जयरथ की—'विमर्शिनी' सहित)। (2) सं० टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज 1915 (समुद्रबंध टीका सहित), द्वितीय संस्करण 1926। जर्मन अनुवाद, एच० जैकोबी द्वारा, ZDMG lxii, पृ० 289-336, 411-58, 597-628, के अंतर्गत। अन्यथा निर्देश के अभाव में यहाँ संदर्भ निर्णय-सागर प्रेस के संस्करण से दिए गए हैं।

टीकाएँ : (1) जयरथ-रचित अलंकार-विमर्शिनी, स० मूल-पाठ सहित, निर्णय सागर प्रेस, यथापूर्व, 1893। 'अलंकारोदाहरण' की पांडुलिपियों के संबंध में देखिए—औफ्रेक्ट i, 32a, 773a, ii. 6b, WBod 1157। (2) 'वृत्ति'—समुद्रबंध रचित, सं० मूल-पाठ सहित, त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज 1915, यथापूर्व। (3)—'संजीवनी' श्रीविद्या-चक्रवर्ती रचित। मद्रास कैटलॉग xxii, 12799-12800; औफ्रेक्ट i. 32b अभी प्रकाशित नहीं हुई है।

सहृदयलीला

संस्करण—(1) सं० पिशेल (रुद्र के 'शृंगारतिलक' सहित, कील (Kiel) 1886। (2) सं० काव्यमाला गुच्छक v.1908।

व्यक्तिविवेक पर टीका

संस्करण—मूलपाठ सहित, सं० टी० गणपति शास्त्री (मूल लेखक अज्ञात है, किंतु इसे रुय्यक-रचित माना गया है), त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज, 1909।

---

1. देखिए वी० राघवन ABORI, xvi, 1934-35, पृ० 140 रुय्यक पर अपनी टीका में विद्या-चक्रवर्ती ने स्वयं (रसमीमांसायाँ विस्तरः) इसका उल्लेख किया है, किंतु यह एक पृथक् ग्रंथ है, ऐसा स्पष्ट नहीं होता।

हेमचंद्र तथा वाग्भट

(१)

हेमचंद्र बहुमुखी-प्रतिभा-संपन्न जैन विद्वान् थे। उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है। साहित्य के विविध क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य के अतिरिक्त उन्होंने संस्कृत काव्यालंकार पर भी लिखा है। मम्मट के ग्रंथ के आधार पर उन्होंने 'काव्यानुशासन' तथा उसी पर 'अलंकारचूड़ामणि' नामक वृत्ति लिखी है। इस ग्रंथ में उन्होंने विविध ग्रंथों से सामग्री लेकर समाविष्ट की है।[1]

पाठ्यपुस्तक के रूप में यह ग्रंथ 'काव्यप्रकाश' से श्रेष्ठ नहीं माना जा सकता, किंतु हेमचंद्र के अधिकतर ग्रंथों की भाँति यह भी एक परिश्रमसिद्ध संग्रह-संकलन-ग्रंथ है। इससे लेखक की सर्वतोमुखी प्रतिभा तो अवश्य परिलक्षित होती है, किंतु अपने विषय पर यह एक मौलिक ग्रंथ है, ऐसा नहीं माना जा सकता।

काव्यशास्त्र के अन्य लेखकों की अपेक्षा हेमचंद्र के व्यक्तिगत जीवन तथा उनकी समकालीन परिस्थितियों के संबंध में हमें अधिक जानकारी प्राप्त है। बूहलर ने एक लघु-पुस्तक में उनके जीवन से संबंधित विवरणों का संग्रह किया है।[2] हेमचंद्र का जन्म संवत् 1145=1088 ई० के कार्तिक मास में पूर्णिमा की रात को धुंदुक अथवा धंधुका (अहमदाबाद) नामक स्थान पर दरिद्र वणिक परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम चच्चिग तथा माता का नाम पाहिनी था। आरंभ में उनका नाम चंगदेव था। संवत् 1150=1093 ई० में वे जैन भिक्षु हो गए तथा

1. उदाहरणतया, उन्होंने आभार प्रकट किए बिना राजशेखर, अभिनवगुप्त, वक्रोक्तिजीवितकार, मम्मट इत्यादि विद्वानों के लंबे-लंबे उद्धरणों का उपयोग किया है। भरत के अध्याय iv पर 'अभिनवभारती' के अंतर्गत एक अंश का अक्षरशः उद्धरण दिया गया है (हेमचंद्र पृ० 57-66) अंत में सामान्य आभारोक्ति के रूप में ऐसा कथन है—इति श्रीमान् अभिनवगुप्ताचार्यः, एतन्मतमेवास्माभिरुपजीवितं वेदितव्यम् (पृ० 66)। वृत्ति में पृ० 83 पर 'स्थायिभाव' पर उनकी टिप्पणी (पृ० 83-84) पूर्वोक्त सूत्र से ही उद्धृत की गई है। राजशेखर के विस्तृत उद्धरणों की बात पहले ही कही जा चुकी है, उन्होंने पृ० 316 पर स्वयं को 'भरतमतानुसारी' कहा है। कहीं-कहीं तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने पूर्ववर्ती ग्रंथों की नकल की है अथवा उनकी सामग्री चुराई है।

1. Ueber das Leben des Jaina Monches Hemacandra, Wien 1889; अंग्रेजी अनुवाद, मणिलाल पटेल, सिंघी जैन सीरीज 1936, Ency. of Religion and Ethics, vi. 591 में जैकोबी का लेख भी देखिए।

उन्होंने सोमानंद नाम ग्रहण कर लिया। वे 'स्थानकवृत्ति' तथा 'शांतिनाथ चरित' के रचयिता तथा वज्रशाखा के अनुयायी देवचंद्र के शिष्य थे। संवत् 1166=1109 में वे 'सूरि' अथवा 'आचार्य' हो गए तथा उन्होंने हेमचंद्र नाम ग्रहण कर लिया। जयसिंह सिद्धराज (1094=1143 ई०) तथा उनके उत्तराधिकारी गुजरात नरेश कुमारपाल (1145-1172 ई०) के संरक्षण में उन्हें अणहिल्ल-पट्टन के जैन संप्रदाय का प्रमुख आचार्य होने का सम्मान प्राप्त था। अपने जीवन का अधिकतर भाग उन्होंने वहीं व्यतीत किया। जयसिंह सिद्धराज से कुछ ही समय पूर्व संवत् 1229=1172 ई० में 84 वर्ष की वृद्धावस्था में उनका देहांत हुआ। अपने अधिकतर ग्रंथ उन्होंने संरक्षकों के अनुरोध पर लिखे थे। उन्होंने कुमारपाल का संवत् 1216-1160 ई० में जैन धर्म में प्रवेश कराया।

हेमचंद्र ने जैन शास्त्रों के अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय के कई अंगों पर बृहत् ग्रंथ लिखे हैं, यथा व्याकरण (सिद्ध-हेमचंद्र, शब्दानुशासन, लिंगानुशासन, धातु-पारायण तथा (उणादिसूत्र), छंदःशास्त्र (छंदोनुशासन), कोश (अभिधान-चिंतामणि, अनेकार्थसंग्रह, निघंटु-शेष तथा देशीनाममाला)। उनका ज्ञानगांभीर्य उनके 'कलिकाल-सर्वज्ञ' उपनाम को सिद्ध करता है। उनके आठ अध्याय पर्यंत 'काव्यानुशासन' में अलंकार संबंधी सभी विषयों का विवेचन किया गया है। उसमें नाट्यविद्या का भी संक्षिप्त रूप से विवेचन किया गया है। कहीं-कहीं मतभेद होने पर भी हेमचंद्र ने भरत, आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मट तथा राजशेखर के ग्रंथों से प्रचुर सामग्री का उद्धरण दिया है। विशेष रूप से मौलिक न होने के कारण यह ग्रंथ शास्त्रीय पद प्राप्त न कर सका। परवर्ती लेखक भी इससे अधिक प्रभावित नहीं हुए। इसका शायद ही कहीं उल्लेख किया गया है।[1] यह सूत्र तथा वृत्तिरूप में लिखा गया है।[2]

(२)

संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में दो भिन्न वाग्भट हैं अर्थात् 'वाग्भटालंकार' के रचयिता वाग्भट (यहां उन्हें वाग्भट प्रथम कहा गया है) तथा 'काव्यानुशासन' और उसकी वृत्ति 'अलंकार तिलक' के रचयिता वाग्भट (यहां उन्हें वाग्भट द्वितीय कहा गया है।) एगलिंग (Eggeling) ने भ्रांतिवश इन दोनों लेखकों को एक

---

1. पी० वी० काणे ने इसके अपवाद-स्वरूप लिखा है (HSP, पृ० 278) कि 'रत्नापण' पृ० 46, 75, 224, 233, 259, 299 में इसका उल्लेख है।

2. हेमचंद्र के 'काव्यानुशासन' के संक्षिप्त विषय-विवरण के लिए आगे देखिए: खंड ii, अध्या० vii (6).

ही व्यक्ति समझकर उसे दोनों ग्रंथों का रचयिता मान लिया है[1]। 'वाग्भटालंकार' iv. 148 से यह सूचित होता है कि लेखक का प्राकृत रूप में जैन नाम बाहड और उनके पिता का नाम सोम था[2]। इसके विपरीत, 'काव्यानुशासन' तथा उसकी टीका यह सूचित करती है कि लेखक के पिता का नाम नेमिकुमार तथा माता का नाम महा-(मही —) देवी अथवा वसुंधरा था। उनका जन्म-स्थान राहडपुर था[4]। नगर में राहड देवता का मंदिर होने के कारण नगर का भी यही नाम पड़ गया था। लेखक ने स्वयं अपने एक पद्य में ऐसा कहा है।[5] वाग्भट द्वितीय ने अधिकारी विद्वान् के नाते वाग्भट प्रथम का उल्लेख किया है[6]। दोनों ही वाग्भटों ने नेमिनिर्वाण के लेखक वाग्भट के ग्रंथ के उद्धरण दिए हैं। वाग्भट द्वितीय ने उत्तम काव्य के लक्षणों के उदाहरणस्वरूप इस काव्य का अनेक बार नाम लिया है (यथा, पृ० 16)[7]। यह कहना कठिन है कि वाग्भट प्रथम 'नेमिनिर्वाण' के रचयिता थे या नहीं, किन्तु वाग्भट द्वितीय इन दोनों से भिन्न व्यक्ति थे[8]। आयुर्वेद-शास्त्र के लेखक, सिंहगुप्त के पुत्र, वाग्भट को इन दोनों से भिन्न व्यक्ति समझना चाहिए।

---

1. IOC iii, पृ० 330-1.
2. इस पद्य पर जिनवर्धन, सिंहदेव तथा क्षेमहंसगणि की टीकाओं में भी ऐसा ही उल्लेख है।
3. पृ० 1 वृत्ति तथा अंतिम पद्य।
4. पृ० 1 वृत्ति।
5. IOC iii पृ० 332. इस ग्रंथ के निर्णयसागर प्रेस संस्करण में यह पद्य पृ० 10 पर भी दिया गया है, किंतु इंडिया आफिस पांडुलिपि में इससे पूर्व 'अस्माभिरुक्त' शब्द का अभाव है।
6. ii, पृ० 31 : इति दंडि-वामन-वाग्भटादि-प्रणीता दश काव्यगुणाः वयं तु माधुर्योजः-प्रसाद-लक्षणांस्त्रीणेव गुणान्मन्यामहे।
7. जैकब ने अपने उपर्युक्त ग्रंथ में पृ० 309 पर 'नेमिनिर्वाण' से 'वाग्भटालंकार' में उद्धृत किए गए पद्यों का उल्लेख किया है।
8. विंटरनिट्ज़ का मत है (Geschichte der Ind. Lit. ii, पृ० 338 पा० टि० 1; iii, पृ० 22 पा० टि० 1, तथा iii, पृ० 642) कि वाग्भट प्रथम ही 'नेमिनिर्वाण' के रचयिता हैं। जल्हण ने 'अनालोच्य प्रेम्णः' पद्य (एक) वाग्भट-रचित माना है, किंतु यह पद्य इनमें से किसी भी वाग्भट के ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। परंतु अमरु 80 में यह पद्य मिलता है। वल्लभदेव 1170 में इस पद्य को अज्ञातलेखक का कहा गया है, 'सदुक्तिकर्णामृत' में इसे राजशेखर-रचित तथा 'कवींद्रवचन' 372 में विकट-नितंबा कवयित्री रचित माना गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि वाग्भट प्रथम हेमचंद्र के समकालीन थे तथा अणहिल्ल-पट्टन[1] के चालुक्य-नरेश जयसिंह सिद्धराज के संरक्षण में रहे। जयसिंह 1094 से 1143 ई० के बीच हुए हैं। ग्रंथ के iv. 45, 76, 81, 85, तथा 132 में राजा तथा उनकी राजधानी का वर्णन किया गया है। जिनवर्धन सूरि तथा सिंहदेव गणि, दोनों ने अपनी टीकाओं में कहा है कि निर्दिष्ट राजा, अणहिल्ल-पट्टन-नरेश कर्णदेव के पुत्र, जयसिंह थे। अध्याय iv. 148 पर सिंहदेव गणि की टीका के अनुसार वाग्भट संभवत: उपर्युक्त राजा के महामात्य थे। प्रभाचंद्र सूरी के प्रभावक-चरित[2] (पृ० 205), के अंतर्गत हमारे लेखक से संबंधित विवरण से इस कथन की पुष्टि होती है तथा यह भी सूचित होता है कि वाग्भट 1123 ई० तथा 1157 ई० में जीवित थे। इस प्रकार वाग्भट का साहित्यरचना-काल मोटे तौर से 12 वीं शती के पूर्वार्द्ध में निर्धारित किया जा सकता है।

'वाग्भटालंकार' में पांच परिच्छेद हैं। इसमें कुल मिलाकर 260 पद्यों के अंतर्गत नाट्य को छोड़कर अलंकार के लगभग सभी विषयों का निरूपण किया गया है। यद्यपि इस ग्रंथ पर अनेक टीकाएं लिखी गई हैं, लेकिन यह एक लघु ग्रंथ मात्र है और इसमें कोई विशेष बात नहीं है। मम्मट तथा हेमचंद्र-प्रतिपादित तीन गुणों की जगह इसमें दस गुणों का विवेचन किया गया है तथा केवल दो रीतियां, वैदर्भी तथा गौड़ी दी गई हैं। वेबर की बर्लिन पांडुलिपि संख्या 1718 में एक छठा अध्याय भी है। इसके अतिरिक्त बर्नेल का कैटलॉग तंजोर मैन्युस्क्रिप्ट्स, पृ० 576 भी देखिए।

वाग्भट द्वितीय परवर्ती लेखक प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्होंने वाग्भट प्रथम का उल्लेख किया है तथा हेमचंद्र से प्रचुर सामग्री का उदाहरण दिया है; इसलिए उनकी तिथि की एक सीमा अनायास ही प्राप्त हो जाती है। उनकी अन्य तिथि-सीमा[3] अज्ञात है, क्योंकि इस विषय पर हेमचंद्र को छोड़कर परवर्ती लेखकों ने जैन आचार्यों का शायद ही कहीं उल्लेख किया है। संभवत: वे देवेश्वर से पूर्व हुए हैं, किंतु उनके उद्धरणों के आधार पर कोई तैथिक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। वाग्भट द्वितीय ने स्वयं अपने दो ग्रंथों, अर्थात्, 'ऋषभदेवचरित' (पृ० 15, इसे

1. कश्मीर के जयसिंह नहीं, हरिचंद्र (पृ० 49) ने यह नाम गलती से दिया है।
2. 13 वीं शती का उत्तरार्द्ध-देखिए बूहलर का 'हेमचंद्र', टिप्पणी 1; तथा 'वाग्भटालंकार' (सं० काव्यमाला 1916), पृ० 1-2 तलटीप।
3. हरिचंद्र शास्त्री (उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 49) ने उन्हें 13वीं शती में निर्धारित किया है, किंतु कारण नहीं बताया है।

'महाकाव्य' कहा गया है) तथा 'छंदोनुशासन' (पृ० 20) का उल्लेख किया है, किंतु इन दोनों का कुछ भी पता नहीं है। दो उदाहरण-पद्यों में मूलराज (पृ० 45) तथा विभाकर (पृ० 44) नामक दो राजाओं का उल्लेख है। विभाकर के विषय में तो कुछ भी ज्ञात नहीं है, किंतु मूलराज संभवतः गुजरात में अणहिल्लपट्टन (अन्हिल्वाड़) के चालुक्यवंश के संस्थापक थे [1]।

'काव्यानुशासन' की एक पांडुलिपि (एगलिंग, इंडिया आफ़िस कैटलॉग संख्या 1157) पर संवत् 1515 (=1458—59 ई०) अंकित है। वाग्भट द्वितीय संभवतः 14 वीं शती में हुए हैं।

हेमचंद्र के इसी नाम के ग्रंथ की भांति वाग्भट द्वितीय का 'काव्यानुशासन' भी टीका सहित सूत्र-रूप में लिखा गया है। किंतु यह बहुत छोटा ग्रंथ है। इसमें केवल पांच अध्याय हैं। इसमें नाट्य को छोड़कर काव्यालंकार के लगभग सभी विषयों का निरूपण है। मम्मट के अनुसार इसमें तीन गुणों तथा तीन रीतियों का विवेचन है। उपर्युक्त जैन लेखकों द्वारा निरूपित अलंकारों के नाम तथा उनकी परिभाषा प्राचीन लेखकों से कहीं-कहीं भिन्न है। उन्होंने अलंकारों की संख्या कहीं भी 40 से अधिक नहीं दी है, किंतु वाग्भट द्वितीय ने लगभग 70 अलंकार दिए हैं।

(३)

हेमचंद्र तथा वाग्भट द्वितीय पर कोई भी टीका उपलब्ध नहीं है, किंतु वाग्भट प्रथम के 'वाग्भटालंकार' [2] पर कई टीकाएं लिखी गई हैं। निम्नलिखित टीकाकारों में से जिनवर्धन सूरि तथा सिंहदेव गणि अधिक प्रसिद्ध हैं और उनकी टीकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनवर्धन, जिनराज सूरि के शिष्य तथा लगभग 1405 से 1419 ई० [3] तक खरतरगच्छ के पुरोहित थे। कुछ ग्रंथसूचियाँ (यथा पिटर्स, 2814) में उनका नाम आदिनाथ दिया गया है।

---

1. पीटर्सन ने iii, (परिशिष्ट, पृ० 124) हेमचंद्र के 'त्रिषष्टि-शलाक-पुरुष' की एक पांडुलिपि की 'पुष्पिका' में एक नेमिकुमार के उल्लेख का कथन किया है; वे संवत् 1295 में हुए हैं। उन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि यह नेमिकुमार हमारे वाग्भट के पिता थे अथवा नहीं (iv, lxxi)।
2. इस ग्रंथ के प्रकाशित पाठ में पाँच अध्याय हैं, बोडलियन, स्टीन, मद्रास तथा इंडिया आफ़िस पांडुलिपियों में भी इतने ही अध्याय हैं. किंतु वेबर की पांडुलिपि (संख्या 1718) में एक अतिरिक्त छठा अध्याय भी है। उसमें यमक अलंकार का विवेचन है।
3. इंडियन एंटिक्वेरी xi, पृ० 249 में क्लाट (Klatt) का लेख, भंडारकर, रिपोर्ट 1882-83 पृ० 25, IOC iii, संख्या 1156 तथा 2656a.

ग्रंथ-सूची

हेमचंद्र

संस्करण : (i) सं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, निर्णसागर प्रेस, बंबई 1901, मूलपाठ, अलंकार चूड़ामणि तथा विवेक सहित। (ii) 'अलंकार-चूड़ामणि', 'विवेक' तथा एक अज्ञात-लेखक के टिप्पण सहित, सं० आर० सी० पारिख तथा आर० बी० अथावले, दो खंडों में, महावीर जैन विद्यालय, बंबई 1938।

वाग्भट प्रथम

संस्करण : 'वाग्भटालंकार' (i) सं० ए० वरुआ, कलकत्ता 1883 (2) सं० शिवदत्त तथा के० पी० परब (सिंहदेव गणि की टीका सहित), निर्णय सागर प्रेस, बंबई 1895, 1915 (यहां संदर्भ 1915 के संस्करण से दिए गए हैं)। (3) जीवानंद विद्यासागर द्वारा, तृतीय संस्करण, कलकत्ता, 1903। (4) मूर्तिधर द्वारा, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई। (5) एक प्राचीन शब्द टीका सहित, क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा, बंबई 1894। (6) ग्रंथमाला iii, 1889-90 (जिनवर्धन की टीका सहित)।

टीकाएं (1) जिनवर्धन सूरि-कृत, जो 1405 से 1419 तक खरतरगच्छ के पुरोहित थे। यह मूलपाठ सहित ग्रंथमाला iii में उपर्युक्त कथनानुसार संपादित हुई है। मित्रा 2814 (औफ्रेक्ट i.559a) के आदिनाथ वास्तव में जिनवर्धन ही हैं। संवत् 1610=1553-54 ई० में पांडुलिपि तैयार की गई थी (कैटलॉग मैन्युस्क्रिप्ट BORI. xii, पृ० 323)।

(2) सिंहदेव गणि-कृत, सं० निर्णय सागर प्रेस, बंबई, पूर्वोक्त अनुसार। ALeip पांडुलिपि संख्या 824 पृ० 269 में इस टीका को 'चूर्णि' कहा गया है, किंतु जम्मू पांडुलिपि संख्या 1231, पृ० 274 में यह नाम नहीं मिलता।

(3) समयसुंदर-कृत। ये सकलचंद्र के शिष्य थे, जो स्वयं जिनचंद्र के शिष्य थे। उन्होंने 1636 ई० में अहमदाबाद में हरिराम के लिए यह टीका लिखी थी। देखिए पीटर्सन iv, पृ० cxxvi इन्होंने रघुवंश पर भी एक टीका लिखी है।

(4) राजहंस उपाध्याय-कृत। ये जिनतिलक सूरि के शिष्य थे, जो स्वयं खरतरगच्छ के जिनप्रभा सूरि के शिष्य थे। इस पांडुलिपि को भंडारकर ने खोजा था (रिपोर्ट 1883-84, पृ० 156, 279)। इसकी प्रति संवत् 1486=

1430 ई० में तैयार की गई थी। कलकत्ता ओरिएंटल जर्नल ii, पृ० 312-14 में पी० के० गोडे की टिप्पणी देखिए। उसमें उन्होंने इस टीका की तिथि 14 वीं शती के द्वितीयार्द्ध 1350 तथा 1400 ई० के मध्य में स्थिर की है।

(5) 'समासान्वय टिप्पण'—क्षेमहंस गणि-कृत। स्टीन पृ० 274 पर इसका सारांश दिया गया है।

(6) गणेश-कृत 'विवरण'। इनके पिता का नाम अनंतभट्ट तथा गुरु का नाम भास्कर था। देखिए, औफ्रेक्ट i. 559a, 794a, IOC iii, संख्या 1155/702b, पृ० 330. 1713 ई० में इसकी एक पांडुलिपि तैयार की गई थी।

(7) 'अवचूरि'—लेखक अज्ञात। औफ्रेक्ट ii.132a, iii.118b.

(8) वाचनाचार्य ज्ञानप्रमोद गणि-कृत 'ज्ञान-प्रमोदिका'। यह टीका संवत् 1681 (=1624–25) में लिखी गई थी। देखिए, पी० के गोडे, स्टडीज इन इंडियन लिटरेरी हिस्टरी, i. पृ० 76।

वाग्भट द्वितीय

संस्करण : 'काव्यानुशासन' शिवदत्त तथा के० पी० परब द्वारा, निर्णय-सागर प्रेस, बंबई 1894, 1915, 'अलंकारतिलक' सहित।

जयदेव

(१)

जयदेव ने 'चंद्रालोक' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिखा है। उनका दूसरा नाम पीयूषवर्ष (1.2)[1] है। उनके अपने कथनानुसार उनके पिता का नाम महादेव तथा माता का नाम सुमित्रा था (1.16)। संस्कृत साहित्य में इनके अतिरिक्त जयदेव नाम के कई लेखक हुए हैं। औफ्रेक्ट ने इस नाम के पंद्रह से अधिक विभिन्न व्यक्तियों का उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जयदेव प्रसिद्ध नाटक 'प्रसन्नराघव' के रचयिता कवि जयदेव ही हैं, क्योंकि इस नाटक की प्रस्तावना के

---

1. कुछ पांडुलिपियों के अंतिम पद्य में भी ऐसा नाम है, यथा, पीटर्सन, ii पृ० 109, मद्रास कैटलॉग xxii, पृ० 8656 : 'पीयूषवर्ष प्रभवं चंद्रालोकं मनोहरं' इत्यादि। 'जयंति याज्ञिक-श्रीमान्-महादेवांग-जन्मनः। सूक्ति पीयूषवर्षस्य जयदेवकवेर्गिरः' पद्य में भी ऐसा उल्लेख है। इस पर 'शरदागम' तथा 'राकागम' टीका की गई है। कलकत्ता संस्करण में ये पद्य नहीं मिलते। गागाभट्ट की 'राकागम' टीका में स्पष्ट कथन है—जयदेवस्यैव पीयूषवर्ष इति नामांतरम्।

अंतर्गत दो पद्यों (i.14-15) में नाटककार को कौंडिन्य-गोत्रोत्पन्न महादेव तथा सुमित्रा का पुत्र कहा गया है। नामों की समानता आकस्मिक नहीं है। औफ्रेक्ट ने इस जयदेव को 'गीतगोविंद' का रचयिता प्रसिद्ध गीतकार जयदेव ही माना है।[1] इन दोनों लेखकों की काव्यप्रतिभा तथा रीति के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर तर्क-वितर्क किया गया है, किंतु इन दोनों में विशेष गुण-साम्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, गीतकार ने अपने एक अंतिम पद्य[2] में स्वयं को भोजदेव तथा रामादेवी (अथवा वामादेवी, अथवा राधादेवी, पाठांतर) का पुत्र सूचित किया है। इस कथन से प्रस्तावित अभिन्नता का निराकरण होता है। पक्षधर नामक तार्किक से, जिनका दूसरा नाम जयदेव भी है, अनन्यता की बात भी इसी प्रकार संदेहास्पद है। औफ्रेक्ट ने इन दोनों नामों का पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। इसमें संदेह नहीं कि पक्षधर केवल एक उपाधि है और उपर्युक्त तार्किक को यह उपाधि इसलिए दी गई थी, क्योंकि वे किसी भी पक्ष को तर्कद्वारा सिद्ध करने में समर्थ थे। हाल[3] का यह तर्क कि जयदेव ने अपने नाटक में (i 18) तार्किकोचित 'प्रमाण' के ज्ञान का उल्लेख किया है, विचाराधीन जयदेव से उसकी अनन्यता को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है।[4]

(२)

जयदेव की तिथि अभी तक निश्चित नहीं हो सकी है। निस्संदेह उन्हें केशव-मिश्र से पूर्व निर्धारित करना चाहिए, क्योंकि उन्होंने 'प्रसन्नराघव (i.37) के पद्य 'कदली-कदली' का उद्धरण दिया है (पृ० 47)। क्योंकि केशव 16 वीं शती के मध्यभाग में हुए हैं, इसलिए जयदेव को उनसे पूर्व निर्धारित किया जा सकता है। इस निष्कर्ष की पुष्टि इस प्रकार होती है—प्रद्योतन भट्ट ने 1583 ई०[5]

1. ZDMG xxvii, पृ० 30.
2. xii, पृ० 171, सं० निर्णयसागर प्रेस, 1917. कुंभ ने अपनी 'रसिकप्रिया' में इस पर टीका नहीं की है, किंतु शंकर ने अपनी 'रसमंजरी' में इस प्रकार कहा है—'अधुना पितृ-मातृ-नाम निबध्नन् प्राथयते सज्जनान्' (स० निर्णयसागर प्रेस, उद्धृत स्थल)। बूहलर की पांडुलिपि (काश्मीर रिपोर्ट, पृ० 46) के पृष्ठांत विवरण में भी ऐसा ही उल्लेख है, वहाँ रामदेव के स्थान पर रामादेवी पढ़िए।
3. 'सांख्यप्रवचनभाष्य' की भूमिका (बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1956) पृ० 62-63. कीथ (इंडियन लॉजिक, पृ० 33 इत्यादि) ने इस अनन्यता को स्वीकार किया है।
4. 60 श्लोकोंवाली 'रतिमंजरी (Giornale della Soc. Asiat Italiana, 1904, पृ० 371 इत्यादि में तथा पावोलिनी द्वारा संपादित हेबरलिन सं०) नामक कामशास्त्र-विषयक ग्रंथ के रचयिता जयदेव संभवत: एक अन्य परवर्ती लेखक हैं।
5. AFI संख्या 476 (51) पृ० 158; ALeip संख्या 820, पृ० 268।

में 'चंद्रालोक' पर 'शरदागम' टीका लिखी थी। वे बघेल वंश के बुंदेला नरेश वीरचंद्र के कृपापात्र थे। वीरभद्र ने स्वयं संवत् 1633=1577 ई० में वात्स्यायन पर 'कंदर्पचूड़ामणि' नामक टीका लिखी थी।[1] जयदेव के ग्रंथ के रचनाकाल की यह सीमा 14 वीं शती के आरंभ तक और पीछे की जा सकती है, क्योंकि 'प्रसन्न-राघव' (i.19 तथा 33)[2] के कुछ पद्य 1363 ई० में संकलित 'शार्ङ्गधरपद्धति' (164 तथा 3520) में मिलते हैं। इसके अतिरिक्त शिगभूपाल ने अपने 'रसार्णव-सुधाकर' (164, 3520) में इस नाटक का उल्लेख किया है। शिगभूपाल की तिथि 1330 ई० निर्धारित की गई है। इस प्रकार 14 वीं शती का प्रथम चरण जयदेव की तिथि की एक सीमा माना जा सकता है[3]।

अनुमानतः जयदेव, रुय्यक के पश्चात् हुए हैं और इसी आधार पर उनकी तिथि की दूसरी सीमा भी निश्चित की जा सकती है। जयदेव ने अपने 'चंद्रालोक' में अलंकारों की परिभाषाओं का उपयोग किया है, जिन्हें मूल रूप में सर्वप्रथम रुय्यक ने प्रस्तुत किया था। उदाहरणार्थ, जैसा कि रुय्यक के अपने कथन तथा

---

1. पीटर्सन ii, पृ० 66, 132; iv पृ० cxvi सं० रामचंद्र शास्त्री, लाहोर, 1926।
2. अन्य उद्धृत पद्य ये हैं—ii.22 (=3557), vii.59 (=3626), vii.60 (=3631).
3. 'प्रसन्नराघव' के संस्करण (पूना 1894) में (पृ० xiii इत्यादि) परांजपे तथा पनसे ने जयदेव को पक्षधर जयदेव नामक तार्किक से अनन्य सिद्ध करने तथा उसे 1500 और 1577 ई० के मध्यवर्ती काल में निर्धारित करने का यत्न किया है। पीटर्सन ने 'सुभाष' की भूमिका, पृ० 37 इत्यादि में यही प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त, IOC, iii, पृ० 332 इत्यादि पर एगलिंग के लेख से भी तुलना कीजिए। विंटरनिट्ज़ (Geschichte der Ind. Lit. iii, पृ० 26, पा० टि० 3) के मतानुसार जयदेव, अप्पय्य से बहुत पहले नहीं हो सकते। किंतु इन सब विद्वानों ने शार्ङ्गधर के इस उद्धरण पर ध्यान नहीं दिया। जयदेव द्वारा कवि:चोर के उल्लेख से कोई तैथिक निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता; बूहलर ने इस कवि को बिह्लण से अनन्य माना है। यह बात भी संदेहास्पद है (देखिए, सोल्फ (Solf) Die Kashmir Recension der Panchashika, कील 1886, पृ० xxi इत्यादि) इसके अतिरिक्त इस प्रश्न पर, एस० के० डे की, 'हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर', कलकत्ता 1947, पृ० 368-69 भी देखिए। 'प्रसन्नराघव' के पद्य 'महानाटक' में मिलते हैं, इस बात पर बल देना आवश्यक नहीं है। क्योंकि 'महानाटक' की तिथि तथा उसके शुद्ध मूलपाठ का प्रश्न अभी तक निश्चित नहीं हो सका है (देखिए, लेवी ii, पृ० 88, स्टेन कोनो, Ind. Drama पृ० 88-9), अलंकार शास्त्री के नाते अप्पय्य, केशव तथा भीमसेन जैसे अति अर्वाचीन लेखकों ने जयदेव का उल्लेख किया है।

जयरथ के उल्लेख से सूचित होता है [1], रुय्यक ने ही सबसे पहले विकल्प अलंकार का आविष्कार किया था तथा उसकी परिभाषा की थी। जयदेव ने रुय्यक के इस विकल्प-अलंकार को अक्षरशः उद्धृत किया है (v. 112)। क्योंकि जयदेव ने रुय्यक तथा मम्मट के विशिष्ट मत का समर्थन किया है, इसलिए उनकी तिथि 12वीं शती के द्वितीयार्ध से पहले निर्धारित नहीं की जा सकती।

(३)

'चंद्रालोक' काव्यशास्त्र का एक सामान्य ग्रंथ है। इसमें दस मयूख अथवा अध्याय तथा अनुष्टुप में लगभग 350 पद्य हैं। इस ग्रंथ का कलकत्ता संस्करण 1874 में प्रकाशित हुआ था [2], उसमें विषय-सूची इस प्रकार है—(1) वाग्विचार (श्लोक 16). (2) दोष निरूपण (श्लोक 44½)। (3) लक्षण-निरूपण (श्लोक 11)। (4) गुण-निरूपण, गुणों की संख्या 10 दी गई है (श्लोक 12) (5) अलंकार निरूपण, इसमें शब्दालंकारों का निरूपण है (श्लोक 10), अलंकारानुक्रमणिका (श्लोक 16) और अर्थालंकार (श्लोक 174). (6) रसादि-निरूपण (श्लोक 24), इसमें आनुषंगिक रूप से तीन रीतियों तथा पांच वृत्तियों का विवेचन भी है। (7) ध्वनिनिरूपण (श्लोक 18). (8) गुणीभूत-व्यंग्य (श्लोक 10). (6) लक्षण-निरूपण (श्लोक 15). (10) अभिधा निरूपण (श्लोक 4)। लाइपजिग पांडुलिपि 819 (इसमें केवल पांच 'मयूख' हैं) में मुख्यतः ऐसी ही व्यवस्था है और अप्पय्य के 'कुवलयानंद' पर अपनी टीका (पृ० 9) में गंगाधर द्वारा दी गई व्यवस्था के अनुरूप है। उसमें अध्यायों की व्यवस्था इस प्रकार है—(1) शब्दमयूख। (2) दोषमयूख। (3) लक्षणमयूख। (4) गुणमयूख। (5) अलंकार-मयूख। (6) रस-मयूख। (7) ध्वनि-मयूख। (८) गुणीभूत व्यंग्य-मयूख। (9) लक्षण-मयूख, तथा (10) तत्शक्ति (=अभिधा) मयूख। [3]

---

1. तुलना कोजिए, जैकोवी, ZDMG. lxii, पृ० 600. नोट 1. इस अलंकार के संबंध में रुय्यक ने स्पष्ट रूप में कहा है—'पूर्वैरकृतविवेकोऽत्रदर्शित इत्यवगंतव्यम्।' इस पर जयरथ ने इस प्रकार कहा है—'अनेनास्य ग्रंथकृदुपज्ञत्वमेव दर्शितम्' (पृ० 159). इसके अतिरिक्त, विचित्र अलंकार (रुय्यक पृ० 133 = जयदेव v.82)।
2. जीवानंद के 1906 के कलकत्ता संस्करण में अधिकांशतः ऐसा ही अध्याय-विभाजन है तथा विभिन्न अध्यायों मे श्लोक-संख्या भी इसी प्रकार है। ग्रंथ में लगभग 300 श्लोक हैं, किंतु कुछ संस्करणों में श्लोक-संख्या कुछ भिन्न है। लेखक ने स्वरचित उदाहरण दिए हैं।
3. प्रद्योतन भट्ट, गागाभट्ट तथा वैद्यनाथ की टीकाओं (मद्रास कैटलॉग xii, 12876-78) के अनुसार मूलपाठ में दस मयूख हैं। मित्रा ii, पृ० 177, v पृ० 103, ix पृ० 184; पीटर्सन ii. 109 में लक्षित पांडुलिपियों में भी पूर्ण मूलपाठ है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पाँचवें अध्याय का अर्थालंकार-संबंधी अंश, ग्रंथ का सबसे महत्वपूर्ण भाग है, जो कालांतर में काव्यालंकार की नियम-पुस्तक (manual) के रूप में लोकप्रिय हो गया। अप्पय्य दीक्षित ने इसी प्रयोजन से अपने 'कुवलयानंद' में इसका उपयोग किया। उन्होंने यत्रतत्र सामान्य परिवर्तन करके उपर्युक्त अंश से कारिकाओं का अक्षरशः उद्धरण किया है, स्वयं केवल गद्य-टीका तथा कुछ पूरक अलंकार ही दिए हैं। एक प्रकार से अप्पय्य के ग्रंथ को 'चंद्रालोक' के अर्थालंकार-अध्याय पर एक टीका ही मान सकते हैं। अपने ग्रंथ के प्रारंभिक पद्यों में अप्पय्य ने 'चंद्रालोक' के प्रति आभारोक्ति के रूप में कहा है [1] कि मैंने 'चंद्रालोक' के लक्ष्य-लक्षण-श्लोक उद्धृत किए हैं, किंतु उन्होंने कहीं कुछ परिवर्तन कर दिए हैं तथा स्वरचित श्लोक भी दिए हैं।[2] अंतिम श्लोक में उन्होंने 'चंद्रालोक' (अर्थात् चंद्र का आलोक अथवा चंद्र का आलोकन) के नाम पर ग्रंथ, 'कुवलयानंद' (अर्थात्, कुवलय का आनंद) के नामकरण की इस प्रकार व्याख्या की है—

चद्रालोको विजयतां, शरदागमसंभवः।
हृद्यः कुवलयानंदो यत्प्रसादादभूदयम्॥

इस श्लोक मे श्लेष के अतिरिक्त 'चंद्रालोक' की प्रशंसा, तथा उसी से संपन्न, अर्थात् उसी पर लिखी गई 'शरदागम' टीका तथा उन दोनों के प्रसाद से उत्तम 'कुवलयानद' की उत्पत्ति की बात कही गई है। यह 'शरदागम' टीका 'चंद्रालोक' पर 1583 ई० में प्रद्योतन भट्ट रचित इसी नाम की टीका को परिलक्षित करती है।[3]

---

1. येषां चंद्रालोके दृश्यंते लक्ष्यलक्षणश्लोकाः।
प्रायस्त एवं तेषामितरेषां त्वभिनवा विरच्यंते॥
2. हलस्यनाथ शास्त्री-संपादित 'कुवलयानंद' (गंगाधर की 'रसिकरंजनी' सहित), कुंभकोणम् 1892 के संस्करण में कारिकाओं के पाठांतर दिए गए हैं।
3. वैद्यनाथ को 'शरदागम' टीका का अस्तित्व ज्ञात नहीं था। उनके अनुसार 'शरदागम-संभव' शब्द 'चंद्रालोक' के ही किसी पूर्ववर्ती मूल पाठ को लक्षित करते हैं (सं० निर्णयसागर प्रेस, 1917, पृ० 188)। टीकाकार के अज्ञान का ऐसा ही एक उदाहरण 'कुवलयानंद' (पृ० 86) पर आशाधर ने अपनी टीका में दिया है कि अप्पय्य ने वेंकटगिरि के राजा के अनुरोध पर 'चंद्रालोक' की रचना की तथा उसके पश्चात् 'चंद्रालोक' के ही आधार पर अपने 'कुवलयानंद' की रचना की। अप्पय्य के टीकाकारों में गंगाधर अधिक विश्वसनीय टीकाकार हैं। उनके कथनानुसार अप्पय्य उनके दादा के एक भाई के गुरु थे। उन्होंने उपर्युक्त शब्दों की शुद्ध व्याख्या इस प्रकार की है—अत्र चंद्रालोकनामा ग्रंथः शरदागम-नाम्ना टीका-ग्रंथेन संभव उत्पतिः (पृ० 283)। यह अनुमान (SgS. ii, पृ० 68-9) कि जयदेव ने अप्पय्य द्वारा अपने ग्रंथ के उपयोग को अनुचित माना था और 'प्रसन्नराघव' की प्रस्तावना में (जहाँ सूत्रधार ने अपने नाम की चोरी की बात कही है) अप्रत्यक्ष रूप में इसे लक्षित भी किया है, ठीक नहीं, क्योंकि अप्पय्य, जयदेव के बहुत बाद हुए हैं।

जयदेव रचित 'चंद्रालोक' के उपर्युक्त अंश का मुख्यरूप में उपयोग होने के कारण ग्रंथ के अर्थालंकार-अध्याय मात्र [1] तथा स्वयं अप्पय्य-रचित 'कुवलयानंद' को भी 'चंद्रालोक' नाम से सूचित किया जाने लगा है। [2] इंडिया आफिस पांडुलिपि 2656, वेबर 1721 तथा मद्रास पांडुलिपि 12871-74 वास्तव में 'कुवलयानंद' के अंतर्गत 'चंद्रालोक' का अर्थालंकार अध्याय ही है। उसमें ग्रंथ का संपूर्ण पाठ नहीं है, फिर भी उसे 'चंद्रालोक' कहा गया है। अप्पय्य के ग्रंथ में जयदेव द्वारा निरूपित केवल सौ अथवा 103 अलंकारों [3] के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का एक पूरक अध्याय भी है। 'चंद्रालोक' के कुछ पाठों में इस अध्याय का गलती से समावेश कर लिया गया है। जयदेव तथा अप्पय्य के ग्रंथों की विभिन्न पांडुलिपियों में आरंभिक तीन श्लोकों के पूर्वापर क्रम तथा अलंकार अध्याय के अंतर्गत श्लोकों की संख्या में बड़ी अव्यवस्था है। 'चंद्रालोक' के इस अध्याय में 'परस्परतपः संपत्' श्लोक इस ग्रंथ के सभी मान्यताप्राप्त पाठों में उपलब्ध है, किंतु यह समझ में नहीं आता कि जयदेव ने इस मंगलात्मक श्लोक को ग्रंथ के मध्य में क्यों लिख दिया। गंगाधर का कथन है कि यह श्लोक जयदेव का नहीं है, अपितु अप्पय्य ने अपने ग्रंथ के नांदी-श्लोक के रूप में इसे लिखा था।[4]

(४)

जयदेव के टीकाकार

चंद्रालोक के टीकाकारों में प्रद्योतन भट्ट (उपनाम, पद्मनाभ मिश्र तथा उनकी चंद्रालोक-प्रकाश शरदागम नामक टीका का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

1. तुलना कीजिए—कुवलयानंद पृ० 9 पर गंगाधर का कथन—चंद्रालोकोऽर्थालंकारात्मक एव, न त्वन्य इति केषांचिद् भ्रमः।
2. इसी प्रकार Regnaud (Rhetorique Sanskrite पृ० 375) का कथन है कि 'चंद्रालोक' में 151 श्लोक हैं तथा इसमें अलंकारों का सोदाहरण लक्षण-विवेचन है। यही तथ्य 'कुवलयानंद' पर लागू होता है।
3. अलंकारों के लक्षण तथा उनकी सूची की यह संख्या सर्वाधिक नहीं है। मम्मट ने 61, रुय्यक ने 75 अर्थालंकारों के लक्षण दिए हैं, किंतु शोभाकर मित्र ने 109, तथा अप्पय्य दीक्षित ने 115 अलंकार दिए हैं। अलंकारों की संख्या बढ़ती ही गई है।
4. देखिए गंगाधर का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 9 तथा 'परस्परतपः संपत् इति चंद्रालोक-नांदी-श्लोक इत्यपि भ्रम एव, पंचममयूखे शब्दालंकारान्निरूप्य 'उपमा यत्र सादृश्य' इत्यादिना अर्थालंकार-प्रस्तावे नांद्या एवाभावात्।" 'अलंकारषु बालानाम्' एक अन्य श्लोक तथा पांचवें अध्याय के श्लोक 174, जिसमें 'वेंकटप्रभु' का उल्लेख है, के सबंध में भी यही बात लागू होती है, क्योंकि वे भी अप्पय्य-रचित प्रतीत होते हैं। तुलना कीजिए—IOC, iii, पृ० 333-34, वहाँ इस विषय पर चर्चा की गई है।

उनके पिता का नाम मिश्र बलभद्र तथा संरक्षक का नाम वीरभद्र (अथवा वीररुद्र) बताया गया है। वीरभद्र, बघेल (अथवा बंदेल्ल) वंशीय अयोध्या के राजा वीरभानु के पौत्र तथा रामचंद्र के पुत्र थे।[1] इनकी टीका की तिथि 1583 ई० है। वात्स्यायन पर वीरभद्र की 'कंदर्पचूड़ामणि' नामक टीका की तिथि 1577 ई० है, जिससे उनके संरक्षक का काल 16वीं शती का उत्तरार्द्ध सूचित होता है। कहा जाता है कि वीरभद्र ने राजकुमार सलीम के अनुरोध से अबुल फ़ज़ल का वध किया था। उनके राजपंडित, मित्र मिश्र ने 'वीरमित्रोदय' नामक ग्रंथ लिखा है। उसमें उन्होंने अपने संरक्षक का उल्लेख किया है।

वैद्यनाथ पायगुंड ने 'रमा'[2] नामक एक अन्य टीका लिखी है। संभवत यह वैद्यनाथ पायगुंड, गोविंद के 'काव्यप्रदीप' तथा अप्पय्य के 'कुवलयानद' टीकाकार, वैद्यनाथ तत्सत नहीं हैं, यद्यपि अधिकतर ग्रंथ-सूचियों में इन्हें एक ही मान लिया गया है। इनकी टीकाओं के पृष्ठांत विवरण में इनके पायगुंड तथा तत्सत गोत्रनाम स्पष्ट रूप में दिए गए हैं। हमारे वैद्यनाथ ने 'रमा' के एक आरंभिक श्लोक में स्वयं को स्पष्ट रूप में पायगुंड कहा है। पायगुंड एक प्रसिद्ध महाराष्ट्र गोत्र है। किंतु उन्होंने स्वयं अपनी वंशावली का उल्लेख नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने नागोजी के 'परिभाषेंदुशेखर' पर 'गदा' नामक टीका लिखी थी। इस प्रकार वे 18वीं शती के आरंभ के पश्चात् ही हुए होंगे।

इसके अतिरिक्त एक अल्पप्रसिद्ध टीका, 'राकागम' अथवा 'सुधागम' भी है। इसके लेखक हैं मीमांसक दिनकर (अथवा, दिवाकर) भट्ट के पुत्र, गागाभट्ट। विश्वेश्वर उनका उपनाम है। विश्वेश्वर न मीमांसा तथा स्मृति-विषयक कई ग्रंथ लिखे हैं (औफ्रेक्ट i, 587b)। वे 17वीं शती के प्रथम चरण में

---

1. मद्रास पांडुलिपि में 'बंदेल्ल' पाठ है, किंतु फ्लोरेंटाइन पांडुलिपि (AF पृ० 158) में 'बाघेल' पाठ है।

1. भ्रमवश इस टीका का नाम प्रायः 'हरिलोचनचंद्रिका' बताया गया है (औफ्रेक्ट i. 182a)। 'कुवलयानंद' पर वैद्यनाथ तत्सत् की 'अलंकारचंद्रिका' नामक टीका भी भ्रमवश इसी नाम से लक्षित की गई है। इस भूल का कारण यह है कि 'हरिलोचन-चंद्रिका' शब्द 'अलंकार-चंद्रिका' टीका के मंगल-श्लोक से मिलता है तथा क्रमशः जयदेव तथा अप्पय्य के टीकाकार इसी कारण भ्रमग्रस्त हो गए हैं। मंगलश्लोक इस प्रकार है—

अनुचिंत्य महालक्ष्मीं हरिलोचनचंद्रिकाम्।
कुर्वे कुवलयानंदसदलंकारचंद्रिकाम्॥

टीका के लिए अप्पय्य दीक्षित के अतर्गत देखिए। वैद्यनाथ पायगुंड,को एक 'लघु कुवलयानंद' का रचयिता कहा गया है (BORI, पांडुलिपि कैटलॉग xii, संख्या 287, पृ० 342-43)।

वर्तमान, प्रसिद्ध मीमांसक कमलाकर भट्ट के भतीजे तथा रामेश्वर के प्रपौत्र थे[1]। अतएव, विश्वेश्वर अपेक्षाकृत अर्वाचीन लेखक हैं और संभवत: 18 वीं शती के आरंभ में हुए हैं। इन्हें 'अलंकार-कौस्तुभ' (अन्यत्र देखिए) के रचयिता, वीरेश्वर से भिन्न मानना चाहिए।

इसके अतिरिक्त दो अल्पज्ञात टीकाओं के नाम नीचे ग्रंथसूची में दिए गए हैं।

ग्रंथसूची

संस्करण : कई बार प्रकाशित हो चुके हैं। (1) तेलुगु लिपि में व्यापार दर्पण प्रेस द्वारा, मद्रास 1857 (2) जीवानंद विद्यासागर द्वारा, कलकत्ता 1874, 1896, 1906, 1917. (3) सुब्रह्मण्य द्वारा, विशाखापत्तनम् 1898. (4) वेंकटाचार्य शास्त्री द्वारा, ग्रंथ-लिपि में, पालघाट 1912. (5) वी० एल० पंसीकर द्वारा, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, द्वितीय संस्करण 1907 (इसमें वैद्यनाथ की 'चंद्रिका' टीका के साथ 'कुवलयानंद' भी समाविष्ट है), 1912, 1917. (6) प्रद्योतन भट्ट उपनाम पद्मनाभ मिश्र की 'चंद्रालोकप्रकाश शरदागम' टीका सहित; स० नारायण शास्त्री खिस्ते, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस 1929. (7) वैद्यनाथ पायगुंड की 'रमा' टीका सहित, स० गोविंद शास्त्री, बनारस, 1883 तथा, सं० महादेव गंगाधर बन्ने, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, 1923. (8) 'कुवलयानंद' तथा वैद्यनाथ की टीका सहित, सं० गोविंद शास्त्री, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई 1911. (9) गागाभट्ट की 'राकागम' टीका सहित, सं० चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस 1938। (10) सूर्यबलिराम चौबे द्वारा, बनारस 1895 (चंद्राशोक-निगूढ़ार्थ-दीपिका सहित)। 'बुधरंजना' टीका सहित, मद्रास (1863) से प्रकाशित संस्करण वास्तव में 'कुवलयानंद' में समाविष्ट अर्थालंकार अध्याय पर टीका-मात्र है, संपूर्ण ग्रंथ की टीका नहीं है। यहाँ कलकत्ता संस्करण 1917 से संदर्भ उद्धृत किए गए हैं; उसमें संपूर्ण पाठ दिया गया है। 'कुवलयानंद' पर टीकाओं के लिए अप्पय्य दीक्षित के अंतर्गत देखिए।

हस्तलिपियाँ : मद्रास कैटलॉग xii, 12860 (इसमें 'कुवलयानंद' के साथ 'चंद्रालोक' के श्लोक भी हैं) 12871-73। अधिकतर अन्य ग्रंथ-सूचियों (देखिए औफ्रेक्ट) में उल्लिखित हस्तलिपियों में अर्थालंकार अध्याय ही है, संपूर्ण पाठ नहीं है, देखिए पृ० 201-2। ओपर्ट ii, 2763 के अंतर्गत जयदेव का 'अलंकार-शतक' संभवत: चंद्रालोक के इसी अध्याय का विवरणात्मक नाम है। मित्रा 1612 में निर्दिष्ट 'अलंकार-संग्रह' वस्तुत: अर्थालंकार अध्याय ही है।

1. वंशावली इस प्रकार है—रामेश्वर-नारायण-रामकृष्ण-दिनकर-विश्वेश्वर।

टीकाएँ : (1) प्रद्योतन भट्ट की 'चंद्रालोक-प्रकाश-शरदागम', सं० यथोक्त। विवरणार्थ देखिए मद्रास कैटलॉग xxii, 12878. (2) विश्वेश्वर, उपनाम गागा भट्ट रचित 'राकागम' अथवा 'सुधा', सं० यथोक्त। गागाभट्ट ने 1674 ई० में शिवाजी का राज्याभिषेक किया था। उन्होंने 1680-81 ई० में राजा संभाजी को स्वरचित 'समय-नय' समर्पित किया था (पी० के० गोडे-प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ दि इंडियन हिस्टारिकल कांग्रेस, 1939, पृ० 1166-71). उनका जन्म बनारस के प्रसिद्ध मराठा भट्ट परिवार में हुआ था। उनके पिता दिनकर ने 'दिनकरोद्योत' लिखा। (3) वैद्यनाथ पायगुंड की 'रमा'। सं० यथोक्त। मद्रास कैटलॉग xii, 12876। 4) वाजचंद्र की टीका। औफ्रेक्ट, i, 182a (5) 'चंद्रालोक-दीपिका', लेखक का नाम अज्ञात है। औफ्रेक्ट i. 182a। (6) शारदशर्वरी, विरूपाक्ष-रचित, हुल्टश 1617, तंजौर कैटलॉग ix. 5221।

विद्याधर

(१)

के० पी० त्रिवेदी तथा आर० जी० भंडारकर ने 'एकावली'[1] के लेखक विद्याधर की लगभग शुद्ध तिथि निर्धारित कर दी है[2]। विद्याधर ने जिन लेखकों का उल्लेख किया है तथा उद्धरण दिए हैं, उनमें रुय्यक सबसे अर्वाचीन हैं (पृ० 150); इस प्रकार 12 वीं शती के मध्यभाग में उनके काल की एक सीमा प्राप्त हो जाती है। विद्याधर ने (पृ० 19) नैषध के लेखक श्रीहर्ष का उल्लेख

1. औफ्रेक्ट (i.75) ने 'एकावली' नाम के तीन भिन्न ग्रंथों का उल्लेख किया है, जो वास्तव में एक ही हैं। उनमें से पहला तथा तीसरा ग्रंथ निस्संदेह एक ही है और चर्चाधीन 'एकावली' को ही परिलक्षित करता है; किंतु बर्नेल 54 a (तुलना कीजिए, ओपर्ट ii. 3605) के अनुसार दूसरा ग्रंथ महामाहेश्वर कवि ने लिखा था। वास्तव में यह स्वयं विद्याधर की ही उपाधि है और चर्चाधीन विद्याधर तथा समान-उपाधि-धारी अभिनवगुप्त में भ्रम का कारण है (देखिए, वेबर ii, संख्या 1723)। मद्रास हस्तलिपि (मद्रास कैटलॉग xii, पृ० 8611) के पृष्ठांत-विवरण में इस प्रकार कहा गया है—इति श्रीमतो महामाहेश्वरस्य कवेर्विद्याधरस्यकृतावेकावलीनाम्न्यलंकारशास्त्रे, इत्यादि। बर्नेल की प्रति में उल्लिखित प्रथम श्लोक हमारी 'एकावली' की सभी प्रतियों में मिलता है। वेबर (उपर्युक्त ग्रंथ) निर्दिष्ट 'तरला' टीका वास्तव में मल्लिनाथ की 'तरला' ही है। औफ्रेक्ट ने विद्याधर को कामशास्त्र-विषयक 'केलिरहस्य' का लेखक माना है, किंतु ग्रंथ के पृष्ठांत-विवरण में लेखक का नाम वैद्य विद्याधर दिया गया है।
2. देखिए, भूमिका,—बंबई संस्कृत सीरीज संस्करण तथा भंडारकर रिपोर्ट 1887-91, पृ० lxvi, इत्यादि।

किया है। वे संभवतः 12 वीं शती में हुए हैं [1]। इससे विद्याधर के पूर्वोक्त काल-संबंधी निष्कर्ष की पुष्टि होती है। किंतु विद्याधर ने उसी संदर्भ में कवि हरिहर का भी उल्लेख किया है[2] और कहा है कि उन्होंने राजा अर्जुन (संभवतः, मालवा के तत्कालीन राजा) से विशाल धनराशि प्राप्त की थी। इस उल्लेख के कारण उनकी तिथि की काल-सीमा कुछ समय पश्चात् अर्थात् 13 वीं शती के प्रथम चरण में निर्धारित की जा सकती है। शिंगभूपाल ने 'एकावली' का उल्लेख किया है।[3] उनकी तिथि 1330 ई० है। मल्लिनाथ ने 'एकावली' पर टीका की है। वे 14वीं शती के अंतिम भाग में हुए थे। मूल पाठ के आंतरिक प्रमाण के आधार पर इनकी तिथि 13 वीं शती के प्रथम चरण तथा 14 वीं शती के प्रथम चरण की मध्यावधि में सिद्ध होती है।

'एकावली' के उदाहरण-श्लोकों में[4] कलिंग-नरेश नरसिंह की प्रशंसा की गई है। 1282 तथा 1327 की अवधि में कलिंग में नरसिंह नाम के दो राजा हुए हैं। विद्याधर के नरसिंह इनमें से एक थे। इस प्रकार विद्याधर की अधिक शुद्ध तिथि, 13 वीं शती के अंत तथा 14वीं शती के आरंभ के मध्यवर्ती काल में प्राप्त होती है। उक्त ग्रंथ में हमारे लेखक ने अपने संरक्षक के विषय में कहा है कि उसने हम्मीर का मानमर्दन किया था (पृ० 176, 177, 257, 260। हम्मीर संभवतः नयचंद्र सूरि के काव्य का नायक प्रसिद्ध चौहान राजा था।[5] उसने लगभग 1283 में राज्य-भार ग्रहण किया तथा

1. देखिए बूहलर, जर्नल ऑफ़ दि बंबई ब्रांच आफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी, x पृ० 31 इत्यादि, xi पृ० 279 इत्यादि। के० टी० तेलंग, इंडियन एंटिक्वेरी, ii, पृ० 71, iii, 81 इत्यादि; बूहलर रिपोर्ट 1874-75, पृ० 8.
2. पृ० 348 पर त्रिवेदी की टिप्पणी देखिए।
3. 'रसार्णव-सुधाकर' पृ० 107='एकावली' 1, 2. तुलना कीजिए SgS, i पृ० 7 इत्यादि। यह श्लोक बिह्लण की 'कर्णसुंदरी' (सं० काव्यमाला 7, 1895, पृ० 56) के प्रकाशित पाठ में तीसरे प्रशस्तिश्लोक के रूप में मिलता है। शिंगभूपाल ने स्पष्ट रूप से विद्याधर तथा उनकी 'एकावली' के संबंध में इस प्रकार कहा है– उत्कलाधिपतेः शृंगाररसाभिमानिनो नरसिंहदेवस्य चित्तमनुवर्तमानेन विद्याधरेण कविना बाढमभ्यंतरीकृतोऽसि, एवं खलु समर्थित-मेकावल्यामनेन (सं० त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज़ पृ० 206)। के० पी० त्रिवेदी (भूमिका पृ० xxiii) का निष्कर्ष है कि केशरी नरसिंह (1282-1307 ई०) अथवा प्रतापनारायण सिंह (1307-1327) विद्याधर के संरक्षक थे।
4. लेखक ने स्वयं कहा है—(श्लोक 7) करोमि नरसिंहस्य चाटुश्लोकानुदाहरन्। इस विषय में यह ग्रंथ विद्यानाथ के 'प्रतापरुद्रयशोभूषण', कृष्ण यज्वन् के 'रघुनाथभूपालीय' तथा देवशंकर के 'अलंकारमंजूषा' के समान है।
5. देखिए मं० कीर्तने v.56, तथा पृ० 27; भंडारकर का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० lxvii इत्यादि।

दक्षिण प्रदेश की विजय का प्रयत्न किया। इन सब बातों से यह संभव प्रतीत होता है कि एकावली की रचना 13 वीं शती के अंतिम तथा 14 वीं शती के आरंभिक भाग में हुई थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि विद्याधर ने कामशास्त्र विषयक 'केलिरहस्य' भी लिखा था।[1]

(२)

मल्लिनाथ

भंडारकर तथा त्रिवेदी ने 'एकावली' पर 'तरला' नामक टीका के लेखक मल्लिनाथ की तिथि 14 वीं शती के अंत में निश्चित की है। ग्रंथ की रचना के कुछ समय पश्चात् ही उन्होंने अपनी टीका लिखी होगी, क्योंकि श्लोक 6 से यह प्रकट होता है कि टीका के अभाव के कारण 'एकावली' का पठन-पाठन न हो सका। यह मल्लिनाथ वास्तव में प्रसिद्ध टीकाकार कोलाचल मल्लिनाथ सूरि (पेद्द भट्ट) हैं। उन्होंने कालिदास, भारवि, भट्टि, श्रीहर्ष तथा माघ के पाँच श्रेष्ठ महाकाव्यों पर टीकाएँ लिखी हैं। इनमें से कुछ टीकाओं में उन्होंने 'एकावली' के उद्धरण दिए हैं।

कारिका तथा वृत्ति सहित, 'एकावली' में आठ उन्मेष हैं। इसके अंतिम दो अध्यायों (7-8) में अलंकार-विवेचन में मम्मट तथा रुय्यक के ग्रंथों का उपयोग किया गया है। इसके पहले अध्याय में काव्य के लक्षण तथा दूसरे अध्याय में तीन वृत्तियों, अर्थात्, अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना का विवेचन है। तीसरे तथा चौथे अध्याय में ध्वनि, पाँचवें तथा छठे में तीन काव्य-गुणों, तीन रीतियों तथा दोषों का विवेचन है। उदाहरणार्थ सभी श्लोक विद्याधर के स्वरचित हैं। उनमें उन्होंने अपने संरक्षक उत्कल-नरेश नरसिंह की प्रशंसा की है।

ग्रंथ-सूची

संस्करण—सं० के० पी० त्रिवेदी, बंबई संस्कृत सीरीज 63, 1903. इस संस्करण में मल्लिनाथ की 'तरला', भूमिका तथा टिप्पणी भी दी गई है। इसके

1. ओफ्रेक्ट i, 537b.
2. भंडारकर रिपोर्ट, 1887-91, पृ० lxix; त्रिवेदी, भट्टि-काव्य की भूमिका, पृ० xxiv-xxviii; एकावली की भूमिका पृ० xxvii इत्यादि; पाठक, मेघदूत की भूमिका, पृ० 11-12; नंदर्गीकर, रघुवंश की भूमिका, पृ० 1-6, विशेषत: पृ० 5-6।

अतिरिक्त प्रभाकर (जन्म 1564 ई०) रचित एक अन्य टीका है। प्रभाकर के पिता का नाम माधवभट्ट तथा दादा का नाम रामेश्वर भट्ट था।

विद्यानाथ

(१)

विद्यानाथ ने जिन लेखकों का उल्लेख किया है, उनमें रुय्यक (पृ० 291, 334) अर्वाचीनतम लेखक हैं। रुय्यक के 'साहित्य-मीमांसा' नामक लुप्त ग्रंथ का पृ० 11 पर उल्लेख किया गया है। मल्लिनाथ ने अपनी विभिन्न काव्य-टीकाओं में अलंकारों के लक्षण बताते हुए विद्यानाथ के अनाम उद्धरण दिए हैं [1]।

विद्यानाथ की तिथि की सीमाएँ विद्याधर की तिथि के समान ही हैं तथा अन्य सामग्री के आधार पर उन्हें विद्याधर का समकालीन माना जा सकता है। 'एकावली' की तरह विद्यानाथ का 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' भी राजा प्रतापरुद्र की प्रशस्ति के रूप में लिखा गया था। ग्रंथ के उद्धरणार्थ सभी श्लोकों में इसी राजा (अन्य नाम वीरभद्र अथवा रुद्र) का गुणगान किया गया है। उनके पिता का नाम महादेव तथा माता का नाम मुन्मुडी अथवा मुम्मडंबा था (पृ० 12, 13, 16, 17, 133)। नाटक के लक्षणों के उदाहरणार्थ ग्रंथ के तीसरे अध्याय में इसी राजा के नाम पर रचित 'प्रतापरुद्रकल्याण' [2] नामक नाटक का प्रवेश कराया गया है। प्रतापरुद्र काकतीय वंश का राजा था।[3] त्रिलिंग अथवा आंध्र प्रदेश के अंतर्गत एकशिला उसकी राजधानी थी। उसने अन्य राजाओं के अतिरिक्त यादव-वंशीय राजाओं को भी पराजित किया था। इन तथ्यों तथा अन्य सामग्री के आधार पर के० पी० त्रिवेदी ने विद्यानाथ के संरक्षक प्रतापरुद्र को एकशिला अथवा वारंगल के काकतीय वंश के सातवें राजा से अनन्य माना है। इस राजा के शिलालेखों की तिथि 1298 तथा 1317 ई० के मध्य है [4]। सेवेल ने इसे 1295 तथा 1323 ई० के मध्य तथा शेषगिरि शास्त्री ने 1268 तथा 1319 ई० के मध्य स्थिर किया है [5]। उपर्युक्त यादव राजा संभवतः देवगिरि का छठा यादववंशीय

---

1. उद्धरणों के लिए ग्रंथ पर त्रिवेदी की भूमिका, पृ० ix देखिए।
2. औफ्रेक्ट i. 349a में इसका अलग से उल्लेख है; यह ग्रंथमाला खंड 1 के अंतर्गत प्रकाशित हुआ है।
3. 'रत्नापण' के अनुसार (पृ० 10; तथा 'रत्नशाण' पृ० 485) काकति देवी का भक्त होने के कारण उसे काकतीय कहते थे।
4. एर्गलिग (IOC iii, पृ० 338) ने 1268 तथा 1319 तिथियां दी हैं।
5. देखिए त्रिवेदी, भूमिका पृ० xvi-xxii. शुद्ध तिथियां 1298 तथा 1323 ई० हैं।

राजा रामचंद्र था। वह 1271 से 1309 ई० के बीच हुआ था[1]। अतएव, विद्याधर को लगभग 13 वीं शती के अंत तथा 14 वीं शती के आरंभ की मध्यावधि का निर्धारित किया जा सकता है। ऐसा भी कहा गया है कि लेखक का वास्तविक नाम अगस्त्य पंडित था, विद्यानाथ उपाधि थी।

'एकावली' के समान विद्यानाथ की रचना में कारिका, वृत्ति तथा अपने संरक्षक के प्रशंसा-वाचक उदाहरण-श्लोक हैं। इसके नौ प्रकरणों के अंतर्गत क्रमशः नायक, काव्य, नाटक, रस, दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा मिश्रालंकार का विवेचन है। जैसा कि पहले बताया गया है, नाटक के गुण-लक्षण-उदाहरणस्वरूप तीसरे प्रकरण में एक नाटक दिया गया है। मुख्यरूप में विवेचन का आधार मम्मट, रुय्यक, भरत तथा धनंजय हैं, किंतु यह ग्रंथ 'एकावली' से अधिक विशद है, क्योंकि इसमें नाट्य विषय पर भी चर्चा की गई है।

(२)

कुमारस्वामी

विद्यानाथ के टीकाकार कुमारस्वामी ने स्वयं को प्रसिद्ध टीकाकार तथा 'एकावली' पर 'तरला' के लेखक, कोलाचल मल्लिनाथ का पुत्र बताया है[2]। अतएव, कुमारस्वामी को 15 वीं शती के आरंभ में निर्धारित किया जा सकता है। उनकी टीका के नाम 'रत्नापण' (एगलिंग ने अपने ग्रंथ पृ० 338b पर बर्नल 36b का अनुसरण करते हुए गलती से इसे 'रत्नार्पण' कहा है) की उन्होंने स्वयं ही व्याख्या की है। रत्नापण का अर्थ है एक बाजार, जहाँ नायक के गुणरूपी सान पर परिष्कृत तथा विद्यानाथ द्वारा एकत्रित काव्यरत्नों का पणन है।

'रत्नापण' में अनेक उद्धरण दिए गए हैं। इसमें अन्य प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त, भोज के 'शृंगारतिलक', 'एकावली', 'साहित्यदर्पण' (पृ० 245), चक्रवर्ती तथा रुय्यक पर उनकी 'संजीवनी' नामक टीका, शिंगभूपाल तथा उनका 'रसार्णव', लेखक के पिता मल्लिनाथ, भाई पेद्दयार्य, भट्ट गोपाल तथा नरहरि सूरि का उल्लेख है। रस विषयक 'भाव-प्रकाश' का कई बार उल्लेख किया गया है।

1. भंडारकर, अर्ली हिस्ट्री, पृ० 92।

2. नारायण ने स्वयं को कुमारस्वामी का वंशज कहा है और 'चंपूरामायण' (मद्रास कैटलॉग xxi, काव्य पृ० 8212) पर अपनी टीका में अपने पूर्वजों की वंशावली का विवरण इस प्रकार दिया है—मल्लिनाथ-कपर्दी-मल्लिनाथ पेद्दुभट्ट-कुमारस्वामी। उनका कथन है कि पेद्दुभट्ट एक महामहोपाध्याय थे, उन्होंने 'नैषध' पर टीका लिखी थी तथा सर्वज्ञ (शिंगभूपाल ?) ने उन्हें स्वर्णस्नान करवाया था।

यह ग्रंथ अब शारदातनय (अन्यत्र देखिए) रचित माना गया है। वसंतराजीय नाट्यशास्त्र का भी उल्लेख है। इस ग्रंथ के लेखक, वसंतराज, प्रत्यक्ष रूप से राजा कुमारगिरि (अन्यत्र देखिए) थे। कुमारगिरि का अन्य नाम वसंतराज था। वे काट्यवेम के संरक्षक थे। पृष्ठ 170 पर एक कविकल्पद्रुमकार का उल्लेख है, किंतु यह वोपदेव रचित धातु-पाठ-विषयक ग्रंथ है। पृ० 113 पर उल्लिखित 'नाटकप्रकाश' के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। पृ० 44 पर लक्षित 'अलंकार-सुधानिधि' के संबंध में अप्पय दीक्षित-संबंधित अंश में देखिए। उन्होंने भी इस ग्रंथ का उद्धरण दिया है। संभवतः नरहरि सूरि 'रसनिरूपण' के तथा वीरनारायण (अन्यत्र देखिए) 'साहित्य-चिंतामणि' के लेखक थे [1]।

ग्रंथ के बंबई संस्करण के अंतर्गत 'रत्नशाण' नामक एक अन्य अपूर्ण टीका है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिपि (मद्रास Trm, ii, C 1923) के पुष्पिका-लेख से ऐसा सूचित होता है कि इसे शुकवट कुलोत्पन्न रामानुजाचार्य के पुत्र तथा वात्स्य रामानुजाचार्य के शिष्य तिरुमलाचार्य ने लिखा था। उनका निवास-स्थान गोदावरी जिले के अंतर्गत कोंिपल्ली के समीप रामतीर्थ था।

ग्रंथ-सूची

संस्करण (1) के० पी० त्रिवेदी द्वारा, बंबई संस्कृत सीरीज 65, 1909। इसमें कुमारस्वामी की 'रत्नापण', 'रत्नशाण' टीकाएँ, टिप्पणी तथा भूमिका भी समाविष्ट है। यहाँ इसी संस्करण से संदर्भ दिए गए हैं। (2) पोथी आकार का लिथो संस्करण, पूना 1849। (3) सरस्वती-तिरुवेंकडाचार्य तथा वंगीपुरम् राम-कृष्णमाचार्य द्वारा, तेलुगु लिपि में 'रत्नापण' टीका सहित, मद्रास 1868, 1869, 1871, 1888। (4) एस० चंद्रशेखर शास्त्रीगल द्वारा, 'रत्नापण' टीका सहित, बालमनोरमा प्रेस, मद्रास 1914.।

———

1. इन लेखकों के संबंध में 'अल्प प्रसिद्ध लेखक' शीर्षक अध्याय में आगे देखिए।

अध्याय आठ

विश्वनाथ से जगन्नाथ तक

विश्वनाथ

(१)

विश्वनाथ ने कहीं भी रुय्यक तथा मम्मट का नामोल्लेख नहीं किया है; किंतु विद्याधर तथा विद्यानाथ की तरह उन्होंने इन दोनों लेखकों के ग्रंथों की सामग्री का प्रचुर उपयोग किया है। उदाहरणार्थ, उन्होंने 'उपमेयोपमा' तथा 'भ्रांतिमत्' अलंकारों के लक्षण प्रत्यक्ष रूप में रुय्यक से लिए हैं तथा 'विकल्प' और 'विचित्र' नामक दो अलंकारों को भी मान्यता दी है। रुय्यक तथा जयरथ के कथनानुसार इन दोनों अलंकारों का आविष्कार रुय्यक ने ही किया था[1]। जैसा कि पी० वी० काणे का मत है, सभवतः विश्वनाथ (अध्याय ii. 14, पृ० 57) ने मम्मट के ग्रंथ की आलोचना का विरोध किया है, विशेषतः जहां रुय्यक ने अपनी 'संकेत' टीका में विचाराधीन विषय पर मम्मट की आलोचना की है। विश्वनाथ निश्चित रूप से रुय्यक के ग्रंथ से परिचित थे। उन्होंने पृ० 445 (अध्याय x. 2) पर रुय्यक के 'भुजंग-कुंडलीव्यक्त' इत्यादि श्लोक का उद्धरण दिया है। रुय्यक ने पृष्ठ 19 पर इसी श्लोक को स्वरचित बताकर 'श्रीकंठस्तव' से उद्धृत किया है। इनके अतिरिक्त विश्वनाथ ने इसी शती के दो अन्य लेखकों, 'गीतगोविंद' के रचयिता जयदेव[2]

---

1. ऐसे उदाहरण, जहां विश्वनाथ ने रुय्यक का अनुसरण अथवा आलोचना की है, ग्रंथ के पी० वी० काणे के संस्करण की भूमिका तथा टिप्पणी में दिए गए हैं।

2. विश्वनाथ द्वारा पृ० 506 (अध्याय x, 39) पर उद्धृत 'हृदि विषलता' श्लोक 'गीतगोविंद' (सं० निर्णयसागर प्रेस, iii, 11. पृ० 58) में मिलता हैं। शार्ङ्गधर (संख्या 3460) तथा वल्लभदेव (संख्या 1314) ने भी इसे जयदेव-रचित कहा है। श्रीधर के 'सदुक्तिकर्णामृत' में भी जयदेव का उल्लेख है; अतएव जयदेव को 1206 ई० से पहले ही निर्धारित करना चाहिए। बूहलर तथा पीटर्सन (काश्मीर रिपोर्ट पृ० 64 तथा 'सुभाष' पृ० 38) ने जयदेव की तिथि 1116 ई० निश्चित की है, किंतु हरप्रसाद शास्त्री ने जयदेव की तिथि 1175 ई० दी है, ('नोटिसेज़', सेकेंड सीरीज़ i. पृ० xxxviii)। ऐसा कहा गया है कि चंद, कवि ने भी जयदेव का उल्लेख किया है। चंद कवि ने 12 वीं शती के अंतिम भाग में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज पर एक महाकाव्य लिखा था (किंतु देखिए WZKM vii पृ० 189 जर्नल ऑफ़ दि बंबई ब्रांच ऑफ़ रॉयल एशियाटिक सोसायटी xi पृ० 283)। विश्वनाथ ने शंखधर के 'लटकमेलक' का भी उल्लेख किया है (पृ० 176 अध्याय iii. 212)। यह भी इसी शती का है।

तथा 'नैषध' के रचयिता श्रीहर्ष[1] का भी उल्लेख किया है। विश्वनाथ ने जयदेव के 'प्रसन्नराघव' (i.37) से 'कदली-कदली' श्लोक को भी उद्धृत किया है (अध्याय iv.3)। इसके अतिरिक्त 'राजतरंगिणी' के अध्याय iv के श्लोक 441 को इस ग्रंथ के पृ० 529 पर अध्याय x, 57a के अंतर्गत दिया गया है (संभवतः यह श्लोक रुय्यक के पृ० 93 से परोक्ष रूप में उद्धृत किया गया है)। किंतु कल्हण का उक्त ग्रंथ 12 वीं शती के मध्यभाग तक पूरा नहीं हुआ था। इस सामग्री के आधार पर मोटे तौर से विश्वनाथ की तिथि की एक सीमा प्राप्त होती है; उसे 12 वीं शती के अंतिम भाग अथवा 13 वीं शती के आरंभ से अधिक पहले नहीं स्थिर किया जा सकता।

विश्वनाथ की दूसरी तिथि-सीमा 'साहित्य दर्पण' की एक हस्तलिपि से प्राप्त होती है। यह हस्तलिपि संवत् 1440 = 1384 ई० में तैयार की गई थी। स्टीन ने इसे जम्मू में खोजा था।[2] इस आधार पर वेबर,[3] एगलिंग[4] तथा हरिचंद्र शास्त्री[5] द्वारा 15 वीं शती के मध्यभाग में निर्धारित की गई विश्वनाथ की तिथि असंगत ठहरती है। विश्वनाथ ने चंडीदास को अपना एक संबंधी कहा है, किंतु हरिचंद शास्त्री ने उन्हें 15 वीं शती का बंगाली कवि चंडीदास मानकर गलती की है। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि 15 वीं शती के आरंभ में कुमारस्वामी ने उद्धरण सहित साहित्यदर्पण (iii.146a, 147 तथा 150) का नामोल्लेख किया है (पृ० 245, 248)।

उपर्युक्त सामग्री के आधार पर यही अनुमान किया जा सकता है कि मोटे तौर पर विश्वनाथ 1200 से 1350 ई० तक की मध्यावधि में ही हुए हैं। 'साहित्य-दर्पण' (अध्याय iv. 14, पृ० 232) के अंतर्गत एक श्लोक में मुसलमान बादशाह अल्लावदीन[6] संबंधी उल्लेख से यदि कोई तथ्यिक निष्कर्ष निकाला जा सके

---

1. पृ० 526 अध्याय x, 54 (हनूमदाद्यै)=नैषध ix. 122b पृ० 520; अध्याय x. 50 (धन्यासि वैदर्भि)= वही 3.116. श्रीहर्ष की तिथि के संबंध में सुशीलकुमार दे का 'हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर' पृ० 325-26, देखिए।
2. जम्मू कैटलॉग, पृ० 64 संख्या 349।
3. हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर, पृ० 231 (अंग्रेज़ी अनुवाद, 1904)।
4. IOC iii, पृ० 337.
5. उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 115.
6. संधौ सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः।
अला (ल्ला) वदीन-नृपतौ न संधिर्न च विग्रहः॥

तो विश्वनाथ की अधिक शुद्ध तिथि प्राप्त हो सकती है। संभवत: यह अल्लावदीन अथवा अलावदीन[1] सुल्तान[2]अलाउद्दीन खिलजी था, जिसकी सेना ने दक्षिण पर चढ़ाई करके वारंगल पर विजय प्राप्त की थी। उक्त सुल्तान की मृत्यु 1316 ई० में हुई थी। यदि यह मान लिया जाए कि चर्चाधीन श्लोक सुल्तान के जीवनकाल में ही लिखा गया था, तो भी 'साहित्यदर्पण' की रचना-तिथि 1300 ई० से अधिक पहले नहीं मानी जा सकती। यदि यह ऐतिहासिक निष्कर्ष मान्य हो तो विश्वनाथ को 1300 तथा 1350 ई० की मध्यावधि में, अथवा मोटे तौर से 14 वीं शती के पूर्वार्ध में निर्धारित किया जा सकता है[3]।

(२)

विश्वनाथ ने स्वयं को महाकवि चंद्रशेखर (पृ० 583 अंतिम श्लोक) का पुत्र बताया है। चंद्रशेखर भी अपने पुत्र के समान कवि, आचार्य [4] और संभवत: राजा कलिंग के एक उच्चाधिकारी[5] थे। नारायण, विश्वनाथ के पितामह अथवा प्रपितामह थे। उन्होंने अलंकार-संबंधी कुछ विषयों पर लिखा है। 'काव्यप्रकाश' पर अपनी टीका में विश्वनाथ ने नारायण को 'अस्मत् पितामह' कहा है तथा अपने 'साहित्यदर्पण' (पृ० 73 अध्याय :ii. 4a) में उन्हें 'अस्मत् वृद्धपितामह' कहा है। मम्मट पर 'दीपिका' नामक टीका के बंगाली लेखक से भिन्न चंडीदास का भी

---

1. इस नाम के दोनों रूप दो शिलालेखों में मिलते हैं; देखिए—जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, xliii, पृ० 108 तथा भावनगर शिलालेख 114—'प्राचीन-लेखमाला' ii. 28. हर्षकीर्ति के 'धातुपाठ' में इस बादशाह को अल्लावदी कहा गया है (भंडारकर रिपोर्ट 1882-83 पृ० 43)।

2. इस शब्द का संस्कृत रूप 'सुरत्राण' पृ० 509 (अध्याय x. 42) पर मिलता है।

3. तुलना कीजिए, काणे के उपर्युक्त ग्रंथ की भूमिका; एम० चक्रवर्ती, जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल lxxii (1903), पृ० 146, एन० एस० ii,1906, पृ० 157 इत्यादि; कीथ, जर्नल ऑफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1911, पृ० 848 इत्यादि; स्टेन कोनो, इंडियन ड्रामा, पृ० 3. प्रभाकर ने अपने 'रसप्रदीप' (1583 ई०) में पृ० 18, 20,35 पर 'साहित्य दर्पण' के उद्धरण दिए हैं।

4. उनके श्लोक पृ० 58, 116, 170, 174 पर उद्धृत किए गए हैं तथा 'पुष्पमाला' और 'भाषार्णव' नामक उनके ग्रंथ क्रमश: पृ० 263 तथा 316 पर निर्दिष्ट किए गए हैं।

5. दोनों को 'संधिविग्रहिक-महापात्र' कहा गया है।

उद्धरण है।[1] उन्हें विश्वनाथ का संबंधी मानना गलत है।

अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' के अतिरिक्त विश्वनाथ ने कई अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं। 'साहित्यदर्पण' में ही उन्होंने अपनी इन रचनाओं को निर्दिष्ट किया है—

1. राघवविलास काव्य (अध्याय vi, 325a पृ० 355)।
2. कुवलयाश्वचरित प्राकृत में (अध्याय vi, 326, पृ० 356)।
3. प्रभावतीपरिणय (अध्याय vi, 182b पृ० 320); मम्मट पर उनकी टीका के अध्याय vii में भी इसका उल्लेख है।
4. प्रशस्ति-रत्नावली, 16 भाषाओं में, यह एक करभक है (अध्याय vi, 337b, पृ०358)।
5. चंद्रकला अध्याय (vi,183a तथा 184, पृ० 320-1), नाटिका।

विश्वनाथ ने मम्मट के ग्रंथ पर 'काव्यप्रकाश-दर्पण' नामक एक टीका भी लिखी थी, किंतु संभवत: इसे उन्होंने अपने मौलिक ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' की रचना के पश्चात् ही लिखा था, क्योंकि उन्होंने स्वयं इस टीका में लक्षण (अध्याय ii) की चर्चा करते हुए 'साहित्यदर्पण' का उल्लेख किया है।[2] अपने 'साहित्यदर्पण' में उन्होंने मम्मट की सामग्री का प्रचुर उपयोग किया है। यद्यपि उन्होंने अपने ग्रंथ के आरंभ में मम्मट द्वारा दिए गए काव्यलक्षण की सोद्धरण आलोचना की है, तथापि उन्होंने स्पष्ट रूप से आदरणीय लेखक की अनुचित आलोचना का विरोध किया है और उन्हें अपना 'उपजीव्य' कहा है (अध्याय ii, 14 पृ० 57)। इस टीका में विश्वनाथ ने अपने 'नरसिंह काव्य' नामक एक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है।[3]

---

1. विश्वनाथ ने एक पुरुषोत्तम का उद्धरण दिया है (पृ० 440 अध्याय ix, 4a)। बर्नेल 54a में 'कवितावतार' नामक ग्रंथ पुरुषोत्तम-रचित कहा गया है। विश्वनाथ की नारायण, चंडीदास तथा चंद्रशेखर से संबंधित वंशावली के विषय में शिवप्रसाद भट्टाचार्य का जर्नल ऑफ़ ओरिएंटल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, iii (1954) पृ० 35 इत्यादि में 'विश्वनाथ कविराज एंड हिज़ रेफ़रेंसेज़' लेख देखिए।

2. एषां च षोडषाणां लक्षणाभेदानामिह दर्शितान्युदाहरणानि मम साहित्यदर्पणेऽवगंतव्यानि। 'अनुमान' अलंकार के विषय में (अध्याय x.)—तदुक्तं मत्कृते साहित्यदर्पणे)।

3. अनंतदास ने साहित्यदर्पण पर अपनी टीका के पृ० 9 पर इन शब्दों के साथ एक श्लोक उद्धृत किया है—'यथा मम तात-पादानां विजय-नरसिंहे।'

वेबर तथा एगलिंग[1] ने कहा है कि 'साहित्यदर्पण' की रचना 'ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर' अर्थात् पूर्वी बंगाल में हुई थी। उनके उक्त कथन का आधार स्पष्ट नहीं है। इसके विपरीत, विश्वनाथ संभवतः कलिंग देश के निवासी थे, जो इस समय मोटे तौर से उड़ीसा तथा गंजम का पर्याय माना जा सकता है। विश्वनाथ ने मम्मट पर अपनी टीका में कुछ शब्दों के उड़िया पर्याय दिए हैं[2] तथा अपने पूर्वज नारायण के प्रसंग में कलिंग-नरेश नरसिंह देव (संभवतः नरसिंह द्वितीय, लगभग 1279-1306) का उल्लेख किया है। नारायण ने उनकी राजसभा में धर्मदत्त[3] को परास्त किया था। 'साहित्यदर्पण'[4] के पृष्ठ 73-79 पर धर्मदत्त का भी उल्लेख है। संभवतः विश्वनाथ ने कलिंग के नरसिंह नामक एक राजा की प्रशस्ति के रूप में 'नरसिंहविजय' नामक ग्रंथ लिखा था, जो अब लुप्त हो चुका है।

(३)

'साहित्यदर्पण' यद्यपि बहुत मौलिक ग्रंथ नहीं है, तथापि इसके दस अध्यायों में नाट्य-सहित काव्यशास्त्र के समस्त विषयों का विशद विवेचन है। विषयसूची इस प्रकार है—(1) काव्यशास्त्र, (2) शब्द तथा अर्थ की तीन वृत्तियाँ, (3) रस, (4) ध्वनि तथा गुणीभूत-व्यंग्य, (5) व्यंजना-निरूपण, (6) नाट्य, (7) दोष, (8) गुण (त्रिविध), (9) रीतियां (चतुर्विध), वैदर्भी, गौडी, पांचाली तथा लाटी (10) अलंकार। नाट्य का निरूपण मुख्यतः 'दशरूपक' के आधार पर है।

विश्वनाथ पर टीकाओं की संख्या अधिक नहीं है और न ऐसी कोई विशेष उल्लेखनीय टीका ही है। निम्नलिखित पांच टीकाओं में शक 1622= 1700 ई० की रामचरण तर्कवागीश की टीका मूल-सहित अनेक बार प्रकाशित हुई है।

---

1. तुलना कीजिए—मैक्डोनेल, संस्कृत लिटरेचर, पृ० 434 संस्कृत कालेज, कलकत्ता कैटलॉग, vii, संख्या 53, पृ० 33.
2. "वैपरीत्यं रुचिकुरु" इति पाठः, अत्र चिकुपदं काश्मीरादिभाषायामश्लीलार्थ-बोधकं, उत्कलादि-भाषायां धृतवांडकद्रव इति,—मम्मट अध्याय 5 पर टीका, पृ० 238 (सं० झलकीकर)।
3. भट्ट माधव (वेबर i.823) के पुत्र प्रभाकर-रचित 'रसप्रदीप' में भी इसका उल्लेख है। 'रसप्रदीप' में 'साहित्यदर्पण' के भी उद्धरण हैं। यह ग्रंथ 1583 ई० में लिखा गया था। धर्मदत्त के विषय में शिवप्रसाद भट्टाचार्य के उक्त लेख के पृ० 360-62 देखिए।
4. यदाहुः श्रीकलिंग भूमंडलाखंडल-महाराजाधिराज-श्रीनरसिंह-सभायां धर्मदत्तं स्थगयंतः सकल सहृदयगोष्ठी-गरिष्ठकविपंडितास्मत् पितामह-श्रीमान् नारायणदासपादाः, इत्यादि।

ग्रंथ-सूची

संस्करण : अनेक बार प्रकाशित, इनमें (1) नाथूराम, ऐजूकेश प्रेस, कलकत्ता 1828 तथा (2) बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता 1851 के अंतर्गत ई० रोअर द्वारा संपादित संस्करण उल्लेखनीय हैं। इन संस्करणों में रामचरण की टीका नहीं दी गई है। इनके अतिरिक्त रामचरण की 'विवृति' नामक टीका-सहित ये संस्करण हैं—(I) चंडीचरण स्मृतिभूषण द्वारा संपादित, कलकत्ता B. S. 1318। (II) दुर्गाप्रसाद द्विवेद द्वारा संपादित, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1902, 1915, 1922। (III) पी० वी० काणे द्वारा संपादित (अध्याय i, ii, x) भूमिका तथा टिप्पणी सहित, बंबई, पहला संस्करण 1910, दूसरा संस्करण 1923 (हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स के साथ), तीसरा संस्करण, 1951 (संशोधित तथा परिवर्धित, किंतु टीका नहीं दी गई है)।—(IV) करुणाकर काव्यतीर्थ द्वारा, महेश्वर की 'विज्ञप्रिया' तथा अनंतदास की 'लोचन' नामक टीकाओं सहित, लाहौर 1938 अंग्रेजी अनुवाद जे० आर० बेलैंटाइन तथा पी० डी० मित्रा द्वारा बिब्लिओथिका इंडिका 1875 के अंतर्गत। अन्यथा निर्दिष्ट न होने पर यहां संदर्भ दुर्गाप्रसाद द्विवेद के 1915 के निर्णयसागर प्रेस के संस्करण से दिए गए हैं।

टीकाएं (1) 'लोचन' अनंतदास-रचित। अनंतदास विश्वनाथ के पुत्र थे। इस टीका की 1636 ई० की एक हस्तलिपि का उल्लेख औफ्रेक्ट ii. 171a में है। जम्मू कैटलॉग में एक अपूर्ण हस्तलिपि (संख्या 262, पृ० 65) का उल्लेख है। संस्करण यथोक्त। टीकाकार को स्वयं विश्वनाथ का पुत्र कहा गया है।

(2) 'टिप्पण' मथुरानाथ शुक्ल-कृत। इन्होंने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। औफ्रेक्ट ने इनके नाम के साथ 64 ग्रंथों का उल्लेख किया है। यह स्पष्ट रूप से मालव प्रदेश के अंतर्गत पाटलीपुत्र के निवासी मथुरानाथ शुक्ल ही हैं। इन्होंने राजा दलचंद्र की आज्ञा से 1783 ई० में बनारस में 'ज्योतिःसिद्धांत-सार' की रचना की थी (किंतु देखिए औफ्रेक्ट i.422-23)। मथुरानाथ नामक एक लेखक ने 'कुवलयानंद' पर टीका की थी। संभवतः यह उक्त व्यक्ति ही हैं। औफ्रेक्ट i.715b.

(3) '—वृत्ति'—लेखक रामचरण तर्कवागीश। यह पश्चिम बंगाल के

निवासी चट्टोपाध्याय ब्राह्मण थे तथा जिला वर्धमान के अंतर्गत रायवाटी के निवासी थे। इन्होंने अपनी टीका की तिथि 1700 ई० दी है। इस टीका के कई बँगला संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, इसका एक संस्करण 1915 में निर्णयसागर प्रेस द्वारा भी प्रकाशित हुआ है।

(4) '—प्रभा', गोपीनाथ रचित। मद्रास Trm C 712। गोपीनाथ ने मम्मट पर 'सुमनोमनोहरा' नामक टीका भी लिखी है। ऊपर देखिए पृ० 160। संभवतः यह गोपीनाथ कविराज ही हैं, जिन्होंने अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त 1677 ई० में 'रघुवंश' पर टीका लिखी थी। देखिए (औफ्रेक्ट i.163b)।

(5) 'विज्ञप्रिया'—महेश्वर भट्ट-रचित। संस्करण यथोक्त। यह महेश्वर संभवतः महेश्वर न्यायालंकार ही हैं, जिन्होंने 'काव्यप्रकाश' पर भी टीका लिखी थी। तिथि 17 वीं शती का मध्यभाग। ऊपर देखिए पृ० 153.

केशव मिश्र तथा शौद्धोदनि

(१)

केशव का कथन है कि उन्होंने रामचंद्र के पौत्र तथा धर्मचंद्र के पुत्र राजा माणिक्यचंद्र के अनुरोध पर 'अलंकारशेखर' की रचना की थी। कहा जाता है कि माणिक्यचंद्र डिल्ही (ढिल्ली) के समीप राज्य करता था और उसने काबिल (काबुल ?) के बादशाह को परास्त किया था। एगलिंग[1] ने उसे तीरभुक्ति अथवा तिरहुत का राजा माणिक्यचंद्र मानने में गलती की है; बूहलर[2] ने केवल यही कहा है कि उक्त राजा काश्मीरी नहीं था, अपितु मुसलमानों के आधिपत्य से पूर्व दिल्ली में निवास अथवा राज्य करता था। संभवतः हमारे लेखक का संरक्षक कोटकांगड़ा का माणिक्यचंद्र था। उसकी वंशावली केशव द्वारा दी गई वंशावली के अनुरूप ही है। कनिंघम[3] के कथनानुसार उसकी राज्यारोहण-तिथि 1563 ई० है।

1. इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, संख्या 1197.
2. काश्मीर रिपोर्ट, पृ० 69.
3. आर्क्योलॉजिकल सर्वे, v.152 इत्यादि, पृ० 160 पर (तुलना कीजिए—जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सासायटी ऑफ़ बंगाल, 1907 पृ० 212).

इस प्रकार केशव का साहित्य-रचना काल 16 वीं शती के तीसरे चरण में निर्धारित किया जा सकता है।

(२)

'अलंकारशेखर' के कारिका-खंड का नाम 'सूत्र' है। यह सूत्र किसी आचार्य के लुप्त ग्रंथ से वास्तव में उद्धृत नहीं तो कम-से-कम उस पर आधृत अवश्य है। इस आचार्य को भगवान् (अथवा 'महर्षि', पृ० 50) शौद्धोदनि कहा गया है।[1] केशव ने स्वयं को गद्य-वृत्ति के अंतर्गत केवल एक टीकाकार अथवा व्याख्याता कहा है। शौद्धोदनि स्पष्टतः बौद्ध नाम है और अलंकार-साहित्य में अज्ञात-सा ही है।[2] केशव के ग्रंथ का मूलस्रोत कुछ भी रहा हो, किंतु इतना अवश्य है कि वे लगभग सभी पूर्ववर्ती आचार्यों के ग्रंथों से भली-भांति परिचित थे। अर्वाचीन आचार्यों के अतिरिक्त उन्होंने राजशेखर (पृ० 32, 67), भोज (पृ० 7), महिमभट्ट, मम्मट, 'वाग्भटालंकार', देवेश्वर तथा 'चंद्रालोक' के लेखक जयदेव के उद्धरण दिए हैं। उन्होंने श्रीपाद के भी उद्धरण दिए हैं (पृ० 4, 5, 6, 23, 27, 32, 72, 81)। श्रीपाद, केशव के गुरु स्वयं शौद्धोदनि हो सकते हैं, यह आदरसूचक उपाधि उन्हीं के लिए प्रयुक्त की गई है। केशव ने 'कविकल्पलना' के लेखक का भी उल्लेख किया है। उन्हें भी श्रीपाद का मतानुसारी कहा गया है।[3] किंतु यह कल्पलताकार न तो देवेश्वर हैं, न अरिसिंह हैं, और न इसी नाम के ग्रंथ के लेखक अमरचंद्र हैं। इस संबंध में केशव ने जिस अंश का उद्धरण दिया है (पृ० 48-9, 'वेण्याः सर्पासिभृंगाल्यो), उसमें उपमा अथवा अलंकार-वाचक प्रायः रूढ़ शब्दों की सूची है। देवेश्वर के ग्रंथ के अंतर्गत (पृ० 157 इत्यादि) प्रत्यक्ष रूप से अरिसिंह तथा अमरचंद्र के ग्रंथ, (पृ० 135 इत्यादि) से उद्धृत एक ऐसे ही अंश की तुलना से पर्याप्त शाब्दिक अंतर दृष्टिगोचर होता है, जिससे यह सूचित होता है कि केशव का उद्धरण इनमें से किसी भी ग्रंथ से नहीं लिया गया है। केशव के एक अन्य अंश में भी

1. उनके लिए आदरसूचक शब्दावली का प्रयोग किया गया है—अलंकारविद्या-सूत्रकारो भगवान् शौद्धोदनिः परमकारुणिकः (पृ० 2)। पृ० 2, 20 पर शौद्धोदनि के 'अलंकार-सूत्र' का उल्लेख है।

2. इन शौद्धोदनि को धर्मदास सूरि-रचित 'विदग्धमुखमंडन' के मंगलश्लोक का शौद्धोदनि नहीं मानना चाहिए। वहां यह नाम स्पष्ट रूप में बुद्ध का सूचक है।

3. श्रीपद-मतानुसारी कविकल्पलताकारः पृ० 48, सं० निर्णयसागर प्रेस। इसे अनेक बार उद्धृत किया गया है, पृ० 4, 5, 23, 27, 32, 72, 83 इत्यादि।

इसी प्रकार की शाब्दिक भिन्नता है ('रत्नानि यत्र तत्राद्रौ', पृ० 55-6)। प्रथम पाठ में ऐसा प्रतीत होता है कि केशव ने इसे देवेश्वर (पृ० 36 इत्यादि) से उद्धृत किया है, किंतु वास्तव में केशव ने इसे शब्दशः अरिसिंह तथा अमरचंद्र (पृ० 30 इत्यादि) से उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त, केशव, देवेश्वर के ग्रंथ से परिचित प्रतीत होते हैं, क्योंकि उन्होंने उसमें से एक दीर्घांश को अनामतः उद्धृत किया है ('नृपे कीर्ति-प्रतापाज्ञा, पृ० 57 इत्यादि = देवेश्वर पृ० 26 इत्यादि)। संभवतः देवेश्वर ने स्वयं इस अंश को कुछ परिवर्तन के साथ अरिसिंह तथा अमरचंद्र (पृ० 27 इत्यादि) से उद्धृत किया था। विचित्र बात यह है कि इस विषय में केशव ने अरिसिंह तथा अमर की मौलिक रचना का उपयोग नहीं किया है, अपितु कुछ परिवर्तन के साथ देवेश्वर के पाठ का उद्धरण दिया है।

केशव ने एक श्रीहर्ष (पृ० 71) को भी उद्धृत किया है। यह श्रीहर्ष, प्रभाकर भट्ट (अन्यत्र देखिए) द्वारा उल्लिखित श्रीहर्ष मिश्र अथवा 'नाट्यशास्त्र' पर एक वार्त्तिक के लेखक हर्ष (श्रीहर्ष) हो सकते हैं, अथवा नहीं भी हो सकते। केशव ने गोवर्धन नामक एक लेखक के मत का अनेक बार उल्लेख किया है (पृ० 17, 29, 37, 43, 49)। उत्कल-नरेश के एक सभासद 'पंडितकवि' जयदेव का भी एक बार उल्लेख है (पृ० 17)। यह जयदेव तथा अपने ग्रंथ 'गीतगोविंद' (अध्याय xii पृ० 171)[1] में स्वयं को 'पंडितकवि' जयदेव कहनेवाले बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के कृपापात्र एक ही व्यक्ति हैं तो यह संभव है कि जयदेव के उक्त उद्धरण से पूर्व उद्धृत किए गए गोवर्धन, जयदेव के समकालीन कवि गोवर्धन थे, जिनका उल्लेख जयदेव ने अपने 'गीतगोविंद' के आरंभ में किया है।

ग्रंथ के पुष्पिकालेख में केशव को न्यायाचार्य कहा गया है। उनका कथन है कि मैंने इस विषय पर सात गूढ़ ग्रंथ लिखने के पश्चात् ही अपने 'अलंकारशेखर' की रचना की थी। इनमें से दो ग्रंथों को उन्होंने उक्त ग्रंथ के अंतर्गत 'अलंकार-सर्वस्व' (पृ० 9) तथा 'वाक्यरत्न' (पृ० 12) अथवा 'काव्यरत्न' (पृ० 72) के रूप में निर्दिष्ट किया है। ओफ्रेट ii. 6237 के अंतर्गत एक 'काव्यरत्न' का उल्लेख है।

आठ अध्याय (अध्याय को रत्न कहा गया है) पर्यंत 'अलंकारशेखर' कारिका तथा वृत्ति के रूप में लिखा गया है। इसमें 22 खंड (मरीचि) हैं। विषय

---

1. केशव ने पृ० 6 पर गौडी रीति के उदाहरणार्थ 'गीतगोविंद' (निर्णयसागर प्रेस, पृ० 29) का श्लोक 'उन्मीलन्मधुगंध' इत्यादि उद्धृत किया है।

सूची इस प्रकार है—(1) काव्यलक्षण इत्यादि; (2) त्रिविध रीतियां (वैदर्भी, गौडी तथा मागधी), उक्ति, मुद्रा तथा उनके भेद; (3) त्रिविध वृत्तियां (अभिधा इत्यादि); (4-6) पद के आठ दोष, वाक्य के बारह दोष तथा अर्थ के आठ दोष; (7-8) पांच शब्द गुण (संक्षिप्तत्व, उदात्तत्व, प्रसाद, उक्ति तथा समाधि), अर्थ के चार गुण (भाविकत्व, सुशब्दत्व, पर्यायोक्ति तथा सुधर्मिता); (9) ऐसे स्थल, जहां दोष गुण बन जाते हैं; (10-12) आठ शब्दालंकार तथा चौदह अर्थालंकार। कहीं-कहीं इनके नाम तथा लक्षण में प्राचीन आचार्यों से भिन्नता है। (13-17) इसमें मुख्यतः कविशिक्षा-विषयक निरूपण है—काव्यरूढ़ियां, विविध वस्तुवर्णन की रीतियां इत्यादि; (18-19) शब्द वैचित्र्य, समस्यापूरण इत्यादि, (20) नव-रस, नायक-नायिका, भाव-निरूपण इत्यादि; (21-22) रस-दोष, तथा प्रत्येक रसोपयुक्त अक्षर। यद्यपि केशव मिश्र ने ध्वनि और रस के सिद्धांतों के साथ-साथ प्राचीन काव्यशास्त्रीय व्यवस्था स्वीकार की है, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने गुण, दोष तथा अलंकारों के विवेचन में एक भिन्न परंपरा का अनुसरण किया है। किंतु भिन्नता अधिक नहीं है, क्योंकि जैसा पहले बताया जा चुका है, उन्होंने अपने प्रसिद्ध पूर्ववर्ती आचार्यों की सामग्री का उपयोग किया है।

ग्रंथ-सूची

संस्करण : (1) सं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1895। (2) सं० अनंतराम शास्त्री वेताल, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस 1927। (3) सं० गणेश शर्मा, बनारस 1886। यहां संदर्भ निर्णयसागर प्रेस के संस्करण से दिए गए हैं।

अप्पय्य दीक्षित

(१)

अप्पय्य दीक्षित ने स्वयं अपनी तिथि का संकेत दिया है। अपने ग्रंथ 'कुवलयानंद' के अंत में उन्होंने कहा है कि वेंकट नामक एक दक्षिण भारतीय राजा की प्रेरणा से इस ग्रंथ की रचना की गई थी।[1] औफ्रेक्ट[2] तथा उसी का मतानुसरण करते हुए

1. तुलना कीजिए—श्लोक 168 (सं० निर्णयसागर प्रेस 1913)। यह श्लोक जयदेव के 'चंद्रालोक' में भी मिलता है, जो संभवतः स्वयं अप्पय्य ने ही दिया है।
2. बोडलियन कैटलॉग, 213a. किंतु अपने कैटलॉग कैट i. 22a तथा ii. 5a में उसने तिथियाँ निर्धारित की हैं, अर्थात् क्रमशः 15 वीं तथा 16 वीं शती का अंतिम भाग। रेनो (रेटोरिक संस्कृत, पृ० 375 का यह अनुमान कि अप्पय्य 1520 ई० में विजयनगर के कृष्णराज के राज्यकाल में हुए हैं, ठीक नहीं है।

एगलिंग[1] ने अप्पय्य के उक्त संरक्षक को विजयनगर-नरेश वेंकट (लगभग 1535) ई० माना है; किंतु हुलट्श[2] का कथन है कि वह पेन्नकोंडा का वेंकट प्रथम था, जिसके शिलालेखों की अवधि शक 1508 से 1535 (=1586 से 1613 ई०) तक है।[3] इसके विपरीत, अपनी 'शिवादित्यमणि-दीपिका' (हुलट्श 1056) के पुष्पिकालेख में उन्होंने अपने संरक्षक का नाम चिन्न बोम्म बताया है, जो चिन्नवीर का पुत्र तथा लिंगम नायक का पिता था। वेलूर (उत्तर अर्काट ज़िला में वेल्लूर) के इस राजा के शिलालेख शक 1471 तथा 1488 (=1549 तथा 1566 ई०) के हैं।[4] 'कुवलयानंद' के अंतिम श्लोक में प्रद्योतन भट्ट की ('चंद्रालोक' पर) 'शरदागम' नामक टीका का उल्लेख है। इस टीका की तिथि 1583 ई० दी गई है। इस प्रकार, अप्पय्य की साहित्य-रचना की अधिकतम तिथि-सीमा 1549 और 1613 ई० है। उसे 16 वीं शती के तीसरे तथा चौथे चरणों में निर्धारित किया जा सकता है और क्योंकि वह वेंकट प्रथम के राज्यकाल में जीवित था, इसलिए संभवतः वह 17 वीं शती के आरंभ में भी जीवित था।[5] क्योंकि 17 वीं शती के प्रथम चरण में कमलाकर भट्ट ने अप्पय्य का उल्लेख किया है तथा लगभग इसी

---

1. इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii पृ० 335.
2. रिपोर्ट ऑफ़ साउथ इंडियन संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स, xii, पृ iii तथा एपिग्राफ़िका इंडिका iv.271 (तुलना कीजिए—जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल 1907 पृ० 11)।
3. साउथ इंडियन इंस्क्रिप्शन्स i. पृ० 69 इत्यादि तथा पृ० 84. जर्नल ऑफ़ दि बंबई ब्रांच ऑफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी कैटलॉग, में एच०डी० वेलंकर का मत भी देखें, i. संख्या 141.
4. इंडिया एंटिक्वेरी xiii. पृ० 155 तथा एपिग्राफ़िका इंडिका iii, पृ० 238 सारणी।
5. कहा जाता है कि 73 वर्ष की वृद्धावस्था में उनका देहांत हुआ (देखिए—हलस्यनाथ संपादित 'कुवलयानंद' का संस्करण, भूमिका, पृ० 15)। सामान्यतः 1552-1624 अथवा 1554 1626 ई० की तिथि स्वीकार कर ली गई है। किंतु जर्नल ऑफ़ दि ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास, 1928 पृ० 225-237 तथा 1929 पृ० 140-160 में 1520-1593 तिथि के पक्ष में तर्क दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त मद्रास विश्वविद्यालय के 'शिवाद्वैतनिर्णय' के संस्करण (1929) की भूमिका तथा वाणीविलास प्रेस की 'यादवाभ्युदय' खंड 2 (भूमिका), पृ० iv इत्यादि भी देखिए। इनमें 1552 तथा 1624 की मध्यावधि के पक्ष में तर्क दिए गए हैं। 'विश्वगुणादर्श' के लेखक वेंकट ने स्वयं को कांची (अथवा कांचीपुरम्) का निवासी सूचित किया है। अप्पय्य, वास्तव में 14 वीं शती के पश्चात् हुए हैं, क्योंकि उन्होंने 'एकावली', 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' तथा जयरथ की 'संजीवनी' टीका का उल्लेख किया है।

समय जगन्नाथ ने उसकी आलोचना भी की है, इसलिए अप्पय्य की उक्त तिथि ही पुष्ट होती है।

(२)

इस लेखक ने अपने 'कुवलयानंद' में अपने नाम के अप्प अथवा अप्य रूपों का प्रयोग किया है, किंतु इसके अप्पय तथा अप्पय्य, अन्य रूप भी हैं। ये दक्षिण शैवमत के अग्रणी तथा बहुमुखी प्रतिभासंपन्न थे। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है। परंपरानुसार इन्हें शताधिक ग्रंथों का रचयिता माना जाता है।[1] औफ्रेक्ट ने इनके लगभग सत्तर ग्रंथों का उल्लेख किया है। अप्पय्य, भरद्वाज-गोत्रोत्पन्न तमिल ब्राह्मण थे। ये अपने पिता, रंगराज (अथवा रंगराजाध्वरी) की पांचवी संतान थे। उनके एक भ्राता का नाम अप्य अथवा आच्छान था।

संस्कृत काव्यालंकार-साहित्य में अप्पय्य तीन ग्रंथों, अर्थात् 'कुवलयानंद', 'चित्रमीमांसा' तथा 'वृत्तिवार्तिक' के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनमें से वृत्तिवार्तिक की रचना सबसे पहले हुई थी, तत्पश्चात् 'चित्रमीमांसा' की, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने 'कुवलयानंद' में किया है। इनमें से किसी भी ग्रंथ में विशेष मौलिकता नहीं है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि कुवलयानंद में 'हेतु' अलंकार तक का अंश प्रत्यक्ष रूप से जयदेव के 'चंद्रालोक' पर आधारित है।[2] जयदेव द्वारा दिए गए सौ अलंकारों में अप्पय्य ने अपने पंद्रह[3] अलंकार और जोड़

1. नीलकंठ दीक्षित ने अपने ग्रंथ 'नीलकंठविजय' i. 44 में ऐसा उल्लेख किया है। इस वंश में तीन पीढ़ियों के अंतर्गत अप्पय्य दीक्षित नाम के चार व्यक्ति हुए हैं, इसलिए यह समस्या और भी जटिल हो गई है। देखिए, वी० राघवन का 'प्रोसीडिंग्ज ऑफ़ ऑल इंडिया ओरिएंटल कान्फ्रेंस, तिरुपति 1941 पृ० 176-80 में लेख। 'न्यू कैटलोगोरम' (सं० वी० राघवन) मद्रास 1949 पृ० 197-200 में ध्यानपूर्वक चयन के पश्चात् 58 ग्रंथों का उल्लेख है। अप्पय्य द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ के संबंध में भी इस कैटलॉग का अवलोकन किया जा सकता है।

2. ऊपर देखिए, पृ० 185.

3. आशाधर की टीका-सहित 'कुवलयानंदकारिका' के मूल पाठ का अनुवाद श्मिट ने किया है तथा निर्णयसागर प्रेस ने 1906 में उसे प्रकाशित किया है। इसके चौथे अध्याय के अंतर्गत शब्दालंकारों के विवेचन में चिरंजीव भट्टाचार्य रचित 'काव्यविलास' (इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, iii पृ० 340-44) के एक अध्याय का गलती से अप्पय्य के पाठ में अंतर्वेशन कर लिया गया है। उस अध्याय के पुष्पिकालेख से यह बात स्पष्ट होती है। यह सर्वविदित है कि 'कुवलयानंद' में केवल अर्थालंकारों का ही विवेचन है।

दिए हैं। शायद ही किसी अन्य अलंकार-ग्रंथ में इतनी संख्या में अलंकारों का वर्णन किया गया है। अलंकारों के अनंत सूक्ष्म भेदों की यह चरम सीमा है। 'चित्रमीमांसा' अधिक मौलिक ग्रंथ है; संभवतः यह अपूर्ण रह गया है। अधिकतर हस्तलिपियों[1] तथा मुख्य पाठों[2] में 'अतिशयोक्ति-प्रकरण' के साथ ही इसकी समाप्ति हो जाती है। इसके अंत में यह विचित्र श्लोक है—

अप्यर्ध-चित्रमीमांसा न मुदे कस्य मांसला।
अनूरुरिव घर्मांशोरर्धेंदुरिव धूर्जटेः ।।

यदि यह श्लोक प्रामाणिक है तो इससे सूचित होता है कि लेखक ने इसे जानबूझकर अधूरा ही छोड़ दिया था। किंतु कुछ हस्तलिपियों में एक अतिरिक्त श्लोक भी है, जिसमें प्रतिपाद्य अलंकारों की सूची ('प्रतिपाद्यालंकार-सूची')[3] दी गई है। सूची के अंत में 'उत्प्रेक्षा' का उल्लेख है, किंतु 'अतिशयोक्ति' का नहीं, जो 'उत्प्रेक्षा' के पश्चात् होना चाहिए था। वैद्यनाथ की 'चंद्रिका' नामक टीका ने इन शब्दों के साथ उक्त परंपरा की पुष्टि की है—'उत्प्रेक्षा-ग्रंथानंतरं चित्रमीमांसा न क्वापि दृश्यते'; किंतु रामबल के पुत्र धरानद ने अपनी टीका में 'उत्प्रेक्षा' के पश्चात् अतिशयोक्ति-खंड का समावेश किया है तथा उस पर चर्चा भी की है। 'कुवलयानंद' के अंतर्गत (पृ० 78, 86, 133) 'चित्रमीमांसा' के विषय में अप्पय्य के अपने उल्लेख 'श्लेष' 'प्रस्तुतांकुर' तथा 'अर्थांतरन्यास' के विवेचन से ही संबंधित हैं। उक्त अलंकारों का वर्तमान पाठ में अभाव है। जगन्नाथ के 'चित्र-मीमांसा-खंडन' नामक ग्रंथ का मुद्रित पाठ केवल अपह्नुति पर्यंत है। अप्पय्य का तीसरा ग्रंथ 'वृत्तिवार्तिक' 'काव्यसरणी' की भाँति है, इसमें शब्दों की तीन शक्तियों तथा उनके अर्थ का विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ भी स्वयं में अपूर्ण है, क्योंकि इसमें केवल दो अध्याय हैं, जिनमें अभिधा तथा लक्षणा शक्तियों का ही

1. यथा, इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग पृ० 336 के अंत में पृ० 73 a पर अतिशयोक्ति का उल्लेख है; मद्रास Trm. A. 1104; Sgs ii, पृ० 82.

2. सं० बी०एल० पंशीकर, काव्यमाला 38, निर्णयसागर प्रेस 1907. 'पंडित' xiii. का प्रकाशित पाठ 'उत्प्रेक्षा' के साथ समाप्त होता है, अतिशयोक्ति का अभाव है।

3. उपमा सहोपमेयोपमयाथानन्वयः स्मरणम्। रूपक-परिणति-सशय-भ्रांतिमद्-उल्लेख-निह्नवोत्प्रेक्षाः। 'पंडित के मुद्रित पाठ तथा इंडिया ऑफ़िस की उक्त हस्तलिपि के अंत में यह श्लोक मिलता है। काव्यमाला सं० (देखिए पृ० 101 पा०टि० में प्रयुक्त) 'ख' हस्तलिपि में 'उत्प्रेक्षा' है। मद्रास कैटलॉग xxii, हस्तलिपि संख्या 12879 'अतिशयोक्ति' के साथ समाप्त हो जाती है, किंतु संख्या 12880-81 'उत्प्रेक्षा' के साथ समाप्त होती है।

विवेचन है, और तीसरा अध्याय, जिसमें तीसरी शक्ति अर्थात् व्यंजना का विवेचन अपेक्षित था, नहीं है।

संभवतः अप्पय्य ने 'लक्षण-रत्नावली' नामक एक अन्य ग्रंथ की भी रचना की है। इसमें रूपक के लक्षणों का निरूपण है।[1]

हमारे अप्पय्य के भाई आच्छान दीक्षित के द्वितीय पुत्र अप्पय्य दीक्षित ने 'अलंकार तिलक' नामक ग्रंथ लिखा है।

(३)

संभवतः अप्पय्य के ग्रंथों के कारण उनके जीवनकाल में ही कुछ सैद्धांतिक मतभेद पैदा हो गया था। जगन्नाथ, अप्पय्य के तत्काल बाद में हुए हैं। उन्होंने अपने 'रसगंगाधर' में अप्पय्य की आलोचना की है और उन्हें रुय्यक तथा जयरथ का अंधानुकारक कहा है। इसके अतिरिक्त जगन्नाथ ने अप्पय्य के 'चित्रमीमांसा' का खंडन करने के लिए 'चित्रमीमांसा-खंडन' नामक ग्रंथ भी लिखा। भीमसेन ने मम्मट पर अपनी टीका के अंतर्गत अपने 'कुवलयानंद-खंडन' ग्रंथ का उल्लेख किया है, जिसमें उन्होंने अप्पय्य के 'कुवलयानंद' का खंडन किया है। नीलकंठ दीक्षित के एक कनिष्ठ भ्राता तथा अप्पय्य के अनुवंशज, अतिरात्रयज्वन ने अपने पूर्वज की कीर्ति-रक्षा के निमित 'चित्रमीमांसा-दोष-धिक्कार' नाम ग्रंथ की रचना की।[2]

अप्पय्य ने निम्नलिखित अर्वाचीन आचार्यों तथा ग्रंथों का उल्लेख किया है: साहित्यचिंतामणिकार, रत्नाकर, 'अलंकार-सुधानिधि'[3] (वृत्तिवार्तिक,

1. देखिए—जर्नल ऑफ़ ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास, iv. 1930, पृ० 242-44 में टी०आर० चिंतामणि का लेख (नवीन प्राप्त ग्रंथ का एक अंश)।
2. इस ग्रंथ के रचयिता अनिश्चित हैं। ओफ्र्ट 4802 ने नीलकंठ दीक्षित के कनिष्ठ भ्राता चिन्न अप्पय्य को इसका लेखक कहा है, किंतु हुलट्श (ii, पृ० 126, संख्या 1281 अपह्नुति-प्रकरण पर्यंत) ने अप्पय्य के कनिष्ठतम भ्राता, अतिरात्रयज्वन, को इसका लेखक कहा है। देखिए न्यू कैटलॉग कैटेलेगोरम i, पृ० 200.
3. माधव के कनिष्ठ भ्राता तथा भोगनाथ के ज्येष्ठ भ्राता, सायण को समान नाम के इसी ग्रंथ का रचयिता कहा गया है। किंतु सायण के प्रशंसा-सूचक उदाहरण-श्लोक भोगनाथ-रचित प्रतीत होते हैं। सायण, 14 वीं शती में हरिहर प्रथम (1336-55 ई०) तथा बुक्क (1355-77 ई०) के मंत्री थे। वैदिक ग्रंथों का टीकाकार होने के नाते सायण अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्हें 'सुभाषित-सुधानिधि' नामक संग्रह का लेखक कहा गया है (प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ ऑल इंडिया ओरिएंटल कान्फ्रेंस बड़ौदा, 1935 पृ० 121-24)।

पृ० 19) तथा 'काव्यसरणि'। उन्होंने अपने ग्रंथ 'वृत्तिवार्तिक' की रचना 'काव्यसरणि' के अनुरूप की है। 'काव्यसरणि' के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। कुमारस्वामी ने भी 'साहित्यचिंतामणि' का उल्लेख किया है। संभवतः वीरनारायण (अन्यत्र देखिए, तिथि लगभग 1400 ई०) ने भी एक 'साहित्यचिंतामणि' नामक ग्रंथ की रचना की है। 'अलंकारसुधानिधि' प्रत्यक्ष रूप में वही ग्रंथ है, जिसका कुमारस्वामी ने पृ० 44 पर उल्लेख किया है। यदि 'वृत्तिवार्तिक' के पृ० 20 पर उद्धृत रत्नाकर, जगन्नाथ के अपने दो ग्रंथों में अनेकशः उद्धृत किए गए रत्नाकर ही हों तो इससे शोभाकर मित्र के 'अलंकार-रत्नाकर' का ही निर्देश होता है। इसे 'मेघदूत' की मल्लिनाथ-कृत टीका में निर्दिष्ट 'रस-रत्नाकर' से भिन्न मानना चाहिए। अप्पय्य ने अपनी 'चित्रमीमांसा' (पृ० 27, 53) में 'काव्यालोक' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है।

(४)

अप्पय्य के टीकाकार

'कुवलयानंद' पर बहुत-सी टीकाएं लिखी गई हैं, जिनसे इस सुगम पाठ्यपुस्तक की सर्वप्रियता परिलक्षित होती है। अधिक महत्वपूर्ण टीकाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। रामजी के पुत्र तथा धरणीधर के शिष्य, कवि आशाधर-रचित 'दीपिका' का संपादन तथा अनुवाद हो चुका है। नागेश अथवा नागोजी भट्ट की 'अलंकार-सुधा' का अभी तक संपादन नहीं हो पाया है; किंतु विट्ठल भट्ट के पौत्र तथा रामचंद्र (अथवा रामभट्ट) के पुत्र, वैद्यनाथ तत्सत् की 'अलंकार-चंद्रिका' मद्रास में तथा अन्यत्र कई बार मुद्रित हो चुकी है। वाधुल-गोत्रोत्पन्न देवसिंह, सुमति के पुत्र तथा बनारस-निवासी विश्वरूप यति के शिष्य, गंगाधराध्वरी अथवा गंगाधर वाजपेयी की टीका में संभवतः अप्पय्य के ग्रंथ का मूलपाठ तथा उसकी परंपरा अधिक सुरक्षित है। इस टीकाकार का कथन है कि अप्पय्य, मेरे प्रपिता के एक भाई के गुरु थे। टीकाकार ने शुद्ध मूलपाठ के निर्धारण में बहुत परिश्रम किया है। अन्य अल्पप्रसिद्ध टीकाओं का विवरण नीचे दिया गया है।

वसिष्ठ-गोत्रोत्पन्न रामबल के पुत्र तथा ठाकुर के पौत्र धरानंद ने 'चित्रमीमांसा' पर टीका की है। रामबल के अतिरिक्त ठाकुर के, पूरणदास तथा देवदास नामक दो अन्य पुत्र थे। उक्त टीकाकार परमानंद के शिष्य थे तथा भरतपुरा में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने 'मृच्छकटिक' पर भी एक टीका लिखी है (मद्रास कैटलॉग xii. 12625)।

'वृत्ति-वार्तिक' पर कोई भी टीका ज्ञात नहीं है।

ग्रंथ-सूची

कुवलयानंद

संस्करण : लोकप्रिय होने के कारण यह ग्रंथ पूना, मद्रास, बंबई, कलकत्ता तथा बनारस में देवनागरी के अतिरिक्त, ग्रंथ, तेलुगु तथा बंगला लिपियों में सटीक अथवा टीकारहित, कई बार मुद्रित हो चुका है। सबसे पहला संस्करण, पोथी आकार में, पाठशाला प्रेस, पूना 1842 (दूसरा संस्करण 1845) में मुद्रित हुआ था। यहां सभी संस्करणों का विवरण देना अनावश्यक है, किंतु देवनागरी लिपि के निम्नलिखित प्रकाशन महत्वपूर्ण हैं—टीका-रहित (1) पी० आर० सुब्रह्मण्य शर्मा द्वारा, अंग्रेज़ी अनुवाद तथा टिप्पणी सहित, बनर्जी प्रेस, कलकत्ता 1903। वैद्यनाथ तत्सत् की 'चंद्रिका' टीका सहित— (2) उपर्युक्त पूना संस्करण (3) सं० जीवानंद विद्यासागर, सत्य प्रेस, कलकत्ता 1847, इत्यादि। (4) सं० सत्यव्रत सामश्रमी, 'प्रत्न-कर्म-नंदिनी' के अंतर्गत, सत्यप्रेस, कलकत्ता 1874। (5) सं० काशीनाथ वासुदेव खंडेकर, जगदीश्वर प्रेस, बंबई 1884। (6) दीर्घ पोथी-आकार में मुद्रित, काशी संस्कृत प्रेस, बनारस 1879। (7) सं० वासुदेव एल० पंशीकर, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1907 (दूसरा संस्करण), 1913 इत्यादि। (8) सं० गोविंद शास्त्री, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई 1911। (9) मद्रास में छपे संस्करण अधिकतर ग्रंथ लिपि (1870, 1881) अथवा तेलुगु लिपि (1870, 1895) में हैं। गंगाधर वाजपेयी की रसिकरंजनी टीका सहित। (10) सं० आर० हलस्यनाथ शास्त्री, कुंभकोणम् 1892। आशाधर की अलंकार-दीपिका टीका सहित। (11) सं० वासुदेव एल० पंशीकर, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1909। (12) वही, मूल-पाठ, तथा जर्मन अनुवाद, आर० शिमट द्वारा, बर्लिन 1907, रामदेव चिरंजीव-रचित 'काव्यविलास' टीका सहित। इसके अतिरिक्त 'चंद्रालोक' के विवरण में ऊपर पृ० 188 इत्यादि पर ग्रंथसूची का भी अवलोकन कीजिए। इस ग्रंथ में वी० एल० पंशीकर-कृत निर्णयसागर प्रेस, 1913 के संस्करण से संदर्भ दिए गए हैं। इस संस्करण में 'चंद्रिका' टीका भी दी गई है।

टीकाएं—1. वैद्यनाथ तत्सत्-कृत 'अलंकारचंद्रिका' : संपादक यथोक्त। कई बार मूलपाठ सहित प्रकाशित हुई है। हस्तलिपियां—संस्कृत कालेज कलकत्ता कैटलॉग (SCC) vii, 1,29; मद्रास कैटलॉग, xxii संख्या 12862-67; इंडिया ऑफिस कैटलॉग, iii संख्या 270-72 पृ०33. संस्करणों की सूची के लिए देखिए BORI MSS कैटलॉग xii, पृ०

182-83। बीकानेर कैटलॉग, संख्या 607, पृ० 213 पर मित्रा ने इस ग्रंथ के विषय में गलत विवरण दिया है। वैद्यनाथ ने मम्मट के 'काव्यप्रकाश' (अन्यत्र देखिए) पर एक टीका भी लिखी है। उसकी तिथि 1684 ई० है। ऊपर देखिए पृ० 156।

2. आशाधर-कृत 'अलंकारदीपिका'। निर्णयसागर प्रेस द्वारा मुद्रित हुई है। जैसा ऊपर कहा गया है, इसका अनुवाद हो चुका है। आशाधर ने केवल कारिकाओं पर टीका की है, वह जयदेव-रचित 'चंद्रालोक' से अनभिज्ञ थे। ऐसा प्रतीत होता है कि आशाधर ने संबंधित टीका-सहित उद्दिष्ट-प्रकरण के रूप में लगभग 21 अतिरिक्त कारिकाओं का समावेश किया है। देखिए भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट हस्तलिपि कैटलॉग xii, संख्या 153, पृ० 174. आशाधर ने 'कोविदानंद' तथा 'त्रिवेणिका' नामक ग्रंथ भी लिखे हैं (अल्पप्रसिद्ध लेखकों के प्रकरण में देखिए) इस आशाधर को रुद्रट के टीकाकार, आशाधर से भिन्न मानना चाहिए; ऊपर देखिए, पृ० 87।

3. गंगाधराध्वरी अथवा गंगाधर वाजपेयी रचित 'रसिक-रंजनी'। जैसा पहले कहा गया है, यह टीका कुंभकोणम् में मुद्रित हुई है। हस्त-लिपियां—औफ्रेक्ट i.113a (जैसा कि बाद में शुद्ध किया गया है, इसे अप्पय्य-रचित मानना गलत है), ii.22b, मद्रास कैटलॉग xxii, 12868-70; इसके अतिरिक्त देखिए तंजोर कैटलॉग ix, संख्या 5205, पृ० 4024-27। इस टीकाकार ने अप्पय्य के संबंध में इस प्रकार कहा है—'अस्मत् पितामह-सहोदर-देशिकेंद्र', किंतु परंपरा के अनुसार यह टीकाकार तंजोर के राजा शाहजी (1684-1711 ई०) का कृपापात्र था। मूलतः यह चिंगलिपुट जिला के अंतर्गत तिरवा-लंगाडु का निवासी था। इसने दर्शन-शास्त्रों पर भी कुछ टीकाएँ लिखी हैं।

4. नागोजी भट्ट रचित 'अलंकार-सुधा'। तिथि 18 वीं शती का प्रथम चरण। इसके अतिरिक्त नागोजी ने 'कुवलयानंद' पर 'षट्पदानंद' अथवा 'विषमपदव्याख्यान-षट्पदानंद' नामक टीका भी लिखी है; देखिए जम्मू कैटलॉग संख्या 1190 तथा 1191; संस्कृत कालेज

कलकत्ता कैटलॉग viii. 28। जैसा कि इसके नाम से लक्षित होता है, दूसरी टीका में केवल विषम अथवा कठिन शब्दों की ही व्याख्या की गई है। प्रायः इन दोनों टीकाओं से भ्रांति उत्पन्न हो जाती है। दूसरी टीका में नागोजी ने जगन्नाथ के ग्रंथ पर स्वरचित '—मर्मप्रकाशिका' का उल्लेख किया है। स्टीन, पृ० 270-271 में इन दोनों टीकाओं का सारांश है।

5. न्यायवागीश भट्टाचार्य रचित 'काव्यमंजरी'। औफ्रेक्ट i. 113a. क्या यह लेखक विद्यानिधि (अन्यत्र देखिए) के पुत्र तथा 'काव्य-चंद्रिका' के रचयिता रामचंद्र न्यायवागीश ही हैं ?

6. मथुरानाथ रचित टीका। औफ्रेक्ट i.113a ऊपर देखिए पृ० 200, विश्वनाथ के प्रकरण के अंतर्गत ग्रंथसूची।

7. कुरविराम रचित '—टिप्पण'। 'विश्वगुणादर्श' पर अपनी टीका के प्रारंभिक श्लोक में उन्होंने इस टीका का उल्लेख किया है; हुलट्श i. सारांश पृ० 57, संख्या 21। इसके अतिरिक्त नाट्य-विषयक लेखक के संबंध में ऊपर देखिए पृ० 117 (धनंजय प्रकरण के अंतर्गत)। 'विश्वगुणादर्श' के लेखक वेंकटाध्वरी, अप्पय्य के पौत्र बताए गए हैं; अतएव कुरविराम, जिन्होंने इस काव्य पर टीका लिखी है, 17वीं शती के मध्यभाग से पहले के नहीं हो सकते।

8. देवीदत्त रचित 'लघ्वलंकार-चंद्रिका'। संस्कृत कालेज, बनारस (SCB) 830।

9. वेंगल सूरि रचित 'बुध-रंजनी' टीका। कुछ हस्तलिपियों के पुष्पिका-लेख में इसे 'श्रीरामभूपाल-सभाभूषण' कहा गया है। सं० तेलुगु लिपि, भारती निलय प्रेस, मद्रास 1882। 'चंद्रालोक' के पालघाट संस्करण के अंतर्गत इसे भी शामिल कर लिया गया है, 'चंद्रालोक' के विवरण के अंतर्गत देखिए, पृ० 188। वास्तव में यह 'चंद्रालोक' के अर्थालंकार खंड की टीका है और यह खंड अप्पय्य के 'कुवलयानंद' के मूलपाठ में समाविष्ट है।

10. भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट हस्तलिपि कैटलॉग xii, संख्या 155, पृ० 177 पर एक अनाम लेखक की टीका।

चित्रमीमांसा

संस्करण :—(1) सं० रामशास्त्री तैलंग, 'पंडित' xiii, 1891। (2) चित्रमीमांसा-खंडन सहित, सं० शिवदत्त तथा वी० एल० पंशीकर, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1893, 1907 (यहां 1907 के दूसरे संस्करण से संदर्भ दिए गए हैं)।

टीकाएँ : (1) वसिष्ठगोत्रोत्पन्न, रामबल के पुत्र धरानंद रचित 'सुधा'। इसमें अतिशयोक्ति पर्यंत टीका है। मद्रास कैटलॉग xii, 12884-86 (सारांश)। धरानंद ने 'अनर्घराघव' (मद्रास कैटलॉग xxi. काव्य संख्या 12444, पृ० 8355) तथा 'मृच्छकटिक' (वही, संख्या 1265, पृ० 8475) पर भी टीकाएँ लिखी हैं। दूसरी टीका 1814 ई० में लिखी गई थी। इसमें धरानंद ने अपनी वंशावली तथा अपना विवरण दिया है। उससे विदित होता है कि वे भरतपुर निवासी रामबल के पुत्र, ठाकुर के पौत्र तथा परमानंद के शिष्य थे।

(2) बालकृष्ण पायगुंड 'गूढ़ार्थ-प्रकाशिका'। औफ्रेक्ट ii. 38b। ये 'अलंकारसार' के लेखक, बालकृष्ण भट्ट से भिन्न हैं। अल्पप्रसिद्ध लेखकों के अध्याय में आगे देखिए।

(3) 'चित्रालोक'। संस्कृत कालेज बनारस (SCB) 106।

वृत्ति वार्तिक

संस्करण : (1) सं० राम शास्त्री तैलंग, 'पंडित' xii, 1890 के अंतर्गत। (2) सं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1893। यहां 1910 में छपे निर्णयसागर प्रेस के दूसरे संस्करण से संदर्भ दिए गए हैं।

लक्षण-रत्नावली

संपादक—टी० आर० चिंतामणि, जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च (JOR) मद्रास, iv. 1930 पृ० 242-44 (एक अंश)। तंजोर कैटलॉग xi. संख्या 5295, पृ०

4079 के अंतर्गत 'लक्षण-रत्नावली-व्याख्या' नामक ग्रंथ-लिपि में एक अपूर्ण हस्त-लिपि का उल्लेख है, जिसका लेखक अज्ञात है, संभवतः नाट्य-विषयक यह एक भिन्न रचना है।

जगन्नाथ

जगन्नाथ ने अपने ग्रंथ 'भामिनी-विलास' में सूचित किया है[1] कि मैंने अपना यौवनकाल दिल्ली के बादशाह की छत्रछाया में व्यतीत किया। उन्होंने अन्यत्र यह भी सूचित किया है कि बादशाह ने उन्हें 'पंडितराज' की उपाधि से विभूषित किया था।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त बादशाह शाहजहां (1628-1658) था। जगन्नाथ को नूरजहां के भाई तथा शाहजहां के दरबारी, नवाब आसफ खां (मृत्यु 1641) का संरक्षण भी प्राप्त था। जगन्नाथ ने आसफ खां की विरुदावली के रूप में 'आसफविलास' की रचना की। आसफ खां का उल्लेख 'रसगंगाधर' में (पृ० 166 'सुधीव वाणी', 457 'युक्तं तु याते' में आसफ की मृत्यु का)। 'रसगंगाधर' (पृ० 521) में नुरदीन का भी उल्लेख है। यह प्रत्यक्ष रूप में शाहजहां के पिता जहांगीर (1605-1627) के एक नाम का संस्कृतकरण-सा है। शाहजहां ने 1628 ई० में राज्यारोहण किया तथा 1658 ई० में उसे कारागार में डाल दिया गया। जगन्नाथ ने अपने 'जगदाभरण' में उदयपुर-नरेश जगतसिंह (1628-1654) की

---

1. 'दिल्लीवल्लभ-पाणिपल्लव-तले नीतं नवीनं वयः' सं० ग्रंथमाला खंड iv, श्लोक 32; निर्णयसागर प्रेस संस्करण 1894 में इस श्लोक का अभाव है। ग्रंथमाला का मूलपाठ महादेव दीक्षित की टीका के सहित प्रकाशित हुआ है। उन्होंने स्वयं को जगन्नाथ का पौत्र कहा है। 'दिल्ली-नरपति', तथा 'दिल्लीश्वर' शब्द 'रसगंगाधर' तथा अन्य ग्रंथों में भी मिलते हैं (उद्धरणों के लिए देखिए, आर्येंद्र शर्मा का 'पंडितराज काव्यसंग्रह', उस्मानिया विश्वविद्यालय 1958, पृ० vii)।
2. 'रसगंगाधर' के काव्यमाला सं० की भूमिका पृष्ठ 2 पा०टि० में 'आसफविलास' के उद्धरणों का अवलोकन कीजिए; तथा 'रसगंगाधर' पर नागेश की टीका, पृ० 3 भी देखिए। 'आसफ़ विलास' का पाठ अपूर्ण है तथा सहसा ही उसका अंत हो जाता है। हरिभास्कर के 'पद्यामृततरंगिणी' नामक पद्यसंग्रह में कवि पंडितराज का उल्लेख है। 'वृत्तरत्नाकर' पर हरिभास्कर की टीका 1676 ई० में लिखी गई थी (भंडारकर, रिपोर्ट 1877-91, पृ० lxii तथा रिपोर्ट 1883-84, पृ० 60)। संभवतः उक्त पंडितराज, जगन्नाथ ही हैं। मम्मट के एक टीकाकार का नाम भी पंडितराज है (अन्यत्र देखिए), किंतु वह भिन्न व्यक्ति हैं। औफ्रेक्ट (ii.40a) को इन दोनों में भ्रम हो गया है। उसने हमारे जगन्नाथ को 'काव्यप्रकाशटीका' का लेखक कहा है।

तथा 'प्राणभरण' में कामरूप-नरेश प्राणनारायण (1633-1666) की विरुदावली गाई है। किंतु ये दोनों ग्रंथ वस्तुतः एक ही हैं। नामपरिवर्तन तथा अतिरिक्त श्लोक जोड़कर एक ही ग्रंथ से दोनों संरक्षकों की विरुदावली का काम लिया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि जगन्नाथ को जहांगीर, शाहजहां, जगतसिंह तथा प्राणनारायण, चारों संरक्षकों का अपने जीवन के भिन्न-भिन्न भागों में आश्रय प्राप्त था। इस प्रकार उनका साहित्यरचना काल 17 वीं शती के दूसरे तथा तीसरे चरण में अर्थात् मोटे तौर पर 1620 से 1660 ई० तक ठहरता है। नागेश भट्ट ने 18 वीं शती के आरंभ में 'रसगंगाधर' पर टीका लिखी है। स्वयं जगन्नाथ ने 16 वीं शती के तीसरे चरण में विद्यमान अप्पय्य दीक्षित की आलोचना की है।[1]

(२)

जगन्नाथ ने स्वयं को पेरु[2] (अथवा पेरम[3]) भट्ट तथा लक्ष्मी का पुत्र कहा है। अप्पय्य के समान वे भी दक्षिण भारत में तैलंग[4]-प्रदेश (तेलुगु प्रदेश) के निवासी तथा वेंगिनाडु, वेगिनाटि अथवा वेगिनाड जाति के ब्राह्मण थे।[5] उनके पिता प्रसिद्ध विद्वान् थे। उनके कथनानुसार[6] उनके पिता ने वेदांत की शिक्षा ज्ञानेंद्र भिक्षु से, न्याय-वैशेषिक की महेंद्र पंडित से, पूर्वमीमांसा की खंडदेव से तथा 'महाभाष्य' की शिक्षा शेष वीरेश्वर से प्राप्त की। स्वयं जगन्नाथ ने इन विषयों का ज्ञान अपने पिता से तथा उनके एक गुरु, शेष वीरेश्वर, से प्राप्त किया। जगन्नाथ का व्यक्तिगत जीवन अधिक ज्ञात नहीं है, यद्यपि लवंगी नामक एक मुसलमान स्त्री

---

1. जगन्नाथ के संबंध में, वी० ए० रामस्वामी शास्त्री का 'जगन्नाथ पंडित' (जर्नल आॅफ़ अन्नमलै यूनिवर्सिटी iii-iv से पुनर्मुद्रित), तथा उपर्युक्त ग्रंथ में आर्येंद्र शर्मा का लेख देखिए। रामस्वामी शास्त्री ने जगन्नाथ की तिथि 1590-1665 दी है।

2. रसगंगाधर i.3.

3. स्वरचित 'प्राणभरण' का अंतिम श्लोक।

4. 'प्राणभरण', श्लोक 52.

5. 'भामिनीविलास' का पुष्पिकालेख।

6. 'रसगंगाधर', i.2.

पर उनकी आसक्ति तथा पावन गंगा में कूदकर आत्महत्या कर लेने की विचित्र कथाएँ उनके नाम से जोड़ दी गई हैं।[1] जगन्नाथ ने काव्यशास्त्र-विषयक अर्वाचीनतम, किंतु महत्वपूर्ण ग्रंथ 'रसगंगाधर' तथा 'चित्रमीमांसाखंडन' के अतिरिक्त कई काव्यग्रंथों की रचना की है।[2] भट्टोजी दीक्षित की प्रसिद्ध टीका 'मनोरमा' के खंडनार्थ उन्होंने 'मनोरमाकुचमर्दन' नामक व्याकरण-विषयक ग्रंथ भी लिखा है।

जगन्नाथ की अलंकार-विषयक दोनों रचनाएँ पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं हुई हैं 'रसगंगाधर' के पाठ के मुद्रित संस्करण केवल 'उत्तरालंकार' के विवेचन तक एक

---

1. 'स्टडीज़ इन इंडियन लिटरेरी हिस्ट्री' ii.1954, पृ० 452-59 में पी० के० गोडे 1843 ई० की एक हस्तलिपि के अंतर्गत इस परंपरा का सर्वप्रथम उल्लेख किया है अच्युत राय का 'साहित्यसार' 1831 ई० का है। उसने 'भामिनी-विलास' (सं० निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1933) पर अपनी टीका में 'भामिनी-विलास' के अंतर्गत जगन्नाथ की जीवनी से संबंधित, तथा 'यवनी नवनीत-कोमलांगी' इत्यादि श्लोकों पर भी चर्चा की है। इन श्लोकों को प्रायः जगन्नाथ-कृत माना जाता है। इसके अतिरिक्त एल०आर० वैद्य द्वारा संपादित 'भामिनीविलास' की भूमिका भी देखिए। लवंगी विषयक कथा की पूर्ण चर्चा के लिए वी०ए० रामस्वामी शास्त्री का उपर्युक्त ग्रंथ, पृ० 19-21. 'भारतीय विद्या' iv. 1942, तथा 57-62 तथा 'राजस्थान भारती' (बीकानेर) ii, 1948 पृ० 45-49 में पी० के० गोडे का लेख देखिए। आयेंद्र शर्मा का अनुमान है कि 'लवंगी-संबंधी-श्लोक (पृ० 190, संख्या 582-88) यथार्थ हैं।
2. इनमें से कुछ ग्रंथ निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित किए जा चुके हैं। ग्रंथसूची के लिए जगन्नाथ-कृत 'रसगंगाधर' (निर्णयसागर प्रेस संस्करण) कीभूमिका; औफ्रेक्ट i.196b काव्यमाला गुच्छक i. पृ० 79. तथा आयेंद्र शर्मा का उपर्युक्त ग्रंथ देखिए। ग्रंथ इस प्रकार हैं —(1) अमृतलहरी (काव्यमाला गुच्छक ii), (2) आसफ़विलास, आसफ़ खां की विरुदावली (आयेंद्र शर्मा के उपर्युक्त ग्रंथ में) (3) करुणालहरी (काव्यमाला गुच्छक ii) (4) गंगालहरी अथवा पीयूषलहरी (सं० निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1930), (5) जगदाभरण, उदयपुर नरेश प्राणनारायण की विरुदावली। (6) प्राणभरण, कामरूप के प्राणनारायण की प्रशस्ति ' काव्यमाला गुच्छक ii, विभिन्न छंदों में 51 श्लोक), (7) भामिनीविलास (अन्योक्ति, शृंगार, करुणा तथा शांति पर चार समुल्लास, सं० निर्णयसागर प्रेस 1894), (8) मनोरमाकुचमर्दन, भट्टोजी दीक्षित की 'मनोरमा' का खंडन किया गया है, (9) यमुनावर्णन चंपू ('रसगंगाधर' पृ० 19, 128 पर उद्धृत), (10) लक्ष्मी लहरी (काव्यमाला गुच्छक ii), (11) सुधालहरी (काव्यमाला गुच्छक i)। इनमें से संख्या 3,6 तथा 11 के उद्धरण 'रसगंगाधर' में मिलते हैं ; यथा श्लोक 60=पृ० 36; श्लोक 4=पृ० 56; श्लोक 1=पृ० 20; तथा गंगालहरी में पृ० 243 (समृद्धं सौभाग्यं), 491 (समुत्पत्तिः) भामिनीविलास, पृ० 402 (दिगन्ते श्रूयंते), 403 (पुर-सरसि)। पृ० 109 पर पंचलहर्यः (पांच लहरियों) का उल्लेख है।

अपूर्ण श्लोक के साथ समाप्त हो जाते हैं, विभिन्न विवरणों तथा ग्रंथसूचियों में समाविष्ट अधिकतर हस्तलिपियों पर भी यही बात लागू होती है। नागेश अथवा नागोजी भट्ट की टीका भी उक्त अध्याय के साथ समाप्त हो जाती है। ग्रंथ के नाम के 'गंगाधर' पद में श्लेष के अनुरूप, इस ग्रंथ में पाँच आननों अथवा अध्यायों की व्यवस्था थी, जिनमें से केवल एक पूर्ण तथा दूसरा अपूर्ण अध्याय ही उपलब्ध है।[1] प्रथम आनन के अंतर्गत इन विषयों का निरूपण किया गया है—काव्य-लक्षण, काव्य के चार भेद : उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम तथा अधम; रस तथा भावः गुण, तीन अथवा दस। द्वितीय आनन में ध्वनि के भेद तथा अभिधा और लक्षणा की चर्चा है, तदनंतर उपमादि 70 अलंकारों का निरूपण है, किंतु यह पूरा नहीं है। ग्रंथ के सूत्र तथा वृत्ति दो अंग हैं। 'चित्रमीमांसा-खंडन' में अप्पय्य के 'चित्र-मीमांसा' का खंडन किया गया है, किंतु यह अपह्नुति-खंड तक ही है और इसमें 'चित्रमीमांसा' की कुछ हस्तलिपियों में उपलब्ध 'उत्प्रेक्षा' तथा 'अतिशय' अलंकारों का विवेचन नहीं किया गया है। निदर्शना अलंकार-प्रकरण के अंतर्गत निरूपणीय सामग्री निर्दिष्ट की गई है (पृ० 101 : अधिकं तु निदर्शनालंकार-प्रकरणे चिंत-यिष्यते) जिस पर जगन्नाथ ने कुछ लिखने की योजना बनाई थी।

(३)

मम्मट, रुय्यक तथा जयरथ के विस्तृत उद्धरण के अतिरिक्त जगन्नाथ ने अपेक्षाकृत जिन अर्वाचीन लेखकों का उल्लेख किया है तथा उद्धरण दिए हैं, उनके नाम हैं : विद्याधर (पृ० 254), विद्यानाथ (पृ० 162), विश्वनाथ (तथा 'साहित्यदर्पण', पृ० 7) और अप्पय्य। उन्होंने कई बार नव्य (लेखकों) का उल्लेख (पृ० 25, 149, 240, 313, 429, 478) भी किया है। रुय्यक तथा जयरथ का अंधानुसरण करनेवाले अप्पय्य की उन्होंने कड़ी आलोचना की है। इसमें उनका उद्देश्य अलंकार-क्षेत्र में एक अन्य दक्षिण-भारतीय लेखक का मानमर्दन करना था। जगन्नाथ ने मम्मट के टीकाकार श्रीवत्सलांछन (पृ० 39), एक अज्ञात अलंकार-भाष्यकार (पृ०239, 365, जयरथ ने भी इसका उल्लेख किया है), तथा

1. यह निश्चित करना कि ग्रंथ पूर्ण किया गया था, अथवा नहीं, कठिन है; किंतु इसमें संदेह नहीं कि जगन्नाथ ने इस ग्रंथ को अपने 'चित्रमीमांसाखंडन' से पहले लिखा था, क्योंकि उसके द्वितीय श्लोक में 'रसगंगाधर' का उल्लेख है। चित्रमीमांसा-खंडन में 'रसगंगाधर' के उदाहरणालंकार का उल्लेख है (विशेषस्तु उदाहरणालंकार-प्रकरणे रसगंगाधरादवसेयः, पृ० 12) किंतु 'रसगंगाधर' के प्राप्य पाठ में उक्त प्रकरण का अभाव है।

रत्नाकर (पृ० 202, 207, 209, 211, 221, 225, 281, 313, 480, 492 इत्यादि) का भी उल्लेख किया है। रत्नाकर का उल्लेख अप्पय्य ने भी किया है। जगन्नाथ ने 'अलंकार रत्नाकर' नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है (पृ० 163, 165)। बर्नल (54a) में एक अज्ञात लेखक के 'अलंकाररत्नाकर' नामक ग्रंथ का उल्लेख है, किंतु बूहलर ने त्रयीश्वर के पुत्र शोभाकरमित्र को इसी नाम के एक ग्रंथ का रचयिता कहा है।[1] पीटर्सन का कथन है[2] कि यशस्कर नामक काश्मीरी कवि ने शोभाकरमित्र-रचित अलंकार-रत्नाकर से अलंकार-विषयक कुछ सूत्रों[3] को उद्धृत किया तथा अपने 'देवी-स्तोत्र' में अपने श्लोकों के उदाहरणार्थ उन्हें प्रस्तुत किया। 'देवीस्तोत्र' के आरंभिक शब्दों से भी यही बात सिद्ध होती है।[4] स्टीन में इसी कारण से यशस्कर के ग्रंथ को 'अलंकारोदाहरण-सन्निबद्ध देवी-स्तोत्र' कहा गया है।[5] निस्संदेह जगन्नाथ के 'रत्नाकर' में शोभाकरमित्र के इस 'अलंकार-रत्नाकर' को ही लक्षित किया गया है; क्योंकि पृ० 202 पर रत्नाकर का उद्धरण सूत्र 11 (जैसा कि पीटर्सन i पृ० 78 पर दिया गया है)[6] मिलता है। जयरथ ने

1. काश्मीर रिपोर्ट, परिशिष्ट ii, संख्या 228, पृ० cxxviii.
2. रिपोर्ट i, पृ० 12. (बूहलर रिपोर्ट 1877) ने 'ध्वनि-गाथापंजिका' नामक एक लघु ग्रंथ का उल्लेख किया है, जिसमें स्पष्टत: 'ध्वन्यालोक' के प्राकृत श्लोकों की व्याख्या की गई है; किंतु ऐसा कोई प्रमाण नहीं है (पुष्पिकालेख में काश्मीरकाचार्य के अतिरिक्त) जिससे वह 'हरविजय' नामक काव्य का रचयिता काश्मीरी रत्नाकर सिद्ध होता हो। भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट हस्तलिपि संख्या 182, कैटलॉग xii, पृ० 207.
3. ये पीटर्सन के उपर्युक्त ग्रंथ, परिशिष्ट, पृ० 77-81 पर दिए गए हैं।
4. रत्नाकराभ्यंतरतो गृहीत्वालंकारसूत्राणि यथाक्रमेण।
   बंदीव देव्या गिरिराज-पुत्र्या करोमि शंसन् श्रुतिगोचराणि॥
   इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की गई है—'श्रीत्रयीश्वर-मित्रात्मज-श्रीशोभाकरमित्र-विरचितेऽलंकाररत्नाकरेऽलंकार-सूत्राणि' 'अलंकाररत्नाकर' की बूहलर की हस्तलिपि में शोभाकरमित्र-संबंधी पाठ 'त्रयीश्वर-मंत्रपुत्रस्य' है। इसमें 'मंत्र' शब्द 'मित्र' का अशुद्ध रूप है। स्टीन की जम्मू हस्तलिपि 58 में लेखक का नाम शोभाकरमित्र दिया गया है (तुलना कीजिए. WBod 1162)।
5. मूल-ग्रंथ को अलंकार रत्नोदाहरण', तथा लेखक को शोभाकरेश्वर भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त, मित्रा 1822; हुलट्श का Eine Sammlung ind. Handschriften 170 भी देखिए।
6. इस ग्रंथ की खोज तथा संपादन सी० आर० देवधर, पूना 1942 द्वारा हुआ है। अल्प-प्रसिद्ध लेखकों के प्रकरण में आगे देखिए। जगन्नाथ ने भिन्न-भिन्न ग्यारह स्थलों पर 'अलंकाररत्नाकर' का उल्लेख किया है (प्रोसीडिंग्ज ऑफ़ आल इंडिया ओरिएंटल कान्फ्रेंस लखनऊ 1955, पृ० 60-65 में सी० आर० देवधर का लेख देखिए)।

काश्मीरी शोभाकर की आलोचना की है (पृ० 41, 52), क्योंकि उसने रुय्यक से भिन्न मार्ग का अनुसरण किया है। जगन्नाथ के कथनानुसार (पृ० 281) अप्पय्य दीक्षित ने 'अलंकार-रत्नाकर' का अनुसरण किया है।

(४)

नागोजी भट्ट

नागेश अथवा नागोजी भट्ट ने 'रसगंगाधर' पर टीका लिखी है। मम्मट, गोविंद ठक्कुर, भानुदत्त तथा अप्पय्य के टीकाकार के नाते नागोजी भट्ट का पहले भी उल्लेख किया जा चुका है। ये काल अथवा काले कुलोत्पन्न महाराष्ट्र ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम शिव भट्ट तथा माता का नाम सती था। इनका निवासस्थान बनारस था तथा ये शृंगवेरपुर (इलाहाबाद के समीप) के राजा रामसिंह के कृपापात्र थे। नागोजी भट्ट एक ऐसे अर्वाचीन वैयाकरण थे, जिन्होंने व्याकरण, काव्यशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र-विषयक अनेक ग्रंथ तथा टीकाएं लिखी हैं। ये 'सिद्धांत-कौमुदी' के प्रख्यात लेखक भट्टोजी दीक्षित के प्रपौत्र वीरेश्वर दीक्षित के पुत्र हरिदीक्षित के शिष्य थे। भट्टोजी को शेषकृष्ण[1] का शिष्य कहा जाता है। शेषकृष्ण के पुत्र शेष वीरेश्वर, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, स्वयं जगन्नाथ के गुरु थे। मोटे तौर पर नागोजी 18 वीं शती के आरंभ में हुए थे। भानुदत्त की 'रसमंजरी' पर उनकी इंडिया ऑफ़िस पांडुलिपि की तिथि माघ संवत् 1769=

1. शेषकृष्ण ने 'पदचंद्रिका' तथा 'प्रक्रियाप्रकाश' की रचना की है। वे शेष नरसिंह अथवा नृसिंह के पुत्र तथा शिष्य थे। बनारस-निवासी शेषकुल के विवरण के लिए इंडियन एंटीक्वेरी, 1912, पृ० 245 इत्यादि देखिए। नागोजी भट्ट तथा जगन्नाथ का परस्पर संबंध इस प्रकार है :

शेष वीरेश्वर (पुत्र) —पेरुभट्ट (शिष्य) —जगन्नाथ (शेष वीरेश्वर के शिष्य तथा पेरु भट्ट के पुत्र)

शेष कृष्ण

शेष नृसिंह—(पुत्र और शिष्य)

—भट्टोजी दीक्षित (शिष्य) —वीरेश्वर दीक्षित (पुत्र और शिष्य) —नागोजी भट्ट (शिष्य)

फरवरी 1713 ई० है[1]। नागोजी, मैथिल वैयाकरण वैद्यनाथ के तथा मणिराम (1802 ई०) के प्रपितामह गंगाराम के गुरु थे।[2]

नागोजी ने काव्यशास्त्र-विषयक विभिन्न ग्रंथों पर इन टीकाओं की रचना की है—(1) जगन्नाथ-कृत 'रसगंगाधर' पर 'गुरुमर्मप्रकाशिका', (2) मम्मट पर गोविंद रचित 'प्रदीप' टीका पर बृहत् तथा लघु उद्योत; (3) मम्मट पर 'उदाहरण-दीपिका' अथवा '-प्रदीप'; (4) अप्पय्य के 'कुवलयानंद' पर 'अलंकारसुधा' तथा 'विषमपदव्याख्यान-षट्पदानंद'; (5) भानुदत्त-रचित 'रसमंजरी' पर 'प्रकाश'; तथा (6) भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' पर एक टीका।

पी० के० गोडे ने नागोजी के कुछ ग्रंथों की तुलनात्मक तिथि (ओरिएंटल थॉट i, संख्या 2, 1955, पृ० 45-52) 1670 से 1750 ई० तक की मध्यावधि में निर्धारित की है।

रसगंगाधर

संस्करण—(1) सं० दुर्गाप्रसाद तथा के० पी० परब (नागोजी की टीका सहित), निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1888, 1913 तृतीय सं० 1916, षष्ठ सं० 1947। (2) सं० गंगाधर शास्त्री (नागोजी की टीका सहित, बनारस संस्कृत सीरीज़ 1885-1903। यहां 1916 के निर्णयसागर संस्करण से संदर्भ दिए गए हैं।

टीकाएं—(1) नागेश अथवा नागोजी भट्ट रचित 'गुरुमर्मप्रकाशिका'। जैसा पहले ही बताया जा चुका है, इस टीका के निर्णयसागर प्रेस तथा बनारस से संस्करण निकल चुके हैं। (२) 'विषमपदी'। लेखक अज्ञात। औफ्रेक्ट i. 494b.

संस्करण—(1) सं० शिवदत्त तथा के०पी० परब, 'चित्रमीमांसा' टीका सहित, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, 1893, 1907.

---

1. इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii, पृ० 355; तुलना कीजिए : बेल्वलकर का 'सिस्टम्ज़ ऑफ़ संस्कृत ग्रामर, पृ० 49.
2. मणिराम ने 1802 ई० में जगन्नाथ के 'भामिनीविलास' पर एक टीका लिखी है। देखिए इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग vii, पृ० 1526.

अध्याय नौ

रस तथा कवि-शिक्षा के परवर्ती लेखक

रस-विषयक लेखक

(१)

शारदातनय

शारदातनय रस तथा भाव के लोकप्रिय लेखक हुए हैं। इन्होंने 'भावप्रकाश' 'भावप्रकाशिका' अथवा 'भावप्रकाशन' नामक ग्रंथ लिखा है। कुमारस्वामी[1] ने तथा वामन पर 'कामधेनु' टीका ने उसके विस्तृत उद्धरण दिए हैं। इसके अतिरिक्त राघवभट्ट, रंगनाथ तथा वासुदेव इत्यादि टीकाकारों ने भी उसे उद्धृत किया है। शारदातनय के संबंध में कहा गया है कि वह भट्टगोपाल के पुत्र, कृष्ण के पौत्र तथा काश्यपगोत्रोत्पन्न लक्ष्मण के प्रपौत्र थे। लक्ष्मण. आर्यावर्त के मेरूत्तर प्रदेश के अंतर्गत माटरपूज्य ग्राम के निवासी थे। उन्होंने वेदों पर 'वेद-भूषण' नामक टीका लिखी थी। ऐसा कहा जाता है कि वाराणसी-वासिनी शारदा देवी के वरदान से उत्पन्न होने के कारण हमारे लेखक का नाम शारदातनय रखा गया था। उन्होंने नाट्यशास्त्र की शिक्षा दिवाकर से प्राप्त की, किंतु अपने कथन के अनुसार उन्होंने अभिनवगुप्ताचार्य का मतानुसरण किया है। उनका अपना ग्रंथ कई अंशों में वस्तुत: मुख्य रूप से भोज-कृत शृंगारप्रकाश का संक्षिप्त रूप है, जिसमें 'शृंगारप्रकाश' के उद्धरण दिए गए हैं। इस तथ्य के आधार पर शारदातनय की तिथि भोज के पश्चात् ही निर्धारित की जा सकती है और चूंकि शिंगभूपाल ने 'भावप्रकाश' के उद्धरण दिए हैं (पृ० 20, 139, 169, 202 इत्यादि), इसलिए शारदातनय की तिथि की दूसरी सीमा 1330 ई० निर्धारित की जा सकती है। इस प्रकार, मोटे तौर पर इस लेखक का समय 1100 से 1300 ई० की मध्यावधि में निर्धारित किया जा सकता है।

---

1. पृ० 12,15, 44, 68, 102, 106, 118, 121, 127, 129, 139, 143, 145, 219, 223 इत्यादि।
2. यथा 1 3.30 पर।
3. 'विक्रमोर्वशीयम्' पर, सं० निर्णयसागर प्रेस, 1885 पृ० 10।
4. 'कर्पूरमंजरी' पर, सं० निर्णयसागर प्रेस, 1900 पृ० 5, 7 इत्यादि।

शारदातनय ने नाट्यशास्त्र के आचार्यों के रूप में अगस्त्य (पृ० 2), कोहल, मातृगुप्त, सुबंधु तथा आंजनेय (पृ० 251) का उल्लेख किया है। उनके ग्रंथ में दस 'अधिकार' हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम तथा द्वितीय में भाव; तृतीय में अवांतर भावभेद-स्वरूप, चतुर्थ में शृंगारालंबननायकादि-स्वरूप; पंचम में नायक-भेदावस्थारसभावविकार; षष्ठ में शब्दार्थसंबंध-भेदप्रकार; सप्तम में नाट्येतिवृत्तादिलक्षण; अष्टम में दशरूपक लक्षण; नवम में नृत्य-भेदस्वरूपलक्षण; दशम में नाट्यप्रयोग-भेदप्रकार।

इस ग्रंथ में उल्लिखित 'कवि-कल्पलता' (पृ० 131, 175) अरिसिंह तथा देवेश्वर रचित 'कविकल्पलता' से भिन्न है, क्योंकि शारदातनय के कथनानुसार 'काव्यप्रकाश' में उसकी सामग्री का उपयोग किया गया है। शारदातनय के ग्रंथ के उद्धरणों के लिए अड्यार लाब्रेरी बुलेटिन xix, 1-2, पृ० 47-51 देखिए।

संस्करण—मेलकोट के यदुगिरि यतिराज तथा के०एस० रामस्वामी शास्त्री, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़, 1930।

(२)

शिंगभूपाल

शिंगभूपाल का दूसरा नाम शिंगधरणीश, शिंगराज अथवा शिंगमहीपति भी कहा गया है। शेषगिरि शास्त्री ने इन्हें वेंकटगिरि के राजा शिंगम नायडू ही माना है। वेंकटगिरि के राजाओं की जीवनियों के आधार पर इनका राज्यकाल 1330 ई० के लगभग था।[1] इस तिथि को संभव माना जा सकता है, क्योंकि मल्लिनाथ ('कुमारसंभव' i. 25 पर टीका, 'इति भूपालः' 'रसार्णव' i. 181), तथा

---

1. विवरण के लिए SgS i. पृ० 7-11; तथा 'रसार्णव' के त्रिवेंद्रम् संस्करण की भूमिका देखिए। एम० टी० नरसिंह अय्यंगर (सं० 'सुभाषितनीवी', वाणी प्रेस, श्रीरंगम् 1908) का कथन है कि हमारे लेखक, शिंगम नायडू, विजयनगर के प्रौढ़ देवराज (1422-1477 ई०) के समकालीन थे; किंतु पी० आर० भंडारकर (प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ दि फ़र्स्ट ओरिएंटल कान्फ़्रेंस, पूना, ii, 1916, पृ० 425) ने शिंगभूपाल पर अपने लेख में इस तिथि की शुद्धता पर संदेह प्रकट किया है। ए०एन० कृष्ण अय्यंगर, उसकी तिथि 1340 तथा 1360 ई० की मध्यावधि निर्धारित करने के पक्ष में हैं (प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ ऑल इंडिया ओरिएंटल कान्फ़्रेंस मैसूर, 1937, पृ० 264-73)।

कुमारस्वामी ने हमारे लेखक का उल्लेख किया है। इस दक्षिण-भारतीय नरेश को 'रसार्णव-सुधाकर' का रचयिता कहा गया है। इसके प्रारंभिक श्लोकों से यह सूचित होता है कि उक्त राजा रेचर्लवंशीय था तथा विंध्य और श्रीशैल के मध्यवर्ती प्रदेश पर राज्य करता था। राजाचलम् इस प्रदेश की वंशपरंपरागत राजधानी थी। इसके पिता का नाम अनंत (अथवा अनपोत) तथा माता का नाम अन्नमांबा, पितामह का नाम शिंग प्रभु (अथवा शिंगम नायक) तथा प्रपितामह का नाम याचम नायक था। धुरंधर विद्वान् होने के कारण, हेमचंद्र की तरह शिंगभूपाल को भी 'सर्वज्ञ' कहा जाता था। यह राजा बड़ा साहित्यानुरागी था।[1]

'रसार्णव-सुधाकर' मुख्यतः भोज-कृत 'शृंगारप्रकाश' (पृ० 57, 69, 149, 168, 190 पर भोज का उल्लेख है) तथा शारदातनय-कृत 'भावप्रकाश' (पृ० 139, 169, 202 पर इसका उल्लेख है) जैसे पूर्ववर्ती ग्रंथों पर आधारित है, यद्यपि इसमें भरत, रुद्रभट्ट (उल्लेख पृ० 29, 30, 87) दशरूपक तथा रसशास्त्र और नाट्यशास्त्र के अन्य लेखकों तथा ग्रंथों की सामग्री का स्पष्ट उपयोग किया गया है। लेखक शिंगभूपाल ने अपने संबंध में अन्य पुरुष का ही प्रयोग किया है। इस ग्रंथ में उदाहरणों के रूप में नाटकों की एक बड़ी संख्या का उल्लेख अथवा उनके उद्धरण दिए गए हैं, यथा, 'प्रबोध-चंद्रोदय' (पृ० 265, 291), 'अनर्घ-राघव' (पृ० 72, 83, 261, 266, 274), 'प्रसन्न-राघव' (पृ० 258, 277), 'धनंजय-विजय-व्यायोग[2] (पृ० 287), 'अभिराम-राघव[3] ('अनपोतनायकीय' पृ० 119, 243, 265, 273, 275), 'माधवी-वीथिका' (पृ० 290), 'मायाकुरंगिका-ईहामृग' (पृ० 298), 'पद्मावती' (पृ० 263, 266), 'काम-दत्त'[4] (पृ० 285), 'रामानंद' (पृ० 248,255, 269), 'करुणाकंदल-अंक'

---

1. SgS उपर्युक्त संदर्भ 9—विश्वेश्वर कविचंद्र ने 'चमत्कारचंद्रिका' में शिंगभूपाल का यशोगान किया है और उसे 'सर्वज्ञ' कहा है। इस संबंध में 'अल्प-प्रसिद्ध लेखक' अध्याय में आगे देखिए।

2. लेखक कांचन, पिता का नाम नारायण, औफ्रेक्ट i, 266b (सं० काव्यमाला 54, 1895)।

3. इस नाम का एक नाटक 1390 ई० में नेपाल में मणिक ने लिखा था (लेवी 268)।

4. 'पद्मप्राभृतक-भाण' में भी (सं० मद्रास 1922), जो शूद्रक रचित कहा जाता है, इस अल्पज्ञात ग्रंथ का उल्लेख है। इस भाण के संपादकों के अनुसार (भूमिका पृ० iv) 'कामदत्त' नामक 'प्रकरण' की रचना स्वयं शूद्रक ने की थी। हेमचंद्र ने इस भाण का अज्ञातलेखक उद्धरण दिया है (पृ० 198, 1. 12)।

(पृ० 163, 197, 198, 286), वीरभद्र-विजृंभण डिम (पृ० 272, 274, 276, 278, 298), 'महेश्वरानंद' (पृ० 275), 'आनंदकोश-प्रहसन' (पृ० 40, 41, 278, 291, 297), शृंगारमंजरीभाण'[1] (पृ० 288) 'पयोधि-मथन-समवकार' (पृ० 290), 'कंदर्प-सर्वस्व' स्वरचित (पृ० 151) तथा वीरानंद (पृ० 159, 160)।

'रसार्णव' के तीन 'विलासों' के अंतर्गत प्रचुर उदाहरण-सहित नाट्यशास्त्र तथा रसशास्त्र के सभी विषयों का विशद निरूपण है। संक्षिप्त रूप में निरूपित विषय इस प्रकार हैं : प्रथम विलास—नाट्य-लक्षण तथा रस-लक्षण; नायक के गुण तथा भेद (वर्ग); प्रेम-व्यापार में उसके सहायक; नायिका के गुण तथा भेद (वर्ग); तीन रीतियाँ (गौडी, वैदर्भी तथा पांचाली), चार नाट्य वृत्तियों तथा सात्विक भावों का आनुषंगिक विवेचन; द्वितीय विलास—33 व्यभिचारी तथा 8 स्थायी भावों का विस्तृत विवेचन, रति के भेद; शृंगार तथा अन्य रस; रसों के प्रति-रस तथा संकर; रसाभास; तृतीय विलास—रूपक के भेद तथा रूपक-विषय; पांच अर्थप्रकृतियाँ; पताका-स्थानक; पांच अवस्थाएं; अंगों-सहित पांच संधियों का विशद वर्णन; भूषण; मुख्य रूपक के रूप में नाटक; रूपक के अन्य भेद; प्रायोज्य भाषाएं; विभिन्न पात्रों के नाम। त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज़ के अंतर्गत मुद्रित मूल पाठ में 300 से अधिक पृष्ठ हैं।

शिंगभूपाल ने एक 'नाटकपरिभाषा'[2] नामक ग्रंथ भी लिखा है और अपने 'रसार्णव' के अंत में इस विषय पर संक्षिप्त विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त शिंग-भूपाल ने 'संगीत-सुधाकर' (सं० कलिवर वेदांतवागीश तथा एस० पी० घोष, न्यू आर्य प्रेस, कलकत्ता 1879) भी लिखा है, जो शार्ङ्गदेव के 'संगीतरत्नाकर' की टीका है।

संस्करण—(1) सरस्वतीशेष शास्त्री-कृत, वेंकट गिरि 1895. (2) टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेंद्रम् संस्कृत सीरीज़, 1916.

---

1. हुलट्श i. उद्धरण पृ० 77 (संख्या 385), पृ० x, में जक्कुल वेंकटेंद्र तथा वीरमांबा के पुत्र गोपालराय के एक 'शृंगारमंजरी-भाण' का उल्लेख है।

2. यह 289 श्लोकों का एक लघु ग्रंथ है। देखिए इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, खंड ii (कीथ तथा टामस), संख्या 5248 पृ० 346।

(३)

भानुदत्त

भानुदत्त,[1] नायक-नायिका तथा रस-विषयक अपने दो लोकप्रिय ग्रंथों, 'रसमंजरी' तथा 'रसतरंगिणी' के लिए प्रसिद्ध हैं। 'रसतरंगिणी' में लेखक ने एक विषय पर अधिक विवरण न देकर[2] यह कहा है कि मैं अपने 'रसमंजरी' नामक ग्रंथ में इस विषय का पहले ही विशेष विवेचन कर चुका हूँ। इससे सूचित होता है कि लेखक ने 'रसमंजरी' की रचना पहले की थी। भरत तथा रुद्र के 'शृंगारतिलक' से कुछ श्लोकों तथा 'ध्वन्यालोक[3] के एक श्लोक का उद्धरण देने के अतिरिक्त भानुदत्त ने 'रसरत्नदीपिका'[4] नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। यह कहना कठिन है कि उक्त ग्रंथ वही है, जिसका उद्धरण रत्नकंठ ने मम्मट पर अपनी टीका में दिया है।[5] 'रसतरंगिणी' के अंतर्गत भानुदत्त ने पूर्वाचार्यों, पूर्वग्रंथकार सम्मति तथा प्राचीन-सम्मति का उल्लेख किया है। इन उल्लेखों से उनकी शुद्ध तिथि का कोई भी संकेत प्राप्त नहीं होता।

ग्रंथमाला 1887-88 के अंतर्गत प्रकाशित दस सर्गयुक्त 'गीत-गौरीश' अथवा 'गीत-गौरीपति' नामक गीत-काव्य भानुदत्त-रचित कहा जाता है। संभवतः

---

1. शेष चिंतामणि के 'परिमल', गोपाल के '-विकास' तथा रंगशायी की '-आमोद' नामक टीकाओं में इस नाम का अन्य रूप भानुकर दिया गया है। कहीं-कहीं नाम के साथ 'मिश्र' उपाधि भी लगा दी गई है।

2. बहवो भेदाश्च रस-मंजर्यां विशेषतो दर्शिताः,
इह पुनर्विस्तारभिया न प्रदर्श्यंत इति ॥ सं० ग्रंथमाला, पृ० 35; सं० रेनो, पृ० 57, 1.32.

3. 'ध्वन्यालोक' पृ० 145 पर 'अनौचित्यादृते' श्लोक इस टिप्पणी सहित उद्धृत किया गया है-—'तत्र प्राचीनग्रंथकृतः' जिससे यह परिलक्षित होता है कि भानुदत्त, आनंदवर्धन के बहुत समय पश्चात् हुए हैं क्योंकि यह श्लोक आनंदवर्धन की वृत्ति में मिलता है।

4. 'रसतरंगिणी' में, सं० ग्रंथमाला i. 31; सं० रेनो, पृ० 44, 1.32।

5. पीटर्सन ii. 17. इसी नाम की एक अपूर्ण टीका का भंडारकर, रिपोर्ट 1884-87, सं० 533 में उल्लेख है। इसमें लेखक का नाम अल्लराज दिया गया है, जो बूहलर, रिपोर्ट 1874-75, संख्या 19, पृ० 16 पर मल्लराज के रूप में मिलता है। 'अल्प-प्रसिद्ध लेखक' नामक अध्याय में अल्लराज के संदर्भ में आगे देखिए।

ये भानुदत्त हमारे भानुदत्त ही हैं।[1] इन दोनों लेखकों के ग्रंथों से सूचित होता है कि ये दोनों शैव थे। दोनों ने ही काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन किया है। हमारे भानुदत्त ने अपने पिता का नाम गणेश्वर[2], गणपतिनाथ[3] अथवा गणनाथ[4] दिया है, जबकि उक्त काव्य के लेखक ने अपने पिता का नाम गणपति अथवा गणनाथ[5] बताया है। हमारे भानुदत्त के दो ग्रंथों में कुछ ऐसे श्लोक हैं, जो उक्त काव्य में भी मिलते हैं। यथा, 'रसमंजरी' का मंगल-श्लोक (आत्मीयं चरणं) = 'गीत-गौरीश' अध्याय ii, पृ० 90; 'रसमंजरी' पृ० 51 में 'अकरोः किमु नेत्र' = 'गीत-गौरीश' अध्याय ii, पृ० 14; 'रसतरंगिणी' अध्याय iv, पृ० 40, सं० ग्रंथमाला, का 'प्राणेशस्य प्रभवति' = 'गीत-गौरीश' अध्याय ii, पृ० 77। 'गीत-गौरीश', कोई संकलन-ग्रंथ नहीं है, जिसमें अन्य लेखकों के श्लोक अपेक्षित हों, इसलिए इसमें भानुदत्त के दो ग्रंथों के श्लोकों का विद्यमान होना इस अनुमान को पुष्ट करता है कि इन तीनों ग्रंथों का लेखक एक ही व्यक्ति रहा होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'गीत-गौरीश', जयदेवकृत 'गीतगोविंद' को आदर्श मानकर लिखा गया था। कालिदास के 'मेघदूत' की तरह 'गीत-गोविंद' की नकल पर परवर्ती लेखकों ने इस प्रकार अनेक ग्रंथ लिखे हैं।[6] सरसरी तौर पर

---

1. औफ्रेक्ट ने पहले तो इन दोनों लेखकों को भिन्न-भिन्न मानकर इनका पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है (i.405), किंतु बाद में (i.793) उसने कहा है कि 'यह अधिक संभव है कि गीतकाव्य का लेखक 'रसतरंगिणी' के लेखक से अभिन्न है'। (इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग vii. पृ० 1443-45 पर हस्तलिपि का विवरण दिया गया है)।
2. 'रसमंजरी' 168.
3. 'रसतरंगिणी' सं० रेनो, पृ० 66 पुष्पिकालेख; तथा वेबर 824.
4. Aleip 835 में 'रसतरंगिणी' की हस्तलिपि के अंतर्गत, वेबर, 1726।
5. कवि-गणनाथ-सुतस्य कवेरिति वचनं त्रिजगति धन्यम्, अध्याय ii, पृ० 50; कृत-हर-विनयो गणपति-तनयो निगदति हित-कारणम्, अध्याय ii, पृ० 58।
6. यथा—कल्याण-रचित 'गीतगंगाधर'; राम-कृत 'गीतगिरीश'; वंशमणि रचित 'गीत-दिगंबर' (हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स. i, 18., संवत् 1674 मे भूधर के पुत्र प्रभाकर का 'गीतराघव' (भंडारकर रिपोर्ट 1882-83 पृ० 9)। हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स, ii, संख्या 53, में हरिशंकर रचित एक 'गीतराघव' का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त 'रामगीतगोविंद' इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग vii, पृ० 1480) भी देखिए; एगलिंग ने इसे जयदेव के 'गीतगोविंद' की कच्ची नकल कहा है, किंतु इसे जयदेव रचित ही कहा गया है। एगलिंग ने Garcin de Tassy के इस कथन का उद्धरण दिया है कि ऐसे ग्रंथ जयदेव के असली 'गीतगोविंद' की नकल में प्रचलित हो गए हैं। तुलना कीजिए, पिशेल, Die Hofdichter des Laksman Sen पृ० 23.

अवलोकन करने से ही पता चल जाता है कि इन दोनों ग्रंथों में बड़ी समानता है और विशेष बात यह है कि सामान्य ग्रंथ-योजना के अतिरिक्त भानुदत्त के काव्य के कुछ अध्यायों में कई ऐसे श्लोक हैं, जिनके छंद तथा जयदेव के श्लोकों के छंद एक हैं। यथा :—

जयदेव

प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदम्
विहित-वहित्र-चरित्रमखेदम्
केशव धृत-मीन-शरीर, जय जगदीश हरे ॥

भानुदत्त

भ्रमसि जगति सकले प्रतिलवमविशेषम्
शमयितुमिव जनखेदमशेषम्
पुरहर कृत-मारुत-वेश, जय भुवनाधिपते ॥

जयदेव

निभृत-निकुंज-गृहं गतया निशि रहसि निलीय वसंतम्
चकित-विलोकित-सकल-दिशा रति-रभस-रसेन हसंतम्
सखि हे केशी-मथनमुदारम्
रमय मया सह मदन-मनोरथ-भावितया सविकारम् ॥

भानुदत्त

अभिनव-यौवन-भूषितया दर-तरलित-लोचन-तारम्
किंचिदुदंचित-विहसितया चलदविरल-पुलकविकारम्
सखि हे शंकरमुदित-विलासम्
सह संगमय मया नतया रति-कौतुक दर्शितहासम् ॥

यदृच्छया लिए गए ये दोनों उद्धरण अनुकरण के आधिक्य को परिलक्षित करते हैं। यह अनुमान करना न्यायसंगत होगा कि साहित्य-क्षेत्र में जयदेव-रचित गीतकाव्य की पर्याप्त प्रतिष्ठा हो जाने के कुछ समय पश्चात् ही भानुदत्त के अनुकरणात्मक ग्रंथ की रचना हुई होगी। भले ही जयदेव की तिथि 12 वीं शती के पूर्वार्द्ध अथवा उत्तरार्द्ध में निर्धारित की जाए, किंतु भानुदत्त को 12 वीं शती से पहले निर्धारित नहीं किया जा सकता। इस निष्कर्ष के आधार पर उनकी तिथि की एक सीमा प्राप्त हो जाती है।

भानुदत्त की तिथि की दूसरी सीमा, 'रसमंजरी' पर 'रसमंजरी-विकास' अथवा '—विलास' नामक टीका की तिथि से प्राप्त होती है। यह टीका नृसिह के पुत्र गोपाल (उपनाम वोपदेव) ने लिखी थी। इसकी तिथि स्पष्ट रूप से 1572 ई०[1] कही गई है। 'शार्ङ्गधर-पद्धति' लगभग 1363 ई० में संकलित की गई थी। इसके अंतर्गत भानुपंडित तथा वैद्य भानु-पंडित के नामों से कई श्लोक दिए गए हैं (790, 973, 1032, 1271, 3328 3685)। किंतु इनमें से कोई भी श्लोक हमारे लेखक के ज्ञात ग्रंथों में उपलब्ध नहीं है। जह्लण का काव्यसंग्रह (सं० गायकवाड़ संस्कृत सीरीज, बड़ोदा 1938) लगभग 13 वीं शती के मध्य-भाग में संकलित किया गया है। इसमें भी भानु-पंडित तथा वैद्य भानु-पंडित के नामसे 36 श्लोक दिए गए हैं, किंतु वे भी भानुदत्त के ग्रंथों में नहीं मिलते; किंतु इनमें से तीन श्लोक 'पद्धति' के अंतर्गत इसी नाम से मिलते हैं। (700 = पृ०, 68, 973 = पृ० 107, तथा 3328 = पृ० 183)। यह अनुमान किया जा सकता है कि 'रसमंजरी' का लेलक इस समय अज्ञात नहीं था और काव्यसंग्रहों में 'वैद्य' अथवा 'पंडित' नाम किसी पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती भानु के साथ जोड़ दिया गया था, ताकि हमारे लेखक तथा उसमें अंतर किया जा सके।

यदि 'रसमंजरी' के अंतर्गत निजामधरणीपाल के उल्लेख से कोई निष्कर्ष निकाला जा सके तो भानुदत्त की अधिक शुद्ध तिथि प्राप्त हो सकती है। ऐसा कहा

---

1. देखिए स्टीन, जम्मू कैटलॉग पृ० 63, पृ० 421 तथा 273 पर इसमें शुद्धि की गई है। इस टीका की तिथि तथा प्रयुक्त संवत् के विषय में आगे ग्रंथ-सूची में देखिए। 15 वीं शती के आरंभ में हुए कुमारस्वामी ने (पृ० 280) 'विरहविप्रलंभ' के अन्य नाम 'प्रणय-मान' को प्रामाणिक बताने के लिए 'रसमंजरी' नामक ग्रंथ को उद्धृत किया है। यह उद्धरण भानुदत्त को ही लक्षित करता है, यह स्पष्ट नहीं होता, क्योंकि उनकी 'रस-मंजरी' में उक्त कथन का अभाव है।

2. गोविंदजी-रचित 'सभ्यालंकरण' (भंडारकर, रिपोर्ट 1887-91, पृ० lxiii) में भानुकर तथा भानुपंडित के काव्यों के उद्धरण दिए गए हैं। इन दोनों कवियों में अंतर अपेक्षित है। कुछ अर्वाचीन काव्यसंग्रहों में भानुदत्त के अनेक श्लोकों को कवि भानुकर-रचित ही मान लिया गया है। हरदत्त शर्मा (एनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, xvii, 1936, पृ० 243-58) ने मुख्यतः इसी आधार पर इन दोनों की अनन्यता का सुझाव दिया है, जो बड़ा संदेहास्पद है। इस प्रश्न पर, NIA, vii, 1944, पृ० 111-17 के अंतर्गत जी० वी० देवस्थली, 'इंडियन कल्चर' iii, पृ० 751-56 में पी० के० गोडे तथा 'सम प्राब्लम्ज़' पृ० 147 में सुशीलकुमार डे के लेख देखिए।

गया है[1] कि अनंत पंडित की टीका में देवगिरि के शासक निजाम के उल्लेख से अहमद-निजाम शाह ही लक्षित होता है। उसने 1499 तथा 1507 ई० की मध्यावधि में दौलताबाद (देवगिरि) पर अधिकार प्राप्त किया था और दक्षिण के निजामशाही वंश की स्थापना की थी। इस विषय पर पी०वी० काणे ने नई सामग्री प्रस्तुत की है। उनका कथन है (हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स, पृ० 296-97) कि भानुदत्त ने 'विवादचंद्र' के लेखक तथा स्मृतिकार, मिसरू मिश्र की बहन से विवाह किया था। ये मिश्र 15 वीं शती के मध्यभाग में हुए हैं। अतएव, भानुदत्त को 1450 से 1500 ई० की मध्यावधि में निर्धारित करना ही युक्तियुक्त होगा।

'रसमंजरी' के अंतिम श्लोक में भानुदत्त का जन्मस्थान विदेह (विदेहभूः[2]) अथवा मिथिला दिया गया है। बर्नल ने भी भानुदत्त को मिथिला-निवासी कहा है। मैथिली लेखक होने के नाते इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे गौडीय जयदेव के प्रसिद्ध गीत-काव्य से परिचित थे तथा उन्होंने जयदेव का अनुकरण करते हुए शिव तथा गौरी पर उसी प्रकार के ग्रंथ की रचना की थी। 'कुमार-भार्गवीय'[3] नामक एक अन्य ग्रंथ में, जिसे भानुदत्त-रचित माना जाता है, लेखक को गणपति अथवा गणनाथ का पुत्र कहा गया है (हमारे लेखक के पिता का नाम भी यही है) और उनकी वंशावली इस प्रकार दी गई है—रत्नेश्वर—सुरेश्वर ('शारीरक भाष्यवार्त्तिक' के लेखक)—विश्वनाथ—रविनाथ—भवनाथ—महादेव—गणपति—भानुदत्त। गणपति भी कवि थे, स्वयं भानुदत्त ने अपनी 'रसतरंगिणी' में उनके श्लोक उद्धृत किए हैं। जह्लण के काव्य-संग्रह में (पृ० 45) 'महामोद' नामक ग्रंथ के रचियता के रूप में किसी राजेश्वर के लिखे श्लोक में गणपति नामक कवि की प्रशंसा की गई है। हमारे भानुदत्त को

---

1. सुशीलकुमार डे का 'सम प्रॉब्लम्ज' पृ० 144-45 देखिए। किंतु रामनाथ झा के मतानुसार (जर्नल ऑफ़ पटना यूनिवर्सिटी iii, संख्या 1-2) निजाम उक्त वंश का दूसरा शासक है तथा कृष्ण (अनंत पंडित का भी यही मत है) विजयनगर का कृष्णदेव राय (1509-1530) है।

2. 1872 के मद्रास संस्करण में, ऑफ़ेक्ट द्वारा परीक्षित हस्तलिपियों में (बोडलियन कैटलॉग 213b) तथा भंडारकर की प्रति (रिपोर्ट 1883-84, पृ० 12) में दिया गया पाठ 'विदर्भभूः' अशुद्ध है; क्योंकि लेखक के कथनानुसार गंगा नदी उसके देश के बीचोबीच बहती है। यह बात विदेह के संबंध में ठीक है, विदर्भ के संबंध में नहीं। वेबर ii, संख्या 1726 से तुलना कीजिए। भानुदत्त के नाम के साथ मिश्र उपाधि प्रायः जोड़ दी जाती है, जिससे सूचित होता है कि वे मैथिल ब्राह्मण थे और संभवतः वैद्य नहीं थे।

3. 12 उच्छ्वास पर्यंत, यह ग्रंथ चंपू (गद्य-पद्य-मिश्रित) है। इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग vii, पृ० 1540 देखिए। वहाँ वंशावली-संबंधी श्लोकों का संपूर्ण उद्धरण है।

पांच अध्याय-पर्यंत एक 'अलंकारतिलक' तथा 'शृंगारदीपिका' का भी रचयिता कहा गया है।

'शृंगार-दीपिका' तो उपलब्ध नहीं है, किंतु 'अलंकार-तिलक' प्रकाशित हो चुका है।[1] इसकी रचना मिश्रित-गद्य-पद्यमय है तथा इसमें संस्कृत-काव्य-शास्त्र के सभी सामान्य विषयों का निरूपण किया गया है। प्रथम परिच्छेद में काव्य की चर्चा है, रस को काव्य की आत्मा कहा गया है तथा रस के तीन भेदों, अर्थात् उत्तम, मध्यम तथा अधम का निरूपण है। तत्पश्चात् रीतियों तथा चार वृत्तियों (कैशिकी इत्यादि) का विवेचन है। द्वितीय तथा तृतीय परिच्छेद में क्रमशः काव्य के दोषों तथा गुणों की चर्चा है, जो भोज के ग्रंथानुसार है। चतुर्थ तथा पंचम परिच्छेद में क्रमशः शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का निरूपण है। अलंकारों की संख्या 77 दी गई है। इस ग्रंथ में लेखक की एक रचना 'चित्र-चंद्रिका' का उल्लेख मिलता है।

'रसमंजरी' अपेक्षाकृत बहुत छोटा ग्रंथ है। इसमें सामान्यतः उदाहरण, नायक-नायिका विचार, उनके सहायक तथा गुण, शृंगार के दो भेद तथा विप्रलंभ शृंगार की दस अवस्थाओं का निरूपण है। 'रसतरंगिणी' आठ तरंगों (भागों) में विभक्त है। इसमें शृंगार के विस्तृत विवेचन के अतिरिक्त अन्य रसों का विशेष वर्णन है। विषय-विन्यास इस प्रकार है—(1) स्थायिभाव, (2) विभाव, (3) अनुभाव, (4) सात्विक भाव; (5) व्यभिचारिभाव, (6) शृंगार-रस, (7) अन्य रस, (8) स्थायिभाव इत्यादि से संबंधित दृष्टि-त्रय।

भानुदत्त-रचित दो ग्रंथों पर अनेक टीकाओं का विवरण नीचे दिया जा रहा है। इनमें से 'रसतरंगिणी' पर गंगाराम जडि की 'नौका' नामक टीका तथा 'रसमंजरी' पर क्रमशः अनंत पंडित तथा नागोजी भट्ट की 'व्यंग्यार्थकौमुदी' तथा 'रसमंजरी-प्रकाश' नामक टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

भानुदत्त ने 'रस-पारिजात' नामक एक काव्यसंग्रह की भी रचना की है (मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, 1939, द्वारा मुद्रित)।

ग्रंथ-सूच

रसमंजरी

संस्करण—(i) जीवानंद विद्यासागरके काव्यसंग्रह के अंतर्गत, द्वितीय संस्करण, कलकत्ता 1886। (ii) सं० रामशास्त्री तैलंग, अनंत पंडित की व्यंग्यार्थ-कौमुदी

1. जी० वी० देवस्थली द्वारा, जर्नल ऑफ़ दि बंबई ब्रांच ऑफ़ रायल एशियाटिक सोसायटी (न्यू सीरीज़), xxiii-xxv (1947-49) के अंतर्गत।

तथा नागोजी भट्ट की रसमंजरी-प्रकाश टीकाओं सहित, बनारस संस्कृत सीरीज़, 1904। (iii) सं० वेंकटराम शास्त्री, तेलुगु लिपि में, मद्रास 1909। (iv) 'ग्रंथमाला' खंड 1 के अंतर्गत। यहाँ संदर्भ बनारस सं० से दिए गए हैं।

टीकाएं—(1) त्र्यंबक पंडित (तिमजी) के पुत्र, बालो पंडित के पौत्र तथा नीलकंठ पंडित के प्रपौत्र, अनंत पंडित की 'व्यंग्यार्थकौमुदी'। अनंत पंडित का जन्मस्थान गोदावरी-तीर पर पुण्यस्तभ (पुंतंबम्, अहमदनगर) था। उक्त टीका, वीरसेनदेव के पुत्र तथा मधुकर के पौत्र चंद्रभानु के अनुरोध पर संवत् 1692=1636 ई० में बनारस में लिखी गई थी। रचना की तिथि ग्रंथ के अंतिम श्लोक में दी गई है। यह श्लोक इंडिया ऑफ़िस हस्तलिपि (एगलिंग, इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii, पृ० 356) में है, किंतु मुद्रित पाठ में इसका अभाव है। सं० यथोक्त। अनंत ने 'मुद्राराक्षस-पूर्वपीठिका' (मित्रा 1654) तथा 1645 ई० में 'गोवर्धन-सप्तशती' पर एक टीका भी लिखी है (सं० निर्णयसागर प्रेस, बंबई, 1886)।

(2) नागोजी अथवा नागेश भट्ट कृत 'रसमंजरी-प्रकाश'। इसके संबंध में जगन्नाथ के प्रकरण के अंतर्गत देखिए। सं० यथोक्त। इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii, संख्या 1222/2602; भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट कैटलॉग xii, संख्या 223-25, पृ० 258 इत्यादि।

(3) शेष कृष्ण के कनिष्ठ भ्राता तथा शेष नृसिंह के पुत्र, शेष चिंतामणि रचित 'रसमंजरी-परिमल'। मित्रा 3115, खंड ix, पृ० 194, तथा भंडारकर रिपोर्ट 1883-84, पृ० 365 पर इसका उद्धरण दिया गया है। मित्रा की ग्रंथसूची में उल्लिखित हस्तलिपि संवत् 1609 (=1552–53 ई०) में तैयार की गई प्रतीत होती है। किंतु भंडारकर की प्रति में कोई तिथि नहीं दी गई है। भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट कैटलॉग xii, संख्या 217-222 के अंतर्गत इस टीका की छह हस्तलिपियां हैं; इसके अतिरिक्त इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii, संख्या 1226-27, पृ० 357 भी देखिए। चिंतामणि ने 'छंदःप्रकाश' (औफ़्रेक्ट 189a) के अतिरिक्त कई अन्य ग्रंथ लिखे हैं।

(4) गोपाल आचार्य-रचित 'रसमंजरी-विकास' (अथवा, विलास)। इनका

उपनाम वोपदेव है। महाराष्ट्र में जबल-ग्राम निवासी वोपदेव, कौंडिन्य-गोत्रोत्पन्न नृसिंह के पुत्र, गोपाल के पौत्र तथा मेंगनाथ के शिष्य थे। इन्होंने भानुदत्त का नाम भानुकर दिया है। टीका-तिथि संवत् 1484 = 1428 ई० है। देखिए जम्मू कैटलॉग संख्या 1221 (उद्धरण)। श्रीधर भंडारकर का कथन है (द्वितीय भ्रमण की रिपोर्ट, 1904—06, पृ० 36) कि तिथि 1494 है, स्टीन द्वारा दी गई 1484 नहीं (उद्धरण पृ० 273)। किंतु उनके मत में तिथि शक संवत् में है, जिसके अनुसार टीका-तिथि 1572 ई० ठहरती है। एनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना, xvi (1934-35) पृ० 145-47, में पी० के० गोडे का लेख देखिए।

(5) हरिवंश भट्ट द्रविड़ के पुत्र तथा नृसिंह भट्ट के पौत्र, गोपाल भट्ट की 'रसिक-रंजनी' टीका। इन्होंने रुद्र के 'शृंगारतिलक' पर भी टीका लिखी है। इसी नाम के एक टीकाकार ने मम्मट पर भी एक टीका लिखी है। ये दोनों लेखक एक ही व्यक्ति हो सकते हैं। ऊपर देखिए पृ० 89, 148. हस्तलिपियां—औफ्रेक्ट i. 495b, ii. 116a, iii. 106a; भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट हस्तलिपि कैटलॉग xii, संख्या 226-30 (उद्धरण)। अवध कैटलॉग xi.10 में हरिवंश भट्ट की टीका का उल्लेख संभवत: गलती से किया गया है। यह टीका उनके पुत्र ने लिखी है। गोपाल के अन्य ग्रंथों के लिए औफ्रेक्ट i.161 देखिए।

(6) लक्ष्मीधर के पुत्र, विश्वेश्वर की 'समंजसा' अथवा 'व्यंग्यार्थ-कौमुदी' टीका। इसके संबंध में अल्पप्रसिद्ध लेखक अध्याय के अंतर्गत आगे देखिए। हस्तलिपियां—औफ्रेक्ट i. 495b, ii. 116a, iii. 106a.

(7) 'रसमंजरी-आमोद' रंगशायी कृत। रंगशायी का उपनाम गुरुजाल-शायी अथवा गुरुजाल रंगशायी है। कहा जाता है कि उन्होंने वाधूल-गोत्र के महादेशिक तथा अपने चाचा अनंताचार्य से विद्या प्राप्त की थी। उन्हें चिलुकमरी कुल के धर्माचार्य का पुत्र बताया गया है। वे श्रीवैष्णव-मतावलंबी थे। वी० राघवन् के कथनानुसार गुंटूर जिले के पलनद तालुक में गुरुजाल नाम का एक ग्राम है। अतएव, लेखक का वास्तविक नाम रंगशायी था। चिलकमरी ग्राम पूर्व गोदावरी

जिले में है। लेखक के पिता तथा पितामह के नामों के साथ इस नाम के लगाए जाने से सूचित होता है कि चिलकमरी उनका जन्मस्थान था। रंगशायी ने अनेक बार 'परिमल' की आलोचना की है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है 'परिमल' 1553 ई० से पहले ही लिखा गया था, इसके पश्चात् नहीं। रंगशायी ने अप्पय्य के 'कुवलयानंद' तथा भट्टोजी दीक्षित के 'प्रौढ़मनोरमा' नामक ग्रंथों का भी उल्लेख किया है। ये दोनों लेखक 16 वीं शती के अंतिम चरण में हुए हैं। अतएव, रंगशायी को 17 वीं शती के पूर्वार्द्ध में निर्धारित किया जा सकता है। 'आमोद' टीका के अतिरिक्त उन्होंने एक 'श्रृंगार-लहरी' भी लिखी है, जिसके उद्धरण स्वयं उन्होंने दिए हैं। मद्रास कैटलॉग xxii, 12941-42 (उद्धरण)।

(8) त्र्यंबक के पुत्र आनंद शर्मा रचित 'व्यंग्यार्थ दीपिका'। औफ्रेक्ट i. 495a, ii. 116a.

(9) महादेव-रचित 'भानुभाव-प्रकाशिनी'। तंजोर कैटलॉग ix. संख्या 5284, पृ० 4070।

(10) कामराज के पुत्र एवं जीवराज के पिता, ब्रजराज दीक्षित-रचित 'रसिक-रंजन'। नार्थ वेस्टर्न प्रॉविंस कैटलॉग 1877-86, ii. 120। 'रसतरंगिणी' पर जीवराज की टीका के प्रसंग में देखिए। बर्नल ने गलती से मूल लेखक द्वारा रचित टीका के रूप में इसका उल्लेख किया है। मद्रास कैटलॉग xx, काव्य, पृ० 8008 से यह सूचित होता है कि ब्रजराज ने तीन-स्तबक पर्यंत 'रसिकरंजन' नामक एक मूल काव्य लिखा था। इसका विषय नखशिख वर्णन है। क्या यह दोनों ग्रंथ एक ही हैं ?

(11) 'रसमंजरी-स्थूलतात्पर्यार्थ'। इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii, 1230/543, पृ० 358।

रसतरंगिणी

संस्करण—(1) गंगाराम जडि की 'नौका' नामक टीका सहित, पोथी आकार. काशी संस्कृत प्रेस, बनारस 1886। (2) ग्रंथमाला के अंतर्गत,

खंड i, 1887-88। (3) रेनो द्वारा संपादित Rhetorique Sanskrite के अंतर्गत, पैरिस 1884 (मूलपाठ रोमन लिपि में है)।

टीकाएं (1) 'रसतरंगिणी-नौका', गंगाराम जड़ि अथवा जड़ी कृत। मद्रास कैटलॉग xxii. 12930 (उद्धरण) 31। इस टीका की तिथि संवत् 1799=1742-43 ई० है (अनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, xiii, पृ० 186, में पी० के० गोडे का लेख देखिए)। गंगाराम ने 'रसमीमांसा' (लेखक-कृत 'छाया' टीका सहित, काशी संस्कृत प्रेस, बनारस, 1885 से मुद्रित) नामक मूल ग्रंथ भी लिखा है। इस ग्रंथ में लेखक ने अपनी 'नौका' टीका का भी उल्लेख किया है। उनके पिता का नाम नारायण तथा गुरु का नाम नीलकंठ था। उन्होंने तर्कशास्त्र-विषयक दो ग्रंथ लिखे हैं। उनमें से एक का नाम 'तर्कामृत—चषक' है। इसमें उन्होंने अपने पिता तथा गुरु के नाम दिए हैं (देखिए औफ़्रेक्ट i. 140)। उक्त ग्रंथ जगदीश-रचित 'तर्कामृत' की टीका है। गंगाराम जडि के संबंध में जर्नल ऑफ़ यूनिवर्सिटी ऑफ़ बंबई, xi, भाग 2, 1942, पृ० 84-88, के अंतर्गत जी०वी देवस्थली का लेख देखिए।

(2) वेणीदत्त तर्कवागीश भट्टाचार्य रचित 'रसिकरंजनी' टीका। वेणीदत्त के पिता का नाम वीरेश्वर तथा पितामह का नाम लक्ष्मण था। एक अशुद्ध श्लोक में दी गई तिथि के आधार पर एगलिंग (इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, संख्या 1216) का अनुमान है कि इस टीका की तिथि 1553 ई० है। किंतु जी० वी० देवस्थली (इंडिया एंटीक्वेरी, v, 1942, पृ० 195 इत्यदि) का कथन है कि इस टीका को इतना प्राचीन नहीं माना जा सकता। उनके मतानुसार यह ग्रंथ 18वीं शती में लगभग 1708 ई० का है। लेखक का जन्म अहिच्छत्रधर कुल में हुआ था। उनकी वंशावली इस प्रकार दी गई है—महीधर (महीधर काशीपति के एक मांत्रिक तथा 'मंत्रमहोदधि' के लेखक थे)→कल्याण→लक्ष्मण→वीरेश्वर→वेणीदत्त। वेणीदत्त ने काव्य-शास्त्र-विषयक 'अलंकारचंद्रोदय' नामक मूल ग्रंथ भी लिखा है। अल्पप्रसिद्ध लेखक नामक अध्याय में आगे देखिए। हस्तलिपियां—औफ़्रेक्ट i. 494b, ii. 115b, 220a, iii. 106a; इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii; संख्या 1216/1703 a, पृ० 354 (उद्धरण); मद्रास कैटलॉग संख्या 12932।

(3) जीवराज रचित 'रसतरंगिणी-सेतु' अथवा '-सेतुबंध'। जीवराज के पिता का नाम ब्रजराज दीक्षित था (ऊपर 'रसमंजरी' के अंतर्गत ग्रंथ-सूची में देखिए)। हस्तलिपियां—औफ़्रेक्ट i. 494b, ii. 220a, iii. 106a. औफ़्रेक्ट i. 494b संभवतः उक्त टीका ही है। लेखक, सामराज दीक्षित (अन्यत्र देखिए—अल्पप्रसिद्ध लेखक नामक प्रकरण के अंतर्गत) के प्रपौत्र थे। वे 17 वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुए थे। उन्होंने गंगाराम की 'नौका' नामक टीका की निंदा की है (प्रारंभिक श्लोक 9)। अलवर कैटलॉग संख्या 226 में इसका उद्धरण है।

(4) गणेश-कृत 'रसोदधि' टीका। हस्तलिपि की तिथि 1698 ई० है। बूहलर, कैटलॉग गुजरात, काठियावाड़ इत्यादि, 3.54।

(5) महादेव रचित 'रसोदधि'। कीलहॉर्न, सेंट्रल प्रोविंसेज़ कैटलॉग 104।

(6) भीमशाह के पुत्र नेमिशाह की 'साहित्यसुधा' अथवा 'काव्यसुधा' टीका। इन्हें महाराजाधिराज कहा गया है। औफ़्रेक्ट i. 494b, iii. 106a। देखिए, कैटलॉग भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट हस्तलिपि xii, पृ० 234-35. पी० के० गोडे ने इस लेखक को बंबई प्रांत के जौहर वंश के नेमिशाह द्वितीय से अभिन्न कहा है—समय लगभग 1650 ई० (कलकत्ता ओरिएंटल जर्नल i. पृ० 217-20)।

(7) भगवद्भट्ट-रचित 'नूतनतरी'। औफ़्रेक्ट i. 494b.

(8) अयोध्या प्रसाद-रचित टीका। औफ़्रेक्ट i. 494b, इस लेखक ने 'वृत्त-रत्नाकर' पर भी टीका लिखी है।

(9) दिनकर-रचित टीका। औफ़्रेक्ट ii. 115b. संभवतः यह वही टीका है, जिसे ऊपर नेमिशाह-लिखित कहा गया है। नेमिशाह दिनकर के संरक्षक थे तथा नाममात्र के ही लेखक थे।

अलंकार-तिलक

संस्करण—सं० जी० वी० देवस्थली, 'जर्नल ऑफ़ बंबई ब्रांच ऑफ़ रॉयल एशियाटिक सोसायटी', न्यू सीरीज़, xxiii, पृ० 57-82, xxiv-xxv. पृ० 92-

120 (1947-49) के अंतर्गत। बर्नेल 54a तथा भाऊ दाजी की ग्रंथसूची में लेखक का नाम भानुकर दिया गया है। इस ग्रंथ में पांच परिच्छेद (पीटर्सन vi परिशिष्ट, पृ० 29) हैं।

शृंगार दीपिका

औफ्रेक्ट i. 661a (=अवध कैटलॉग iii.12)।

(४)

उपर्युक्त ग्रंथों के पश्चात् इसी प्रकार के अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं, जिनमें रस, विशेषत: शृंगार, मुख्य विषय रहा है। शृंगार-विषयक काव्य-रचना में कवियों के मार्गदर्शनार्थ नियम तथा उदाहरण-संबंधी सामग्री प्रस्तुत करना इन ग्रंथों का उद्देश्य था। संस्कृत साहित्य में शृंगार-साहित्य का बाहुल्य है। अल्पप्रसिद्ध लेखक नामक अध्याय में इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों तथा उनके लेखकों का वर्णन किया जाएगा।

रूप गोस्वामी जैसे कुछ वैष्णव लेखकों ने काव्य अथवा नाट्य-रस को सिद्धांतों से प्रभावित करने का प्रयत्न किया है। विवेचन-सुगमता के लिए ऐसे लेखकों पर सामूहिक रूप में चर्चा की जाएगी।

रूप तथा जीव गोस्वामी

रूप गोस्वामी के पिता का नाम कुमार तथा पितामह का नाम मुकुंद था। उन्होंने 'भक्ति-रसामृत-सिंधु' तथा 'उज्ज्वल-नीलमणि' नामक ग्रंथों के अतिरिक्त अनेक वैष्णव-ग्रंथों की रचना की है। उक्त ग्रंथों में, प्राचीन रसों, विशेषत: शृंगार रस की तरह भक्ति-रस का विश्लेषण तथा व्याख्या की गई है। रूप गोस्वामी, बंगाल के वैष्णव संप्रदाय के सुधारक चैतन्य के समकालीन थे और 15 वीं शती के अंतिम भाग तथा 16 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए थे। उनके कुछ ग्रंथों में दी गई तिथियों से भी उक्त तिथि की पुष्टि होती है। उनकी 'दान-केलि-कौमुदी' तथा 'विदग्ध-माधव' नामक ग्रंथ क्रमश: 1495 तथा 1533 ई० में लिखे गए थे।[1] उनके 'ललित-माधव' 'भक्ति-रसामृत' तथा 'उत्कलिका-वल्लरी' नामक ग्रंथों की तिथि क्रमश: 1537, 1541 तथा 1550 ई० हैं। इस प्रकार रूप का

1. इन लेखकों के विषय में अधिक जानकारी के लिए सुशील कुमार डे का 'वैष्णव फ़ेथ ऐंड मूवमेंट इन बंगाल', कलकत्ता 1942, देखिए।

साहित्य-सृजन काल 1533 तथा 1550 ई० की मध्यावधि में ठहरता है, किंतु इसका आरंभ इससे भी पहले 1495 ई० में हो चुका था।

'उज्ज्वल-नीलमणि' पर 'लोचन-रोचनी' नामक टीका की रचना रूप के भतीजे, जीव गोस्वामी ने की थी। जीव, रूप के कनिष्ठ भ्राता वल्लभ (उपनाम अनुपम) के पुत्र थे।[1] जीव के 'माधव-महोत्सव' की रचना 1555 ई० में हुई थी; 'गोपाल चंपू' की तिथि 1589 तथा 1592 ई० है।

रूप गोस्वामी ने नाट्यशास्त्र विषयक 'नाटक-चंद्रिका' नामक एक ग्रंथ लिखा है। 'विदग्धमाधव' की टीका में तथा 'भागवत' पर 'वैष्णवतोषिणी' नामक टीका में इसके उद्धरण हैं। अपने ग्रंथ के आरंभ में ही रूप गोस्वामी ने कहा है कि मैंने इस ग्रंथ की रचना में भरत-शास्त्र तथा 'रससुधाकर' (शिंग भूपाल-रचित 'रसार्णवसुधाकर) का अवलोकन किया और क्योंकि 'साहित्यदर्पण' में भरत-मत का विरोध किया गया है, इसलिए मैंने सामान्य रूप में उसे स्वीकार नहीं किया है (i.2)। उनके ग्रंथ के आठ अध्यायों में इन विषयों का विवेचन है—(1) नाटक के सामान्य लक्षण, (2) नायक-निरूपण, (3) रूपक के भेद (नांदी, इत्यादि (4) संधि, पताका इत्यादि तथा उनका वर्गीकरण, (5) अर्थोपक्षेपक तथा उसके अंग (विष्कंभक इत्यादि) (6) अंकों तथा दृश्यों का विभाजन, (7) भाषा-विधान, (8) वृत्ति तथा उसका रसानुरूप प्रयोग। यह कोई लघु ग्रंथ नहीं है; अधिकतर उदाहरण वैष्णव ग्रंथों से लिए गए हैं, जो पर्याप्त सूक्ष्म होने के अतिरिक्त अपने 'उज्ज्वल-नीलमणि' में रूप ने उदाहरण-श्लोक मुख्यतः अपने ही काव्य तथा नाटक ग्रंथों, यथा, 'उद्धवदूत', 'विदग्ध-माधव', 'दान-केलि-कौमुदी' इत्यादि से उद्धृत किए हैं।[2] 'रसामृत-शेष' नामक ग्रंथ भी रूप-रचित माना जाता है।

---

1. तिथि के विषय में सुशील कुमार डे की 'पद्यावली' (सं० ढाका विश्वविद्यालय 1934) पृ० li-liii देखिए। रूप के ग्रंथों की सूची पृ० xl, ix-1 पर दी गई है।

2. उनकी ग्रंथ-सूची के लिए, सुशील कुमार डे का 'वैष्णव फ़ेथ ऐंड मूवमेंट, पृ० 113-118, तथा पृ० 126-167 पर 'भक्तिरसामृत' तथा 'उज्ज्वलनीलमणि' का विश्लेषणात्मक अध्ययन भी देखिए। भक्ति-सिद्धांत पर रससिद्धांत के प्रयोग तथा वैष्णव ग्रंथों के अंतर्गत शृंगारिक रहस्यवाद के व्याख्यार्थ भी इस ग्रंथ का अवलोकन किया जा सकता है। वैष्णव ग्रंथों में शारीरिक (लौकिक) वासना की भाषा में धार्मिक (आध्यात्मिक) प्रेम की अभिव्यक्ति की गई हैं। अतएव, इस प्रश्न पर यहां चर्चा नहीं की गई है।

विश्वनाथ चक्रवर्ती

विश्वनाथ चक्रवर्ती ने 'आनंद-चंद्रिका' अथवा 'उज्ज्वल-नीलमणि-किरण' नामक टीकाएँ लिखी हैं। ये 17 वीं शती के अंत तथा 18 वीं शती के आरंभ में हुए हैं, क्योंकि इन्होंने 'भागवत' पर 'सारार्थदर्शिनी' नामक टीका शक 1626 = 1704 ई० में लिखी थी। इनकी 'आनंदचंद्रिका' की तिथि भी शक 1618 = 1696 ई० है। अनेक वैष्णव ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने कविकर्णपूर के 'अलंकार कौस्तुभ' पर एक टीका लिखी है, जिसका विवरण आगे दिया गया है। 'उज्ज्वल-नीलमणि' पर अपनी टीका में इन्होंने नारायण भट्ट के 'रसतरंगिणी' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है (सं० निर्णयसागर प्रेस, पृ० 25)।

कविकर्णपूर

परमानंद-दास सेन कवि कर्णपूर को शिवानंद सेन का कनिष्ठ पुत्र तथा श्रीनाथ का शिष्य कहा गया है। इन्होंने 'अलंकारकौस्तुभ' नामक ग्रंथ लिखा है। ये वैद्य कुल में उत्पन्न हुए थे तथा बंगाल के एक प्रसिद्ध वैष्णव थे। संस्कृत में अनेक वैष्णव ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने चैतन्य का पद्यमय जीवनचरित ('चैतन्य-चरितामृत', सं० राधारमण प्रेस, मुर्शिदाबाद 1884) तथा चैतन्य पर ही एक नाटक भी लिखा है ('चैतन्य-चंद्रोदय', सं० बिब्लियोथिका इंडिका 1854)। इनका 'चैतन्यचंद्रोदय' नामक नाटक शक 1494 अथवा 1501 = 1572 अथवा 1579 ई० में[1] तथा 'गौरांग-गणोद्देश-दीपिका', 1576 ई० में लिखा गया था।[2]

---

1. तिथि इस श्लोक में दी गई है—'शाके चतुर्दशशते रविवाजियुक्ते, गौरो हरिर्धरणिमंडल आविरासीत्। तस्मिन् चतुर्नवति-भाजि तदीयलीला, ग्रंथोऽयमाविरभवत् कतमस्य वक्त्रात्।' इससे सूचित होता है कि गौरहरि अथवा चैतन्य का जन्म शक 1407 में हुआ था; उनके लीलाग्रंथ की रचना शक 1494 अथवा 1501 = 1572 ई० अथवा 1579 ई० में हुई थी। उपर्युक्त ग्रंथ 'वैष्णव फ़ेथ' में तिथि से संबंधित विवेचन देखिए। औफ़्रेक्ट का यह कथन कि यह ग्रंथ 1543 ई०में लिखा गया था, गलत है (किंतु 'इंडियन ड्रामा' पृ० 93, खंड 104 में स्टेन कोनो का विवेचन देखिए)। लेखक तथा उनके ग्रंथों के विषय में सुशीलकुमार डे की 'पद्यावली' (सं० ढाका विश्वविद्यालय, 1934) पृ० 188-90 तथा 'वैष्णव फ़ेथ ऐंड मूवमेंट' पृ० **32-34** का अवलोकन कीजिए।
2. यह तिथि हरप्रसाद शास्त्री ii. पृ० 50 और ALeip 721 के पाठ 'शाके वसु-ग्रहमिते' के अनुसार 1576 या 1577 ई० है, किंतु इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग संख्या 2510 के पाठ 'शाके रसा-रसमिते' के अनुसार 1540 ई० होती है।

इनके पिता शिवानंद चैतन्यदेव के ज्येष्ठ शिष्य थे और चैतन्य के अनुयायियों के लिए बंगाल से पुरी की वार्षिक यात्रा का प्रबंध एवं नेतृत्व किया करते थे। मित्रा ने इस नाटक के अपने संस्करण की भूमिका में कहा है कि कविकर्णपूर का जन्म, चैतन्य की मृत्यु से कुछ वर्ष पूर्व नदिया के अंतर्गत कांचनपल्ली (कांचड़ापाड़ा) नामक स्थान पर 1524 ई० में हुआ था। 'अलंकार-कौस्तुभ' में दस 'किरण' हैं; विषय-विवेचन इस प्रकार है—(1) काव्य-लक्षण, (2) शब्दार्थ, (3) ध्वनि, (4) गुणीभूत-व्यंग्य, (5) रस, भाव तथा उनके भेद, (6) गुण, (7) शब्दालंकार, (8) अर्थालंकार, (9) रीति, (10) दोष[1]। यह रूप गोस्वामी के ग्रंथ से अधिक विशद है तथा इसमें वैष्णव-प्रवृत्ति अधिक नहीं है। उदाहरणार्थ अधिकतर श्लोक कृष्ण-स्तुति-वाचक हैं। विषय-विवेचन 'काव्यप्रकाश' के अनुरूप है। इस ग्रंथ की टीकाओं का विवरण आगे दिया जा रहा है :

कविचंद्र

कविचंद्र ने स्वयं[2] को एक वैद्य तथा कविकर्णपूर और कौशल्या का पुत्र, विद्याविशारद का पौत्र तथा कविभूषण और कविवल्लभ का पिता कहा है। इनका जन्म दीर्घांक-ग्राम के दत्त कुल में हुआ था। शक 1583 (=1661 ई०) में इन्होंने 'चिकित्सा-रत्नावली[3] नामक ग्रंथ लिखा था। उसमें भी उक्त व्यक्तिगत विवरण दिया गया है। इस तिथि के कारण 'पद्यावली[4] नामक काव्यसंग्रह में परिलक्षित कविचंद्र हमारे कविचंद्र नहीं हो सकते। अन्य ग्रंथों के अतिरिक्त उन्होंने 'काव्य-चंद्रिका' नामक ग्रंथ की रचना की है। इसमें 15 'प्रकाश' हैं, तथा इन विषयों का विवेचन किया गया है—(1) काव्य-लक्षण, (2) शब्द-शक्ति, (3) रस, (4) भाव, (5) रस-

1. इनकी विस्तृत विषय-सूची के लिए मित्रा 1662 का अवलोकन कीजिए।
2. इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, iii, पृ० 344-45; ABod, पृ० 211-12.
3. इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, v. पृ० 958-59; औफ़्रेक्ट (ii. 166) ने तिथि का उल्लेख करते हुए प्रश्नसूचक चिह्न लगा दिया है; किंतु तिथि शुद्ध ही प्रतीत होती है
4. सुशीलकुमार डे का सं० ढाका विश्वविद्यालय 1934, संख्या 162, 166, 168, 189, 190, 191 देखिए। इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग vii, पृ० 1534 पृ० 1535 भी देखिए। ABod 212a में कविचंद्र के उद्धृत श्लोकों में लेखक का यथोक्त विवरण दिया गया है तथा ग्रंथ के पुष्पिकालेख में ऐसा कथन है—इति दीर्घांक-ग्राम-निवासी-दत्तकुलोद्भव-वैद्य श्री कविचंद्र-विरचितायाम्, इत्यादि। अतएव, 'चैतन्य-चंद्रोदय' के लेखक परमानंद सेन कविकर्णपूर, कविचंद्र के पिता, कविकर्णपूर से भिन्न हैं।

भेद, (6) रसाभास, (7) काव्यभेद, (8) प्रमाण-निरूपण, (9) रीति, (10) गुण, (11) शब्दालंकार, (12) अर्थालंकार, (13) दोष, (14) कवितोपाय, तथा (15) नाट्य[1] । अन्य लेखकों के अतिरिक्त उन्होंने 'कविकल्पना', 'साहित्य-दर्पण', 'रामचंद्रचंपू', 'रत्नावलीकाव्य', 'शांतिचंद्रिका', 'स्तवावली', पुरुषोत्तम नामक एक लेखक तथा स्वरचित 'सारलहरी' और 'धातु-चंद्रिका' नामक ग्रंथों का उल्लेख किया है । उनकी तिथि 17 वीं शती का उत्तरार्द्ध है ।

ग्रंथ-सूची

संस्करण—(i) जीव गोस्वामी की लोचनरोचनी टीका सहित, मुर्शिदाबाद 1889, 1917, बंगला लिपि में; (ii) जीव गोस्वामी की लोचन-रोचनी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती की 'आनंदचंद्रिका' टीकाओं सहित, सं० केदारनाथ तथा बी० एल० पंशीकर, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1913 (यहां संदर्भ इसी संस्करण से दिए गए हैं) ।

टीकाएं—(i) जीव गोस्वामी कृत 'लोचनरोचनी' । ग्रंथ-सूचियों में भूल से टीकाकार का नाम सनातन गोस्वामी दिया गया है । जैसा पहले कहा गया है, यह टीका मूलपाठ सहित प्रकाशित हुई है । (ii) विश्वनाथ चक्रवर्ती रचित 'आनंदचंद्रिका' (तथा 'आनंदकिरण' सार) । औफ्रेक्ट, i. 62a । उपर्युक्त विवरण के अनुसार यह मूलपाठ के साथ निर्णयसागर प्रेस के संस्करण में प्रकाशित हुई है । मित्रा 580 (तथा कलकत्ता संस्कृत कैटलॉग SCC vii. 5; कथवटे रिपोर्ट 1891-95, 318) में 'आनंदकिरणलेश' नामक टीका संभवतः यही टीका है । (iii) 'आगमचंद्रिका' तथा 'आगमप्रबोधिका;' औफ्रेक्ट i. 62a. (iv) कलकत्ता संस्कृत कैटलॉग SCC-vii. 3 में 'आनंदटीका' नामक एक अज्ञात लेखक की टीका ।

नाटक चंद्रिका

संस्करण—रसबिहारी सांख्यतीर्थ, बँगला अनुवाद सहित (बँगला लिपि में), कासिम-बाजार 1907 । हस्त-लिपियां औफ्रेक्ट i. 284b, ii. 61b, 207b.

---

1. औफ्रेक्ट की बोडलियन हस्तलिपि में उपर्युक्त प्रथम आठ विषयों के नामानुसार केवल आठ 'प्रकाश' हैं, किंतु उपर्युक्त विषय-सूची इंडिया ऑफ़िस हस्तलिपि के अनुसार है । तुलना कीजिए, रेनो, पृ० 377.

अलवर कैटलॉग 1061 तथा मित्रा 3160, मद्रास कैटलॉग xxii. 12900 में इसके उद्धरण हैं।

रसामृतशेष

औफ्रेक्ट ii. 220b. इसका दूसरा नाम 'भक्तिरसामृतशेष' है। सं० हरिदास दास, हरिबोले कुटीर, नवद्वीप 1941, बंगला लिपि में।

अलंकारकौस्तुभ

संस्करण—विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका सहित, मुर्शिदाबाद 1899, बंगला लिपि में; तथा सं० शिवप्रसाद भट्टाचार्य, अज्ञात लेखक टीका तथा शब्दसूची सहित, वरेंद्र रिसर्च सोसायटी: राजशाही, खंड 1 (अध्याय i-v), 1923, देवनागरी लिपि में।

टीकाएं—(i) विश्वनाथ चक्रवर्ती रचित 'सारबोधिनी'। औफ्रेक्ट iii. 7b। मूलपाठ सहित प्रकाशित, यथोक्त। (ii) चक्रवर्ती के शिष्य सार्वभौम की 'टिप्पणी', ढाका विश्वविद्यालय, हस्तलिपि संख्या 2363, 2494, 3471. (iii) राधाचरण कवींद्र चक्रवर्ती के पुत्र वृंदावनचंद्र तर्कालंकार चक्रवर्ती रचित 'अलंकारकौस्तुभ-दीधिति-प्रकाशिका'। इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii, 1195/240, पृ० 344। (iv) 'अलंकारकौस्तुभ-टीका' लोकनाथ चक्रवर्ती रचित। औफ्रेक्ट i. 31b। यह टीका वरेंद्र रिसर्च सोसायटी के उपर्युक्त संस्करण के अंतर्गत एक 'प्राचीन टीका' के रूप में अनामलेखक प्रकाशित हुई है।

काव्यचंद्रिका

हस्तलिपियां—औफ्रेक्ट i. 101a, KBod 499. बोडलियन हस्तलिपि में 16 प्रकाश हैं।

कविशिक्षाविषयक लेखक

अरिसिंह, अमरचंद्र और देवेश्वर

(१)

श्वेतांबर जैन संप्रदाय के अनुयायी, अरिसिंह तथा अमरचंद्र ने 'कविता-रहस्य' अथवा 'काव्यकल्पलता' तथा उसकी टीका 'कविशिक्षावृत्ति' रचकर संस्कृत

काव्य-शास्त्र में ख्याति प्राप्त की है। अरिसिंह ने उक्त ग्रंथ का एक भाग लिखा था तथा अमरचंद्र ने उसे पूरा करने[1] के अतिरिक्त उसकी टीका भी लिखी थी[2]। अरिसिंह के पिता का नाम लावण्यसिंह अथवा लवणसिंह बताया गया है। उन्होंने अपने संरक्षक ढोलका राणा वीरधवल के जैन मंत्री, वस्तुपाल (मृत्यु 1242 ई०) के सम्मान में 'सुकृत-संकीर्तन' (सं० भावनगर 1917) नामक काव्य की रचना की थी। वीरधवल के पुत्र वीसलदेव[3] (1243-66 ई०) के राज्यकाल में भी वे जीवित थे। अमरचंद्र ने अपेक्षाकृत अधिक ग्रंथ लिखे हैं। उन्होंने 'जिनेंद्र-चरित' (इसका दूसरा नाम 'पद्मानंद-काव्य' है)[4], 'बाल-भारत[5] तथा व्याकरण-विषयक 'स्यादिशब्दसमुच्चय' (औफ्रेक्ट i.180)[6] नामक ग्रंथों की रचना की है। 'प्रबंधकोश' (पृ० 61 सं० सिंघी जैन ग्रंथमाला) के जैन लेखक राजशेखर सूरि ने उन्हें 'सूक्तावली' तथा 'कलाकलाप' नामक ग्रंथों का रचयिता भी कहा है। स्वयं 'काव्यकल्पलता' की वृत्ति में अमरचंद्र के तीन ग्रंथों, अर्थात् छंदविषयक 'छंदोरत्नावली' (पृ० 6), 'काव्यकल्पलतापरिमल[7] (पृ० 19, 63), जो कि इसी का संक्षिप्त रूप अथवा पूरक ग्रंथ है, तथा अलंकारविषयक 'अलंकारप्रबोध' (पृ० 117) नामक एक मूल ग्रंथ का उल्लेख है।

अमरचंद्र, वायड-गच्छ के जिनदत्त सूरि[8] के शिष्य थे। ये जिनदत्त लगभग

---

1. किंचिच्च तद्रचितमात्मकृतं च किंचित्।
व्याख्यास्यते त्वरितकाव्यकृतेऽत्र सूत्रम्॥-वृत्ति।
2. ग्रंथ के पुष्पिकालेख में वृत्ति को :कविशिक्षावृत्ति' कहा गया है। अध्याय i के श्लोक 1 तथा 2 के आधार पर,बूहलर का कथन है कि अरिसिंह के मूल श्लोकों को 'कविता रहस्य' तथा अमरचंद्र की वृत्ति को 'काव्यकल्पलता' कहा गया था।
3. बूहलर के Das Sukritasamkirtan des Arisimha', Wien 1889, पृ० 5 इत्यादि और 38; तथा इंडियन एंटीक्वेरी vi. 210-12, में इस प्रश्न पर की गई विस्तृत चर्चा देखिए। कहा जाता है कि अमरचंद्र ने 'सुकृतसंकीर्तन' में एक सर्गांत श्लोक जोड़ दिया था। इस काव्य में 11 अध्याय हैं (सं० जैन आत्मानंद सभा, भावनगर 1917)। इंडियन एंटीक्वेरी, xxxi, पृ० 477-95 देखिए।
4. सं० एच० आर० कपाडिया, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा 1932।
5. सं० काव्यमाला 45, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1894 तथा 'पंडित' सं० iv–vi (1869-72) के अंतर्गत।
6. सं० चंद्रप्रभा प्रेस, बनारस 1915।
7. तुलना कीजिए, इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग 848; इसमें 'काव्यकल्पलतामंजरी' का उल्लेख है।
8. 'बालभारत' का अंतिम श्लोक तथा 'काव्यकल्पलता' का पुष्पिका लेख देखिए।

13 वीं शती के पूर्वार्द्ध में 'विवेकविलास' के लेखक जिनदत्त ही माने गए हैं।[1] अमरचंद्र, अरिसिंह[2] के शिष्य अथवा सहपाठी थे तथा जैन राजशेखर के ग्रंथ[3] में दिए गए विवरण के अनुसार वीरधवल तथा उनके मंत्री वस्तुपाल के समय में तथा वीसलदेव द्वारा अण्हिलवाड़ के सिंहासनारूढ़ होने से पहले तक, अर्थात् 13 वीं शती के द्वितीय चरण अथवा मध्य भाग तक जीवित थे।

'काव्यकल्पलता' में चार प्रतान हैं। विवरण इस प्रकार है—(1) छंदः-सिद्धि; (2) शब्द-सिद्धि; (3) श्लेष-सिद्धि; तथा (4) अर्थ-सिद्धि। पूरे विवरण के लिए देखिए औफ्रेक्ट, बोडलियन कैटलॉग संख्या 497 तथा इंडिया ऑफिस कैटलॉग iii, संख्या 1183/848, पृ० 340-41.

(२)

'कविकल्पलता' के लेखक देवेश्वर की तिथि मोटे तौर से उनके ग्रंथ में प्राप्य सामग्री से ही निश्चित की जा सकती है, क्योंकि इसका विषय-विवेचन तथा इसकी सामान्य ग्रंथ-व्यवस्था अरिसिंह तथा अमरचंद्र के ग्रंथ के अनुसार है। इसके अतिरिक्त यह सिद्ध करना भी कठिन नहीं है कि देवेश्वर ने अपने पूर्ववर्ती लेखकों की अत्यधिक नकल की है। उन्होंने अधिकतर नियमों तथा लक्षणों का शब्दशः उद्धरण देने के अतिरिक्त उदाहरण-श्लोक तक दोहराए हैं। यथा, देवेश्वर पृ० 157-60 (वेण्याः सर्पासि) तथा पृ० 36-7 (रत्नादि यत्र) = अरिसिंह पृ० 135-37 तथा पृ० 30-1; अरिसिंह द्वारा दिया गया 'अद्भुतविधि' का लक्षण पृ० 93 = देवेश्वर पृ० 130. अनुकरण यत्रतत्र न होकर नियमित और व्यवस्थित रूप में है तथा संपूर्ण ग्रंथ में मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने ग्रंथ की रचना करते समय देवेश्वर के सम्मुख 'काव्यकल्पलता' का मूलपाठ विद्यमान था। इस आधार पर उनकी तिथि की एक सीमा, अर्थात् 13 वीं शती का मध्यभाग, प्राप्त होती है।

---

1. देखिए पीटर्सन i. पृ० 58-59; किंतु जिनदत्त के संबंध में पीटर्सन का अनुमान ठीक नहीं है; मेरुतुंग का 'प्रबंधचिंतामणि' पृ० 258 भी देखिए; पीटर्सन iv. पृ० viii; xxxvi तथा परिशिष्ट 115, भंडारकर रिपोट 1883-84, पृ० 6, 156, बूहलर का उपर्युक्त ग्रंथ पृ० 25-48। जिनदत्त सूरि के 'विवेकविलास' की तिथि 1220 ई० दी गई है।

2. राजशेखर सूरि का कथन है कि अमर, अरिसिंह के शिष्य थे। तुलना कीजिए श्रीधर भंडारकर, रिपोर्ट 1904-6, पृ० 23-24, बूहलर, उपर्युक्त ग्रंथ पृ० 5-6, भंडारकर के मत-विरुद्ध। राजशेखर के 'प्रबंधकोश' के एक विवरण में अमरचंद्र का वर्णन है।

3. उनके ग्रंथ की तिथि 1348 ई० दी गई है। अमर के 'बालभारत' के काव्यमाला संस्करण की भूमिका देखिए। राजशेखर सूरि, कोटिक गण (पीटर्सन iv, पृ० cv) के तिलक सूरि के शिष्य थे।

देवेश्वर की तिथि की दूसरी सीमा शार्ङ्गधर की 'पद्धति' के अंतर्गत (545 'देवेश्वरस्य') देवेश्वर-रचित एक श्लोक ('नाग-विशेषे शेषे' पृ० 155) के उद्धरण से प्राप्त होती है। उक्त काव्यसंग्रह लगभग 1363 ई० में संकलित हुआ था। यदि देवेश्वर तथा अरिसिंह के बीच आधी शती का अंतर मान लें तथा देवेश्वर और 'पद्धति' के संकलनकर्ता के बीच भी इतना ही अंतर मान लें तो मोटे तौर से 14 वीं शती के आरंभ में उनकी तिथि निर्धारित की जा सकती है।

देवेश्वर ने अपने पिता का नाम वाग्भट बताया है। वाग्भट मालवा के किसी राजा के महामात्य (?) थे। एक समस्या-श्लोक में हम्मीरमहीमहेंद्र की प्रशंसा की गई है। प्रत्यक्ष रूप में उक्त हम्मीर चौहान-वंशीय राजा था, जिसने लगभग 1283-1301 ई० तक राज्य किया था।[1]

(३)

जयसिंह सिद्धराज (1094-1143 ई०) के राज्यकाल में हुए आचार्य विनयचंद्र (लगभग 1250 ई०) तथा जयमंगल नामक दो जैन लेखकों ने कविशिक्षा-विषयक दो अन्य ग्रंथों की रचना की है। राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' के एक बड़े अंश में ऐसे ही विषयों का प्रतिपादन है। 'छंदोमंजरी' के प्रसिद्ध लेखक, गंगादास ने भी कवि-शिक्षा पर एक ग्रंथ लिखा है। इसमें छंद:-कथन, सामान्य-शब्द, रस, गुण, शब्दालंकार, काव्यदोष तथा समस्यापूरण इत्यादि विविध विषयों का सामान्य विवेचन है (देखिए, इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, xxiv, पृ० 315-16)। जयमंगल तथा राघव-चैतन्य रचित 'कविकल्पलता' पर 'अल्पप्रसिद्ध लेखक' नामक अध्याय में चर्चा की जाएगी। कवियों को काव्य-रचना के संबंध में आवश्यक व्यावहारिक शिक्षा प्रदान करना ही इन सब ग्रंथों का उद्देश्य है। प्रत्यक्ष काव्यशास्त्र से इनका विशेष संबंध नहीं है।

---

1. जर्नल आँफ़ दि रायल एशियाटिक सोसायटी 1922, पृ० 577 इत्यादि में देवेश्वर की तिथि के संबंध में सुशीलकुमार डे का लेख देखिए। वहां पाद-टिप्पणी के अंतर्गत 'शब्द पर लेखक की अपनी टिप्पणी से' शब्दों को छोड़ दीजिए। देवेश्वर ने अपने एक अन्य ग्रंथ 'चंद्रकलाप' (मत्कृत चंद्रकलापेऽमलमतिभिस्तद् बुधैरज्ञेयम्, SgS अध्याय ii, पृ० 225; तथा बिब्लियोथिका इंडिका संस्करण में) नामक ग्रंथ का भी उल्लेख किया है। कलकत्ता संस्करण (1900) में (पृ० 42) 'मत्कृतकविकल्पलतापरिमलत:' पाठांतर तथा बिब्लियोथिका इंडिका संस्करण (पृ० 52) पर 'मत्कृत-कविकल्पलतायाममलमतिभि:' एक अन्य पाठांतर देखा गया है।

ग्रंथ-सूची

'काव्यकल्पलता' तथा इसकी 'कविशिक्षा' नामक वृत्ति

संस्करण—(1) रामशास्त्री, बनारस 1886, (2) वामन शास्त्री, बंबई 1891, (3) सं० जगन्नाथ शास्त्री होशिंग, चौखंबा संस्कृत सीरीज, बनारस 1931 (यहां संदर्भ इसी संस्करण से दिए गए हैं)।

टीका—'मकरंद', लेखक-शुभविजय गणि। ये 'अकबर शाहि' के राज्यकाल में हुए तपा-गच्छ के हीरविजय सूरि के शिष्य थे। औफ्रेक्ट i. 101a, iii. 22b, KBod 497. यह लेखक सलीम अथवा जहांगीर (श्रीमत् सलेम-शाहि-राज्य) के राज्यकाल में हुए हैं तथा विजयदेव सूरि के अनुरोध पर इन्होंने संवत् 1665=1608-9 ई० में अपनी टीका लिखी (पीटर्सन vi, पृ० 25 इत्यादि)।

कविकल्पलता

संस्करण—(1) बेचाराम सार्वभौम का टीका सहित, 'हिंदू कामेंटेटर', खंड 1-3, बनारस 1867-70 के अंतर्गत। (2) रामगोपाल कविरत्न की टीका सहित, 1900 (यहां संदर्भ इसी संस्करण से दिए गए हैं)। (3) शरच्चंद्र शास्त्री की अपनी टीका सहित, बिब्लियोथिका इंडिका, कलकत्ता, 1913 के अंतर्गत। (4) 'प्रत्नक्रम-नंदिनी', बनारस, संख्या 1-31 के अंतर्गत। यह ग्रंथ चार स्तवकों में विभक्त है।

टीकाएं (1) सूर्य कवि की 'बाल-बोधिका'। सूर्य कवि का दूसरा नाम सूर्यदास अथवा सूर्य सूरि है। इनकी वंशावली इस प्रकार दी गई है—पार्थपुर-निवासी, राम (देवगिरि के राजा, राम के अधीन)—विष्णु—नीलकंठ—नागनाथ—नृसिंह—नागनाथ—ज्ञानराज ('सिद्धांत-सुंदर' के लेखक)—सूर्य (वेबर i, पृ० 231)। उन्होंने अनेक विषयों पर ग्रंथ लिखे हैं (उनके ग्रंथों के विषय में देखिए औफ्रेक्ट i. 731b, ii. 175b)। उन्होंने 'लीलावती-टीका' 1542 में, तथा भास्कर के 'बीजगणित' पर 'सूर्यप्रकाश' नामक टीका 1539 ई० में लिखी थी। उन्होंने 'राम-कृष्ण-विलोम-काव्य' (सं० हेबरलिन के काव्यसंग्रह, तथा काव्यमाला गुच्छक xi, पृ० 147 इत्यादि के अंतर्गत) नामक एक श्रमसाधित काव्य की भी रचना की थी। इसका श्लोक-पाठ आगे

अथवा पीछे करने से, क्रमशः राम तथा कृष्ण, दोनों की स्तुति का वाचक हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'नृसिंह-चंपू' नामक ग्रंथ भी लिखा (इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग vii, पृ० 1548, तथा देखिए वही, पृ० 1478)। इसमें पांच उच्छ्वास हैं। उनका जन्म भरद्वाज-गोत्र में हुआ था। निवान-स्थान गोदावरी तथा विदर्भ के संगम के समीप पार्थपुर था। औफ्रेक्ट i. 87a, iii. 19a.

(2) बेचाराम की टीका। संभवतः यह वही टीका है, जो बनारस के संस्करण में छपी है। औफ्रेक्ट ii. 16b; जम्मू हस्तलिपि संख्या 3482 (जम्मू कैटलॉग पृ० 59) में बेचाराम सार्वभौम नाम दिया गया है। अल्पप्रसिद्ध लेखक नामक अध्याय में आगे देखिए।

(3) अज्ञातलेखक—'टीका'; कलकत्ता संस्कृत कॉलेज (SCC) कैटलॉग vii. 8.

(4) पट्टवर्धन मुद्गल के पुत्र महादेव-रचित 'पदार्थ-द्योतनिका' नामक टीका। हरप्रसाद शास्त्री, कैटलॉग एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल हस्तलिपि, vi. हस्तलिपि संख्या 499/10004, 4800/8999, पृ० 393-94.

—०—

अध्याय दस

अलंकारविषयक अल्पप्रसिद्ध लेखक

(१)

पिछले अध्यायों में जिन टीकाकारों तथा अप्रसिद्ध लेखकों का उल्लेख किया जा चुका है, इस अध्याय में उनके अतिरिक्त अलंकार विषयक अल्पप्रसिद्ध लेखकों के वर्णक्रमानुसार नाम, उनके ग्रंथ तथा उनसे संबंधित प्राप्त विवरण दिया जाएगा[1]।

1. अकबर शाह अथवा बड़े साहब

'शृंगार मंजरी'

(सं० वी० राघवन्, हैदराबाद पुरातत्त्व विभाग, 1951)।

लेखक को शाह राजा का पुत्र तथा गोलकुंडा के सुल्तान अबुल हसन कुतब शाह (1672-87 ई०) का गुरु कहा गया है। यह सुल्तान 1687 में औरंगजेब के हाथों बंदी बनाया गया तथा 1704 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

अकबर का जन्म लगभग 1646 में तथा मृत्यु सन् 1672 और 1675 ई० के मध्य हुई। उक्त संस्कृत-ग्रंथ इसके स्वरचित मूल तेलुगु ग्रंथ का अनुवाद कहा जाता है। संभवतः अकबर की आज्ञा से किसी तेलुगु विद्वान् ने तेलुगु में मूल 'शृंगारमंजरी' की रचना की थी तथा किसी संस्कृत विद्वान् ने उसका अनुवाद किया था (वी० राघवन्, भूमिका पृ० 7)। यह ग्रंथ भानुदत्त की 'रसमंजरी' पर आधारित है। इसमें नायक-नायिका के विषय के साथ-साथ मुख्यतः शृंगार रस का विवेचन है। इसमें सब मिलाकर 312 श्लोक हैं।

2. अच्युत शर्मा अथवा अच्युतराय मोडक

'साहित्यसार' तथा उसकी टीका 'सरसामोद'

(सं० लिथो हस्तलिपि आकार, बंबई 1860 ; सं० डब्लू० एल० पंशीकर, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1906)।

---

1. कुछ ग्रंथसूचियों में संदेहास्पद नाम दिए गए हैं। कुछ नाम ऐसे भी हैं, जिनके संबंध में कोई विश्वस्त सूचना उपलब्ध नहीं है। इस सूची में ऐसे नामों को छोड़ दिया गया है। यह ध्यान रखा गया है कि बेकार के नाम न दिए जाएँ।

उक्त ग्रंथ की तिथि शक 1753 अर्थात् सन् 1831 ई० दी गई है। लेखक ने स्वयं को षष्टि नारायण का शिष्य बताया है। इनके पिता का नाम नारायण, माता का नाम अन्नपूर्णा तथा निवास नासिक के निकट था। ऐसा प्रतीत होता है कि ये लेखक जगन्नाथ के भामिनी विलास पर 'प्रणयप्रकाश' नामक टीका के रचयिता अच्युतराय ही हैं, क्योंकि इसमें उन्होंने 'साहित्यसार' को स्वरचित ग्रंथ कहा है (सं० निर्णयसागर प्रेस, 1894 पृ० 1) तथा उसमें 'साहित्यसार' के प्रथम अध्याय के श्लोक 14-15 का उद्धरण दिया है। 'साहित्यसार' में उन्होंने भामिनी विलास' का भी पृ० 7 पर उल्लेख किया है।

'साहित्यसार' में बारह रत्न अथवा अध्याय हैं। लेखक ने अलंकार-शास्त्र रूपी समुद्र के मंथन के फलस्वरूप इन रत्नों को प्राप्त किया है। अध्यायों के तदनुरूप नाम इस प्रकार हैं (1) धन्वंतरि रत्न (काव्य के सामान्य लक्षण), (2) ऐरावत-रत्न (शब्द तथा अर्थ की शक्तियां), (3) इंदिरा-रत्न (व्यंग्य तथा उसके प्रयोग), (4) दक्षिणावर्त कंबु रत्न (रस-ध्वनि सहित ध्वनि के अन्य भेद), (5) अश्ववर रत्न (ध्वनि के अन्य लघु भेद), (6) विष-रत्न(दोष), (7) गुण-रत्न (गुण), (8) कौस्तुभ-रत्न (अर्थालंकार), (9) कामधेनु-रत्न (शब्दालंकार), (10) रंभा-रत्न (नायिका), (11) चंद्र-रत्न (नायक), तथा (12) अमृत-रत्न (उपसंहार)। ग्रंथ के लेखक अर्वाचीन विद्वान् हैं तथा उन्होंने कुछ नवीन विचारों का प्रतिपादन किया है, किंतु वे विचार परंपरा अथवा सिद्धांत की दृष्टि से युक्तियुक्त नहीं हैं। यह लेखक 'भागीरथी-चंपू' (1814 ई० में लिखित) के रचयिता अच्युत से अभिन्न हैं। औफ्रेक्ट (i. 770b.) ने इन्हें नारायण का पुत्र बताया है। यह ग्रंथ सात मनोरथों अथवा अध्यायों में विभक्त है। लेखक और उसके अन्य ग्रंथों के लिए न्यू-कैट० कैट० i पृ० 59-60 देखिए। कुछ ग्रंथों की तिथियाँ दी गई हैं।

3. अजितसेनाचार्य अथवा अजितसेन देव

यतीश्वर

(क) अलंकार चिंतामणि

('काव्यांबुधि' 1893-94के अंतर्गत पद्मराज पंडित द्वारा संपादित, देखिए 'इंडिया ऑफ़िस प्रिंटेड बुक्स, 1938, पृ० 72.

(ख) श्रृंगार मंजरी

(SgS. ii, पृ० 83, 231 उद्धरण; मद्रास कैटलॉग xxii, 12956-57) यह लेखक गंग राजा राचमल्ल के मंत्री चामुंडराय के दिगंबर जैन पुरोहित थे तथा 10 वीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे। ये नागवर्मा नामक एक कन्नड़ कवि के गुरु थे। नागवर्मा, राचमल्ल के कनिष्ठ भ्राता रक्कस गंग के कृपापात्र थे: अजितसेन ने बंगवापुर स्थित शांतीश्वर के मंदिर में अपने ग्रंथों की रचना की इनके ग्रंथ 'अलंकार चिंतामणि' में पाँच अध्याय हैं। अजितसेन ने 'चिंतामणि-प्रकाशिका' नामक ग्रंथ का रचना की, जो यक्षवर्मा कृत चिंतामणि का भाष्य है। यक्षवर्मा का 'चिंतामणि' ग्रंथ शाकटायन के 'शब्दानुशासन' पर टीका है। देखिए राइस, पृ० 308। छंदःशास्त्र विषयक कालिदास की संदिग्ध कृति श्रुतबोध के लेखक अजितसेन, संभवतः एक भिन्न व्यक्ति हैं।

सेनगण कुलोद्भव एक अन्य अजितसेन भी हैं। उन्होंने विट्ठल देवी के पुत्र राय अथवा कामिराय नामक चंद्रवंशीय [1] आलूप जैन राजा की आज्ञा से राजा की शिक्षा के निमित्त 'श्रृंगारमंजरी' की रचना की। इस ग्रंथ में तीन अध्याय तथा 128 श्लोक हैं। विषय विवेचन इस प्रकार है (1) पद-दोष (अर्थात् अलक्षण, श्रुतिकटु, व्याघातार्थ, अनर्थक, अप्रसिद्ध, नेयार्थ, ग्राम्य तथा असम्मत; अंत में वृत्तियों की चर्चा की गई है; (2) वामन-प्रतिपादित दस गुण तथा (3) अर्थालंकार अर्थात् उपमा, रूपक, जाति, भ्रांतिमत्, हेतु, संशय, प्रतिवस्तूपमा, आक्षेप, दृष्टांत तुल्ययोगिता)। अजितसेन नाम के उक्त दोनों लेखकों के संबंध में न्यू कैट० कैट० i. पृ० 69 देखिए। वहाँ इस नाम के सभी ज्ञात लेखकों की चर्चा की गई है।

कुछ हस्तलिपि-सूचियों में 'अलंकार चिंतामणि' के रचयिता के रूप में शांतराज का उल्लेख किया गया है। यह ठीक नहीं है, क्योंकि शांतराज ने केवल हस्तलिपि तैयार की थी, वह ग्रंथ का लेखक नहीं था।

---

1. आलूप राजाओं में मातृतंत्र प्रचलित था। बंगवाडि, आलूपों की एक शाखा की राजधानी थी।

4. अणुरत्नमंडन अथवा रत्नमंडन गणि

(क) जल्प कल्पलता

(वेबर 1722, ii, पृ 278-80 पर विस्तृत उद्धरण दिया गया है।)

यह जैन लेखक तपा-गच्छ[1] के रत्नशेखर सूरि के, जिनकी मृत्यु संवत् 1517 अर्थात् सन् 1460-61 ई०[2] में हुई थी, शिष्य थे। अणुरत्न, इस प्रकार, मोटे तौर से 15वीं शती के मध्य में हुए हैं। इनके ग्रंथ में तीन स्तवक हैं, जिनमें कविशिक्षा विषयक सामग्री है।

(ख) मुग्ध मेधाकर अलंकारवृत्ति

(पीटर्सन vi, पृ० xv, उद्धरण पृ० 31 पर तथा भंडारकर ओरिएटल रिसर्च इंस्टीट्यूट कैटलॉग xii पृ० 222-23)

इस ग्रंथ में काव्यालंकारों तथा तत्संबंधी विषयों का विवेचन है।

5. अनंत

साहित्यकल्पवल्ली (मद्रास Trm. कैट. संख्या 5483)

लेखक का जन्म शठमर्षण गोत्र के अंतर्गत तिरुमल कुल में हुआ। ये तोचमांबा के पुत्र और उड़ीसा के राजा गजपति पुरुषोत्तमदेव के कृपापात्र थे। ग्रंथ का पूरा नाम 'गजपति पुरुषोत्तमदेव साहित्यकल्पवल्ली' है।

6. अनंत अथवा अनंताचार्य

(अनंताल्वन्)

कवि समय कल्लोल

(मद्रास कैटलॉग, xxii, 12808 उद्धरण)

ये शेषाचार्य कुलोत्पन्न अर्वाचीन दक्षिण भारतीय लेखक हैं। इनके पिता का नाम

1. रत्नशेखर के संबंध में भंडारकर रिपोर्ट 1883-84 पृ० 156-7; पीटर्सन iv : पृ० Cii इत्यादि, इंडियन एंटीक्वेरी xi पृ० 256 देखिए।
2. रत्नशेखर सूरि ने अपने 'क्रियारत्नसमुच्चय' नामक ग्रंथ की रचना संवत् 1466=1410 ई० में की। (सं० जैन यशोविजय ग्रंथमाला सीरीज)।

शिंगराचार्य था। ये लोग मैसूर में यादवगिरि अथवा मेलकोट निवासी थे। उक्त ग्रंथ में धर्मसूरि, नरसिंह के 'नांजराज यशोभूषण' तथा 'प्रतापरुद्रीय' के उद्धरण हैं। लेखक कृष्णराज वोदेयर तृतीय के सभारत्न थे। उनकी तिथि 1822-62 ई० है। उन्होंने अपने 'कृष्णराज यशोडिंडिम' का उल्लेख किया है। ये विशिष्टाद्वैतवादी थे तथा इन्होंने अनेक वादों पर ग्रंथ लिखे हैं, जो वेदांत वादावली, बंगलूर 1898 इत्यादि के अंतर्गत प्रकाशित हुए हैं (देखिए न्यू कैट० कैट० i. पृ० 143)

7. अमृतानंद योगी

'अलंकार संग्रह'

(सं० कलकत्ता 1887, अंग्रेजी अनुवाद सहित; सं० अड्यार लाइब्रेरी सीरीज, तथा श्री वेंकटेश्वर ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, तिरुपति। हस्तलिपि मद्रास कैटलॉग xxii, 12794, उद्धरण)

इस ग्रंथ में पांच अध्याय हैं। विषयविवेचन इस प्रकार है (1) वर्णगण (2) शब्दार्थ, (3) रसभाव, (4) नायक भेद, तथा (5) अलंकार। लेखक का कथन है, उसने यह ग्रंथ भक्ति भूमिपति के पुत्र, शैवमतावलंबी मन्वसमुद्र के अनुरोध से लिखा है। आरंभिक श्लोक से प्रतीत होता है कि लेखक गुण, दोष तथा दशरूपक विवेचन का भी इच्छुक था। यह लेखक तांत्रिक अमृतानंदनाथ (पुण्यानंद का शिष्य) से भिन्न है। अमृतानंदनाथ के संबंध में कहा गया है कि उन्होंने कृष्णानंद-रचित 'तंत्रसार' का संशोधन किया था (वेबर, पृ० 361) किंतु 'योगिनी-हृदय-दीपिका' (सं० सरस्वतीभवन टेक्स्ट, संख्या 7) नामक ग्रंथ की भूमिका में कहा गया है कि अमृतानंद द्वारा उक्त संशोधन संभव नहीं, क्योंकि कृष्णानंद उसके बहुत समय पश्चात् हुए हैं।

8. अरुणगिरि कवि

'गोदवर्म यशोभूषण'

(जर्नल ऑफ़ ट्रावंकोर विश्वविद्यालय एम० एस० लाइब्रेरी, खंड 1 के अंतर्गत)

यह ग्रंथ केवल अर्थालंकार विषयक है। लेखक, कौंडिन्यगोत्र के अंतर्गत शेषाद्रि के पुत्र तथा वेंकटाद्रि के शिष्य थे। वे वेदनकुंकुर के राजा गोदवर्म के कृपापात्र थे। समय 1550-1650 ई०।

9. अल्लराज अथवा मल्लराज

(सं० आर० एन० दांडेकर, भारतीय विद्या सीरीज 8, बंबई 1945; ग्रंथ का नाम रसरत्नप्रदीपिका दिया गया है।)

भानुदत्त ने अपनी 'रसतरंगिणी' (अल्लराज v. 57) में तथा मम्मट पर अपनी टीका में (पीटर्सन ii. पृ० 17) रत्नकंठ ने 'रसरत्नदीपिका' नामक एक ग्रंथ का उल्लेख किया है। ऊपर देखिए पृ० 225 पा० टि० 5 भंडारकर रिपोर्ट 1884-87 संख्या 533 में अल्लराज को इस 'रसरत्नप्रदीप' का रचयिता बताया गया है। लेखक, रणथंबोर के चौहान राणा हम्मीर के पुत्र थे। हम्मीर ने कोंकण प्रदेश पर विजय प्राप्त की थी। उसका राज्यकाल 1283-1301 ई० तक रहा है[1]। उक्त ग्रंथ में छह परिच्छेद अथवा अध्याय हैं, जिनमें केवल रस तथा भाव-संबंधी विषयों का गद्यपद्यमय विवेचन किया गया है। इसमें भरत नाट्यशास्त्र तथा 'दशरूपक' के शब्दश: एवं विस्तृत उद्धरण हैं। विषय अथवा विवेचन की दृष्टि से इस ग्रंथ में कुछ भी मौलिकता नहीं है।

10. आशाधर

('कोविदानंद' औफ्रेक्ट ii. 25a)

'त्रिवेणिका' (सं० बटुकनाथ शर्मा तथा जे० एस० होर्शिग, सरस्वती भवन टेक्स्ट्स, बनारस 1925)

यह पहले ही बताया जा चुका है कि आशाधर ने 'कुवलयानंद' पर 'अलंकारदीपिका' नामक टीका लिखी (पृ० 211) थी। इनके पिता का नाम रामजीत तथा गुरु का नाम धरणीधर था। ये लेखक, एक प्राचीनतर जैन लेखक आशाधर, जिनके पिता का नाम सल्लक्षण था और जिन्होंने रुद्रट पर एक टीका लिखी थी (देखिए पृ० 87), से भिन्न हैं। स्वयं लेखक के कथनानुसार 'कोविदानंद' तथा उसकी टीका 'कादंबिना' का एकमात्र विषय शब्दव्यापार-निर्णय है। उनकी (शब्द) 'त्रिवेणिका' में तीन वेणियां हैं, जिनमें तीन वृत्तियों अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना, का ही विवेचन है। इसमें अनेक बार 'कोविदानंद' का उल्लेख किया गया है। क्योंकि आशाधर ने अप्पय्य के ग्रंथ पर टीका की है तथा भट्टोजी की 'सिद्धांत

1. मूल ग्रंथ के संपादक ने अल्लराज की तिथि से संबंधित प्रश्न पर चर्चा की है। नयचंद्र सूरि ने इसी हम्मीर के सम्मानार्थ 1486 में 'हम्मीर महाकाव्य' की रचना की थी (सं० एन० जे० कीर्तने, बंबई, 1879).

कौमुदी' को उद्धृत किया है, इसलिए वे निश्चय ही 17 वीं शती के पूर्वार्द्ध के पश्चात् हुए होंगे। उनकी 'अलंकारदीपिका' की एक हस्तलिपि की तिथि शक 1775 (=1850 ई०) दी गई है तथा उनके 'कोविदानंद' की एक हस्तलिपि शक 1783 (=1861 ई०) में तैयार की गई प्रतीत होती है[1]। संभवतः आशाधर 18 वीं शती के मध्य तथा उत्तरार्द्ध में ही प्रसिद्ध हुए हैं।

11. इंद्रजित

'रसिकप्रिया' (इसमें 16 प्रवाह हैं, पीटर्सन vi, संख्या 379)

भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट हस्तलिपि कैट. xii, पृ० 293 में इस ग्रंथ की एक हस्तलिपि की तिथि संवत् 1729(=1672-73 ई०) दी गई है। भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की दो हस्तलिपियों के पुष्पिका लेख में लेखक को महाराजकुमार कहा गया है। यह ग्रंथ संस्कृत का न होकर एक प्राचीन हिंदी ग्रंथ है। इस लेखक ने 'वैराग्यशतक' पर 'बालबोध' नामक नाटक भी लिखा है (औफ्रेक्ट iii.13b)। बूहलर ने इंद्रजिल(पाठ ऐसा ही है) रचित 'रामचंद्रिका' नामक एक अलंकार विषयक ग्रंथ का उल्लेख किया है (ZDMG, xliii, 543) उसकी तिथि 1712 ई० दी गई है।

12. कच्छपेश्वर दीक्षित

'रामचंद्रयशोभूषण'

(मद्रास कैट. xxii, 12950, उद्धरण)

लेखक के पिता का नाम वासुदेव तथा पितामह का नाम कालहस्तीश्वर था। वे उत्तर आर्काट जिले के अंतर्गत ब्रह्मदेश नामक ग्राम के निवासी थे। उन्होंने 'भागवत' पर भी एक टीका लिखी है। इनके पितामह के नारायण तथा कृष्ण नामक दो अन्य पुत्र थे। इनके पिता मझले पुत्र थे। उक्त ग्रंथ में तीन अध्याय हैं, जिनमें रसों का विवेचन किया गया है, अर्थात् (1) शृंगार, (2) अन्य आठ रस, (3) भावनिरूपण। उदाहरण केम्मराज (संभवतः उत्तर अर्काट जिले में कारवेतनगर का जमींदार) की वीरता के परिचायक हैं।

---

1. आर० जी० भंडारकर, लिस्ट ऑफ़ संस्कृत मैन्युस्क्रिट्स, पार्ट i, बंबई 1893, पृ० 68.

13. कंदालयार्य

'अलंकार शिरोभूषण'

(हुलट्श i, संख्या 371 पर उद्धरण पृ॰ 75; मद्रास Trm. A 168)

लेखक का जन्म कौशिक गोत्र के रायलूरि परिवार में हुआ था। पिता का नाम रामानुजाचार्य तथा पितामह का केशवाचार्य था। लेखक का कथन है कि वे उस वेंकट भूपति की राजसभा में थे, जो सोमभूपति (तथा गिर्यंबा) के पुत्र थे और जिनका जन्म मिटिल्ल गोत्र के मुष्टिपल्ली (दूसरा नाम पाकनाडु) परिवार में नल्लरेड्डि के पुत्ररूप में हुआ था। उनका निवासस्थान तुंगभद्रा तथा कृष्णा नदियों के बीच नडिगड्ड प्रदेश था। किंतु देखिए न्यू कैट i. पृ॰ 297a. ऐसा प्रतीत होता है कि वह विजयनगर के तृतीय[1] राजवंश के वेंकट प्रथम अथवा द्वितीय के सभासद थे और इस प्रकार अप्पय्य दीक्षित के समकालीन थे। उक्त ग्रंथ में दस उल्लास हैं। विषय-सूची इस प्रकार है —(1) उपोद्घात, (2) काव्यलक्षण, (3) ध्वनि प्रकरण, (4) रस प्रकरण, (5) दोष प्रकरण (6) गुण प्रकरण, (7-9) काव्यविशेष-प्रकरण, (10) नायक प्रकरण।

14. कल्याण सुब्रह्मण्य सूरि

'अलंकार कौस्तुभ' टीका सहित

(SgS ii, पृ॰ 80, 220 उद्धरण, मद्रास कैट. xxii, 12790)

पेरूरु अथवा पेरुर परिवार में उत्पन्न इस लेखक के पिता का नाम सुब्रह्मण्य तथा पितामह का नाम गोपाल था। संपूर्ण ग्रंथ में अनंतशयन (ट्रावंकोर) मंदिर के देवता पद्मनाभ तथा ट्रावंकोर के राजा वंजिपाल (बाल) रामवर्म कुलशेखर (1758-98) की स्तुति की गई है। ग्रंथ में अर्थालंकारों का ही विवेचन है। इसमें 'चंद्रालोक' में दिए गए अलंकारों के लक्षण तथा संरक्षक एवं इष्ट देवता की स्तुति में लेखक द्वारा स्वयंरचित उदाहरण हैं।[2]

---

1. हुलट्श वही, पृ० viii, किंतु देखिए न्यू कैट. कैट. i, पृ॰ 297a.
2. इस लेखक के संबंध में के॰ कुंजुन्नि राजा का 'कंट्रीब्यूशन ऑफ़ केरल टु संस्कृत लिटरेचर' (मद्रास 1958), पृ॰ 175 देखिए। सदाशिव दीक्षित के 'बालराम वर्मा-यशोभूषण' के उदाहरण-श्लोकों में बालराम वर्मन की स्तुति की गई है। इस ग्रंथ में यशोभूषण ग्रंथों की तरह, 'वसुलक्ष्मीकल्याण' नामक पांच अंक पर्यंत एक नाटक भी सम्मिलित है। उक्त राजा उसका नायक है। देखिए कैट. त्रिवेंद्रम् पैलेस लाइब्रेरी, vi, 2354.

15. काशी अथवा काशीकर लक्ष्मण कवि

'अलंकार' ग्रंथ' (बर्नल 54a)

संभवतः यह ग्रंथ 17 वीं शती के अंत अथवा 18 वीं शती के आरंभ में लिखा गया था, क्योंकि सभी उदाहरणों से तंजोर के राजा शाहजी (1684-1711 ई०) की प्रशंसा परिलक्षित होती है। ग्रंथ का दूसरा नाम 'शाहराजीय' है। देखिए तंजोर डेस्क्रिप्टिव कैट. ix, संख्या 5304-05 वी० राघवन द्वारा संपादित 'सहेंद्रविलास', तंजोर सरस्वती महल सीरीज़ (पृ० 23) भी देखिए।

16. काशीश्वर मिश्र

'रस मीमांसा'

विश्वेश्वर कविचंद्र (अन्यत्र देखिए) ने अपनी 'चमत्कारचंद्रिका' अध्याय 5 में इस ग्रंथ का इस प्रकार उल्लेख तथा उद्धरण किया है—'तथा चोक्तं समदाचार्यैः काशीश्वरमिश्रैः रसमीमांसायाम्'। विश्वेश्वर का गुरु होने के कारण उनकी तिथि 1300 ई० होनी चाहिए। एनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट xvi (1934-35) पृ० 139-40 में वी० राघवन का लेख देखिए।

17. कुमारगिरि

'वसंतराजीय नाट्यशास्त्र'

काटयवेम ने इस लेखक को अपना संरक्षक कहा है।[1] कुमारस्वामी ने पृ० 178 पर 'वसंतराजीय' के नाम से इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त मल्लिनाथ ने 'शिशुपालवध' ii.8 टीका में तथा 'अमरकोश' की टीका में सर्वानंद ने भी इसका उल्लेख किया है।[2] उक्त उल्लेखों से स्पष्ट रूप से यह सूचित होता है कि नाट्य-शास्त्र विषयक इस पद्यमय ग्रंथ की तिथि 14 वीं शती के पश्चात् नहीं हो सकती। उक्त 'नाट्यशास्त्र' संभवतः आंध्र प्रदेश में लिखा गया था। 'शकुंतला' के दक्षिण पाठ पर काटयवेम द्वारा लिखी गई एक टीका के अंतर्गत भी इसका उल्लेख मिलता है। काटयवेम को राजा वसंतराज कुमारगिरि का मंत्री बताया गया है। इस टीका में वसंतराज के 'नाट्यशास्त्र' (इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग vii, पृ० 157-76)

1. बर्नल 173a.
2. SgS. ii, पृ० 30.

में प्रतिपादित विषय के अनुकरण का प्रयत्न किया गया है। ग्रंथ की एक हस्तलिपि में लेखक की वंशावली दी गई है।[1] उसके अनुसार वसंतराज कुमारगिरि के पिता का नाम अनपोत तथा पितामह का नाम वेम रेड्डि था। काटयवेम के पिता का नाम काटयभूपति तथा माता का नाम वोड्डांबा था। वोड्डांबा, वेम रेड्डि की पुत्री थी। रेड्डि राजा कुमारगिरि, 14 वीं शती के उत्तरार्द्ध में तेलुगु प्रदेश का शासक रहा है।[2] उसके ग्रंथ के लोप हो जाने के कारण ग्रंथ के विषय तथा आकार के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है, किंतु परवर्ती उद्धरणों से प्रतीत होता है कि इसमें मुख्यरूप से नाट्शास्त्र तथा आनुषंगिक रूप से रस का विवेचन किया गया है।

18. कुंभ अथवा कुंभकर्ण, श्रीराजाधिराज

'रस-रत्न-कोश' (औफ्रेक्ट i. 495b)

रेनो ने पृ० 379 पर पैरिस Biblioth Nationale (संख्या 243) के अंतर्गत देवनागरी लिपि में इस ग्रंथ की एक हस्तलिपि का विवरण दिया है। इसमें ग्यारह अध्याय हैं, जिनमें रस तथा तत्संबंधी विषयों का निरूपण किया गया है[3]। (1) 1-4 रस, (2) 5-6 नायक-नायिका, (3) 7 अभिनय, (4) 8-9 अनुभाव तथा व्यभिचारि भाव, (5) 10-11 रस तथा भाव। विवेचन तथा विषय-व्यवस्था 'साहित्य दर्पण' के तीसरे अध्याय तथा भानुदत्त के रस विषयक दो ग्रंथों के अनुसार है। लेखक संभवत: मेवाड़ के राजा कुंभ (1428-1459 ई०) थे। संगीत विषयक कुछ ग्रंथों के अतिरिक्त कुंभ ने जयदेव के 'गीतगोविंद' पर 'रसिकप्रिया' (सं० निर्णयसागर प्रेस, 1917) नामक टीका भी लिखी है। ये 15 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए हैं।

---

1. मद्रास Trm. IA 295 (6) के अंतर्गत, किंतु बर्नेल तथा इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग की हस्तलिपियों में संबंधित श्लोकों का अभाव है।

2. इस रेड्डि राजा के राज्यकाल (14 वीं शती का उत्तरार्द्ध) तथा वंशावली के संबंध में 'पार्वती परिणय' के वाणीविलास प्रेस सं० (1906) की भूमिका, तथा 'पाठक कमेमोरेशन वाल्यूम', पूना 1934 पृ० 401 इत्यादि में एन० वेंकटराव का 'वसंतराजीय' लेख देखिए।

3. 'रसिकप्रिया' के अंतर्गत उद्धरणों से प्रतीत होता है कि यह ग्रंथ लेखक के बृहद् ग्रंथ 'संगीत-राज' का एक अंश था; एनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, xiv. 1933 पृ० 258-62 में वी० राघवन का लेख देखिए। कुंभ ने शार्ङ्गदेव के 'संगीतरत्नाकर' पर भी टीका लिखी थी।

19. कुरविराम

'दशरूपक पद्धति'

इस लेखक से संबंधित सूचना के लिए पृ० 117, 219 देखिए।

20. कृष्ण

'साहित्य तरंगिणी' (ऑफ्रेक्ट ii. 171a)

21. कृष्ण दीक्षित, अथवा कृष्ण यज्वन

'रघुनाथ भूपालीय'

(औफ्रेक्ट i. 446a मद्रास Tram, C 656d; अड्यार ii, 336)

जैसाकि ग्रंथ के शीर्षक से सूचित होता है, यह ग्रंथ लेखक के संरक्षक रघुनाथ के सम्मानार्थ लिखा गया था। इसमें विद्यानाथ के 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' नामक ग्रंथ का अनुकरण किया गया है। लेखक ने अपने ग्रंथ के आरंभ में ही विद्यानाथ का विद्यापति नाम से उल्लेख किया है। रघुनाथ के पिता का नाम अच्युत था। वह तंजोर का प्रसिद्ध नायकवंशी राजा (17वीं शती ई०) था। साहित्य से उसका विशेष अनुराग था। रघुनाथ की प्रेमिका, रुद्रांबा ने बारह अध्याय पर्यंत स्वरचित 'रघुनाथाभ्युदय'[1] में अपने प्रिय राजा का यशोगान किया है। कृष्ण दीक्षित के ग्रंथ में आठ विलास अथवा अध्याय हैं। विषयसूची इस प्रकार है—(1) नायक-गुण, (2) काव्य-स्वरूप, (3) संलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य, (4) असंलक्ष्य-क्रम-व्यंग्य, (5) गुणीभूत व्यंग्य, (6) शब्दालंकार, (7) अर्थालंकार, तथा (8) गुण। कृष्ण यज्वन ने एक 'अलंकारकौमुदी' भी लिखी है। राइस 288 के अंतर्गत सुधींद्र पूज्यपाद के शिष्य सुमतींद्र यति की 'साहित्य साम्राज्य' नामक टीका का उल्लेख है। 'शाहराजीय' इसी प्रकार का एक अन्य ग्रंथ है, जिसमें तंजोर के शाहजी (1648-1710) की प्रशंसा की गई है। इसके लेखक हैं लक्ष्मण कवि, देखिए पृ० 255, संख्या 15।

---

1. सं० टी० आर० चिंतामणि, मद्रास विश्वविद्यालय, 1934।

22. कृष्ण भट्ट अथवा जयकृष्ण मौनी

'वृत्ति दीपिका' (औफ्रेक्ट i. 598 a)

लेखक एक वैयाकरण थे। ग्रंथ में संभवतः शब्द की वृत्तियों से संबंधित व्याकरण तथा अलंकारविषयक चर्चा है। इनके अन्य ग्रंथों के संबंध में औफ्रेक्ट i. 198a देखिए। इन्हें रघुनाथ भट्ट का पुत्र तथा गोबर्धन भट्ट का पौत्र कहा गया है।

23. कृष्ण शर्मा अथवा कृष्णावधूत

(क) 'मंदार-मरंद-चंपू'

(सं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1895 'माधुर्य रंजनी' टीका सहित।

(ख) 'काव्यलक्षण'

(ग) 'सारस्वतालंकार, सूत्र तथा भाष्य

प्रथम चंपू ग्रंथ में वास्तव में छंदःशास्त्र, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र तथा कवि-शिक्षा विषयक विवेचन है। ग्रंथ में ग्यारह बिंदु अथवा अध्याय हैं। विषय-सूची इस प्रकार है—(1) छंद, (2) नायक-वर्णन, (3) श्लेष, (4) यमक तथा चित्र, (5) विभिन्न बंध, (6) प्रहेलिका, (7) नाट्यशास्त्र, (8) नायक-लक्षण (9) भाव तथा रस, (10) अलंकार, ध्वनि-निरूपण इत्यादि तथा (11) दोष, जिसमें शब्दार्थ, वृत्तित्रय इत्यादि, पाक, काव्यभेद, तथा वर्णनात्मक काव्य पर उपयोगी सामग्री भी है। इस ग्रंथ के प्रतिपाद्य विषय में बड़ी अव्यवस्था है। किसी भी निश्चित सिद्धांत का निरूपण नहीं किया गया है। विभिन्न सूत्रग्रंथों से सभी प्रकार का सामग्री का संकलन कर लिया गया है, ताकि कवियों का पूर्ण रूप से मार्गदर्शन हो सके। लेखक को गुहपुरनिवासी तथा वासुदेव योगीश्वर का शिष्य बताया गया है। इन्होंने अपनी तिथि का कोई संकेत नहीं दिया है, किंतु इनकी रचना पर्याप्त अर्वाचीन है। इन्हेंाने अप्पय्य के 'कुवलयानंद' में से अनेक लक्षणों तथा उदाहरणों का उद्धरण दिया है तथा विद्यानाथ के ग्रंथ में से संपूर्ण पाक-विषयक-अध्याय को जैसे का तैसा ले लिया है। इस विशद संग्रह में कुछ ऐसे

अलंकार भी हैं, जिन्हें सबसे पहले अप्पय्य ने उदाहरण देकर प्रस्तुत किया था। लेखक तथा उनके ग्रंथ के संबंध में कर्णाटक यूनिवर्सिटी जर्नल (ह्यूमेनिटीज़) 1957 पृ० 127 इत्यादि देखिए। लेखक की तिथि 1835-1909 ई० दी गई है। इन्होंने मम्मट पर 'रसप्रकाश' नामक टीका भी लिखी है।

24. कृष्ण सुधी

'काव्यकलानिधि'

लेखक के पिता का नाम शिवराम तथा पितामह का नाम उपदेष्टृ पंडित नारायण था। इनका निवासस्थान चेय्यार नदी के तट पर कांची के समीप टोंडइमंडलम् के अंतर्गत उत्तरमेरूर था। इन्होंने 1845 ई० में कोलट्टनाड के राजा रविवर्मा के संरक्षण में 'काव्यकलानिधि' की रचना की थी। ग्रंथ में दस अध्याय हैं तथा उदाहरणों में लेखक ने अपने संरक्षक की प्रशंसा की है।

25. कृष्ण सूरि

अलंकार मीमांसा' (मद्रास कैट० xxii, संख्या 2700)

लेखक के पिता का नाम गोपालाचार्च तथा पितामह का नाम कृष्णाचार्य था। इनका जन्म शांतलूरि परिवार में हुआ था। कृष्ण सूरि नामक एक लेखक ने नृसिंह के पुत्र रामसुधी की 'अलंकारमुक्तावली' पर 'रत्नशोभाकर' नामक टीका लिखी है (सं० तेलुगु लिपि में, विजगापटम 1897-98)।

26. केशवभट्ट

'रसिकसंजीवनी'

(औफ्रेक्ट i, 127b, 497b ब्रिटिश म्यूज़ियम संख्या 424 उद्धरण)

तीन विलास अथवा अध्याय पर्यंत इस ग्रंथ में रस-विषयक विवेचन है। लेखक के पिता का नाम हरिवंश भट्ट था। उन्हें सुधारक वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलेश्वर का वैष्णव शिष्य कहा गया है। इस प्रकार केशव भट्ट संभवतः

---

1. देखिए, के० कुंजुन्नि राजा, 'कंट्रीब्यूशन ऑफ़ केरल टु संस्कृत लिटरेचर' पृ० 62, 244.

16 वीं शती के उत्तरार्द्ध में हुए हैं। यह केशव, श्रीमंगल के पुत्र तथा निंबार्क संप्रदाय के नेता, केशव भट्ट काश्मीरी से भिन्न हैं।[1] प्रथम विलास (केवल 11 श्लोक) में मुख्यतः ग्रंथ की भूमिका ही बांधी गई है, द्वितीय विलास में नायिकाओं तथा तृतीय विलास में मान, प्रणय, रंग तथा शृंगार इत्यादि का निरूपण है।

27. कोल्लूरि राजशेखर

'अलंकार मकरंद' (मद्रास Trm. 2285)

लेखक का जन्म आंध्र-प्रदेश के अंतर्गत पेरूरु के द्रविड़ परिवार में हुआ था। ग्रंथ में 'चमत्कार-चंद्रिका' (विश्वेश्वर कविचंद्र के प्रकरण में आगे देखिए) का उद्धरण है तथा विश्वेश्वर तथा कामाक्षी के पुत्र, अर्णिपिडिवंशोत्पन्न, रामेश्वर नामक एक सरदार की प्रशंसा की गई है। इस सरदार को मुक्तेश्वर (गोदावरी के समीप) का अम्मण महीमहेंद्र कहा गया है। कहा जाता है कि यह राजशेखर, पेशवा माधव राव (1760-72 ई०) का भी कृपापात्र था।

28. गंगाधर मिश्र

'चतुरचिंतामणि'

(हरप्रसाद शास्त्री, कै० एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, पांडुलिपि vi. 4934/3162 पृ० 485-86)

इस ग्रंथ में अठ्ठारह प्रकाश, अथवा अध्याय हैं। नौ रसों, किंतु मुख्यरूप से शृंगाररस, का निरूपण है। लेखक के पिता का नाम मिश्र संदोह बताया गया है।

29. गंगानंद मैथिल

'कर्णभूषण'

(सं० भवदत्त तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1902)

---

1. देखिए, सुशील कुमार डे का 'वैष्णव फ़ेथ ऐंड मूवमेंट,' 1942 पृ० 55 पाद-टिप्पणी।

'काव्य डाकिनी'

(सं० पी० जगन्नाथ होशिंग, सरस्वती भवन टैक्स्ट्स, बनारस 1924)

'कर्णभूषण' एक रस-विषयक ग्रंथ है। इसमें पांच अध्याय हैं। विषय-सूची इस प्रकार है—(1) विभाव, (2) अनुभाव, (3) व्यभिचारि भाव, (4) स्थायिभाव, तथा (5) रस। लेखक के अपने ही कथन के अनुसार यह ग्रंथ बीकानेर के राजा श्रीकर्ण (बीकानेरिपुरी) की आज्ञा से लिखा गया था। श्रीकर्ण वास्तव में लूणकर्णजी ही हैं, जो 1505 से 1526 ई० तक बीकानेर के राजा रहे थे। 'काव्यडाकिनी' में पांच अध्याय (दृष्टियां) हैं, जिनमें काव्य-दोषों का निरूपण किया गया है।

30. गंगाराम जडि अथवा जड़ि

'रसमीमांसा'

(सं० स्वलिखित 'छाया' टीका-सहित, काशी संस्कृत प्रेस, बनारस 1885)

यह 114 श्लोक पर्यंत एक लघु ग्रंथ है, जिसमें काव्य के भावों पर चर्चा की गई है। लेखक तथा भानुदत्त के ग्रंथ पर उनकी टीका के विवरण के लिए ऊपर देखिए पृ० 233-34. ये 18 वीं शती के द्वितीय चरण में हुए हैं।

31. गदाधरभट्ट

'रसिक-जीवन' (औफ्रेक्ट i. 497b, ii. 116b)

इस ग्रंथ में रसों का विवेचन है। अलंकार-विषयक ग्रंथ न होकर यह वास्तव में एक काव्यसंग्रह है। इसके दस प्रबंधों में 122 लेखकों की रचनाओं से उद्धृत किए गए 1562 श्लोक हैं। लेखक के पिता का नाम गौरीपति अथवा गौरीश, माता का नाम उमा तथा पितामह का नाम दामोदर था। रेनो ने (पृ० 379) पैरिस Biblioth. Nationale MS में इस ग्रंथ की हस्तलिपि का विवरण दिया है। क्योंकि इस ग्रंथ में जगन्नाथ के 'रसगंगाधर' का उद्धरण दिया गया है, इसलिए इसकी तिथि 17 वीं शती के मध्यभाग के पश्चात् ही निर्धारित की जा सकती है।[1]

1. एनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट xii 296-99 में पी० के० गोडे, तथा झा कमेमोरेशन वाल्यूम पृ० 359-65 पर हरदत्त शर्मा का लेख देखिए। उद्धृत लेखकों की सूची भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पांडुलिपि कैट० xii, संख्या 247 288-90 पर दी गई है।

32. गिरिधर

'कल्याण-कल्लोल'

(हरप्रसाद शास्त्री, कैट एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल एम एस, vi. 4932 8312, 482)

इस ग्रंथ में शांत-सहित नौ रसों की चर्चा है। इसकी रचना टोडरमल्ल के पुत्र कल्याण दास के संरक्षण में हुई थी।

33. गोकुलनाथ मैथिल

'रस महार्णव'

इस ग्रंथ के लेखक प्रसिद्ध मैथिल स्मार्त तथा नैयायिक, गोकुलनाथ थे। उनके पिता का नाम पीतांबर तथा माता का नाम उमादेवी था। उनका जन्म मंगरौनी के फणदह परिवार में हुआ था। इन्होंने 17 वीं शती के अंत तथा 14 वीं शती के आरंभ में बनारस में निवास किया तथा वहीं रचना-कार्य भी किया। अपने 'पदवाक्य रत्नाकर' में उन्होंने इस ग्रंथ का उल्लेख किया है।[1] संभवतः इसी गोकुलनाथ ने मम्मट पर एक टीका भी लिखी है; ऊपर देखिए पृ० 159 इनका 'अमृतोदय' (रचना तिथि लगभग 1693 ई०) नामक नाटक काव्यमाला, 59 के अंतर्गत, निर्णय सागर प्रेस, बंबई 1897[2] में प्रकाशित हुआ है।

34. गौरनार्य

'लक्षणदीपिका'

'प्रबंधदीपिका' अथवा 'पदार्थदीपिका' (मद्रास कैट xxii, 12951 उद्धरण)

'लक्षणदीपिका' छठे प्रकाश' (अध्याय) पर ही समाप्त हो जाती है। इसमें इन विषयों का निरूपण है—(1) काव्यस्वरूप, (2) परिभाषा, (3) काव्य-

---

1. ABod 246a.
2. देखिए, हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स, I खंड, पृ० 17 इत्यादि।

लक्षणभेद, (4) कलिकोत्कलिकादि (5) उदाहरण-भेद तथा (6) नायिका । एक अन्य ग्रंथ 'पदार्थ-दीपिका' में भी इन्हीं विषयों का विवेचन है । लेखक को आयमप्रभु का पुत्र तथा मितराज का भ्राता कहा गया है । मितराज रेचर्ल वंश के शिगय माधव के मंत्री थे । इस ग्रंथ में (भट्ट गोपाल के ?) 'साहित्यचूडामणि' नामक ग्रंथ का उल्लेख है । इसी कैटलॉग में (संख्या 12952, उद्धरण) चार परिच्छेद पर्यंत एक ग्रंथ को, जिसका नाम भी 'लक्षणदीपिका' (कारिका तथा वृत्ति) है, गौरनार्य रचित कहा गया है; किंतु यहां पर लेखक के पिता का नाम अय्यलु मंत्री बताया गया है । अय्यलु, अमात्य पोतम का भाई था । ये दोनों लेखक एक ही व्यक्ति हो सकते हैं । परवर्ती ग्रंथों में 'अलंकार संग्रह', 'कविकंठपाश', 'चमत्कार चंद्रिका', 'साहित्य चंद्रोदय' तथा 'साहित्य रतनाकर' (धर्मसूरि-कृत ?) के उल्लेख हैं । मद्रास कैट० xii, 12802-03 में 'कविकंठपाश' की लेखक-नाम-रहित दो हस्तलिपियों का उल्लेख है । पिंगल की किसी रचना पर आधारित इस ग्रंथ में कवि के व्यक्तिगत लक्षण, गुण, श्लोक के प्रथमाक्षर का प्रभाव तथा काव्यरचना के प्रारंभ के लिए शुभाशुभ दिन इत्यादि विषयों की चर्चा है ।

35. घासी अथवा घासीराम पंडित

क. रसचंद्र

(इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग iii, 1210/295 पृ० 351-53 उद्धरण)

ख. रसकौमुदी

(मद्रास कैट० xii, 12921, उद्धरण; भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पांडुलिपि कैट० xxii, संख्या 197 पृ० 223)

'रसचंद्र' 1696 ई० में लिखा गया था । 'रसकौमुदी' में नवरस-वर्णन है । पीटर्सन v. 414 में परिलक्षित अज्ञातलेखक की 'रसकौमुदी' वास्तव में यही ग्रंथ है[1] । 'रसचंद्र' में चार अध्याय हैं तथा विषयसूची इस प्रकार है—(1) नायिका-गण-भेद (198 श्लोक), (2) नायक संघ (85 श्लोक), (3) अनुभावादि गण, (150 श्लोक), (4) रस दशक (162 श्लोक) । यह एक प्रश्न है कि गौतम-

1. पी० के० गोडे (कैट० ओरिएंट जर्नल iii, पृ० 35-37) ने इस अज्ञातलेखक ग्रंथ की उचित तिथि अठारहवीं शती का उतरार्द्ध दिया है ।

वंशीय ये घासीराम, तथा श्रीनाथ के पिता घासीराम भट्ट, जिन्होंने चिकित्सा-विषयक 'जगत्प्रकाश' (स्टीन पृ० 193-348) की रचना की है, एक ही व्यक्ति हैं या नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन घासीराम ने ही शृंगारविषयक 'पद्यमुक्तावली' लिखी थी।

36. चंडीदास

'ध्वनि-सिद्धांत ग्रंथ'

लेखक ने मम्मट पर अपनी टीका में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। देखिए पृ० 147।

37. चंद्रचूड़

'प्रस्ताव चिंतामणि' (अलवर 1064, उद्धरण 223, वेबर 826)

इस ग्रंथ में पांच उच्छ्‌वास हैं। विषय काव्यात्मक-वर्णन-कला है। लेखक के पिता का नाम पुरुषोत्तम भट्ट बताया गया है। इस ग्रंथ के अंतर्गत उद्धरणों के लिए वेबर का उक्त ग्रंथ देखिए। इसमें 'चंद्रशेखर-चंपू-प्रबंध' का उल्लेख है, जो रेनो के मतानुसार विश्वनाथ (अन्यत्र देखिए) के पिता चंद्रशेखर की रचना है।

38. चिरंजीव अथवा रामदेव (वामदेव)
चिरंजीव भट्टाचार्य

क. 'काव्यविलास'

(सं० बटुकनाथ शर्मा तथा जगन्नाथ शास्त्री होशिंग, सरस्वती भवन टैक्स्ट्स, बनारस 1925. विषय-विवरण के लिए इंडिया ऑफ़िस कैटलॉग, iii संख्या 1191 पृ० 343-44 देखिए)

ख. 'शृंगार-तटिनी' (औफ्रेक्ट i. 660b.)

लेखक 'गौड प्रदेश में राधापुर के निवासी थे। इनके पिता का नाम राघवेंद्र (इन्हें

आचार्य शतावधान कहा गया है) तथा पितामह का नाम काशीनाथ था। इन्होंने 'विद्वन्मोदतरंगिणी' नामक चंपू[1] तथा छंदःशास्त्र विषयक 'वृत्तरत्नावली' की भी रचना की है। 'काव्यविलास' की इंडिया ऑफ़िस हस्तलिपि तथा उसके प्रकाशित पाठ में दो भंगी अथवा अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः रसों तथा अलंकारों का निरूपण है। ऐसा कहा गया है कि इस ग्रंथ में लक्षण प्राचीन सूत्र-ग्रंथों से लिए गए हैं, किंतु उदाहरण-श्लोक लेखक के अपने हैं। आशाधर की टीका सहित निर्णयसागर प्रेस द्वारा प्रकाशित (सं० वासुदेव एल० पंशीकर, बंबई, 1909) 'कुवलयानंद' में ही इस ग्रंथ का शब्दालंकार संबंधी अंश भूल से सम्मिलित कर लिया गया है[2]। देखिए पृ० 206 पा०टि० 3। इनके 'वृत्तरत्नावली'[3] के उदाहरण-श्लोकों का यशोवंतसिंह, लगभग शक 1653=1731 ई० में बंगाल के बादशाह शुजाउद्दौला के अधीन ढाका में नायब दीवान था। उसका 'काव्यविलास' लगभग 1703 ई० में लिखा गया था। यह लेखक 17 वीं शती के अंतिम चरण तथा 18 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुआ है। उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त चिरंजीव ने 'माधव-चंपू' (स० सत्यव्रत समाश्रमी, 'हिंदू कॉमेंटेटर' iv संख्या 4-7 कलकत्ता 1871 के अंतर्गत), 'कल्पलता' तथा 'शिवस्तोत्र' की भी रचना की है। 'काव्य-विलास' में इन ग्रंथों का उल्लेख है।

39. जयमंगल

('कविशिक्षा' पीटर्सन i, संख्या 120. उद्धरण)

रत्नकंठ ने 'स्तुतिकुसुमांजति' के अध्याय 1 के श्लोक 1 पर अपनी टीका में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। लेखक जैन मतावलंबी थे तथा उन्होंने जयसिंह सिद्धराज (1094-1143 ई०) के राज्यकाल में साहित्य-सृजन किया है; इस प्रकार ये हेमचंद्र के समकालीन ठहरते हैं[4]।

---

1. सं० वेंकटेश्बर प्रेस, बंबई 1912 तथा सं० सत्यव्रत समाश्रमी 'हिंदू कामेंटेटर' iv, संख्या 1-4 1871 में; तथा सं० कालीकृष्ण देव, सीरमपुर प्रेस 1832 (मलपाठ तथा अनुवाद), द्वितीय संस्करण, 1834. ऊपर दी गई वंशावली लेखक द्वारा इस ग्रंथ में दी गई वंशावली के अनुसार है।
2. इस संस्करण के पृ० 97-100 देखिए।
3. हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स, iii संख्या 280.
4. पीटर्सन, 'डिटेल्ड रिपोर्ट', 1883 पृ० 68.

40. जिनवल्लभ सूरि

'प्रश्नोत्तर' (ब्रिटिश म्यूजियम हस्तलिपि संख्या 426, उद्धरण)

इसमें समस्याओं तथा शब्द-पहेलियों का संग्रह है। लेखक (लगभग 1110 ई०) के संबंध में क्लाट पृ० 36 तथा भंडारकर रिपोर्ट 1882-83 पृ० 48 देखिए। लेखक के अन्य ग्रंथों की सूची वहां दी गई है। 'प्रश्नोत्तर' के साथ कमलमंदिर की एक 'अवचूरि' भी है।

41. जीवनाथ

'अलंकारशेखर' (अवध iii. 12)

42. तिरुमल अथवा त्रिमल्ल भट्ट

'अलंकारमंजरी' (उद्धरण ALeip 851)

ये लेखक दक्षिण भारतीय थे। इनके पिता का नाम वल्लभ भट्ट था। लेखक का नाम त्रिमल्ल अथवा तिरुमल तथा कहीं-कहीं अशुद्ध रूप निर्मल भी दिया गया है। यह ग्रंथ बनारस में लिखा गया था। इसमें केवल 43 श्लोक हैं, जिनमें अर्थालंकारों का ही निरूपण किया गया है।[1] बूहलर के कैटलॉग (1871-73) में इस लेखक के नाम से निर्दिष्ट 'अलंकारमंजरी' संभवतः यही ग्रंथ है[2]। ये लेखक वल्लभ के पुत्र, तथा शिघण भट्ट के पौत्र और आयुर्वेद-विषयक कुछ ग्रंथों के लेखक (देखिए, ALeip 1182-85) त्रिमल्ल कवि एक ही व्यक्ति प्रतीत होते हैं। इनकी तिथि[3] 1383-1499 ई० निर्धारित की गई है।

---

1. ग्रंथारंभ में ही निरूपित 38 अलंकारों की सची है; ALeip हस्तलिपि संख्या 851 पृ० 273 में इस अंश का उद्धरण है।

2. न्यू कैटलॉगोस कैटलॉगोरम, पृ० 295 में इनका उल्लेख पृथक्-पृथक् है। अधिकतर हस्तलिपियों में केवल अर्थालंकार ही दिए गए हैं।

3. देखिए कैट. रायल एशियाटिक सोसायटी (बंबई ब्रांच) खंड i, संख्या 126 पृ० 421.

43. त्रिलोचनादित्य

'नाट्या लोचन (औफ्रेक्ट i. 284b. iii 61a)

लेखक का नाम दिए बिना कई अन्य लेखकों ने इस ग्रंथ के विस्तृत उद्धरण दिए हैं, यथा राघवभट्ट ने 'शकुंतला' (सं० निर्णयसागर प्रेस, 1886 पृ० 7.) पर अपनी टीका में; वासुदेव ने 'कर्पूरमंजरी' की टीका में; रंगनाथ ने 'विक्रमोर्वशीय' i. 1 पर अपनी टीका में। क्योंकि दिनकर की तिथि 1385 ई० है[1], इसलिए इस ग्रंथ को 14 वीं शती के मध्य अथवा तीसरे चरण से पहले ही स्थिर किया जा सकता है। ओपर्ट 2695 में लेखक की अपनी 'लोचन व्याख्यांजन' नामक टीका का उल्लेख है।

44. त्र्यंबक

'नाटक दीप' (औफ्रेक्ट 1. 284b.)

औफ्रेक्ट की सूची के उपर्युक्त स्थान पर इस ग्रंथ की तीन टीकाओं का उल्लेख है। डेक्कन कालेज की एक हस्तलिपि में ग्रंथ की एक प्राकृत टीका भी है[2]।

45. दामोदर भट्ट हर्ष

'अलंकार-क्रम-माला' (औफ्रेक्ट i.32a)

46. दीनकृष्ण दास

'रसकल्लोल'

यह ग्रंथ गजपति पुरुषोत्तम के राज्यकाल में लगभग 1480 ई० में लिखा गया था।[3]

---

1. नंदर्गीकर का 'रघु' का संस्करण 1897, भूमिका पृ० 17.
2. डेक्कन कालेज कैटलॉग पृ० 417 संख्या 38. 'नाटकदीप' पर रामकृष्ण पंडित की टीका वास्तव में इस ग्रंथ की टीका नहीं है, बल्कि (औफ्रेक्ट i. 791a के अनुसार) पंचदशी के'अंतर्गत 'नाटकदीप' ,की टीका है। श्यूलर की ग्रंथसूची पृ० 18 तथा हरिचंद्र शास्त्री पृ० 35 संख्या 361 में तदनुसार शुद्धि कर लीजिए।
3. देखिए, इंडियन ऐंटीक्वेरी i, पृ० 215.

47. देवनाथ

'रसिक प्रकाश' (औफ़ क्ट i.497b.)

ये लेखक संभवत: देवनाथ तर्कपंचानन ही हैं, जिन्होंने मम्मट के ग्रंथ पर 'काव्य-कौमुदी' नामक टीका लिखी है (ऊपर देखिए पृ० 160)। भरतमल्लिक (11वीं शती) ने भट्ट x. 73 पर अपनी टीका में एक देवनाथ का उल्लेख किया है।

48. देवशंकर, उपनाम पुरोहित

'अलंकार-मंजूषा'

(सं० एस० एल० कत्रे, सिंधिया ओरिएंटल सीरीज, उज्जैन 1940; देखिए भंडारकर रिपोर्ट 1887-91 पृ० lxiii इत्यादि, उद्धरण)।

लेखक गुजराती ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम नाहनाभाई, जन्मस्थान रानेर (रांदेर, सूरत के निकट), निवासस्थान उरहपत्तन (संभवत: उसी जिले में ओलपाड नामक स्थान) था। ग्रंथ में केवल अलंकारों की ही चर्चा है तथा उदाहरणों में पूना के पेशवा माधव राव प्रथम और नारायण राव, तथा 1761 से 1772 ई० के बीच उनके चाचा रघुनाथ राव, का यशोगान है। अतएव उक्त लेखक 18 वीं शती के तीसरे तथा चौथे चरण में हुए हैं [1]। इस ग्रंथ में केवल अलंकारों पर ही चर्चा की गई है। अलंकारों की संख्या 115 दी गई है तथा उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—अर्थालंकार (102), प्रमाणालंकार (103-6), ध्वन्यालंकार 107-13 तथा मिश्रालंकार (114-115)। कारिकाएँ तथा गद्यमय व्याख्या, सामान्यत: अप्पय्य के 'कुवलयानंद' के तत्संबंधी अंशों पर आधारित है। संपादक की प्रशंसा के बावजूद इस ग्रंथ में कोई विशेषता, अथवा विषय-संबंधी मौलिकता प्रतीत नहीं होती। देवशंकर ने 'अमरु शतक' पर एक टीका की रचना भी की है (मित्रा x, पृ० 81-82)।

49. धर्मदास सूरि

'विदग्ध-मुख-मंडन' वृत्ति सहित

(सं० हेबरलिन, काव्यसंग्रह के अंतर्गत, कलकत्ता 1847. पृ० 269,

1. देखिए एनाल्ज़ आँफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट xv. पृ० 92-96 तथा xxl पृ० 152.54.1।

इत्यादि। तथा 'काव्यकलाप' (प्रकाशक हरिदास हीराचंद) बंबई 1865 के अंतर्गत। भारत में कई बार प्रकाशित, किन्तु निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1914 का सं० अधिक उपयोगी है। हस्तलिपियाँ औफ्रेक्ट i. 572b, ii. 135b, 225a, iii. 121a).

धर्मदास के ग्रंथ में चार परिच्छेद हैं। इनमें प्रहेलिकाशास्त्र, चित्रकाव्य तथा विप्रलंभ का वर्णन है। पाठ के बंबई संस्करण के अंतिम श्लोक (ब्रिटिश म्यूज़ियम हस्तलिपि, बेंडल संख्या 427 में इस श्लोक का अभाव है।)तथा प्रथम श्लोक(इसमें शौद्धोदनि की स्तुति है) तथा जिनप्रभ की टीका के पुष्पिकालेख से लेखक बौद्ध भिक्षु लक्षित होते हैं। जिनप्रभ की ज्ञात तिथि के आधार पर धर्मदास की तिथि की सीमा 13 वीं शती के चौथे चरण से पूर्व ही स्थिर की जा सकती है। कुमारस्वामी (पृ० 122 = iv. 1), ने तथा रायमुकुट ने अमरकोष पर अपनी टीका में इस लेख का नामोल्लेख किया है तथा शार्ङ्गधर की 'पद्धति' में इसका उद्धरण मिलता है। इन उल्लेखों के प्रमाण से इस लेखक की तिथि 14 वीं शती से पूर्व निर्धारित की जा सकती है।

इस ग्रंथ पर कई टीकाएँ लिखी गई हैं।

(1) जिनसिंह सूरि के शिष्य जिनप्रभ सूरि की टीका (वेबर 1728)। इस जैन लेखक की ज्ञात तिथियाँ 1293 तथा 1309 ई० हैं। इनके संबंध में देखिए पीटर्सन iv, पृ० xxxvii तथा क्लाट की शब्द-सूची। इनके गुरु जिनसिंह ने 1275 ई० में लघुखरतरगच्छ की स्थापना की थी। इस प्रकार इस टीकाकार की तिथि 13 वीं शती का अंतिम चरण तथा 14 वीं शती का आरंभिक भाग है। (2) आत्माराम की टीका। औफ्रेक्ट i. 573a. इस लेखक का पूरा नाम स्वात्माराम योगींद्र प्रतीत होता है। (3) ताराचंद्र कायस्थ की 'विद्वान्-मनोरमा'। औफ्रेक्ट i. 573a, ii. 135b, iii 121a. इनके अन्य ग्रंथों के लिए देखिए वही i. 229a. (4' नरहरि भट्ट की 'श्रवणभूषण' नामक टीका, औफ्रेक्ट i. 573a (5) त्रिलोचन की 'सुबोधिनी टीका'। औफ्रेक्ट ii. 135b (उद्धरण, स्टीन पृ० 274)। (6) शिवचंद्र की टीका। औफ्रेक्ट iii. 121a. इनकी तिथि 1613 ई० है। (7) वासुदेव के पुत्र तथा भट्ट देवचंद्र के शिष्य

---

1. रचना तिथि 1431 ई०, देखिए भंडारकर रिपोर्ट 1883-84 पृ० 63।
2. पी० के० गोडे, 'जर्नल ऑफ़ दि यूनिवर्सिटी ऑफ़ बंबई, 1954 पृ० 126-29।

दुर्गादास-रचित 'टीका'। औफ्रेक्ट ii. 135b, iii. 121a उद्धरण, पीटर्सन iv पृ० 36

50. धर्म सुधी अथवा धर्म सूरि

'साहित्यरत्नाकर'

(सं० तिरुवेंकटाचार्य, टीका सहित, मद्रास 1871, सं० नेल्लोर 1885. हस्तलिपियां : ओफ्रेक्ट i. 716a, ii. 171a, iii. 148a, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पांडुलिपि कैट, xxii, संख्या 301 पृ० 366-70 (उद्धरण); मद्रास कैट xxii, 12970-75, हरप्रसाद शास्त्री ii, संख्या 246 उद्धरण)।

इस लेखक के अन्य नाम धर्म सिंह अथवा धर्मपंडित हैं। इनके पिता का नाम पर्वतनाथ तथा माता का नाम अल्लमांबा था। इनका जन्म दर्शनशास्त्र में पारंगत बनारस के एक परिवार में हुआ था। वंशावली इस प्रकार है (हुलट्स i पृ० 70); त्रिपुरारि—धर्म—पर्वतनाथ अथवा पर्वतेश—धर्म सूरि। इन्होंने कुछ काव्यों तथा स्तोत्रों के अतिरिक्त 'नरकध्वंस' अथवा 'नरकासुरविजय' (व्यायोग) तथा 'कंसवध' (नाटक) की भी रचना की थी। अनंतार्य (अन्यत्र देखिए) ने अपने 'कविसमयकल्लोल' नामक ग्रंथ में इस लेखक का उल्लेख किया है। मद्रास कैट. xxii. 12974-75 में इस 'साहित्यरत्नाकर' पर वेंकट सूरि की 'नौका' नामक टीका (सं० मधुसूदन मिश्र, बोमर, 1901) का उल्लेख है। वेंकट सूरि के पिता का नाम लक्ष्मण सूरि, माता का नाम सुरमांबा, पितामह का नाम ब्रह्मांतर वाणि तथा गुरु का नाम वेंकटाचार्य था। मल्लादि लक्षण सूरि की 'मंदर' नामक एक अन्य टीका भी है (सं०मद्रास 1891 तेलुगु लिपि में)। 'साहित्यालंकार' (समय 1425 ई०) में दस 'तरंग' अथवा अध्याय हैं। इसमें काव्यशास्त्र के रूढ़िगत विषयों का विवेचन है। विषयसूची इस प्रकार है : (1) ग्रंथारंभ, (2) वाचक शब्दार्थ वृत्ति, (3) लक्षण शब्दार्थ वृत्ति, (5)[2] गुण, (6) शब्दालंकार, (7) अर्थालंकार, (8) दोष, (9) ध्वनि भेद, (10) रस। अधिकतर उदाहरण-श्लोकों में भगवान् के रूप में राम का यशोगान किया गया है (श्रीमत् रघुतिलक यशोधनसारसुरभित)। धर्मसूरि, विद्यानाथ के पश्चात् ही हुए होंगे; क्योंकि अपने एक श्लोक में उन्होंने नाम न देते हुए विद्यानाथ द्वारा अपने संरक्षक की प्रशंसा की खिल्ली उड़ाई है।

---

1. सं० मद्रास 1885 (तेलुगु लिपि में); हुलट्स 323, औफ्रेक्ट i. 277a.
2. मूल अंग्रेजी ग्रंथ में चार संख्यक विषय का उल्लेख नहीं है।—अनुवादक

(अलंक्रियाः पूर्वतरैः प्रणीताः
प्रयोगिता : काश्चन नायकेन।
कैश्चित्तु कुक्षिंभरिभिर्निबद्धाः
क्षोदीयसा काश्चन नायकेन॥)

मोटे तौर से इनकी तिथि 15 वीं शती का पूर्वार्द्ध है।[1]

51. नरसिंह

'गुणरत्नाकर' (तंजौर कैट ix, संख्या 5207, पृ० 4028)

इस ग्रंथ में एक सौ अलंकारों का विवेचन है। इसकी रचना तंजोर के सरफोजी 1684-1710 ई०) के संरक्षण में हुई थी।

52. नरसिंह अथवा नृसिंह कवि

'नंजराज यशोभूषण' (सं० ई० कृष्णाचार्य, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़, बड़ौदा 1930)

लेखक के पिता का नाम शिवराम सुधि मणि तथा गुरु का नाम योगानंद था। इनका जन्म सनगर नामक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका ग्रंथ नंजराज के नाम पर हा है तथा उदाहरण-श्लोकों में उसका यशोगान है। नंजराज 1739 से 1759 ई० तक मैसूर के राजा चिक्क कृष्णराज का सर्वाधिकरण (राजस्व मंत्री) रहा। इस काल के पश्चात् नंजराज का अधःपतन आरंभ हो गया तथा 1773 में हैदर अली के कारावास में बड़ी बुरी तरह उसकी मृत्यु हुई। अपने संरक्षक की 20 वर्षीय ऐश्वर्यपूर्ण अवधि के अंतर्गत ही संभवतः नरसिंह ने पने ग्रंथ की रचना की थी। यह ग्रंथ सात विलासों अथवा अध्यायों में विभक्त है। इसमें नाट्यशास्त्र का विवेचन है। सात उल्लासों की विषयसूची इस प्रकार है :—(1) नायक, (2) काव्य-स्वरूप, (3) ध्वनि, (4-5) दोष-गुण, (6) नाट्य; इस अध्याय में चंद्रकला-कल्याण नामक एक लघु रूपक भी सम्मिलित है, (7) अलंकार। यह ग्रंथ स्पष्टतः

---

1. धर्म सूरि की तिथि तथा रचनाओं के लिए देखिए ई० एम० वी० राघवाचार्य, 'प्रोसीडिंग्ज़ ऑफ़ ऑल इंडिया ओरिएंटल कान्फ्रेंस, त्रिवेंद्रम 1940, पृ० 503-17 तथा NIA, ii. 1939, पृ० 428-441. ग्रंथ का रचना-काल 1425 ई० दिया गया है।

विद्यानाथ के 'प्रतापरुद्र-यशोभूषण' को आदर्श मानकर लिखा गया है तथा पर्याप्त मात्रा में उसकी विषय-सामग्री का अक्षरश: समावेश कर लिया गया है। लेखक ने विद्यानाथ का अनुकरण करते हुए अध्याय 4 में नाट्यशास्त्र विषयक विवेचन के साथ-साथ 'चंद्रकलाकल्याण' नामक पांच अंक पर्यंत एक आदर्श रूपक का, उदाहरणार्थ, समावेश किया है। लेखक को 'अभिनव कालिदास' नामक एक उच्च उपाधि दी गई थी। उन्होंने स्वयं को अभिनव भवभूति (उपनाम आलूर तिरुमल कवि) का मित्र कहा है।

53. नरसिंहाचार्य अथवा वेंकट नृसिंह कवि

'अलंकारेंदुशेखर' (मद्रास कैट० xxii. 12978 उद्धरण) इसमें केवल प्रथम प्रकरण ही है।)

श्रीशैल कुलोत्पन्न इन दक्षिण भारतीय लेखक के पिता का नाम दासमाचार्य था। इन्होंने चरिष्णुशाल नामक ग्राम के निवासी, कृष्णराय के पौत्र तथा हरिराय के पुत्र, सुब्रह्मण्य सुधी (उपनाम हरिशाब कवींद्र) के संगीतविषयक 'शांतविलास' नामक ग्रंथ पर टीका लिखी थी। लेखक ने उक्त हरिशाब कवींद्र की 'गीतमंजरी' और अपने 'जानकी परिणय' नामक चंपू का उल्लेख किया है तथा धर्मसूरि के 'साहित्य रत्नाकर' का उद्धरण दिया है। अलंकार-विषयक उपर्युक्त ग्रंथ में पांच प्रकरण है : (1) नायक-लक्षण, (2) काव्यस्वरूप, (3) रस-लक्षण, विशेषतया श्रृंगार, (4) दोष और गुण, तथा (5) अलंकार। सामान्यत: यह ग्रंथ भी 'प्रतापरुद्रीय' पर ही आधारित है। इस लेखक ने अलंकार-विषयक ग्रंथ 'लक्षणमालिका की कारिकाओं पर एक टीका लिखी है। उसका नाम भी 'अलंकारेंदुशेखर है।[1]

54. नरहरि सूरि

'रस निरूपण'

कुमारस्वामी ने पृ० 224 पर इस लेखक तथा इसके ग्रंथ का उल्लेख किया है।

---

1. देखिए मद्रास कैट० xxii. 12955 उद्धरण, SgS. i. 98-99, उद्धरण, तथा पृ० 11. वी० राघवन (न्यू कैट कैट i. पृ० 300) का विचार है कि संभवत: "स्वयं नृसिंह ने 'लक्षणमालिका' के भूल पाठ की रचना भी की थी"।

55. नरेंद्रप्रभ सूरि (मलधारि)

'अलंकार महोदधि'

(सं० एल०बी० गांधी, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा 1942)

लेखक, हर्षपुरीयगच्छ के नरचंद्र के शिष्य थे। ग्रंथ की रचना वस्तुपाल (मृत्यु 1242 ई०) के अनुरोध पर की गई थी। उसी के सम्मानार्थ लेखक ने तीन प्रशस्तियों की रचना की थी। उपर्युक्त ग्रंथ में आठ अध्याय हैं, जिनमें निम्नांकित विषयों पर विचार किया गया है—(1) काव्यफलादि, (2) शब्दवैचित्र्य, (3) ध्वनि तथा रस, (4) गुणीभूत व्यंग्य, (5) दोष, (6) गुण, (7) शब्दालंकार तथा (8) अर्थालंकार। इस ग्रंथ की रचनातिथि संवत् 1282 (=1225-26 ई०) बताई गई है।[1]

56. नारायण

'काव्यवृत्ति रत्नावली' (तंजोर कैट ix, संख्या 5173)

इस ग्रंथ में नौ प्रकरण हैं। कवि-स्वरूप, काव्यलक्षण, रसस्वरूप तथा काव्य के सामान्य सिद्धांतों का निरूपण इसके प्रतिपाद्य विषय हैं।

57. नारायण

'शब्दभेदनिरूपण'

इस ग्रंथ में शब्द की तीन वृत्तियों (अभिधा इत्यादि) का निरूपण है। लेखक ने अपने संरक्षक शाह महाराज (=शाहजी, तंजोर नरेश, 1686-1710) का उल्लेख किया है। लक्षण कवि लिखित 'शाहराजीय' (तंजोर कैट ix, संख्या 5304)

---

1. स्वरचित 'संगीत नारायण' (ABod 201) में नारायण ने अपनी 'अलंकार चंद्रिका' का उल्लेख किया है। किंतु यह ग्रंथ अलंकारविषयक न होकर संगीत-अलंकारविषयक है। लेखक का अन्य नाम गजपति वीरनारायणदेव था। उनके पिता का नाम पद्मनाभ तथा गुरु का नाम पुरुषोत्तम मिश्र था। इसी प्रकार, नारायण के पौत्र, तथा मंडन के पुत्र, अनंत-का 'काम-समूह' (रचना तिथि 1457 ई०) वास्तव में कामशास्त्रीय श्लोकों का संग्रह है; देखिए पी० के० गोडे, 'जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च', मद्रास, xiv, पृ० 74-81. राम कृत 'शृंगारालाप' भी एक ऐसा ही ग्रंथ है। इसकी एक हस्तलिपि की तिथि 1556 ई० दी गई है (देखिए पी० के० गोडे, 'जर्नल ऑफ बंबई यूनिवर्सिटी xv (N. S.) पार्ट 2, 1946. पृ० 81-88)

नामक एक और ग्रंथ के उदाहरणों में भी इस राजा की प्रशंसा की गई है। देखिए पृ० 255 संख्या 15. तंजोर कैट ix संख्या 5301-3 में 'शब्दभेदनिरूपण' नाम के कई ग्रंथों का उल्लेख है।

58. पद्मसुंदर

(अकबरशाही) शृंगार दर्पण

(सं० अनूप संस्कृत सीरीज, बीकानेर 1943)

ये जैन लेखक अकबर के राज्यकाल में हुए हैं। इस ग्रंथ में चार उल्लास हैं, किंतु यह रुद्रभट्ट के 'शृंगारतिलक' का ही दूसरा रूप है। उदाहरण-श्लोकों में मुगल सम्राट् अकबर को संबोधित किया गया है। हस्तलिपि (बीकानेर 9356) की तिथि 1569 ई० दी गई है। 'सी० कुन्हन राजा प्रेजेंटेशन वाल्यूम' के अंतर्गत इस ग्रंथ के संबंध में वी० राघवन का लेख देखिए।

59. पुंजराज

क. 'ध्वनि प्रदीप' (औफ्रेक्ट i. 273b)

ख. 'काव्यालंकार शिशुबोध' अथवा

'शिशुप्रबोधालंकार' (औफ्रेक्ट i. 103a)

लेखक के पिता का नाम जीवन (अथवा जीवानंद) तथा माता का नाम मकू था। उनका जन्म मालावार (मालभार) के श्रीमाल परिवार में हुआ था। वंशावली इस प्रकार है: साधु-सदेपाल कोर (कोरा ?)—पाम (पामा ?)—गोवा—यांपच—जीवन। जीवन तथा उनके भाई मेघ, खलचि(खिलजी) शाही गयास के मंत्री थे। जीवन के पुंज तथा सुंज नामक दो पुत्र थे। पुंज राजा बन गए, किंतु राजपाट अपने छोटे भाई को सौंपकर विद्याध्ययन में लग गए तथा उन्होंने कुछ ग्रंथों की रचना की।[1] 'सारस्वत प्रक्रिया' पर पुंजराज की 'सारस्वत टीका' के पुष्पिका-लेख[2] में यह कथन

---

1. पीटर्सन, रिपोर्ट v पृ० xliii, 166-69.
2. पीटर्सन रिपोर्ट v, पृ० 169. औफ्रेक्ट फ्लोरेंटाइन संस्कृत एम० एस० लाइपजिग 1901, 181.

है : 'श्रीमाल कुलश्रीमालभारश्री पुंजराज' इत्यादि। इस कथन पर भंडारकर ने पुंजराज को मालव-मंडल का एक रत्न कहा है।[1] औफ्रेक्ट का विचार है कि पुंज के पिता और चाचा के संरक्षक मालव के गयास शाह खिलजी (लगभग 1475 ई०) थे और पुंजराज 1475 और 1520 ई० के मध्य अथवा 15 वीं शती के अंत और 16 वीं शती के आरंभ में रहे होंगे।

60. पुंडरीक

'नाटक-लक्षण' (औफ्रेक्ट i. 284b संस्कृत कालेज बनारस, हस्तलिपि-सूची 308)

61. पुंडरीक (अथवा पौंडरीक) रामेश्वर

'रस-सिंधु' (औफ्रेक्ट iii. 106a)

इस ग्रंथ में चौदह रत्न अथवा अध्याय हैं। इसमें विश्वनाथ के 'साहित्यदर्पण' तथा भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' के उद्धरण हैं, इसलिए इसकी रचना 1500 ई० के उपरांत ही हुई है। इसकी तिथि के संबंध में 'कलकत्ता ओरिएंटल जर्नल' ii, पृ० 30-32 में पी० के० गोडे का लेख देखिए। उसमें इसकी तिथि 15वीं शती का आरंभ बताई गई है।

62. पुरुषोत्तम सुधींद्र

'कवितावतार' (औफ्रेक्ट i.87a)

दस विहारों अथवा अध्यायों का यह ग्रंथ नागभूपाल को समर्पित किया गया है तथा उदाहरण-श्लोकों में भी उन्हीं का यशोगान है। अपने 'साहित्यदर्पण' में विश्वनाथ ने एक पुरुषोत्तम का उल्लेख किया है। देखिए पृ० 198 पा० टि० 1.

63. प्रकाशवर्ष

'रसार्णवालंकार'

वी० वेंकटराम शर्मा ने इस ग्रंथ का विवरण-सहित पाठ 'इंडियन हिस्टॉरिकल

---

1. रिपोर्ट, 1882-83 पृ० 12. तुलना कीजिए उपर्युक्त ग्रंथ के पृ० 199 पर उद्धृत उनके 'शिशुप्रबोध' का पुष्पिकालेख। पुंजराज की तिथि के संबंध में पी० के० गोडे का 'स्टडीज़ इन इंडियन लिटरेरी क्रिटिसिज्म' i, पृ० 68-72.

क्वार्टरली' v. 1229 पृ० 173 इत्यादि में रोमन लिपि में प्रकाशित किया है। ग्रंथ की मद्रास हस्तलिपि में पाँच अध्याय हैं। पहले चार अध्यायों में दोष, गुण तथा अलंकारों का, तथा अंतिम (अपूर्ण) अध्याय में रसों का विवेचन है। यह संभव है कि संपूर्ण पांचवें अध्याय (जो लुप्त हो चुका है) में उभयालंकारों तथा छठे अध्याय (जो अपूर्ण उपलब्ध हुआ है) के अधिकांश में रसों का विवेचन किया गया हो। इस प्रश्न पर 'इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली' v. पृ० 770-780 पर सुशीलकुमार डे तथा, 'जर्नल ऑफ़ ओरिएंटल रिसर्च' मद्रास, viii, 1934 पृ० 267-276 पर वी० राघवन के लेख देखिए। क्योंकि इस ग्रंथ में भोज के ग्रंथ के विस्तृत उद्धरण हैं, इसलिए इसकी रचना भोज के पश्चात् ही हुई है। इस ग्रंथ के संबंध में 'जर्नल ऑफ़ ओरिएंटल इंस्टीट्यूट', बड़ौदा, vii. 1957 संख्या 1-2 तथा ix. 1959 पृ० 5-16 पर एम० पी० भट्टाचार्य का लेख भी देखिए।

64. प्रभाकर भट्ट

क. रस-प्रदीप

सं० नारायण शास्त्री खिस्ते, सरस्वती भवन टेक्स्ट, बनारस 1925 हस्तलिपियां वेबर 823; संस्कृत कालेज कलकत्ता कैटलॉग vii. 42. उद्धरण दोनों में हैं)

ख. अलंकाररहस्य

(लेखक ने स्वरचित 'रसप्रदीप', पृ० 8, 9, 10, 13, 15, 20, 37, 38, 39, 40 तथा 51 पर इसका उल्लेख किया है।)

लेखक के पिता का नाम माधव भट्ट तथा पितामह का नाम रामेश्वर भट्ट था। रघुनाथ तथा विश्वनाथ नामक इनके बड़े भाई थे। विश्वनाथ को इन्होंने अपना 'विद्या गुरु' कहा है। लेखक ने उन्नीस वर्ष की अवस्था में (संवत् 1640=1583 ई० में), 'रसप्रदीप' की रचना की थी (वेबर, उपर्युक्त स्थल)। अतएव प्रभाकर का जन्म 1564 ई० में हुआ था। उन्होंने 1629 ई० में अपने 'लघु सप्तशतिक

1. संस्कृत कॉलेज कलकत्ता कैटलॉग vii संख्या 42 में संवत् 1170=1114 ई० तिथि दी गई है, किंतु ऐसा गलती से लिखा गया है।

स्तोत्र' की रचना की थी। इसमें 'देवी माहात्म्य' का सार दिया गया है। अतएव, ये 16 वीं शती के अंतिम चरण तथा 17 वीं शती के प्रथम चरण में हुए हैं। 'रस-प्रदीप' में तीन आलोक अथवा अध्याय हैं, जिनमें (1) काव्यलक्षण, (2) रसविवेक, तथा (3) व्यंजन निरूपण आदि विषयों का विवेचन किया गया है। प्रभाकर भट्ट ने श्रीहर्ष मिश्र, मिश्र रुचिनाथ, धर्मदत्त, लोचनकार (अभिनवगुप्त), प्रदीपकृत तथा साहित्यदर्पणकार का उल्लेख किया है। संभवतः यह धर्मदत्त वही हैं, जिन्हें विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में उद्धृत किया है। अनंत ने 'आर्या सप्तशती' पर अपनी टीका में अलंकार-विषयक लेखक के नाते रुचिनाथ मिश्र का उल्लेख किया है। प्रभाकर के अन्य ग्रंथों के संबंध में देखिए औफ्रेक्ट i. 353b. 'रस-प्रदीप' संबंधी उल्लेखों के लिए इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली viii. 1932b पृ० 358 पर सुशीलकुमार डे का लेख देखिए।

65. बलदेव

'शृंगार-हार'

(कीलहार्न, रिपोर्ट, 1880-81 पृ० 71=भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, MS कैटलॉग संख्या xiii 295 पृ० 351)

लेखक के पिता का नाम केशव बताया गया है। हस्तलिपि की तिथि संवत् 1845 (=1789-90 ई०) दी गई है।

66. बलदेव विद्याभूषण

'काव्य-कौस्तुभ'

(सं० हरिदास दास, नवद्वीप बंगाल, 1957)

इस ग्रंथ में नौ प्रभात अथवा अध्याय हैं, जिनमें क्रमशः (1) काव्यफलादि, (2) शब्दार्थ वृत्ति, (3) रस, (4) गुण, (5) रीति, (6) दोष, (7) ध्वनिभेद, (8) मध्यम काव्य तथा (9) शब्दार्थालंकार प्रभृति विषयों का विवेचन है। मम्मट के टीकाकारों के संदर्भ में ऊपर देखिए पृ० 158.

67. बालकृष्ण भट्ट

'अलंकार सार' (औफ्रेक्ट० i. 32b)

इस ग्रंथ में दस अध्याय हैं। बालकृष्ण भट्ट की उपाधि तिघर थी। वे वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी, गोवर्धन भट्ट के पुत्र थे। जयरथ ने इसी नाम के एक ग्रंथ का उल्लेख किया है (पृ० 88, 97, 171, 172, 184); तथा बूहलर कैटलॉग 1871-73 में भी इसका उल्लेख है। 'अलंकारसार' में 'कुवलयानंद' तथा 'चित्र-मीमांसा' के भी उद्धरण हैं। ग्रंथ की डेक्कन कॉलेज हस्तलिपि (संख्या 23, 1881-82) संवत् 1758 (=1702 ई०) में तैयार की गई प्रतीत होती है। अतएव इसकी रचना-तिथि 1625 तथा 1700 ई० के बीच निर्धारित की जा सकती है।

ग्रंथ के दस उल्लासों अथवा अध्यायों में क्रमशः इन विषयों का निरूपण है— (1) काव्य प्रयोजन, कारण, स्वरूप, (2) शब्दनिर्णय, (3) अर्थनिर्णय, (4) ध्वनिनिर्णय, (5) गुणीभूतव्यंग्यनिर्णय, (6) शब्दार्थनिर्णय, (7) दोष, (8) गुण, (9) शब्दालंकार, (10) अर्थालंकार।

68. भाव मिश्र अथवा मिश्र भव

'श्रृंगार-सरसी'

(संस्कृत कॉलेज कलकत्ता कैटलॉग vii 43, उद्धरण)

श्रृंगार-विषयक इस ग्रंथ के रचयिता के पिता का नाम मिश्र भटक बताया गया है।

69. भाष्कराचार्य (अथवा भास्कराचार्य)

'साहित्य कल्लोलिनी'

(मद्रास कैट xxii, 12964, उद्धरण)

लेखक को श्रीवत्सगोत्र के वरदगुरु का वंशज कहा गया है। वे भूतपुरी अथवा श्रीपेरुंबुद्दूर के निवासी थे। इस ग्रंथ में कई प्रसिद्ध अलंकारविषयक ग्रंथों, यथा मम्मट, भावप्रकाश, इत्यादि से अनेक श्लोकों का उद्धरण दिया गया है। क्योंकि लेखक ने शिगभूपाल के 'रसार्णव सुधाकर' के प्रति आभार प्रकट किया है,

अतएव उनकी तिथि 14 वीं शती के मध्यभाग के पश्चात् ही निर्धारित की जानी चाहिए। ग्रंथ में प्रबंधभेद, नाट्य-नृत्त-नृत्य, वस्तु, संधि, नायकलक्षण, रूपक, उपरूपक तथा काव्यलक्षण प्रभृति विषयों की चर्चा की गई है।

70. भीमसेन दीक्षित

क. 'अलंकार सारोद्धार'

ख. 'अलंकार-सार-स्थिति' अथवा

'कुवलयानंद खंडन'

अप्पय्य दीक्षित के संदर्भ में, ऊपर देखिए पृ० 208

लेखक ने मम्मट पर 'सुधासागर' नामक अपनी टीका में इन दोनों ग्रंथों का उल्लेख किया है (देखिए पृ० 157) इनकी तिथि 1650-1725 ई० के बीच है।

71. भीमेश्वर भट्ट

'रससर्वस्व' (बर्नल 57a)

लेखक के पिता का नाम रंगभट्ट था।

72. भूदेव शुक्ल

'रस-विलास'

(सं० प्रेमलता शर्मा, पूना 1952)

लेखक गुजरात प्रदेश के अंतर्गत जंबूसर निवासी शुकदेव के पुत्र थे तथा 1660 तथा 1720 ई० के बीच हुए थे।[1]

1. एनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च [इंस्टीट्यूट xiii, पृ० 183 में पी० के० गोडे का मत है कि 'रसविलास' की रचना लगभग 1550 ई० में हुई थी। क्योंकि 'रस-विलास' ने 'रसगंगाधर' में दिए गए काव्य के लक्षण को उद्धृत किया है, अतएव यह 1660 ई० से पहले की रचना नहीं हो सकती।

भूदेव के अन्य ग्रंथों के संबंध में औफ्रेक्ट i. 414b तथा उपर्युक्त संस्करण की भूमिका पृ० xii देखिए। इस ग्रंथ की इंडिया ऑफिस हस्तलिपि (संख्या 1209/2526b) में केवल तीन 'स्तबक' तथा चौथे 'स्तबक' का प्रथमांश ही है। यह वे भूदेव शुक्ल नहीं हैं, जिन्होंने पांच अंकों का 'धर्मविजय' नामक नाटक लिखा है।[1]

'रसविलास' में सात स्तबक अथवा अध्याय हैं, जिनमें इन विषयों पर अध्यायानुसार विवेचन है (1-2) रस, शांत सहित, नौ, (3) भाव, (4) गुण, (5-6) दोष, (7) वृत्ति (अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना)। इस ग्रंथ के संपादक का यह कथन यथार्थ ही है कि रस इत्यादि विषयक यह ग्रंथ साधारण कोटि का ही है। मुख्यतः इसमें मम्मट तथा जगन्नाथ की सामग्री का उपयोग किया गया है। कुछ भी मौलिकता नहीं है।

73. मानसिंह

'साहित्य-सार' (औफ्रेक्ट i. 716a)

74. मोहनदास

'रसोदधि'

लेखक ने 'महानाटक' (ABod 143 a) पर अपनी टीका में इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। लेखक के पिता का नाम कमलापति था।

75. यज्ञनारायण दीक्षित

'अलंकार रत्नाकर' (तंजोर कैट ix, संख्या 5131)

'साहित्य रत्नाकर' (सं० टी० आर० चिंतामणि, मद्रास 1932)

लेखक तंजोर के राजा रघुनाथ नायक के मंत्री गोविंद दीक्षित के पुत्र थे। रघुनाथ ने 1614 से 1633 की मध्यावधि में राज्य किया है। 'अलंकाररत्नाकर' के

---

1. सं० ग्रंथमाला iii, 1889 तथा सं० नारायण शास्त्री खिस्ते, सरस्वती भवन टैक्स्ट्स, बनारस 1930, देखिए मित्रा i, पृ० 37 वेबर 1561, इंडिया ऑफिस कैटलॉग vii, पृ० 1596.

प्राय: सभी श्लोकों में रघुनाथ का ही यशोगान है। 'साहित्यरत्नाकर' वास्तव में सोलह अध्याय पर्यंत एक काव्य है, जिसमें इसी राजा की कीर्ति का वर्णन है। ये दोनों ग्रंथ लेखक के 'रघुनाथाभ्युदय[1] नामक एक अन्य ग्रंथ के पूरक हैं। के० कुंजुन्नी राजा ('कंट्रीब्यूशन ऑफ़ केरल', पृ० 134 ने इस लेखक को अधोवर्णित यज्ञेश्वर दीक्षित से अभिन्न मानने में गलती की है।

76. यज्ञेश्वर दीक्षित

'अलंकार राघव' (तंजोर कैट 5132-33)

'अलंकार सूर्योदय' (तंजोर कैट 5140-41)

लेखक के पिता का नाम चेरुकूरि कोंडुभट्ट तथा भाई का नाम तिरुमल यज्वन् था[2]। 'अलंकार राघव' में शिंगभूपाल के 'रसार्णवसुधाकर' तथा (वीरनारायण कृत, अन्यत्र देखिए,) 'साहित्यचिंतामणि' के उद्धरण हैं, अतएव लेखक 15 वीं शती के पश्चात् (1600 ई० में) हुए हैं। जैसा कि ग्रंथ के शीर्षक से ही प्रतीत होता है, उदाहरण-श्लोकों में राम को संबोधित किया गया है। यह लेखक मम्मट के टीकाकार, पूर्वोक्त यज्ञेश्वर से अभिन्न हो सकते हैं (देखिए पृ० 161)। संभवत: लक्ष्मीधर (अन्यत्र देखिए) से भी इनका संबंध हो; वे भी चेरुकूरि के निवासी थे।

77. यशस्वी कवि

'साहित्य कौतूहल' तथा उसकी

'उज्ज्वलपदा' नामक टीका

(औफ्रेक्ट i. 715b, ii 171 a)

लेखक को गोपाल तथा काशी का पुत्र बताया गया है। इस ग्रंथ की इंडिया-ऑफ़िस-हस्तलिपि (कैट iii, पृ० 337) 1730 ई० में तैयार की गई थी।

---

1. तंजोर ix, 1933 संख्या 5132 में भी ऐसा ही उल्लेख है। 'अलंकाररत्नाकर' में, जिसे यज्ञनारायण (सं० 5131) का लिखा हुआ कहा गया है, कवि के संरक्षक रघुनाथ नायक का यशोगान है। यज्ञेश्वर तथा यज्ञनारायण भिन्न-भिन्न लेखक प्रतीत होते हैं।
2. देखिए SgS. ii पृ० 65.

इसमें केवल प्रथम अध्याय ही है, जिसमें प्रहेलिका तथा चित्रकाव्यविषयक विवेचन है।

तंजोर की महारानी (1675-1712 ई० के बीच) दीपाबाई के कृपा-भाजन रघुनाथ ने चित्रकाव्य-विषयक एक अन्य ग्रथ 'साहित्य कुतूहल' भी लिखा है (देखिए 'जर्नल बंबई यूनिवर्सिटी' x पृ० 132 इत्यादि)।

78. रत्नभूषण

'काव्यकौमुदी' (हरप्रसाद शास्त्री, संख्या ii. 35, उद्धरण)

पूर्वी बंगाल के वैद्य पंडित रचित इस अति अर्वाचीन ग्रंथ में दस परिच्छेद हैं —(1) नाम, (2) लिंगादि, (3) धातु प्रत्यय, (4) काव्यलक्षण, (5) ध्वनि, (6) गुणीभूत व्यंग्य, (7) गुण, (8-9) अलंकार (10) दोष इत्यादि विषयों का विवेचन है। प्रथम तीन परिच्छेदों में व्याकरण-विषयक चर्चा है। शक 1781 (=1859 ई०) संभवतः इसकी रचना तिथि है (हरप्रसाद शास्त्री, वही, भूमिका पृ० viii)।

79. रघुनाथ मनोहर

'कवि-कौस्तुभ'

पी० के० गोडे ('पूना औरिएंटलिस्ट', vii, 1943, पृ०. 157-64) ने इस ग्रंथ की तिथि 1675 से 1700 ई० के बीच निर्धारित की है।

80. राघव चैतन्य

'कविकल्पलता' (औफ्रेक्ट i. 87 a)

'पद्धति' में संभवतः इसी कवि का राघवचैतन्य श्रीचरण के नाम से उल्लेख है (71, '68, 877, 1557-8)। 'श्रीचरण' उपाधि से सूचित होता है कि लेखक एक प्रसिद्ध वैष्णव थे। संस्कृत कालेज कलकत्ता कैट० vii संख्या 7 की हस्तलिपि के पुष्पिकालेख (तुलना कीजिए, ABod 211b) में 'माघ चैतन्य विरचित कविकल्पलतायाः' इत्यादि पाठ है। संभवतः, यह राघवचैतन्य नाम का

विकृत अथवा अशुद्ध रूप हो सकता है। राघवचैतन्य तथा स्वयं देवेश्वर के ग्रंथ में गतलफहमी के कारण ऐसा हो सकता है।

81. राजचूड़ामणि दीक्षित

क. 'काव्यदर्पण'

(सं० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री, वाणीविलास प्रेस, श्रीरंगम् (तिथि रहित)। हस्तलिपि मद्रास कैट xxii, 12809 रवि पंडित की टीका सहित।)

ख. 'अलंकार चूड़ामणि'

लेखक के 'काव्यदर्पण' (मद्रास कैट xxii, 12809) अथवा 'अलंकार-शिरोमणि' (हुलट्श, उद्धरण पृ० 86) में इसका उल्लेख है।

राजचूड़ामणि दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध लेखक हैं। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की है।[1] इनके पिता का नाम सत्यमंगल रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित, माता का नाम कामाक्षी था। केशव दीक्षित तथा शेषाद्रिशेखर दीक्षित उनके दो सौतेले भाई थे। इनके दादा का नाम भावस्वामी, दादी का नाम लक्ष्मी, परदादा का नाम कृष्णभट्ट दीक्षित था। इनके अपने भ्राता, अर्धनारीश्वर दीक्षित, उनके गुरु थे (हुलट्श ii पृ० x)। मीमांसा-विषयक इनके ग्रंथ 'तंत्रशिखामणि' की रचना-तिथि 1636 ई० बताई जाती है। इस प्रकार वे नीलकंठ दीक्षित के समकालीन थे, जिनका 'नीलकंठविजय' नामक चंपू 1636 ई० में लिखा गया था। अतएव राजचूड़ामणि 17 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए हैं। दस अध्याययुक्त अपने 'रुक्मिणी-कल्याण' नामक काव्य में उन्होंने स्वयं यह कहा है कि जिस समय मैंने इस काव्य की रचना की, उस समय अच्युत का पुत्र रघुनाथ, तंजोर का राजा था। इसी राजा की सभा में उनके 'आनंदराघव' तथा 'कमलिनी कलहंस' नामक दो नाटकों का अभिनय किया गया था। इस लेखक ने अपनी वंशावली तथा अपने अन्य ग्रंथों की एक लंबी सूची अपने 'काव्यदर्पण' के अंतिम श्लोक[1] तथा अपने नाटक 'आनंद-राघव' में दी है[2]। 'काव्यदर्पण' में दस उल्लास हैं, जिनमें काव्यशास्त्र के सभी विषयों का सामान्य विवेचन है। उनके दूसरे ग्रंथ 'अलंकारचूड़ामणि' में विशेष

---

1. मद्रास कैट xxii, संख्या 12809 तथा हुलट्श i, पृ० 85-6 में उद्धरण दिया गया है।
2. मद्रास कैट xiii, संख्या 12495 'काव्यदर्पण' में लेखक के 26 ग्रंथों का उल्लेख है।

रूप से अलंकारों का विवेचन किया गया है। 'काव्यदर्पण' के दस उल्लासों की विषय-सूची इस प्रकार है : (1) काव्यस्वरूप, (2) शब्दार्थ, (3) व्यंग्यार्थ, (4-6) काव्यभेद (7) दोष, (8) गुण, (9) शब्दालंकार तथा (10) अर्थालंकार। राजचूड़ामणि का परिवार अतिरात्र याजिन् के नाम से प्रसिद्ध है। औफ्रेक्ट i. 672 में श्रीनिवास अतिरात्रयाजी, वास्तव में राजचूड़ामणि के पिता हैं। वे कांची प्रदेश के अंतर्गत तौंडीर में सुरसमुद्र के निवासी थे। तुलना कीजिए, स्टेन कोनो, इंडि० ड्रामा, पृ० 94. उनके अन्य ग्रंथों की सूची के लिए, हुलट्श पृ० ix—x तथा 'कमलिनी कलहंस' के वाणीविलास प्रेस संस्करण की भूमिका देखिए। वाणीविलास प्रेस, श्रीरंगम् ने उनका 'शंकराभ्युदय' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया है।

82. रामचंद्र तथा गुणचंद्र

'नाट्यदर्पण'

(सं० जी० के० श्रीगोंदेकर तथा एल० बी० गांधी, दो खंडों में, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा, खंड 1, 1929 सं०, केवल एक हस्तलिपि पर आधारित पीटर्सन v. पृ० 188.

रंगनाथ ने 'विक्रमोर्वशीय' की टीका में तथा भरतमल्लिक ने भट्टि के ग्रंथ की टीका में इसी नाम के एक ग्रंथ का उल्लेख किया है। संभवतः वह ग्रंथ उपर्युक्त ग्रंथ से भिन्न है। इस ग्रंथ में चार 'विवेक' हैं, जिनमें नाट्यशास्त्र-विषयक विवेचन है तथा रूपक के बारह भेदों और उपरूपकों का उल्लेख किया गया है। लेखक रामचंद्र की केवल एक ही आंख थी। वे जैन आचार्य हेमचंद्र के शिष्य थे। गुणचंद्र नामक उनका एक शिष्य भी था। अतएव रामचंद्र का रचना-काल 1100 तथा 1175 ई० के बीच है। उन्होंने दो नाटक लिखे हैं, जिनके नाम क्रमशः 'रघुविलास'[2] अथवा 'रघुविलाप'[3] हैं। उनमें उन्होंने अपने चार अन्य ग्रंथों का

1. पीटर्सन, रिपोर्ट iv, पृ० 16-7, बूहलर का हेमचंद्र पृ० 44. सब से पहले सिल्वाँ लेवी ने जर्नल एशियाटिक, cciii, 1923, में इस ग्रंथ पर प्रकाश डाला था। पी० के० गोडे ('स्टडीज', i, पृ० 36-42) ने इस ग्रंथ की तिथि 1150-1170 ठहराई है।
2. पीटर्सन, रिपोर्ट v. 145.
3. बूहलर, काश्मीर रिपोर्ट, पृ० xlix

उल्लेख किया है। उन्होंने 'सत्यहरिश्चंद्र' (सं० बी० आर० अत्रे, निर्णय सागर प्रेस, बंबई 1898) नामक ग्रंथ भी लिखा है, जिसमें हरिश्चंद्र के कथानक का एक विचित्र जैन रूपांतर है। रामचंद्र को 'प्रबंध शतकार' अर्थात् सौ ग्रंथों का रचयिता कहा गया है; नाट्यदर्पण में उनके ग्यारह नाटकों के उद्धरण मिलते हैं।

83. रामचंद्र न्यायवागीश

'काव्यचंद्रिका' अथवा 'अलंकारचंद्रिका'

(औफ्रेक्ट i. 101a, 778b), 'अलंकारमंजूषा' नामक टीका सहित।

(सं० कोमिल्ला 1885; सं० ढाका 1886 जगबंधु तर्कवागीश की टीका सहित, सं० वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई 1912; रामचंद्र शर्मा की 'अलंकार मंजूषा' टीका सहित; ये टीकाकार स्वयं मूलग्रंथ के रचयिता भी हो सकते हैं।) इस बंगाली लेखक के पिता का नाम विद्यानिधि बताया गया है। क्या यह लेखक 'कुवलयानंद' पर काव्यमंजरी नामक टीका के लेखक, न्यायवागीश भट्टाचार्य ही हैं? (देखिए पृ० 212)।

84. रामशर्मा अथवा राम कवि

'नायिकावर्णन', 42 छंदों में (मद्रास कैट० xxii. संख्या 12901)

85. राम सुब्रह्मण्य

'अलंकारशास्त्र-विलास' (मद्रास Trm. iic. 1802, 1805 उद्धरण)।

लेखक का दूसरा नाम रामसुब्बा था। ये तिरुविसलूर के निवासी थे। बहुत अर्वाचीन लेखक प्रतीत होते हैं। इन्होंने दर्शनशास्त्रविषयक कुछ ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनका उपर्युक्त ग्रंथसूचियों में उल्लेख मिलता है।

86. राम सुधी अथवा सुधीश्वर

'अलंकार मुक्तावली'

(सं० तेलुगु लिपि में कृष्ण सूरि की 'रत्नशोभाकर' टीका सहित, विशाखापत्तम् 1897-98)।

लेखक के पिता का नाम नृसिंह था।

87. लक्ष्मीधर दीक्षित

क. 'अलंकार मुक्तावली' (औफ़्रेक्ट i. 32a)[1]

ख. 'रसमंजरी', लेखक ने 'गीतगोविंद' पर अपनी टीका में स्वयं इसका उल्लेख किया है।

ग. 'भरत-शास्त्र-ग्रंथ'—भंडारकर औरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, हस्त-लिपि संख्या 40, 1916-18)[2]

इस लेखक के पिता का नाम यज्ञेश्वर, माता का नाम सर्वांबिका (अथवा अंबिकांबा) तथा पितामह का नाम तिम्मय सोमयाजी था। ये अपने भाई कोंडुभट्ट के शिष्य थे। इनका जन्म काश्यप गोत्र में हुआ। दक्षिणामूर्ति किंकर इनका उपनाम था। इनके परिवार का निवास आंध्र-प्रदेश में कृष्णा नदी के तट पर चेरुकूरि नामक स्थान था। हुलट्श के मतानुसार यह स्थान बापटल के समीप वर्तमान पेद्दचेरुकूरु है। ये लेखक 'षड्भाषा चंद्रिका' नामक प्राकृत-व्याकरण के रचयिता लक्ष्मीधर से अभिन्न हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'अनर्घराघव', 'प्रसन्न-राघव' तथा 'गीतगोविंद' पर टीकाएं भी लिखी हैं। पहली टीका में ऐसा कहा गया है कि लेखक ने दीर्घ काल तक गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के पश्चात् विभिन्न देशों (प्रदेशों) की यात्रा की तथा सभी साहित्यिक प्रतिद्वंद्वियों को पराजित किया। तदुपरांत संसार से विरक्त होकर कृष्णाश्रम नामक गुरु से संन्यास या यती की दीक्षा प्राप्त कर रामानंद अथवा रामानंदाश्रम नाम ग्रहण किया। लक्ष्मीधर (जिन्हें लक्ष्मणभट्ट अथवा लक्ष्मण सूरि भी कहते हैं) तिरुमलराज के कृपाभाजन रहे हैं। यह राजा संभवतः विजयनगर के तीसरे वंश का तिरुमल प्रथम था[3]।

---

1. वी० राघवन (न्यू कैटलोगस कैट i, पृ० 296) ने यह प्रश्न उठाया है कि यह ग्रंथ वास्तव में लक्ष्मीधर के पुत्र विश्वेश्वर (अन्यत्र देखिए) की 'अलंकार मुक्तावली' है अथवा नहीं, तथा इस संबंध में 'एनाल्ज़ ऑफ़ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट xviii, 1937 पृ० 200 को लक्षित किया है।

2. देखिए, एनाल्ज़ ऑफ़ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट xv, 1953 पृ० 240 42 के अंतर्गत पी० के० गोडे का लेख। उन्होंने 'भरतार्णव' तथा 'कविकंठपाश' का उल्लेख किया है। 'कविकंठपाश' (मद्रास कैट xxii संख्या 12802) के संबंध में ऐसा कहा गया है कि यह पिंगल के किसी ग्रंथ पर आधारित है तथा इसमें कवि के व्यक्तिगत आकार-प्रकार, आवश्यक गुण इत्यादि की चर्चा है (तुलना कीजिए, राजशेखर, 'काव्यमीमांसा' अध्या० 10) ग्रंथ के लेखक का नाम ज्ञात नहीं है। गौरनार्य के प्रकरण में ऊपर पृ० 263 देखिए।

3. एपिग्राफिका इंडिका iii पृ 238, सारणी। उसकी मृत्यु 1572 ई० में हुई थी।

कहीं-कहीं जयदेव के 'गीतगोविंद' पर उसकी 'श्रुतिरंजनी' नामक टीका का लेखक इसी राजा को मान लिया गया है[1]। चूँकि यह राजा 17 वीं शती के मध्य में हुआ है, इसलिए लक्ष्मीधर की तिथि भी वही है[2]।

88. वल्लभ भट्ट

'अलंकार कौमुदी' (सं० ग्रंथमाला ii, 1889)

यह एक बहुत अर्वाचीन लघु ग्रंथ है, जिसमें अलंकारों का विवेचन है। उदाहरण राम-स्तुति के वाचक हैं।

89. बिट्ठलेश्वर अथवा बिट्ठल दीक्षित

'रीतिवृत्ति लक्षण' (कीलहार्न, सेंट्रल प्रोविंसेज कैट० पृ० 104)

लेखक का दूसरा नाम अग्निकुमार है। ये प्रसिद्ध धार्मिक सुधारक वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र तथा गोपीनाथ के भाई थे। इनके गिरिधर, रघुनाथ इत्यादि सात पुत्र थे। जन्म तिथि 1515 ई० है। इनकी अन्य रचनाओं के लिए औफ्रेक्ट i. 5/2ab, 135a, 225a, iii, 121a देखिए। इनके 'शृंगार रसमंडन' (सं० मूलचंद्र तुलसीदास तेलीवाला, गुजराती अनुवाद सहित, बंबई 1919) में दस उल्लास हैं। किंतु यह शृंगाररसविषयक ग्रंथ न होकर जयदेव के 'गीतगोविंद' के समान राधाकृष्णविषयक एक शृंगार रस-प्रधान धार्मिक ग्रंथ है। इसमें लयबद्ध तुकांत गीत दिए गए हैं।

90. विद्याराम

'रसदीर्घिका'

(पीटर्सन iii, संख्या 336 इस ग्रंथ के विवरण तथा उद्धरणों के लिए

---

1 देखिए हुलट्श 2112; SgS, ii, पृ० 203 5; SgS ii, पृ० 63-5, 67; हुलट्श iii, पृ० vii-ix भी देखिए।

2. 'षड्भाषा चंद्रिका' के के० पी० त्रिवेदी के सं० (बंबई संस्कृत सीरीज 1916) का पृ० 14-17 देखिए। पी० के० गोडे (एनाल्ज़ ऑफ़ भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, xv, पृ० 240-42) ने इसे 16 वीं शती के तीसरे चरण में निर्धारित किया है।

भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट हस्तलिपि कैट० xii, संख्या 210 पृ० 240 देखिए। हस्तलिपि अपूर्ण है।

इस लेखक के संबंध में कुछ भी ज्ञात नहीं है, किंतु पंच सोपानयुक्त यह ग्रंथ संवत् 1706 (=1649 ई०) में लिखा गया था। इसमें 'कविकल्पलता' को एक सूत्र-ग्रंथ के रूप में लक्षित किया गया है।

91. विश्वनाथ

'साहित्य सुधासिंधु' (अलवर कैटलॉग, उद्धरण 235 तथा जम्मू कैट० संख्या 1254)।

ये एक दक्षिण भारतीय लेखक थे। इन्होंने ग्रंथ की रचना बनारस में की। पिता का नाम त्रिमल अथवा त्रिमल्ल देव तथा पितामह का नाम अनंत था। अनंत का निवास-स्थान गोदावरी के तीर पर धारासुर नामक नगर में था। स्टीन की कश्मीरी हस्तलिपि[1] की तिथि 1602 ई० दी गई है।[2] लेखक ने ग्रंथारंभ में मम्मट तथा भोज के ग्रंथों के उद्धरण दिए हैं तथा अन्य स्थलों पर चंडीदास (संभवतः यह मम्मट के टीकाकार ही हैं) तथा महिम भट्ट का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ में दस तरंग अथवा अध्याय हैं। विश्वनाथ ने 'मृगांकलेखा'[3] नामक एक नाटक भी लिखा है। इस नाटक की एक हस्तलिपि की तिथि संवत् 1664 (=1608 ई०) है।

92. विश्वनाथ न्याय (अथवा सिद्धांत- पंचानन
'अलंकार परिष्कार'

एस० सी० विद्याभूषण के ग्रंथ, 'इंडियन लॉजिक' पृ० 479 (तथा पृ० 392) में विश्वनाथ न्यायपंचानन के नाम से इस ग्रंथ का उल्लेख है। लेखक के पिता का नाम

1. जम्मू कैट० पृ० xxix.
2. स्टीन ने एक हस्तलिपि के संबंध में इस प्रकार कहा है: यह हस्तलिपि लेखक की अपनी हस्तलिपि (पांडुलिपि) की प्रतिलिपि है। जम्मू हस्तलिपि के अंत में किसी अन्य व्यक्ति ने एक पुष्पिकालेख जोड़ दिया है। उसमें इस मूल प्रति का उल्लेख है।' उसकी तिथि संवत् 1659 (=1602 ई०) कठिनाई से पढ़ी जाती है।
3. स्टेन कोनो, 'इंड० ड्रामा', पृ० 118. यह ग्रंथ सरस्वती भवन टैक्स्ट्स सीरीज, बनारस, में छप चुका है।

विद्यानिवास भट्टाचार्य तथा एक भाई का नाम रुद्र वाचस्पति था। इन्होंने 1634 ई० में 'भाषा परिच्छेद' नामक एक प्रसिद्ध वैशेषिक ग्रंथ की रचना की थी तथा 'पिंगल प्रकाशिका' नामक एक अन्य ग्रंथ भी लिखा था। लेखक, नवद्वीप (बंगाल) के निवासी तथा रघुनाथ शिरोमणि के नव्यन्याय संप्रदाय के अनुयायी थे। जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल, vi, 1910 पृ० 313 पर हरप्रसाद शास्त्री का लेख देखिए।

93. विश्वेश्वर कविचंद्र

'चमत्कार चंद्रिका'

(इंडिया ऑफ़िस कैट vii, पृ० 1507 मद्रास Trm. कैट 1916-19, 1918-19 R 2679)।

लेखक शिंगभूपाल (1330 ई०) के कृपापात्र थे। ग्रंथ में अलंकार-विषयक आठ विलास अथवा अध्याय हैं। उदाहरणों में लेखक ने अपने संरक्षक का गुण-गान किया है (सिंहभूपाल कीर्ति-सुधासार-शीतला)। उन्होंने काव्य के सात चमत्कार दिए हैं। अध्यायों के नाम ही पर्याप्त रूप में ग्रंथ के क्षेत्र को परिलक्षित करते हैं, यथा : (1) वर्ण, पद तथा पद-दोष, (2) वाक्य तथा वाक्य-दोष, (3) अर्थ तथा अर्थ-दोष; प्रबंध के भेद, (4) गुण, रीति, वृत्ति, पाक तथा शय्या, (5) रस, (6) शब्दालंकार, (7) अर्थालंकार, तथा (8) उभयालंकार। यह ग्रंथ सामान्य रूप में भोज के अनुयायी अल्पसंख्यक अलंकार-ग्रंथों में से एक होने के कारण उल्लेखनीय है। किंतु लेखक ने केवल आठ रसों को ही मान्यता दी है, भोज प्रतिपादित शांत रस को छोड़ दिया है। इन्होंने असमासा, मध्यम-समासा, अतिदीर्घसमासा तथा मिश्रा नामक चार रीतियां स्वीकार की हैं। परवर्ती लेखकों का मार्गदर्शन करते हुए उन्होंने लोकोत्तराह्लाद, अनुभवैकवेद्य तथा विगलितवेद्यांतर के रूप में रस का वर्णन किया है। संभवत: यह पहला ग्रंथ है, जिसमें चमत्कार के आधार पर काव्य को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है, अर्थात्, चमत्कारी (शब्दचित्र), चमत्कारितर (अर्थचित्र तथा गुणीभूत व्यंग्य) तथा चमत्कारितम (व्यंग्यप्रधान)। इस ग्रंथ के विस्तृत विवरण तथा मूल्यांकन के लिए वी० राघवन् का एनाल्ज़ ऑफ़ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, xvi, (1934-35) पृ० 131-39 में लेख देखिए।

94. विश्वेश्वर भट्ट

क 'अलंकार कौस्तुभ'

(लेखक की अपनी शब्दावली सहित, सं० शिवदत्त तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, 1898)

ख 'अलंकार मुक्तावली' (सं० विष्णुप्रसाद भंडारी, चौखंबा संस्कृत सीरीज़, बनारस 1927)

ग. 'अलंकार (कुल) प्रदीप' (सं० विष्णुप्रसाद भंडारी, चौखंबा संस्कृत सीरीज़, बनारस 1623)

घ. 'कवींद्र कर्णाभरण' (सं० काव्यमाला गुच्छक viii, 1891 के अंतर्गत)

ङ. 'रसचंद्रिका' (सं० विष्णुप्रसाद भंडारी, चौखंबा संस्कृत सीरीज़, बनारस 1926)

लेखक के पिता का नाम लक्ष्मीधर था। क्योंकि इनका जन्म अल्मोड़ा में हुआ था, इसलिए इन्हें पार्वतीय कहा गया है। विश्वेश्वर 18 वीं शती के पूर्वार्द्ध में हुए हैं तथा उस शती के लगभग मध्यभाग[1] में 34 वर्ष की अवस्था में उनका देहांत हो गया था। लेखक ने 'अलंकार कौस्तुभ' में 'शृंगारमंजरी' (सट्टक)[2] तथा 'रुक्मिणी परिणय' नामक अपने दो नाटकों का क्रमशः पृ० 347 तथा पृ० 381, 387 पर उल्लेख किया है। अर्वाचीन लेखकों में उन्होंने अप्पय्य दीक्षित तथा जगन्नाथ का उल्लेख किया है और दोनों ही लेखकों के विस्तृत उद्धरण दिए हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने दंडी के टीकाकार के रूप में (ऊपर देखिए पृ० 67) मल्लिनाथ (पृ० 69), चंडीदास (पृ० 125, 166), महेश्वर (पृ० 49,111), जो सभवत: मम्मट के टीकाकार हैं, का न्यायालंकार के रूप में उल्लेख किया है (पृ० 42) तथा 'काव्यडाकिनी' नामक ग्रंथ का उल्लेख भी किया है (पृ० 157)[3]। न्यायपंचानन, जिन्हें उन्होंने ग्यारह बार उद्धृत किया है, संभवत: मम्मट के एक अन्य टीकाकार, जयराम न्यायपंचानन (अन्यत्र देखिए) ही हैं।

1. देखिए काव्यमाला, गुच्छक viii, पृ० 51–52 पा० टि०।
2. उनकी 'रसचंद्रिका' के पृ० 90 पर भी इसका उद्धरण है।
3. ऊपर देखिए पृ० 261.

विश्वेश्वर ने अपने ज्येष्ठ भ्राता का नाम उमापति (पृ० 357) दिया है। इस ग्रंथ में लेखक ने 61 अलंकारों का विवेचन किया है। इन का द्वितीय ग्रंथ, 'अलंकार-मुक्तावली', लेखक के अपने ही कथन के अनुसार, एक प्रारंभिक, सरल तथा संक्षिप्त ग्रंथ है। यह पहले बृहद् ग्रंथ के पश्चात् ही लिखा गया था। 'अलंकार प्रदीप' नामक तृतीय ग्रंथ में केवल अलंकारों का ही विवेचन है। लक्षण तथा उदाहरण सहित 119 अलंकार लिए गए हैं। 'कवींद्र कर्णाभरण' नामक चतुर्थ ग्रंथ के चार अध्यायों में प्रहेलिका तथा चित्रकाव्य (58 भेद) का वर्णन है। 'रसचंद्रिका' नामक पंचम ग्रंथ में नायक-नायिका-भेद तथा उनके गुणधर्म हैं। विश्वनाथ ने बहुत-सी टीकाएं लिखी हैं। उन्होंने भानुदत्त की 'रसमंजरी' (ऊपर देखिए पृ० 232) पर 'व्यंग्यार्थ कौमुदी' अथवा 'समंजसार्था' नामक टीका भी लिखी है। इनके अन्य ग्रंथों के लिए औफ्रेक्ट ii. 139b देखिए। काव्यमाला के संपादकों ने (गुच्छक viii पृ० 52) विश्वेश्वर के 'काव्यतिलक' तथा 'काव्यरत्न' नामक दो अन्य ग्रंथों का उल्लेख किया है।

95. विष्णुदास

क 'शिशुप्रबोध अलंकार' (औफ्रेक्ट फ्लोरेंटाइन संस्कृत एम० एस० 469 लाइपजिग 1892)

ख. 'कविकौतुक' लेखक ने ऊपरिलिखित ग्रंथ के अध्याय vii में स्वयं इसका उल्लेख किया है।

लेखक के पिता का नाम माधव था। उपर्युक्त फ्लोरेंटाइन हस्तलिपि में केवल छठा और सातवां अध्याय है। इनमें क्रमशः अर्थगुण तथा शब्दालंकारों का विवेचन है।

96. वीर नारायण

'साहित्य चिंतामणि' टीका सहित (मद्रास कैट xxii, 12265-68 उद्धरण)

पुष्पिका लेख के अनुसार तो वीर नारायण ही इस ग्रंथ के लेखक हैं, किंतु ग्रंथ के अंतर्गत उनके लिए संबोधन विभक्ति का प्रयोग किया गया है तथा 'प्रताप रुद्र' के समान उनका गुणगान किया गया है। वास्तविक लेखक वामन भट्ट बाण[1] हैं,

1. वामन भट्ट बाण के विषय में उनके 'पार्वती परिणय' नामक नाटक के वाणी-विलास संस्करण की भूमिका देखिए।

जिन्होंने अपने संरक्षक के नाम को अपना लिया है। तथाकथित लेखक संभवतः कोंडवीडु का रेड्डि राजा वेम (14वीं शती के आरंभ तथा 15वीं शती के अंत में) था। यह राजा, वामन (अथवा अभिनव) भट्ट बाण के गद्यमय 'वेमभूपाल चरित' अथवा 'वीरनारायण चरित' (सं० आर० वी० कृष्णाचार्य, श्रीवाणीविलास प्रेस, 1910) का कथा-नायक था। इसी राजा को पेदकोमटि भूपाल नाम से भी परिलक्षित किया गया है। 'अमरुशतक' पर 'शृंगार दीपिका' नामक टीका भी वीरनारायण (औफ्रेक्ट ii, 141b) अथवा वेम भूपाल (वही, i. 609b) रचित कही गई है। 'साहित्यचिंतामणि' (अथवा 'साहित्यचूड़ामणि' में सात अध्याय[1] हैं, जिनमें (1) ध्वनि, (2) शब्दार्थ, (3) ध्वनिभेद, (4) गुणीभूतव्यंग्य, (5) दोष, (6) गुण, तथा (7) अलंकार का विवेचन है। कुमारस्वामी ने (पृ० 97) पर तथा 'वृत्तिवार्त्तिक' (पृ० 4) पर संभवतः इसी का 'साहित्यचिंतामणि' के नाम से उल्लेख किया है।

97. वीरेश्वर पंडित (भट्टाचार्य)

(उपाधि श्रीवर)

'रस रत्नावली' (इंडिया ऑफिस कैट iii, 1233 / 12576 पृ० 359)

ये वीरेश्वर, लक्ष्मण के पुत्र तथा वेणीदत्त के पिता थे। वेणीदत्त ने 'अलंकारचंद्रोदय' के अतिरिक्त भानु की 'रसतरंगिणी' पर एक टीका भी लिखी है (ऊपर देखिए पृ० 234)। 'रस रत्नावली' में रुद्रभट्ट के 'शृंगारतिलक' का उद्धरण दिया गया है। इसमें मुख्यतः शृंगार-रस तथा नायिका-भेद का ही विवेचन है।

98. बेचाराम न्यायालंकार

'काव्यरत्नाकर'

इन बंगाली लेखक के पिता का नाम राजाराम था। चंद्रनगर से बनारस तक के विषय पर लिखी गई अपनी 'आनंद तरंगिणी' में लेखक ने इस ग्रंथ का उल्लेख

---

1. तंजोर कैट ix संख्या 5308 पृ० 4100 में इस ग्रंथ की अध्याय-संख्या 13 बताई गई है।

किया है (मित्रा 305)। इन्होंने ज्योतिष-विषय पर भी एक ग्रंथ लिखा है। संभवतः यह बेचाराम, देवेश्वर की 'कविकल्पलता' के टीकाकार, बेचाराम से अभिन्न हैं। (ऊपर देखिए पृ० 246)।

99. वेंकपय्य प्रधान

'अलंकार-मणि-दर्पण' (राइस 280)

लेखक मैसूर के प्रधान वेंकयामात्य के रूप में प्रसिद्ध हैं। तिथि 1763-४0 ई०।

100. वेंकट नारायण दीक्षित

लेखक का जन्म गोड़वर्ती परिवार में हुआ। पिता का नाम कामेश्वर वैदिक तथा माता का नाम लक्ष्मी था। इन्होंने इस ग्रंथ में अपने बृहद् ग्रंथ शृंगारसारावली का उल्लेख किया है, जिसमें लेखक ने अपने विषय का विस्तृत विवेचन किया है। 'शृंगार सार' में छह उल्लास हैं, जिनमें (1) काव्य-स्वरूप, (2) नायक-नायिका लक्षण-विभाग, (3) नायकादि सहाय निरूपण, (4) रस-भाव-स्वरूप, (5) चतुर्विध शृंगार, तथा (6) दशरूपक-स्वरूप का निरूपण है। ऐसा कहा जाता है कि लेखक ने आठ भाषाओं में ग्रंथ लिखे हैं।

101. वेंकट नारायण दीक्षित

उपाधि, तर्कालंकार वागीश्वर

'अलंकारकौस्तुभ'

लेखक का जन्म तिरुमल बुक्कपट्टणम् श्रीशैल परिवार में हुआ था। पिता का नाम अण्णयार्य दीक्षित था। सुरपुर उनका निवास-स्थान था। ये लेखक रघुनाथ के पुत्र तथा अप्पय्य के पौत्र, कवि वेंकटाचार्य ('विश्वगुणादर्श' के लेखक) से भिन्न हैं। हमारे लेखक पामि नायक (मृत्यु 1802 ई०) के पुत्र वेंकट के कृपा-भाजन रहे हैं। देखिए 'जर्नल ऑफ आंध्र हिस्ट० रिसर्च सोसायटी xiii, i पृ० 17 तथा 20-22।

102. वेणीदत्त शर्मा, तर्कवागीश भट्टाचार्य

उपाधि, श्रीवर

'अलंकार चंद्रोदय' (इंडिया ऑफ़िस कै० iii, 1198/235)

लेखक के पिता का नाम वीरेश्वर श्रीवर था। इन्होंने भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' (अन्यत्र देखिए) पर एक टीका भी लिखी है। इनकी वंशावली इस प्रकार है: महीधर (काशीपति का एक मांत्रिक)—कल्याण—लक्ष्मण—वीरेश्वर। श्रीवर इनकी उपाधि थी। इनका जन्म 'नागच्छत्र-धर-द्विजोत्तम' कुल में हुआ था। 'अलंकार चंद्रोदय' में छह उल्लास अथवा अध्याय हैं और, (1) काव्यस्वरूप, (2) काव्य-विभाग, (3) दोष, (4) गुण, (5) अलंकार तथा (6) 'उपमा' इत्यादि विषयों का निरूपण है।

103. शंख, शंखधर अथवा शंखचूड़

(कहीं-कहीं इन्हें शंकर भी कहा गया है)

उपाधि, कविराज।

'कवि कर्पटी' अथवा 'कवि कर्पटिका रचना'

(जम्मू कैट० संख्या 1135 (पृ० 267) उद्धरण भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट एम० एस० कैट० xii, संख्या 42-46, उद्धरण। दरभंगा में प्रकाशित, 1892)।

'कवि कर्पटी' का अर्थ है 'कवि का चीथड़ा'। इस ग्रंथ में प्रायः काव्य-प्रबंध में काम आनेवाली सूक्तियों का संग्रह किया गया है। एक ही विचार को अनेक प्रकार से अनेक छंदों में व्यक्त करने के साधन बताए गए हैं। लेखक ने 'लटकमेलक प्रहसन' (सं० दुर्गाप्रसाद तथा के० पी० परब, निर्णयसागर प्रेस, बंबई 1889) भी लिखा है। शंख, कान्यकुब्ज के राजा 'महामांडलिकाधिराज' गोविंदनृपति के राजकवि थे। उनका साहित्य-रचना-कार्य 12 वीं शती (लगभग 1113-1143 ई०) का पूर्वार्द्ध रहा है। शार्ङ्गधर (संख्या 155, 3632) तथा जह्लण के काव्य-संग्रह में और 'साहित्यदर्पण' (अध्याय iii, 219 पृ० 176 'गुरोर्गिराः पंच', अनामतः) में उनके श्लोकों के उद्धरण मिलते हैं। क्षेमेंद्र के 'औचित्य विचार' में

कार्पटिक के नाम से दिए गए श्लोक (श्लोक 15 के नीचे) को कल्हण (iii,181) ने मातृगुप्त-रचित माना है। 'सुभाषितावली (3181) में भी ऐसा ही उल्लेख है।

104. शंभुनाथ

'अलंकार-लक्षण'

(पीटर्सन v. 407, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट कैट xii, संख्या 19, पृ० 18)।

105. शातकर्णि

शंकर ने 'शकुंतला' पर अपनी टीका में नाट्यशास्त्र—(सूत्रधार के विषय पर) विषयक लेखक के रूप में तथा सागरनंदी ने अपने 'नाटकलक्षणरत्नकोश' में (सूत्रधार के विषय पर) इस लेखक का उल्लेख किया है।

106. शिवराम त्रिपाठी

क. 'रसरत्नहार' तथा उसकी 'लक्ष्मी बिहार' नामक टीका (स० काव्यमाला गुच्छक 1890 पृ० 118-140 जम्मू कैट० पृ० 273 (उद्धरण)।

ख. 'अलंकार समुद्गक', अपने 'रावणपुरवध' नामक ग्रंथ के अंत में लेखक ने इसका उल्लेख किया है, तथा इसी स्थल पर अपने 34 ग्रंथों की सूची दी है। स्टीन पृ० 292.

इस लेखक के पिता का नाम कृष्णराम, पितामह का नाम त्रिलोकचंद्र तथा भाइयों के नाम गोविंदराम, मुकुंदराम तथा केशवराम थे। अधिक जानकारी के

---

1. 'औचित्यविचार' पर पीटर्सन का लेख देखिए, 1885, पृ० 21. तंजोर कैट० vi, संख्या 3753-56 (पृ० 2711-14) में वादींद्र की 'कवि कर्पटिका' का उल्लेख है। इनमें से एक हस्तलिपि राजा सरफोजी के पास थी। उन्होंने बनारस की यात्रा में इसे प्राप्त किया था।

2. ABod 135 a 'कवि कंठहार' नामक एक अज्ञात लेखक ग्रंथ का भी उल्लेख है।

लिए जर्नल ऑफ़ दि अमेरिकन ओरिएंटल सोसायटी, xxiv, 57-63 देखिए। शिवराम, अपेक्षाकृत अर्वाचीन लेखक हैं। क्योंकि इन्होंने 'परिभाषेंदुशेखर' के उद्धरण दिए हैं, इसलिए इन्हें 18 वीं शती के आरंभ में निर्धारित किया जा सकता है। चूँकि अपनी टीका में इन्होंने अपने 'रसरत्नहार' का पृ० 4,9,193, 206 तथा 207 पर उल्लेख किया है, अतएव यह 'वासवदत्ता' के टीकाकार, शिवराम से अभिन्न हैं (देखिए, फिट्जएडवर्ड हॉल, बिब्लियोथिका इंडिका संस्करण, 1859)। 'रसरत्नहार' में 100 श्लोक हैं, जिनमें रस के लक्षण तथा नायक-नायिका-भेद का निरूपण है। लेखक ने भानुदत्त तथा 'दशरूपक' के विस्तृत उद्धरण दिए हैं। इनके अन्य ग्रंथों के लिए, औफ्रेक्ट i. 652b, ii. 152b तथा स्टीन का जम्मू कैट० पृ० 292 देखिए। इन्होंने मम्मट पर 'विषमपदी' नामक एक टीका (ऊपर देखिए पृ० 162), छंदःशास्त्र विषयक 'काव्यलक्ष्मीप्रकाश' अथवा 'विहार', तथा 'सिद्धांतकौमुदी' पर 'विद्याविलास' नामक टीका भी लिखी है[1]।

107. शोभाकरमित्र

'अलकार-रत्नाकर'

(सं० सी० आर० देवधर, पूना 1942)

शोभाकरमित्र काश्मीरी लेखक हैं। इनके पिता का नाम त्रयीश्वमित्र था। उक्त ग्रंथ में सूत्र (सख्या में 107), वृत्ति तथा उदाहरण हैं। काश्मीरी कवि, यशस्कर ने इस ग्रंथ के सूत्रों को उद्धृत किया है तथा उनके उदाहरणार्थ 'देवी स्तोत्र' की रचना की है (पीटर्सन i, पृ० 77-78, उद्धरण, पृ० 81)। रत्नकंठ (अन्यत्र देखिए) ने सूत्रों तथा स्तोत्र दोनों पर टीका लिखी है। शोभाकर की तिथि तो ज्ञात नहीं है, किंतु ग्रंथगत अलंकारों की संख्या तथा उनके लक्षणों से ये अपेक्षाकृत अर्वाचीन लेखक प्रतीत होते हैं, ये रुय्यक के काफी समय पश्चात् हुए हैं तथा इन्होंने रुय्यक की आलोचना की है। क्योंकि जगन्नाथ (पृ० 202 = सूत्र 11)[1] तथा अप्पय्य (वृत्तिवार्त्तिक, पृ० 20) ने शोभाकरमित्र के उद्धरण दिए हैं, इसलिए ये 16 वीं शती की समाप्ति से पूर्व ही हुए हैं। जयरथ ने अपनी 'विमर्शिनी' नामक टीका में शोभाकर की आलोचना के विरुद्ध रुय्यक का पक्ष लिया है। क्योंकि शोभाकर रुय्यक के पश्चात् तथा जयरथ से पूर्व हुए हैं,

1. ऊपर देखिए पृ० 218 (जगन्नाथ के प्रकरण में)।

इसलिए संभवतः यह 12 वीं शती के अंत में अथवा 13 वीं शती के आरंभ में हुए हैं। 'अलंकाररत्नाकर' में केवल अलंकारों का ही विवेचन है। विवेचित अलंकारों की संख्या 109 है।

108. श्रीकंठ

'रसकौमुदी'

(औफ्रेक्ट i. 494a = भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट एमएस० 1880-81; संख्या 303, कैट० xii, संख्या 347, पृ० 463 इत्यादि। तथा, हरप्रसाद शास्त्री, कैट० एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल एमएस vi, संख्या 4931-8383, पृ० 481, हस्तलिपि की प्रति संवत् 1652 = 1596 ई० में तैयार की गई थी।

यह ग्रंथ साहित्य तथा संगीत-मिश्रित है। इसके पूर्व तथा उत्तर दोनों खंडों में 10 अध्याय हैं। रचनातिथि 1575 ई०। लेखक नवानगर के राजा शत्रुघ्न अथवा शत्रुशल्य जाम (जाम सत्तरसाल) (1569 से 1608 ई० तक) का कृपापात्र रहा है।[1]

109 श्रीकर मिश्र

'अलंकार-तिलक' (औफ्रेक्ट i. 32a)

110. श्रीनिवास दीक्षित

क. 'अलंकार-कौस्तुभ' (औफ्रेक्ट i. 31b)

ख. 'काव्यदर्पण' (राइस 282)

ग. 'काव्यसारसंग्रह' (औफ्रेक्ट i. 102b; संस्कृत कॉलेज कलकत्ता कैट vii, 19)।

घ. 'साहित्यसूक्ष्मसरणि' (राइस 244)

1. देखिए, पी० के० गोडे०, एनाल्ज़ ऑफ़ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट xii, 1931, पृ० 202-4 तथा xiv, 1933, पृ० 329, तथा देखिए, एमएस कैट० भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट xii, पृ० 463-66।

यह लेखक संभवतः राजचूड़ामणि (अन्यत्र देखिए) के पिता, रत्नाखेट श्रीनिवास से अभिन्न हैं। यदि ऐसा ही है तो उपर्युक्त 'काव्यदर्पण' इनके पिता की इसी नाम की रचना है (ऊपर देखिए पृ० 283) जिसे अधिकतर ग्रंथ-सूचियों में यहाँ भूल से दर्ज कर दिया गया है। जैसा कि 'काव्यसारसंग्रह' के प्रथम श्लोक से सूचित होता है, इस ग्रंथ के तीन भाग हैं: (1) काव्यलक्षण संग्रह, (2) वर्ण-संग्रह, तथा (3) सुभाषित-संग्रह। इसमें 'काव्यप्रकाश' के उद्धरण मिलते हैं। तिथि लगभग 1800 ई०।

111. सागरनंदी

'नाटक-लक्षण-रत्न-कोश'

(सं० माइल्स डिल्लन, ऑक्सफोर्ड यूनि० 1937)।

सिल्वाँ लेवी ने नेपाल में इस ग्रंथ की एक अद्वितीय हस्तलिपि की खोज की थी। प्रकाशित ग्रंथ उसी हस्तलिपि का देवनागरी में प्रतिलेख है[1]। जैसा कि नाम से सूचित होता है, इस ग्रंथ में अनेक प्रसिद्ध लेखकों के नाट्यशास्त्र-विषयक महत्वपूर्ण विचारों का संग्रह किया गया है। ग्रंथ की तिथि[2] निश्चित नहीं है। चूँकि इसमें राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' का एक उद्धरण दिया गया है (पृ० 44, 'विलास विन्यास क्रमो) इसलिए यह 10 वीं शती के प्रथम चरण से पूर्व का नहीं हो सकता। दूसरी ओर, रायमुकुट (1431 ई०), विश्वनाथ (1300 तथा 1350 के बीच) तथा बहुरूप मिश्र (1250 ई० के पश्चात्) इस ग्रंथ से परिचित थे। ग्रंथ में इन विषयों का निरूपण है: (1) रूपक तथा उसके दस भेद; (2—5) पंच अवस्था, प्रयुक्त बोलियाँ, पाँच अर्थप्रकृतियाँ, (6–10) पाँच उपक्षेपक, 5 संधियाँ, संधि के 21 प्रदेश,

---

1. सि० लेवी, 'जर्नल एशियाटिक xciii, 1923, पृ० 210 इत्यादि।
2. तिथि संबंधी चर्चा के लिए देखिए, पी० के० गोडे, एनाल्ज ऑफ़ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, xix, 1938, पृ० 280-88 ('स्टडीज़' i. पृ० 48-56) एम० रामकृष्ण कवि. एन० आई० ए० ii. पृ० 412-19. पाठविषयक चर्चा के लिए देखिए वी० राघवन, 'जर्नल ऑफ़ दि यूनि० ऑफ़ गौहाटी, iii, 1952 पृ० 17-33 तथा 'एनाल्ज़ ऑफ़ ओरिएंटल रिसर्च, मद्रास यूनि० xvi, 1958-59.

चार पताकास्थान, वृत्तियां तथा उनके भेद; (11) नायक के गुण, (12-13) छत्तीस नाट्यलक्षण, दस गुण, चौंतीस नाट्यालंकार, (14-16) रस तथा भाव (17) नायिका-भेद तथा उनके गुण, (18) रूपक के उपभेद। पूर्वोक्त विषयों पर मतमतांतरों के संग्रह तथा बहुत बड़ी संख्या में नाटकसंबंधी एवं नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों के उद्धरणों के कारण यह ग्रंथ बड़ा महत्वपूर्ण है[1]।

112. सामराज दीक्षित

'श्रृंगारामृत लहरी'

(सं० काव्यमाला गुच्छक xiv; हस्तलिपि : जम्मू कैट० संख्या 1243; मद्रास कैट xxii, 12961)।

लेखक का दूसरा नाम श्यामराज था। पिता का नरहरि बिंदुपुरंदर था। उक्त ग्रंथ के अतिरिक्त सामराज ने 'त्रिपुरसुंदरी मानसपूजन स्तोत्र' (सं० काव्य-माला गुच्छक ix) तथा अन्य काव्य भी लिखे हैं। श्यामराज 17 वीं शती के उत्तरार्द्ध में मथुरा में रहते थे। उनका 'श्रृंगार-कलिका-काव्य', काव्यमाला गुच्छक xiv के अंतर्गत प्रकाशित हो चुका है। उन्होंने 'धूर्तनर्तक'[2] नामक एक प्रहसन भी लिखा है। श्यामराज के पौत्र व्रजराज तथा प्रपौत्र जीवराज ने क्रमशः भानुदत्त की 'रसमंजरी' तथा 'रसतरंगिणी' पर टीकाएँ लिखी हैं। (अन्यत्र देखिए)। 'श्रृंगारामृत लहरी' में रस, विशेषतया श्रृंगार रस, का भानुदत्त के मतानुसार विवेचन है। श्यामराज ने 1681 ई० में बुंदेल राजा आनंदराज के लिए 'श्रीदामचरित' नाटक लिखा था। रामराज के पुत्र कामराज ने 15 उल्लास (अथवा, कला) युक्त 'काव्येंदुप्रकाश' की रचना की है। यह ग्रंथ संभवतः वही है, जिसका अज्ञात लेखक के रूप में भंडारकर रिपोर्ट 1887-91 संख्या 601 तथा भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट एमएस कैट xii संख्या 142, पृ०

---

1. लेखकों तथा ग्रंथों की सूची के लिए, उपर्युक्त सं० पृ० 145-47 तथा पी० के० गांडे का पूर्वोक्त ग्रंथ पृ० 485 पा० टि० देखिए। अश्मकुट्ट (लाइन 83,437 2766,2775), चारायण (392, वात्स्यायन के 'कामसूत्र' अध्या० 1.1.12; 1.5, 22 में भी इसका उल्लेख है) तथा बादर का 'नाट्यशास्त्र' विषयक लेखक के रूप में उल्लेख है।

2. विल्सन ii. 407 कीथ, संस्कृत ड्रामा पृ०, 262-63।

158-60 में उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ के विषय में उक्त रिपोर्ट तथा ग्रंथ-सूची देखिए।

एक सामराज ने 1719 ई० में 'रति-कल्लोलिनी' नामक ग्रंथ लिखा है, किंतु उन्होंने अपने पिता का नाम नहीं दिया। वे संभवतः एक भिन्न व्यक्ति हैं[1]।

113. सायण

'अलंकार सुधानिधि'

अप्पय्य दीक्षित तथा कुमारस्वामी ने इनका उल्लेख किया है। ऊपर देखिए पृ० 208, पा० टि० 3.

114. सुखदेव मिश्र

'शृंगार-लता' (औफ्रेक्ट i. 661a)

पीटर्सन iv संख्या 770 (परिशिष्ट पृ० 29) में सुखदेव के 'रसार्णव' नामक एक भाषा-ग्रंथ का उल्लेख है।

115. सुखलाल

'अलंकार मंजरी' (औफ्रेक्ट्स फ्लोरेंटाइन संस्कृत एमएस० 'लाइपजिग' 1892, 213)।

गंगेश के शिष्य सुखलाल तथा उनके पुत्र हरिप्रसाद (अन्यत्र देखिए) ने जयदेव की कारिकाओं का अनुसरण करने का प्रयत्न किया है। औफ्रेक्ट के मतानुसार ये लेखक लगभग 1740 ई० में हुए हैं। ग्रंथ का आरंभ 'उपमा' से होता है, तदुपरांत उसमें रूपक, परिणाम, स्मृतिमत्, भ्रांतिमत्, संदेह, उत्प्रेक्षा नामक अलंकारों का विवेचन है। यहीं हस्तलिपि समाप्त हो जाती है। स्टीन 75 तथा उलवर कैट० सख्या 1083 (उद्धरण 230) में बाबूराम मिश्र के पुत्र, सुखलाल के, संवत् 1801 = 1745 ई० में लिखे 'शृंगारमाला' नामक एक काव्य का उल्लेख है।

---

1. देखिए पी० के० गोडे, 'एनाल्ज़ ऑफ़ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, x पृ० 158-59।

116. सुधाकर पुंडरीक याजिन्

'श्रृंगार सरोदधि (औफ्रेक्ट iii, 137b)

117. सुधींद्र योगिन् अथवा यति

'अलंकार-निकष'

(मद्रास कैट० xxii. 12976, उद्धरण)

'अलंकारमंजरी'; सुमतींद्र की 'मधुधारा' नामक टीका सहित (तंजोर कैट० ix, 5129-30)

'अलंकार निकष' अर्थालंकार विषयक एक लघु ग्रंथ है। पुष्पिका में लेखक का उपर्युक्त नाम ही दिया गया है, किंतु ग्रंथ में ऐसा कहा गया है कि लेखक ने इस विषय के प्राचीन तथा अर्वाचीन आचार्यों के मतानुसार अर्थालंकारों का विवेचन किया है तथा उदाहरण श्लोकों में माधव-संप्रदाय के अनुयायी, स्वयं सुधींद्र यति का गुणगान किया है। संभवतः यह विजयींद्र यति (मृत्यु 1623 ई०) के शिष्य तथा उत्तराधिकारी, सुधींद्र यति ही हैं। ओफर्ट 4797 में उल्लिखित 'अलंकार निकर्ष' संभवतः यही ग्रंथ है। सुधींद्र यति का एक अन्य ग्रंथ 'अलंकार मंजरी' है, जिसके उदाहरण-श्लोकों में उन्होंने अपने गुरु, विजयींद्र की स्तुति की है। अधिकृत हस्तलिपियों में केवल शब्दालंकार ही हैं। सुधींद्र के उत्तराधिकारी, सुमतींद्र ने इस ग्रंथ पर 'मधुधारा' नामक एक टीका भी लिखी है। ऐसा कहा गया है कि सुधींद्र 17 वीं शती में तंजौर जिले में निवास करते थे। सुधींद्र यति को मद्रास कैट० xxi संख्या 12729 में 'सुभद्रा परिणय' नामक नाटक का लेखक, तथा विजयींद्र यति को, वही, संख्या 12728 में 'सुभद्राधनंजय' नामक नाटक का लेखक माना गया है।

118. सुंदर मिश्र अजागरि

'नाट्य-प्रदीप' (औफ्रेक्ट i.284b, 791a)

इस ग्रंथ की तिथि 1613 ई० दी गई है। 'शकुंतला' (सं० निर्णयसागर प्रेस, 1886, पृ० 6) पर राघव भट्ट ने अपनी टीका में इसका उल्लेख किया है। ग्रंथ में 'दशरूपक' के एक बड़े अंश का उद्धरण दिया गया है (हाल के सं० की

भूमिका देखिए)। स्वयं इस ग्रंथ में 'साहित्यदर्पण' का उल्लेख किया गया है। ये लेखक वही सुंदर मिश्र हैं, जिन्होंने 1599 ई० में 'अभिराममणि-नाटक' की रचना की थी। उन्होंने स्वयं को इस नाटक का लेखक कहा है। (ABod 137b-13 a कीलहार्न 'सेंट्रल प्राविंसेज़' पृ० 68, विलसन ii, पृ० 395)। देखिए, इंडिया ऑफ़िस कैट iii, पृ० 347-48 संख्या, 1199/1148d. (उद्धरण)।

119. सोमनार्य

'नाट्य चूड़ामणि'

(मद्रास कैट० xxii. 12998, तेलुगु टीका सहित)

नृत्य-संगीत विषयक यह एक बहुत अर्वाचीन ग्रंथ है।[1] लेखक को अष्टावधान (आठ वस्तुओं पर युगपद ध्यान करने की योग्यता) के लिए प्रसिद्ध कहा गया है।

120. हरिदास

'प्रस्ताव-रत्नाकर'

(वेबर 827; औफ्रेक्ट i. 360a, ii 212a, iii. 77a)

लेखक के पिता का नाम पुरुषोत्तम था। उनका जन्म करण कुल में हुआ था। ग्रंथ पद्यमय है। इसमें कूट, समस्या, सामान्य प्रहेलिका, प्रबंध तथा नीति, ज्योतिष इत्यादि विविध विषयों का विवेचन है। रचना-तिथि 1557 ई० है।

121. हरिप्रसाद माथुर

क. 'काव्यार्थ गुंफ'

(औफ्रेक्ट ii. 20b; भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पांडुलिपि कैट० xii, संख्या 131, पृ० 145. हस्तलिपि पर संवत् 1775 लिखा हुआ है।

---

1. देखिए, वी० राघवन् का जर्नल आफ़ मद्रास म्यूज़िक एकेडमी iv, में परवर्ती संगीत-साहित्य पर लेख।

ख. 'काव्यलोक

(औफ्रेक्ट i. 103a; पीटर्सन iii, पृ० 356-7 पर उद्धरण)

'काव्यालोक' में सात प्रकाश हैं, तिथि-संवत् 1734=1728ई० दी गई है। 'काव्यार्थ गुंफ' की एक हस्तलिपि पर संवत् 1775 अंकित है, जिससे संभवतः इसकी रचना-तिथि लक्षित होती है। हरिप्रसाद ने आचार (मासादि निरूपण) विषयक एक अन्य ग्रंथ भी लिखा है, देखिए, पीटर्सन iv, पृ० cxxxvii. अप्पय्य ने अपनी 'चित्र-मीमांसा में एक 'काव्यालोक' का उल्लेख किया है। पृ० 73 पर कुमारस्वामी द्वारा उल्लिखित 'काव्यालोक' में 'ध्वन्यालोक' का उल्लेख है (पृ० 221)। जैसा कि हरिचंद शास्त्री (पृ० 27 संख्या 234) ने गलती से मान लिया है, उससे 'काव्यालोक' लक्षित नहीं होता। लेखक के पिता का नाम माथुर मिश्र गंगेश था (सुखलाल के प्रकरण में ऊपर देखिए)।

122. हरिहर

क. 'शृंगार-भेद-प्रदीप' (बर्नेल 59a)

ख. 'बिद्वलंकार', दीपक पर 'एकावली' टीका पृ० 242 में इसका उल्लेख है।

'एकावली' पृ० 19 पर हरिहर नामक एक लेखक का उल्लेख है। उसने अर्जुन नामक एक राजा से अपार धन-संपत्ति प्राप्त की थी। भंडारकर तथा त्रिवेदी (ऊपर देखिए पृ० 190) ने इस अर्जुन को मालवा-नरेश अर्जुनवर्मा माना है, जिसकी पहली तथा पिछली तिथियाँ 1211 तथा 1216 ई० हैं। यदि यह हरिहर ही अपना लेखक है तो इसकी तिथि 13 वीं शती का प्रथम चरण ही हो सकती है। जैसा कि विश्वेश्वर ने अपनी 'रसचंद्रिका' (पृ० 55) में 'शृंगार-भेद-प्रदीप' के एक उद्धृत अंश से सूचित किया है, इस ग्रंथ में अन्य विषयों के अतिरिक्त विप्रलंभ शृंगार की दस अवस्थाओं की चर्चा की गई है।

123. हलधर रथ

'काव्य-तत्व-विचार'

(हरप्रसाद शास्त्री की रिपोर्ट, 1895, 1900 पृ० 16)

अज्ञात लेखक ग्रंथ

अलंकारविषयक कुछ अल्पप्रसिद्ध ग्रंथों की सूची नीचे दी जा रही है। लेखकों के नाम अज्ञात अथवा अनिश्चित हैं।

(1) 'अलंकार कारिका'। औफ्रेक्ट i. 31b.

(2) 'अलंकार कौमुदी व्याख्या'। मद्रास कैट० xxii, 12784. न तो मूल ग्रंथ के लेखक का नाम दिया गया है और न ही टीकाकार का। इसमें काव्यालंकारों का विवेचन है।

(3) 'अलंकार चंद्रिका'। राइस 284 (औफ्रेक्ट i, 32).

(4) 'अलंकार दर्पण', प्राकृत में। इसमें 134 श्लोक हैं, जिनमें काव्यालंकारों का विवेचन है। Monatsber. Berl. Akad, 1874-282.

(5) 'अलंकार प्रकरण'। SgS i, संख्या 52.

(6) 'अलंकार प्रकाशिका'। मद्रास कैट० xii, 12791. इसमें काव्यालंकारों का विवेचन है; 'काव्यप्रकाश' से उद्धरण दिए गए हैं।

(7) 'अलंकार मयूख'। ओपर्ट 1754 (औफ्रेक्ट i, 32)।

(8) 'अलंकारवादार्थ'। इसमें शब्दभेद पर चर्चा है, जिसका आरंभ 'साहित्यदर्पण' से किया गया है। हरप्रसाद शास्त्री, i, 12.

(9) 'अलंकार-संग्रह'। मद्रास कैट० xxii, 12795. इसमें विधि काव्यालंकारों की गणना तथा उनका वर्गीकरण किया गया है।

(10) 'अलंकार-सर्वस्व'। मद्रास कैट० xxii, 12798 (हस्तलिपि अपूर्ण है)। लेखक के कथनानुसार उनके गुरु ने राजा गोपालदेव के यशोगान के उपलक्ष्य में अलंकारविषयक एक ग्रंथ लिखा था। उक्त ग्रंथ में सामान्य अलंकार-विषयों की चर्चा है, किंतु हस्तलिपि अधूरी है, गुणप्रकरण के साथ ही समाप्त हो जाती है। यह ग्रंथ 'प्रतापरुद्रीय' को तोड़-मरोड़कर लिखा गया प्रतीत होता है। लेखक के नाम की अनिश्चितता के संबंध में, वी० राघवन्, न्यू कैट० कैट, i. 2976

'नंबर ऑफ़ रसाज़' पृ० 50, तथा परिशिष्ट के अंतर्गत टिप्पणी भी देखिए।

(11) 'अलंकारानुक्रमणिका' : ओपर्ट 5489 (औफ़्रेक्ट i. 32b)

(12) 'अलंकारेश्वर' : शिवराम ने 'वासवादत्ता' की टीका, पृ० 4, पर इसका उल्लेख किया है।

(13) 'कविकंठपाश' : देखिए पृ० 263, 286 पाद-टिप्पणी 2. मद्रास कैट० 12802-03।

(14) 'कविकल्पलता' : बर्नेल 54a.

(15) 'कविसरणदीपिका' : काव्य-प्रबंधविषयक यह ग्रंथ, रत्नेश्वर-रचित कहा गया है। हरप्रसाद शास्त्री, कैट० एशियाटिक सोसायटी ऑफ़ बंगाल पांडुलिपि vi, संख्या 4915A/8069 पृ० 471-73।

(16) 'काव्यकलाप' : औफ़्रेक्ट i. 100b

(17) 'काव्यकौस्तुभ' : ओपर्ट ii. 3616 (औफ़्रेक्ट i. 101a)।

(18) 'काव्य दीपिका' : ओपर्ट 541, 636, मद्रास कैट० xxii, 12815 प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए है।' संभवतः यह कांतिचंद्र रचित 'काव्यदीपिका' ही है। (आगे देखिए)।

(19) 'काव्यपरिच्छेद' : ओपर्ट ii. 8727.

(20) 'काव्यरत्न' : ओपर्ट ii, 6237. ऊपर देखिए पृ० 203.

(21) 'काव्यलक्षण' : मद्रास कैट० xxii, 12829, यह 'काव्यप्रकाश' की कारिकाओं के आधार पर लिखा गया है, किंतु नाट्य पर एक अध्याय अतिरिक्त है (तुलना कीजिए, ओपर्ट, 1793 तथा ii, 6238)।

(22) 'काव्य-लक्षण-विचार' : मद्रास कैट० xxii, 12979, सामान्य अलंकारविषयक एक अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रंथ है। इसमें 'चित्र-मीमांसा' तथा 'रसगंगाधर' के उद्धरण हैं।

(23) 'काव्यामृततरंगिणी' : देखिए पृ० 163.

(24) 'काव्योपदेश' : 'रघुवंश' पर अपनी टीका में हेमाद्रि ने इसका उल्लेख किया है (औफ़्रेक्ट i, 103a)।

(25) 'दशरूपक विवरण' : मद्रास कैट० xxii, 12892, यह 'दशरूपक' की टीका न होकर एक लघु संकलन ग्रंथ है, जिसमें नाट्य-प्रबंध की विशेषताओं की व्याख्या का गई है। संभवत: यह काव्यालंकार के किसी बृहद् ग्रंथ का नाटक-भाग है। इसमें 'दशरूपक' का नामशः उल्लेख है।

(26) 'नाटकरत्नकोश' : रायमुकुट तथा भानुजी ने इसका उल्लेख किया है। ABod, 182b. यह सागर नंदी का नाटकलक्षण-रत्नकोश हो सकता है; देखिए पृ० 298, संख्या 111.

(27) 'नाटकावतार' : मोहनदास (अन्यत्र देखिए) ने इसका उल्लेख किया है। ABod 142a.

(28) 'नाट्यदर्पण' : विक्रमोर्वशीय (सं० निर्णयसागर प्रेस 1914 पृ० 7) की टीका में रंगनाथ ने, तथा भट्टि काव्य अध्याय xiv. 3 की टीका में भरतमल्लिक ने इसका उल्लेख किया है। देखिए पृ० 284 संख्या 82.

(29) 'नाट्यसर्वस्व दीपिका' : भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पांडुलिपि संख्या 41, वर्ष 1916-18 (कैट० xii, संख्या 344, पृ० 453)। इस ग्रंथ का उद्देश्य तथाकथित 'आदिभरत' की व्याख्या करना है। इसमें 5 स्कंध, 32 अध्याय, तथा 221 प्रकरणों का आयोजन था। मैसूर की 'आदिभरत' हस्तलिपि में इसका केवल एक अंश ही प्राप्त है। इस हस्तलिपि तथा उस ग्रंथ के विवरण के लिए सुशीलकुमार डे रचित 'सम प्रॉब्लम्स ऑफ़ संस्कृत पोएटिक्स' कलकत्ता 1959 पृ० 156-76 में 'दि प्रॉब्लम ऑफ़ भरत एंड आदिभरत' प्रकरण देखिए।

(30) 'रसकलिका' : वासुदेव ने 'कर्पूरमंजरी' की टीका में इसका उल्लेख किया है (औफ्रेक्ट i, 494a)। रुद्रभट्ट की 'रसकलिका' के संबंध में वी० राघवन का 'नंबर ऑफ़ रसाज़' पृ० 53 इत्यादि देखिए। यह ग्रंथ गवर्नमेंट ओरिएंटल लाइब्रेरी, मद्रास की दो हस्तलिपियों में प्राप्य है (संख्या आर० 2241 तथा 3274)। यह ग्रंथ वही है, जिसका वासुदेव ने उल्लेख किया है। वासुदेव द्वारा उल्लिखित कुल छह श्लोक इसमें भी हैं।

(31) 'रसकौमुदी' : पीटर्सन v, संख्या 414, पी० के० गोडे (कलकत्ता ओरिएंटल जर्नल iii, पृ० 35-37) का अनुमान है कि इस अज्ञात लेखक टीका की संभव तिथि 18 वीं शती का उत्तरार्द्ध है।

(32) 'रसगंध' : राइस 286 (औफ्रेक्ट i, 494b)।

(33) 'रस-गांधार' : औफ्रेक्ट i, 494b (यह जगन्नाथ कृत 'रसगंगाधर' का अशुद्ध नाम भी हो सकता है)।

(34) 'रसरत्नाकर' : मल्लिनाथ ने 'किरात' अध्याय ix. 71 तथा 'मेघदूत' (सं० नंदर्गीकर, 1894 पृ० 64, 67, 85, 91) की टीकाओं में इसका उल्लेख किया है। औफ्रेक्ट i, 496a (टीका हृदयराम रचित)।

(35) 'रसरत्नकोश' : अज्ञात लेखक; औफ्रेक्ट i, 495b में इसका उल्लेख है, किंतु यह समान नाम का कुंभ का ग्रंथ भी हो सकता है (देखिए पृ० 256)।

(36) 'रस-विंदु' तथा 'रसामृत-सिंधु' : कथवटे संख्या 703 तथा 707:, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट पांडुलिपि कैट० xii, संख्या 212 पृ० 245-46.

(37) 'रसविवेक' : मद्रास Trm. C, 589 (तुलना कीजिए, ओपर्ट 5144)।

(38) 'रससमुच्चय' : औफ्रेक्ट i, 496b.

(39) 'रस सागर' : मल्लिनाथ ने 'शिशुपाल' xv, 89 की टीका में इसका उल्लेख किया है।

(40) 'रस सुधाकर' : मल्लिनाथ ने 'रघु' vi. 12 की टीका में इसका उल्लेख किया है। 'कुमार' पर अपनी टीका में मल्लिनाथ ने वास्तव में शिंगभूपाल के 'रसार्णवसुधाकर' का उल्लेख किया है। इस ग्रंथ के संबंध में देखिए पृ० 222-223.

(41) 'रसाकर' : 'मेघदूत' (सं० यथोक्त, पृ० 87, 97 पर अपनी टीका में मल्लिनाथ ने इसका उल्लेख किया है।

(42) 'रसिकसर्वस्व' : 'गीतगोविंद' v. 2, की टीका में नारायण ने इसका

उल्लेख किया है। 'अनर्घराघव' (निर्णयसागर प्रेस, सं०) पर अपनी टीका पृ० 13 पर रुचिपति ने भी इसका उल्लेख किया है।

(43) 'रहस्य' : संभवतः यह किसी अधिक निश्चित ग्रंथ का संक्षिप्त रूप है। मल्लिनाथ ने 'किरात' iii-60, xiv-40 तथा 'शिशुपाल वध' xiii-10 पर अपनी टीकाओं में इसका उल्लेख किया है।

(44) 'शृंगारकौस्तुभ' : राइस 288 (औफ्रेक्ट i, 660b).

(45) 'शृंगारचंद्रोदय' : 'प्रस्ताव-चिंतामणि' में इसका उल्लेख है। वेबर i, पृ० 229।

(46) 'शृंगार तरंगिणी' : ओपर्ट 2465 राइस 288 (=औफ्रेक्ट i-660b)।

(47) 'शृंगारपावन' : ओपर्ट 5766 (औफ्रेक्ट i, 661a).

(48) 'शृंगारमंजरी' : औफ्रेक्ट i, 661a.

(49) 'शृंगार विधि' : ओपर्ट 5680 (औफ्रेक्ट i, 661a).

(50) 'शृंगाररत्नाकर' : औफ्रेक्ट ii, 158a.

ग्रंथसूचियों में दिए गए उल्लेखों अथवा विवरणों से उपर्युक्त रस तथा शृंगार विषयक प्रत्येक ग्रंथ के संबंध में यह बात स्पष्ट नहीं होती कि अमुक ग्रंथ वास्तव में अलंकारविषयक है अथवा कामशास्त्रविषयक ग्रंथों के समान है। जहां तक संभव है, कामशास्त्रीय ग्रंथों को उपर्युक्त सूची में शामिल नहीं किया गया है।

काव्यालंकारविषयक 19 वीं शती के अंतिम भाग में लिखे गए संस्कृत के अर्वाचीन ग्रंथ ये हैं :

(1) 'अलंकार-सूत्र' : लेखक चंद्रकांत तर्कालंकार। चंद्रकांत एक बंगाली पंडित थे। इनकी स्मृति अभी तक बनी हुई है। (प्रकाशन कलकत्ता, 1899)।

(2) 'यशोवंतयशोभूषण' : लेखक पंडित रामकर्ण। यह ग्रंथ राजस्थान के यशोवंत नामक राजा की स्तुति में लिखा गया है। (प्रकाशन गोधपुर, 1897).

(3) 'अलंकार मणिहार' : लेखक श्रीकृष्ण ब्रह्मचारी। मैसूर गवर्नमेंट ओरिएंटल सीरीज के अंतर्गत 4 खंडों, संख्या, 51, 85, 68, 72 में प्रकाशित हुआ है। लेखक का नाम कृष्णब्रह्मतंत्र परकाल स्वामी दिया गया है। ये मैसूर के परकाल वैष्णव मठ के मठाधीश थे।

(4) 'काव्यदीपिका' : लेखक कांतिचंद्र मुखोपाध्याय विद्यारत्न (सं० कलकत्ता 1870,1886 जीवानंद विद्यासागर की टीका सहित 1919; सं हरिदत्त शास्त्री, लाहौर 1939. हिंदी तथा संस्कृत टीकाओं सहित)। इसमें प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए मम्मट इत्यादि आचार्यों के उद्धरणों का संकलन किया गया है। ये अर्वाचीन लेखक 19 वीं शती में हुए हैं।

(5) 'अलंकारसारमंजरी' : मूलपाठ संस्कृत तथा हिंदी-टीका सहित, लेखक नारायण शास्त्री खिस्ते, सं० नरहरि शास्त्री थत्ते, चौखंबा-संस्कृत सीरीज 1933।

★

उपसंहार

(१)

पिछले पृष्ठों में संस्कृत के अलंकार-विषयक साहित्य की नानारूपता तथा विशालता प्रदर्शित करने के साथ-साथ ऐतिहासिक विवेचन की दृष्टि से उपयोगी, एवं सापेक्ष कालक्रम निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है। इसके अज्ञात आरंभ, तथा यदि भरत को छोड़ दिया जाए तो, इसके ऐतिहासिक विकास की अवधि मोटे तौर से 800 से 1800 ई० तक के 1000 वर्षों में निर्धारित की जा सकती है। रचनात्मक चिंतन की विशालता तथा सूक्ष्मता इस काल की विशेषताएं रही हैं। आदि विकास का केंद्र काश्मीर रहा है। काव्यालंकार के अधिकतर मौलिक तथा प्रसिद्ध आचार्य काश्मीरी ही थे। दो प्राचीन आचार्यों, भरत तथा भामह, के निवासस्थान तो वास्तव में ज्ञात नहीं हैं, किंतु उनके पश्चात् वामन, उद्भट, रुद्रट, मुकुल, आनंदवर्धन, लोल्लट, भट्ट नायक, अभिनवगुप्त, क्षेमेंद्र, कुंतक, मम्मट तथा रुय्यक प्रभृति आचार्य सभी काश्मीर-निवासी थे। दंडी ही एक महत्वपूर्ण आचार्य हैं, जो संभवतः दक्षिण भारत में हुए हैं। परवर्ती काल में मध्य भारत, गुजरात, दक्षिण भारत तथा बंगाल में भी इस शास्त्र का अनुशीलन फैल गया। इसमें संदेह नहीं कि दक्षिण भारत के धुरंधर विद्वानों ने इस शास्त्र की परंपरा को जीवित रखा। उनकी कृतियां अधिक मौलिक नहीं हैं, यह दूसरी बात है; किंतु परवर्ती काल की भीमकाय रचनाएं, विवेचन की दृष्टि के यदाकदा सूक्ष्मतर होने पर भी, काश्मीर के मौलिक रचनाकार्य को विस्थापित नहीं कर सकतीं। अलंकार-शास्त्र का उद्‌गम काश्मीर में भले ही न हुआ हो, किंतु उसका विकास वहीं हुआ था। मध्यभारत, गुजरात, दक्षिण भारत तथा बंगाल के लेखकों ने इस शास्त्र के आदि काश्मीरी आचार्यों को प्रमाण मानकर उनकी परंपरा को बनाए रखा है।

(२)

यद्यपि काव्यशास्त्र के इतिहास की अवधि एक सहस्र वर्ष से भी अधिक है, तथापि इसमें अनेक सोपान स्पष्ट रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। आनंदवर्धन की तिथि के साथ ही इस शास्त्र का कालक्रम तथा इतिहास आरंभ होता है। इसी तिथि को सीमाचिह्न मानकर आचार्यों अथवा उनकी रचनाओं की पूर्वापरता निश्चित की जा सकती है। मम्मट के चिर-प्रतिष्ठित ग्रंथ ने स्वयं आनंदवर्धन की रचना को एकमात्र प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया है। आनंदवर्धन से पूर्वापर विद्यमान सिद्धांतों तथा आनंदवर्धन के सिद्धांत का पारस्परिक संबंध ही सर्वोत्तम तथा प्रवृत्तियों का मार्गदर्शक हुआ और अंत में मम्मट के एकमात्र, स्पष्ट, प्रामाणिक तथा सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत में विलीन हो गया। वास्तव में आनंदवर्धन ने काव्य में ध्वनि के नवीन सिद्धांतों की स्थापना के अतिरिक्त, पूर्ववर्ती भामह, वामन प्रभृति आचार्यों द्वारा विकसित तथा भरत के परवर्ती नाट्य-रस-विषयक-लेखकों के विभिन्न सिद्धांतों में उपलब्ध विचारों का परिष्कार करने के पश्चात् उन्हें एक समुचित तथा व्यापक सिद्धांत के रूप में संबद्ध किया था। मम्मट ने उसी सिद्धांत को संक्षिप्त, सुबोध तथा पद्धतिबद्ध पाठ्यपुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया।

(३)

भामह का 'काव्यालंकार' नामक ग्रंथ काव्य-शास्त्र की प्राचीनतम रचना है। इसमें काव्यालंकारों का पहली बार पद्धति-बद्ध विवेचन है। ऐसे प्रमाण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, जिनसे यह सूचित होता है कि 'काव्यालंकार' की रचना से पूर्व, इस शास्त्र के अनुशीलन के अज्ञात आरंभ की अनेक शतियों की अवधि अवश्य रही होगी। इस दीर्घ काल के अंतर्गत अलंकारविषयक चिंतन के संकेत भरत के ग्रंथ में, तथा भामह से पूर्व मेधावी-जैसे आचार्यों के उद्धृत विचारों, अथवा यत्रतत्र विकीर्ण उल्लेखों अथवा अलंकारविषयक ऐसे ग्रंथों में मिलते हैं, जिनका सामान्यतः काव्यकारों ने और विशेषतया भट्टि ने अपने ग्रंथों में उपयोग किया है। इस काल के आरंभ में केवल चार अलंकारों, उनके लक्षणों, काव्य के दस गुणों तथा दस दोषों का ही वर्णन मिलता है, किंतु इस काल के अंत में भट्टि-काव्य के अंतर्गत अड़तीस स्वतंत्र तथा परिष्कृत अलंकारों का परिपाक हो चुका था। इस काल में विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि भरत ने नाट्यशास्त्र की सूक्ष्म रूप

से तथा रस-शास्त्र की आनुषंगिक रूप से व्याख्या की; किंतु रस-शास्त्र का काव्य-शास्त्र से उतना घनिष्ठ संबंध नहीं है, जितना नाटक तथा नाट्यशास्त्र से है।

उपर्युक्त प्रारंभिक विकास के पश्चात् अपेक्षाकृत संक्षिप्त, किंतु अनुशीलन की पुष्टि से विशिष्ट रचनात्मक प्रतिभा का युग है। इसका आरंभ आचार्य भामह से हुआ तथा समाप्ति आनंदवर्धन से हुई। इस युग में संस्कृत काव्यशास्त्र की आधारभूत अधिकतम समस्याओं पर चिंतन के पश्चात् सिद्धांतों की स्थापना की गई। एक ओर भामह, उद्भट तथा रुद्रट ने काव्य के विभिन्न आलंकारिक साधनों का विवेचन किया, जिन्हें काव्यालंकार कहा जाता है। यह विवेचन अलंकार के बाह्य साधनों अथवा अलंकार-सिद्धांत तक ही सीमित था। इसी विवेचन के आधार पर इस शास्त्र का नामकरण हुआ तथा इसे एक मूल परंपरा की प्राप्ति हुई। दूसरी ओर आचार्य दंडी तथा वामन ने काव्य की अभिव्यक्ति में सौंदर्य के प्रसाधन, मार्ग अथवा रीति तथा उसके दस गुणों पर विशेष बल दिया। इन दोनों पद्धतियों ने काव्य में क्रमशः अलंकार तथा रीति पर बल दिया है, ताकि काव्य में उद्दिष्ट अभिव्यक्ति की सिद्धि हो सके। काव्यरचना में इन दोनों पद्धतियों का प्रयोग पर्याप्त रूप में लाभदायक समझा गया। इन पद्धतियों का उद्देश्य काव्य में दोषों का निवारण, गुणों की सिद्धि तथा अलंकारों का वर्णन था। इसी आधार पर इस शास्त्र को अलंकारशास्त्र अथवा काव्य-सौंदर्य का विज्ञान नाम से अभिहित किया गया।

इन प्राचीन आचार्यों के अतिरिक्त भरत पर टीका लिखनेवाले लोल्लट शंकुक प्रभृति लेखक भी हुए हैं, जिन्होंने रस के सौंदर्यबोधात्मक सिद्धांत भाव अनुभाव तथा रस के महत्व का प्रतिपादन किया। दंडी, उद्भट, वामन तथा रुद्रट प्रभृति विपक्षी सैद्धांतिक भी, इन लेखकों से प्रभावित हुए बिना न रह सके। उनकी रचनाएं काव्यगत इस नवीन धारा के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए प्रभाव को स्पष्ट रूप में परिलक्षित करती हैं, किंतु इस समय तक रससिद्धांत का विवेचन मुख्य रूप में नाट्य-कला तक ही सीमित था। सबसे पहले ध्वनिकार तथा आनंदवर्धन ने ही काव्य में रस के महत्व का पूर्ण रूप से अनुभव किया।

इन नवीन सैद्धांतिकों के मतानुसार, नाट्यशास्त्र की तरह, अलंकारशास्त्र की किसी भी पद्धति में काव्य भावों अनुभावों, तथा रसों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव काव्यशास्त्र में भी रस को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। आनंदवर्धन इस मत के प्रवर्तकों के अग्रणी थे। इस प्रकार नाटक में जिन रससंबंधी

सिद्धांतों को पहले से ही मान्यता प्राप्त हो चुकी थी, उन्हीं सिद्धांतों का काव्य में भी प्रयोग किया जाने लगा, जिसके फलस्वरूप काव्य-सिद्धांत में बड़ा परिवर्तन हुआ। रस को काव्य की आत्मा माना जाने लगा और रस को काव्य-सिद्धांत के अनुकूल बनाने के लिए नवीन पद्धति ने अभिव्यक्ति के साधनरूप-ध्वनि-सिद्धांत का आविष्कार किया। अपनी पद्धति में रस-सिद्धांत के समावेश से नवीन धारा के प्रवर्तक संतुष्ट नहीं हुए; उन्होंने अलंकार तथा रीति (तथा रीति के अंग अर्थात् काव्य-गुण तथा काव्य-दोष) से संबंधित अब तक के संचित विचारों का सूक्ष्म रूप से अन्वीक्षण किया, ताकि ध्वनि तथा रस के नवीन विचारों से उनका सहसंबंध स्थापित किया जा सके और इस प्रकार प्राचीन तथा नवीन धाराओं के संश्लेष से काव्यशास्त्र के एक व्यापक सिद्धांत की स्थापना हो सके।

आनंदवर्धन तथा मम्मट के अंतर्वर्ती काल में नवीन पद्धति की सूक्ष्मताओं को सुनिश्चित किया गया। अंत में मम्मट के सिद्धांत-ग्रंथ के फलस्वरूप नवीन सिद्धांत को ही एकमात्र मान्य सिद्धांत स्थिर किया गया। मम्मट की रचना पूर्ण रूप से सफल रचना थी, अधिकतर परवर्ती आचार्यों ने नवीन ध्वनि-सिद्धांत को ,प्रामाणिक माना। मम्मट के पश्चात् जिन नवीन सिद्धांतों का आविर्भाव हुआ, उन्हें वास्तव में स्वतंत्र सिद्धांत नहीं माना जा सकता।

(४)

किंतु कोई भी सिद्धांत, भले ही वह कितना भी सुव्यवस्थित अथवा व्यापक क्यों न हो, निर्विरोध स्वीकार नहीं किया जाता। इसमें संदेह नहीं कि कालांतर में आनंदवर्धन के सिद्धांत से भी प्राचीन विचारधाराएं अभिभूत होकर उसी में विलीन हो गईं, किंतु आनंदवर्धन तथा मम्मट के अंतर्वर्ती काल में, जब कि यह नवीन सिद्धांत एकाधिपत्य के लिए प्रयत्नशील था, कुछ समय तक इस सिद्धांत का कड़ा विरोध हुआ। कुछ लेखकों ने आनंदवर्धन द्वारा की गई इस शास्त्र की नवीन व्याख्या को स्वीकार नहीं किया। कुंतक ने नवीन विचारों को स्थान देने के हेतु भामह के वक्रोक्ति-सिद्धांत को परिष्कृत तथा व्यापक बनाने का प्रयत्न किया, भट्ट नायक ने रस-सिद्धांत के पक्ष में नवीन विचारधारा के विरुद्ध अपनी आवाज उठाई; तथा महिमभट्ट ने तर्क के शास्त्रीय आधार पर ध्वनि के नए सिद्धांत की व्याख्या करने का यत्न किया। इन आचार्यों ने ध्वनि के प्रतिष्ठित नवीन सिद्धांत को अस्वीकार तो नहीं किया, किंतु काव्य-विषयक पूर्वप्रतिष्ठित विचारों के अनुरूप ही

उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न अवश्य किया। ये निशक्त विपक्षी विचारधाराएँ अनुमोदन के अभाव के कारण मम्मट के समय में ही क्षीण हो गईं और इनके बावजूद, काव्यशास्त्र का वह सिद्धांत, जिसकी अंतिम रूपरेखा आनंदवर्धन ने प्रस्तुत की तथा मम्मट और उसके अनुयायियों ने जिसका सूक्ष्म विवेचन किया, 12 वीं शती से लेकर सभी ग्रंथों में निर्विवाद रूप से प्रतिष्ठित हो चुका था। वाग्भट अथवा भोज के मतानुयायियों की तरह यत्रतत्र प्राचीन परंपरा के कुछ अवशिष्ट व्याख्याता अवश्य हुए हैं; इनके अतिरिक्त कविशिक्षा-विषयक अथवा कामशास्त्र-विषयक कुछ लेखक भी हुए हैं, जो नवीन धारा से अछूते रहे हैं, किंतु मुख्य रूप से इस शास्त्र का रचनात्मक काल लगभग समाप्त हो चुका था। किसी नए सिद्धांत के अभाव के कारण, आनंदवर्धन का ही सिद्धांत, जिसे मम्मट ने सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया था, मूर्धन्य स्थान पा चुका था। तथाकथित प्रतिपक्षी भी प्रत्यक्ष रूप में उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके।

(५)

इस ग्रंथ के द्वितीय खंड में विस्तृत चर्चा से उपर्युक्त बातें अधिक स्पष्ट हो जाएँगी। फलस्वरूप, विवेचन की सरलता के हेतु, संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास की मोटे तौर से रूपरेखा निश्चित की जाएगी और इसके सिद्धांतों को कालक्रमानुसार अनेक युगों में विभक्त किया जाएगा। अन्य भारतीय शास्त्रों की तरह इस शास्त्र का धुँधला आदिकाल हमारी दृष्टि से ओझल है। भरत तथा भामह के ग्रंथों में ही पहली बार यह शास्त्र कुछ-कुछ विकसित रूप में दृष्टिगोचर होता है। इन आचार्यों के पश्चात् जिस युग का आरंभ हुआ, उसकी परिसमाप्ति आनंदवर्धन के साथ हुई। काव्यशास्त्र के इतिहास में यह सर्वाधिक रचनात्मक युग कहा जा सकता है। इस युग में विभिन्न धाराओं के अंतर्गत विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन हुआ तथा उनकी सामान्य रूपरेखाएँ भी निश्चित हुईं। फलस्वरूप कम-से-कम चार विभिन्न धाराओं का विकास हुआ, जिनमें क्रमशः काव्य में रस, अलंकार, रीति तथा ध्वनि पर बल दिया गया। इस युग में भामह, उद्भट, रुद्रट, दंडी, वामन, भरत के टीकाकार (लोल्लट, शंकुक इत्यादि) हुए तथा विष्णुधर्मोत्तर तथा अग्निपुराण की रचना हुई। ध्वनिकार तथा आनंद-वर्धन भी इसी युग में हुए। आनंदवर्धन तथा मम्मट के बीच में एक तीसरा लक्षणात्मक युग है, जिसके अंत में काव्यशास्त्र के संपूर्ण सिद्धांत का अंतिम रूप से मानवी-करण कर दिया गया। इस सिद्धांत में ध्वनि पर विशेष बल दिया गया है तथा

इसमें विभिन्न प्राचीन धाराएँ विलीन हो गई हैं। इस सिद्धांत का अंतिम रूप मम्मट के ग्रंथ में सुव्यवस्थित तथा संक्षिप्त आधार रूप में उपलब्ध है। इसी युग में कुंतक तथा महिमभट्ट जैसे प्रतिपक्षी भी हुए हैं। अग्निपुराण की परंपरा का पालन करनेवाले भोज तथा नाट्यशास्त्र विधायक लेखक धनंजय भी इसी युग में हुए हैं। इस युग के पश्चात् टीकाकारों का युग है। इसके अंतर्गत सिद्धांत का आलोचनात्मक परिष्कार हुआ तथा सामान्यतः मम्मट के ग्रंथ के अनुसार, सिद्धांत को अंतिम रूप से सुव्यवस्थित तथा संक्षिप्तीकरण के साथ प्रस्तुत किया गया। इसी युग में सिद्धांत की बारीकियों तथा सूक्ष्मताओं पर भी विचार किया गया। इस युग की रचनाओं से टीकाकारों की विदग्धता अथवा उनकी कुशाग्रबुद्धि का परिचय मिलता है, यद्यपि उनमें उतनी मौलिकता अथवा सर्जनात्मक प्रतिभा प्रतिभासित नहीं होती, किंतु शास्त्र का उत्तरोत्तर पतन अवश्य परिलक्षित होता है। कुछ व्यावहारिक तथा विशिष्ट विषयक लेखक मुख्य धारा से विचलित हो गए, इसका कारण सामान्य सामयिक पतन था, न कि काव्यशास्त्र के सिद्धांत में किसी वास्तविक मतभेद अथवा स्वतंत्र चिंतन के कारण ऐसा हुआ। इस युग में असंख्य टीकाकार तथा टीकानुटीकाकार भी हुए। पूर्वप्रतिष्ठित नियमों का विस्तार करना अथवा उनके अपवादों को बतलाना अथवा मूलपाठ की व्याख्या-जैसा नीरस कार्य ही एकमात्र साध्य रह गया। इस काल में ऐसे सर्वप्रिय लेखक भी हुए हैं, जिन्होंने सामान्य बोध के हेतु इस शास्त्र के अध्ययन को सरल बनाने का यत्न किया। प्राचीन विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकें इसी निम्नतम कोटि में आती हैं।

(६)

इस खंड के उपसंहार के रूप में यही कहा जा सकता है कि हमारे सामान्य काव्य-शास्त्र-संबंधी शोध पर कालक्रमानुसार पूर्व-विवेचना का जो प्रभाव पड़ा है, उसके प्रकाश में हम काव्य-शास्त्र के इतिहास के विभिन्न युगों का स्थूल रूप में विभाजन प्रस्तुत करने में समर्थ होंगे। द्वितीय खंड में विभिन्न युगों के शास्त्राचार्यों और उनके वर्गों को समाविष्ट किया जायगा, जिससे काव्यशास्त्रीय समस्याओं के अध्ययन में सुविधा हो जाय। विभाजन इस प्रकार है :

(1) अज्ञात आरंभ से भामह तक (उत्पत्ति काल)।

(2) भामह से आनंदवर्धन तक 7 वीं शती के मध्य से 9 वीं शती के मध्य तक (रचनात्मक काल)।

(i) भामह, उद्भट तथा रुद्रट (अलंकार सिद्धांत)।

(ii) दंडी तथा वामन (रीति सिद्धांत)।

(iii) लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक इत्यादि (रस सिद्धांत)।

(iv) विष्णु धर्मोत्तर तथा अग्निपुराण।

(v) ध्वनिकार तथा आनंदवर्धन (ध्वनि सिद्धांत)।

(3) आदनंवर्धन से मम्मट तथा 9वीं शती के मध्य से 11वीं शती के मध्य तक (लक्षणात्मक काल)।

(i) अभिनवगुप्त

(ii) कुंतक

(iii) रुद्रभट्ट

(iv) धनंजय तथा धनिक।

(v) भोज

(vi) महिमभट्ट

(4) मम्मट से जगन्नाथ तक, 11वीं शती के मध्य से 18वीं शती तक, (टीका काल)।

(i) मम्मट, रुय्यक तथा विश्वनाथ (तथा हेमचंद्र, विद्याधर, विश्वनाथ, जयदेव, अप्पय्य इत्यादि)।

(ii) वाग्भट (अनेक) तथा केशव मिश्र।

(iii) रस, विशेषतया शृंगार, विषयक लेखक : शारदातनय, शिंगभूपाल, भानुदत्त, रूप गोस्वामी इत्यादि।

(iv) कविशिक्षा विषयक लेखक : राजशेखर, क्षेमेंद्र, अरिसिंह, अमरचंद्र तथा देवेश्वर इत्यादि।

(v) जगन्नाथ।

(७)

ध्वनि सिद्धांत को केंद्रस्थानीय मानकर काव्यशास्त्र के सिद्धांतों को मोटे तौर से तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : (1) प्राक् ध्वनि, (2) ध्वनि, तथा

(3) ध्वनि-पश्चात्। प्राक् ध्वनि वर्ग में आनंदवर्धन से पूर्व, ध्वनि-सिद्धांत से संबंधित ध्वनिकार तथा आनंदवर्धन को छोड़कर, वर्ग (1) तथा (2) में उल्लिखित सभी लेखक सम्मिलित किए जा सकते हैं। ध्वनि-पश्चात् वर्ग में मम्मट से लेकर जगन्नाथ पर्यंत ध्वनि-सिद्धांत के मतानुयायी, कुंतक-जैसे प्रतिपक्षी अथवा रूढ़ि-विरोधी महिमभट्ट-जैसे लेखक तथा शृंगार और कविशिक्षा-विषयक लेखक आते हैं। उक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त, विशिष्ट आचार्यों द्वारा विशिष्ट सिद्धांत का पोषक होने के नाते काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का वर्गीकरण इस प्रकार भी किया गया है, (1) रस सिद्धांत (2) अलंकार सिद्धांत, (3) रीति सिद्धांत तथा (4) ध्वनि सिद्धांत। उक्त वर्गीकरण की सुगमता स्पष्ट ही है, किंतु विशिष्ट मत को 'सिद्धांत' नाम दिया जा सकता है अथवा नहीं, यह बड़ा संदेहास्पद है[1], क्योंकि यह मानना पड़ेगा कि विभिन्न सिद्धांतों का अनिवार्य रूप से परस्पर सम्मिश्रण हुआ है। इसलिए कोई भी एक सिद्धांत अपने आप में निरपेक्ष रूप से विद्यमान रहा हो, ऐसा नहीं हो सकता। इस प्रकार ध्वनि संप्रदाय ने काव्य के आवश्यक अंगों के रूप में रस तथा अलंकार को स्वीकार किया है। इन पर तथाकथित अलंकार तथा रस संप्रदायों का एकाधिकार नहीं है। यह भी संदेहास्पद है कि रस संप्रदाय के आदि प्रवर्तक

---

1. देखिए, भंडारकर कमेमोरेशन वाल्यूम पृ० 387 इत्यादि में सोवानी का लेख। रुय्यक द्वारा की गई पूर्ववर्ती मतों की समीक्षा तथा समुद्रबंध द्वारा किए गए वर्गीकरण को विश्वसनीय माना गया है। पूर्ववर्ती आचार्यों ने ध्वनि को परोक्ष रूप में कहां तक स्वीकार किया, रुय्यक ने केवल इसी बात को अपनी समीक्षा का आधार मानकर चर्चा की है। इस स्थल की व्याख्या करते हुए समुद्रबंध ने ध्वनि-सिद्धांत सहित पांच पक्षों का उल्लेख किया है। उन्होंने ध्वनि को अंतिम पक्ष कहा है और स्वयं को भी इसी पक्ष का समर्थक बतलाया है। काव्य विशिष्ट शब्द तथा अर्थ सापेक्ष है। उसका वर्गीकरण भी इसी रूढ़ सिद्धांत पर आधारित है। उनके मतानुसार यह विशिष्टता, शब्द के (1) धर्म (2) व्यापार तथा (3) व्यंग्य को पुष्ट करने से प्राप्त होती हैं। अलंकार तथा गुण अर्थात् रीति से धर्म की प्राप्ति होती है, तथा व्यापार का आधार भणिति-प्रकार अथवा भोगीकरण होता है। इस प्रकार उद्भट, वामन, कुंतक, भट्टनायक तथा आनंदवर्धन प्रभृति आचार्यों से संबंधित क्रमशः पांच पक्षों की सिद्धि होती है। यह वर्गीकरण, महत्त्वपूर्ण होते हुए भी अन्योन्याश्रित है और ऐतिहासिक दृष्टि से भी ठीक नहीं है। इसके विपक्ष में यह कहा जा सकता है कि व्यंजना, जिसे वर्गीकरण का एक आधार माना गया है, निश्चित रूप में कुतर्क द्वारा स्वीकृत भणिति की तरह एक व्यापार ही है। इसके अतिरिक्त कुंतक ने स्पष्टतया भामह की वक्रोक्ति को भणिति-वैचित्र्य के रूप में माना है। अतएव कुंतक को भी अलंकार पक्ष का आचार्य कहा जा सकता है। इसी प्रकार, भट्टनायक ने भोग को रस-सिद्धि का विशिष्ट धर्म कहा है। अतएव भट्ट-नायक ने भरत के रस-विषयक उपदेश की व्याख्या करते हुए वास्तव में रस-सिद्धांत की ही व्याख्या की है।

भरत ने तथाकथित रस-सिद्धांत की स्थापना की अथवा इसी प्रकार भामह ने किसी अलंकार को जन्म दिया। इस संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि भरत तथा भामह ने काव्य में क्रमशः रस तथा अलंकार पर बल दिया था। काव्यशास्त्र के क्षेत्र में समय पाकर यही विचार सिद्धांत रूप में प्रतिष्ठित हो गए। यह एक नियम है कि प्रत्येक महान् लेखक, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में किसी नए सिद्धांत को प्रस्तुत करता है, अपने पूर्ववर्ती लेखकों के उन विचारों को ग्रहण कर लेता है, जो उसके अपने सिद्धांत के अनुकूल हों और आलोचनारूपी अग्नि में तपकर खरे सिद्ध हो चुके हों। वास्तव में बहुमूल्य विचार इसी प्रकार सामान्यतः स्वीकार किए गए हैं, यद्यपि संभवतः उसी लेखक के अन्य विचार सर्वसम्मति से यदाकदा अस्वीकार भी कर दिए जाते हैं। इस बात का एक उदाहरण वक्रोक्ति-जीवितकार का है। उनके वक्रोक्ति सिद्धांत को किसी ने मान्यता नहीं दी, यद्यपि रुय्यक इत्यादि आचार्यों ने उनके मुख्य सिद्धांत, अर्थात् अलंकार के विश्लेषण, को स्वीकार कर लिया। यहां हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कृत काव्यशास्त्र के इतिहास में विकास का केवल एक ही प्रवाह है, जिसमें अनेक धाराएँ तथा प्रतिधाराएँ हैं। ये धाराएँ तथा प्रतिधाराएँ वास्तव में बड़ी महत्त्वपूर्ण थीं, किंतु वे पृथक्-पृथक् नदियों का रूप कभी धारण न कर सकीं। स्वतंत्र रूप से विकसित अथवा मुख्य प्रवाह से विचलित भिन्न-भिन्न धाराएँ अंत में जाकर एक स्वच्छ तथा सर्वोपरि प्रवाह में विलीन हो गईं।

पारिभाषिक शब्दावली

अंतराल	Interval
अंत:संबंध	Inter-relation
अंश	Fragment
अधिकरण (कारक)	Locative (case)
अनुमान	Inference
अभिधा	Denotation
अलंकार	Figure of Speech
अलंकारशास्त्र	Rhetorics
अवशेष	Remnant
अस्थायी	Provisional
आक्षेप	Implication
आगम	Deduction
आलोचना	Criticism
उक्ति	Dictum
उदाहरण	Illustration
उद्‍गम	Genesis
उद्धरण	Quotation, extract
उपमा	Similitude, analogy
उपाय	Device
उपभेद	Subspecies
करण (कारक)	Instrumental (case)
काकु	Intonation

कामशास्त्र	Erotics
कारक	Agent
कालक्रम	Chronology
काव्यशास्त्र	Poetics
कृत्रिम	Factitions
कर्ता (कारक)	Nominative (case)
कर्म (कारक)	Objective (case)
गुण	Quality
गुणधर्म	Characteristics
ग्रंथ	Treatise
ग्रंथ सूची	Bibliography
चिंतन	Speculation
छंद	Metre
जाति	Genus
टीका	Commentary
टीकाकार	Commentator
तुलना	Simile, comparison
दृष्ट	Perception
ध्वनि	Suggestion
नाट्य	Dramaturgy
नाट्यकला	Histrionic art
नाट्य मुद्रा	Dramatic gesture
नाट्य शास्त्र	Dramaturgy
नायक	Hero
निकष	Criterion
निष्कर्ष, उपसंहार	Conclusion
परंपरागत	Traditional

परिभाषा	Definition
पाठ	Recension
पात्र	Character
पुनरावृत्ति	Repetition
पुरालेख	Epigraphy
पूरक	Supplementary
पूर्ववर्ती	Predecessor
पौराणिक	Mythical
पौराणिक काल	Mythic age
प्रत्यक्ष	Perception
प्रत्यय	Suffix
प्रबंध	Composition
प्रमाण	Evidence, testimony
प्रशस्ति	Panegyric
प्राचीन	Orthodox
प्रारंभिक	Rudimentary
भेद	Species
मिश्रित	Composite
मोक्ष	Liberation
रंगमंच	Stage
राजकवि	Court Poet
रूप	Version
लक्षण	Characteristic
लिंग	Inference
वर्ग	Category
वर्गीकरण	Classification
वस्तु	Object
विपरीत क्रम	Inverse Order
विपर्यय	Contrariety
विभाजन	Division
विवाद	Controversy

विवादास्पद	Controversial
विश्लेषण	Analysis
व्यक्ति	Individual
वैयाकरण	Grammarian
व्याकरण	Grammar
व्याख्या	Paraphrase, interpretation
व्याख्यात्मक	Expository
व्यापक	Comprehensive
श्रेणी	Category
संकलन	Compilation
संकल्पना	Conception
संकेत	Convention
संग्रह	Anthology, Compendium
संप्रदाय	School of opinion
संबंध (कारक)	Genitive (case)
संस्करण	Edition
संहिता	Compendium
समावेश	Incorporation
साक्ष्य	Evidence
सादृश्य	Similitude
साम्य	Similitude
सार	Substance
सिद्धांत	Theory, dogma, doctrine
सौंदर्यशास्त्र	Aesthetics
स्वराघात	Accent

—•—